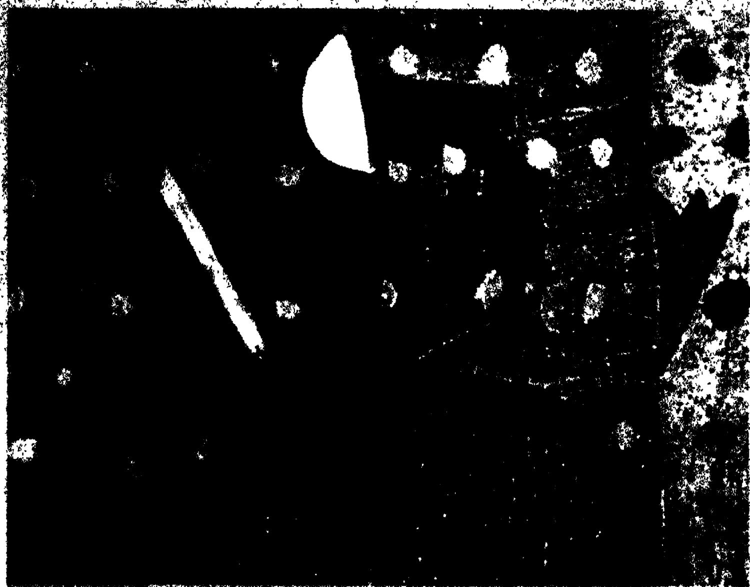
माया लोक





कृष्ण बलदेव वैद

कृष्ण बलदेव वैद

की वाग्देवी से प्रकाशित अन्य कृतिया

काला कोलाज

वाग्देवी पॉकेट बुक्स मे

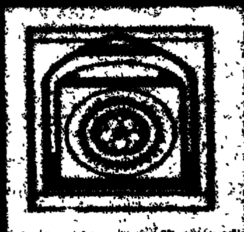
उसका बचपन

गुज़रा हुआ ज़माना

दूसरा न कोई

नसरीन/दर्द ला दवा

वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर



माया लोक

कृष्ण बलदेव वैद



वाग्देवी प्रकाशन
सुगन निवास, चन्दनसागर
बीकानेर 334001

मूल्य : दो सौ पचहत्तर रुपये मात्र

आवरण चित्र : एस. हर्षवर्धन

मुद्रक : सांखला प्रिण्टर्स
सुगन निवास, चन्दनसागर
बीकानेर 334001

ISBN 81-85127-93-X

MAYA LOK *(Novel)*
by Krishna Baldev Vaid

उपन्यास की सुषुप्त संभावनाओं के नाम

उपन्यास की सुषुप्त संभावनाएं

उपन्यास अपने स्वभाव और संस्कार से ही एक बहुरूपीय विधा है; इसकी बहुरूपीयता ही इसका मुख्य आकर्षण है; इसका आकर्षण असन्दिग्ध भी है, बहुरूपीय भी। आश्चर्य की बात यह है कि कुछ लोग इसके एक ही रूप पर इतने मुग्ध हो कर रह जाते हैं कि उन्हें इसके अन्य रूप या तो नज़र नहीं आते या मन्ज़ूर नहीं होते। ऐसे लोग इस विधा से यह अपेक्षा करते हैं कि यह उन्हें बार बार उन्हीं के चहेते रूप में दिखायी दे। उनके अनुसार वही रूप इसकी सारी संभावनाओं को साकार करता है। यह इस विधा की खूबी है कि इसने अपने इन आशिक़ों की बात नहीं मानी और अपने वैविध्य का बहिष्कार नहीं किया।

उपन्यास की रचनात्मक चुनौतियां अनन्त हैं क्योंकि इसकी बहुरूपीयता अनन्त है। इसे इसीलिए होल्डाल भी कहा गया है, जेबी थीएटर भी, सड़क पर या शहर में घूमता भटकता आईना भी, जनसाधारण का मार्गदर्शक भी, गद्य में रचा गया कॉमिक महाकाव्य भी, आधुनिक काल का महाकाव्य भी, साहित्य की गणिका भी, हरफ़नमौला भी...। उपन्यास बड़ा, बहुत ही बड़ा, तो हो ही सकता, बहुत छोटा भी हो सकता है—इतना छोटा कि कहानी को उस से ईर्ष्या हो जाए; इसे एकालाप में तो उतारा ही जा सकता है, अनेकालापी भी बनाया जा सकता है; डायरी, पत्र, निबन्ध, सफ़रनामा, उपदेश, आलोचना, संपादकीय, बयान, भाषण—संक्षेप में तकरीर और तहरीर का शायद ही कोई ऐसा रूप हो जो इसने न धारण किया हो या जो यह धारण न कर सकता हो; इसे ज्ञान का भंडार भी बनाया जा सकता है, इसमें अज्ञान का बाज़ार भी लगाया जा सकता है; यह मूर्त तो अक्सर होता ही है, अमूर्त भी हो सकता है; दिनचर्या का चित्रण तो इसमें होता ही है, नींदचर्या का चित्रण भी इसमें संभव है; केवल बाहर की बहार भी इसमें दिखायी जा सकती है, केवल भीतर का भय भी इसमें रचा जा सकता है, बाहर और भीतर के अनुपम और असंख्य संगम तो इसमें बनाए ही जा सकते हैं; इसे रचने के दृष्टिकोण भी अनेक हैं, इसके अपने दृष्टिकोण भी; इसमें प्लाट हो भी सकता है, नहीं भी—कथातत्त्व हो भी सकता है, नहीं भी—चरित्र हो भी

सकते हैं, नहीं भी—सवाद हो भी सकते हैं, नहीं भी; आम तौर पर इसे गद्य में लिखा जाता है लेकिन पद्य के प्रयोग पर ऐसी कोई पाबन्दी नहीं जिसे तोड़ा न गया हो, तोड़ा न जा सकता हो; इस से अपेक्षा अक्सर यही की जाती है कि यह आसान हो लेकिन इसने कभी कभी कठिन हो कर भी अपना कमाल खूब दिखाया है...।

असल बात यह है कि हर उपन्यास को एक ही या 'चन्दएक' ही तरीक़ों का मोहताज नहीं बनाया जाना चाहिए, हर उपन्यासकार को एक ही निकष पर नहीं कसना चाहिए, हर उपन्यास को एक ही ढंग से नहीं पढ़ना चाहिए, हर उपन्यासकार से हर बार एक ही प्रकार के उपन्यास की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी बात पर बल देने के लिए ही कुछ वर्ष पहले मैंने अपने उपन्यास **काला कोलाज** को अनुपन्यास कह देने का दु:साहस तो कर दिया था, लेकिन उस दु:साहस को किसी सैद्धान्तिक सफ़ाई का सहारा नहीं दिया था। मेरा अभिप्राय उस उपन्यास से उन तत्त्वों की अनुपस्थिति की ओर संकेत करना था जिन्हें कुछ लोग किसी भी उपन्यास के उपन्यास होने की शर्त ठहराते हैं। **माया लोक** से भी कई ऐसे तत्त्व अनुपस्थित हैं जिन्हें कुछ लोग हर उपन्यास के लिए अनिवार्य मानते हैं। इस दृष्टि से **माया लोक** को भी अनुपन्यास कहा जा सकता है।

वास्तविकता तो यह है कि अनुपन्यास उपन्यास में निहित है, उपन्यास की ही एक संभावना है, उपन्यास के उन असंख्य वैकल्पिक रूपों का सामूहिक नाम हो सकता है जिन्हें कुछ लोग दुराग्रहवश उपन्यास की परिभाषाओं और उपन्यास के परिसर से बाहर रखना चाहते हैं। अनुपन्यास उपन्यास की ही सुषुप्त या अदृश्य संभावनाओं को स्वरूप देता है। अनुपन्यास उपन्यास से इनकार नहीं, उसका विस्तार है। जब तक उपन्यास है, तब तक अनुपन्यास भी रहेगा—यह आश्वासन हमें उपन्यास के इतिहास से मिलता है।

—कृष्ण बलदेव वैद

अपूर्ण अन्धेरे में

सुबह अभी साफ़ नहीं हुई। मैं रात की रेत से आजाद नहीं हुआ। सहसा मुझे एक आदेश मिलता है जिसे सुनते ही मैं सजग हो उठ जाता हूं। बाहर बेगाना सन्नाटा पसरा हुआ है। किसी ने, शायद आदेश देने वाले ने ही, मेरे हाथ में एक कटोरा थमा दिया है। उसमें लाल रंग का कीचड़ सा देख मैं दहल जाता हूं! मेरे दूसरे हाथ की अंगुलियां कीचड़ को यूं मथना शुरू कर देती हैं मानो सोच रही हों मैं उस कीचड़ का क्या करूंगा। मुझे खुद मालूम नहीं। सामने एक सफेद मकान नजर आता है। मैं जा कर उसके बन्द सदर दरवाज़े पर उस लाल कीचड़ से लथपथ अपनी अंगुलियों से अपना नाम लिख देने के लिए चलता हूं तो मुझे अपना नाम भूल जाता है। दूसरों के नाम भूलने का तो अब मैं अभ्यस्त होता जा रहा हूं, अपना नाम भूलने का अभी नहीं। घबराहट में मैं उस दरवाज़े पर अपने पजे के तीन लाल निशान चिपका देता हूं। महसूस होता है जैसे मैंने किसी दस्तावेज़ पर तीन अंगूठे से चस्पां कर दिये हों। फिर सर आकाश की तरफ़ उठा कर फटती हुई आवाज में चिल्लाता हूं : लोगो, मुझे आदेश मिला है कि मैं आपको बता दूं मैं बेगुनाह नहीं; मैं पूछना चाहता हूं क्या आप मुझे बेगुनाह समझते हैं? कोई किसी को बेगुनाह नहीं समझता। मैंने कभी अपने आपको बेगुनाह नहीं समझा क्योंकि मैं अपने लिए 'मैं' नहीं कोई और हूं। मैं अपना दूसरा हूं। शायद यह भी मेरा एक गुनाह ही हो। जो आदेश मुझे मिला है उसका पालन मैं कर रहा हूं। शायद इसे भी मेरे गुनाहों में शामि[illegible] कर लिया जाए। आप चाहें तो मुझे मेरे सारे गुनाहों की सजा दे सकते है। आदेश देने वाले का उद्देश्य शायद यही था। मैं हाज़िर हूं। आप मुझ पर थूक सकते हैं, पत्थर फेंक सकते हैं, लानतें [illegible]रसा सकते हैं, मुझे नजरअन्दाज़ कर सकते हैं। मैं कोई जवाब नहीं दूंगा। मुझे अपना नाम भूल गया है; नाम के बजाय मैंने उस दरवाज़े पर इस खूनी कीचड़ से तीन लाल निशान चिपका दिये हैं। इन्हें मेरे गुनाहनामे पर मेरा हस्ताक्षर मान लिया जाए। लोगो, आप शायद सोच रहे हों अजीब गुनाहगार है कि इसकी आवाज़ में गिड़गिड़ाहट का कोई स्वर नहीं। मुझे आदेश मिला है कि मैं कोरी आवाज़ में अपने बेगुनाह न होने का एलान करूं, गिड़गिड़ाऊं नहीं। [illegible]गिड़ाने से आप पर उल्टा असर पड़ सकता है, आप सज़ा देने के बजाय मुझे मुआफ़ कर सकते हैं। मुझे सजा चाहिए, मुआफ़ी नहीं। मैं जानता हूं मुआफ़ी भी एक तरह की सज़ा ही होती है—कई बार दूसरी सज़ाओं से ज्यादा सख्त। मुआफ़ी शायद आदेश देने वाला ही देगा जब देगा अगर देगा। आप मेरी पुकार सुन रहे हों या न सुन रहे हों वह ज़रूर सुन रहा है और परख रहा है कि मैं उसके आदेश का पालन पूरे मन से कर रहा हूं या नहीं। अगर वह मुझे जानता है तो यह भी जरूर जानता

होगा कि मैं पूरे मन से कोई काम नहीं कर सकता। शायद यह भी मेरे गुनाहों में शामिल हो। सच्ची मुआफ़ी की उम्मीद मुझे नहीं। आदेश देने वाले से भी नहीं। शायद यह भी मेरे गुनाहों और उनकी सजाओं में शामिल हो। अब शायद मैं उस आदेश की सीमाओं का उल्लंघन कर रहा हूं। मुझे खामोश हो जाना चाहिए, इस अन्देशे के बावजूद कि मेरी खामोशी को भी मेरे गुनाहों में शामिल कर लिया जाएगा।

जब सर आकाश से उतार कर झुकाता हूं तो अपने इर्द-गिर्द तमाशबीनों का घेरा दिखायी देता है। सब की आंखें मुझ पर गड़ी हुई हैं। सबकी आंखों से दया फूट रही है, और यह ख्वाहिश कि मैं ज़्यादा देर खामोश न रहूँ। मेरे हाथों में कसा वह कटोरा किसी गदागर या मदारी का कासा नज़र आता है।

अगले दिन सुबह सवेरे कहीं पहुंचने की हिदायत तो मुझे याद थी लेकिन यह याद नहीं आ रहा था कहां। हो सकता है हिदायत देने वाले से ही चूक हो गयी हो, उसी ने न बताया हो कि मुझे कहां पहुंचना है। हो सकता है उसने सोचा हो मुझे मालूम ही होगा। उस वक्त शायद हिदायत से पैदा हुई दहशत के कारण मुझे ख़याल ही न आया हो कि उस से पूछ तो लूं मुझे कहां पहुंचना है। हिदायत देने वाले का हुलिया भी मुझे याद नहीं। हुलिया तो दूर की बात है मुझे तो उसका कुछ भी याद नहीं, आवाज़ तक भी नहीं, नाम तक नहीं, मुकाम तक नहीं। शायद मैंने उसे देखा ही न हो, अन्धेरे के कारण, या शायद वह मेरे सामने आया ही न हो, किसी पर्दे या चट्टान की ओर से ही उसने मुझे वह अधूरी हिदायत दे दी हो। हो सकता है उनकी आवाज़ सुनते समय मैं उसकी मूरत की ही कल्पना करता रहा, इसीलिए यह पूछना भूल गया कि मुझे अगले दिन सुबह सवेरे कहां पहुंचना है। होने को तो यह भी हो सकता है कि उसने मुझ से पूछा हो, जानते हो कहां पहुंचना है, और मैंने कह दिया हो, जानता हू, यह सोच कर कि अगर कह दिया, नहीं जानता, तो वह बिगड़ जाएगा, कह देगा, तो फिर तुम जाओ मैं यह काम किसी और को सौंप दूगा।

वहा पहुंच कर मुझे करना क्या था, यह मुझे मालूम भी नही था, बताया भी नहीं गया था, मैने पूछा भी नहीं था, इतना मुझे याद है। वैसे हो सकता है याद यह भी न हो और मैंने यूं ही मान लिया हो कि इतना मुझे याद है, अपनी साख बनाए रखने के लिए, क्योंकि अगर मान लूं कि मुझे बस इतना ही याद है कि मुझे कहीं पहुंचने की हिदायत दी गयी थी लेकिन यह याद नहीं कि कहां पहुंचने की और वहां पहुंच कर क्या करने की तो किसी को मुझ पर विश्वास नहीं आएगा, सब कहेंगे मैं बन रहा हूं, उन्हें बाना रहा हूं, भुलक्कड़ होने का बहाना कर रहा हूं क्योंकि मैं कहीं पहुंचना चाहता हूं न वहां पहुच कर कुछ करना चाहता हूं, मैं बस रौब गाठना चाहता हूं कि मुझे किसी बड़े और रहस्यपूर्ण काम के लिए चुन लिया गया है।

जो याद नहीं आ रहा था उसे याद करने की सब संभव कोशिशें मैंने कीं—सब संभव न भी की हों उतनी तो कीं ही जितनी मेरे लिए संभव थीं। उनके सहारे कुछ रात तो कट गयी लेकिन जो बाकी बची रह गयी थी वह मुझे काटना शुरू कर देगी, यह सोच मैंने की हुई कोशिशों को फिर करना शुरू कर दिया—अपने माथे को दबाया, कानों को खुजलाया, सर को कई झटके दिये, आंखों को बन्द किया, उस अन्धेरे पर ध्यान लगाया जिसमें से वह

हिदायत फूटी थी, उस आवाज में मिलती जुलती आवाजो को याद करने की कोशिश की, उनके आपसी टकराव से कोई शरारा पैदा करना चाहा, अपने मन को कौंचा, लेकिन जब कोई भी तरकीब कारगर न हुई तो मैंने मान लिया मुझे दी गयी हिदायत में शायद यह निहित हो कि मुझे खुद पता चलाना होगा कि मुझे कहा पहुंचना था या फिर मुझे ख़ुदबख़ुद पता चल जाएगा, मुझे बस तय्यार रहना चाहिए। यह मान लेने के बाद चैन आ जाना चाहिए था, नीद आ जानी चाहिए थी लेकिन ऐसा नहीं हुआ। नींद के लिए भी मैंने कई जतन किये, कई मन्त्र जपे, कई तारे गिने, क्योंकि अब यह उम्मीद बन्धने लगी थी कि अगर नींद आ जाए तो शायद किसी स्वप्न मे यह संकेत मिल जाए कि मुझे अगले दिन सुबह सवेरे कहां पहुंचना था, लेकिन नींद नहीं आयी। अब सोचता हूं अच्छा ही हुआ क्योंकि नींद अगर आ जाती तो शायद दूसरे दिन उस वक्त के बाद ही टूटती जिस वक़्त मुझे कहीं पहुंचना था और तब अगर किसी स्वप्न के संकेत की बदौलत याद आ भी जाता कि मुझे कहां पहुंचना था तो कोई फ़ायदा न होता, क्योंकि वक़्त के बाद पहुंचने का अक्सर नुक़्सान ही होता है, फ़ायदा नहीं।

माया सो चुकी थी। उसे मेरी समस्या की कोई खबर नहीं थी। उसके सो जाने के बाद ही मुझे हिदायत मिली थी। वह जाग रही होती तो उसे न बताना मेरे लिए नामुमकिन होता। उसे जगा कर बताने में मुझे कोई फ़ायदा नज़र नहीं आया। अगर इत्तफ़ाक से वह उसी क्षण जाग उठी होती तो मैंने जल्दी जल्दी उसे सब बता कर उस तदबीर के बारे में भी उसकी राय पूछ ली होती जो मुझे नींद को बुलाने की नाकाम कोशिशों के बाद सूझी थी। तब क्या होता, मैं कह नहीं सकता। शायद माया ने कह दिया होता मेरी तदबीर बेहूदा थी, शायद उसने कोई और तदबीर सुझायी होती, शायद असहमति के बावजूद वह मेरा साथ देने के लिए मेरे साथ हो ली होती या शायद मैंने अपनी तदबीर रद्द कर दी होती और यह फैसला कर लिया होता कि जब याद आएगा तब देखा जाएगा, नहीं याद आएगा तो भी देखा जाएगा, तब तक मैं हिल के नहीं दूंगा, अगर हिदायत देने वाले को जरूरत होगी तो वह फिर ज़ाहिर हो जाएगा, मतलब फिर कहीं से बोल पड़ेगा, और माया को मेरे इस फैसले पर हंसी आ जाती, या शायद गुस्सा, या शायद प्यार, या शायद तीनों।

जो नहीं हुआ उस पर अपने अनुमान बरबाद करना बेकार है। माया सोयी रही और मैं कुछ देर उस तदबीर से खेलता रहा।

अपनी तदबीरो से मै वैसे ही खेलता हूं जैसे मेरी तक़दीर मुझ से।

तदबीर और तक़दीर की तकरार का तमाशा मैं कई बार देख चुका हूं।

कहने को तो मैंने कह दिया, 'मेरी तदबीर', 'मेरी तक़दीर' लेकिन मै जानता हूं वह दरअसल मेरी नहीं।

अगर तक़दीर है तो तदबीर नहीं है, न होने के बराबर है, तक़दीर का ही एक खेल है।

तदबीर के होने में तो मुझे हल्का सा विश्वास कभी कभी हो जाता है, तक़दीर के होने मे मैं न जाने क्यों इनकार करता रहता हूं, यह जानते हुए भी कि मेरा इनकार निराधार है, यह

मानते हुए भी कि तकदीर अगर है तो निराकार है, अगर नहीं है तो भी उसका होना मान लेने में ही मेरा भला है।

वह तदबीर जो मुझे सूझी यूं थी . अगर मुझे याद नहीं आ रहा कि अगले दिन सुबह सवेरे मुझे कहा पहुचने की हिदायत दी गयी थी तो याद करने की कोशिश में अपनी रही सही ऊर्जा उड़ा देने के बजाय क्यों नहीं मैं आंखें मूंद कर या सिक्का उछाल कर या ऐसे ही किसी और तरीक़े से किसी भी ऐसे स्थल का चुनाव कर लेता जहां पहुचने के स्वप्न मैं लेता रहता हूं या जहां पहुंचना मेरे लिए संभव हो, या असंभव हो क्योंकि ऐसा कर लेने मे और कोई फ़ायदा हो न हो रात मुझे नहीं काटेगी।

किसी को यकीन आए न आए—खुद मुझे नही आ रहा—यह तदबीर मुझ पर इन्हीं शब्दों में उतरी थी।

एक क्षण के लिए भ्रम हुआ, आकाशवाणी सुन ली हो। कुछ क्षणों के लिए मैं सुन्न पड़ा रहा। फिर इस खयाल ने उबार लिया, कहां मैं कहां आकाश! उबरने के बाद मैं रुका नहीं। सिक्का उछालना तो जंचा नहीं, आंखें मैंने ज़रूर मूंद लीं। बेशुमार विकल्प बिखरे पड़े दिखायी दिये। उनमें से एक को उठा लिया और आंखें खोल कर उस तरफ चल दिया। यह विश्वास नहीं था कि अगले दिन सुबह सवेरे उस मुक़ाम पर जा पहुंचूंगा जिसका मैंने चुनाव किया था। यह विश्वास तो खैर बिलकुल नहीं था कि वह मुक़ाम वही होगा जहां पहुंचने की मुझे हिदायत मिली थी, बस यही तसल्ली थी कि रात कट जाएगी।

मैं उसको अपने काम की रिपोर्ट दे रहा था और नहीं जानता था कि वह कौन था और मैं अपने किस काम की रिपोर्ट उसे क्यों दे रहा था। मैंने कोई तैयारी नहीं की थी। मुझे अपने मुंह से फूट रही बातों पर विस्मय भी हो रहा था, अविश्वास भी। महसूस हो रहा था जैसे मुह किसी का हो, आवाज़ मेरी हो, बातें किसी और की। जो शख़्स मेरी रिपोर्ट सुन रहा था, उसकी सूरत मुझे दिखायी नहीं दे रही थी। उस पर काला पर्दा सा टंगा हुआ था। वह एक खम्बे की तरह मेरे सामने खड़ा था। जो रिपोर्ट मेरे मुंह से निकल रही थी उसका सार अब मुझे इस तरह से याद आ रहा है :

मेरा काम अधूरा है। मेरा इसमें कोई दोष नहीं। मेरे अधूरे काम में कई दोष हैं। मैं कभी उसे पूरा कर सकूंगा न उसके दोषों को दूर। लेकिन मैं उसे पूरा करने की कोशिशों से बाज़ आऊँगा न उसके दोषों को दूर करने की कोशिशों से। मैं शेखी नहीं बघार रहा। मेरे इस दावे पर किसी को यकीन नहीं आएगा। मुझे खुद नहीं आ रहा। मेरी कोशिशें भी अधूरी हैं, उनमें भी कई दोष हैं। मैं उन्हें पूरा करने की कोशिशों से बाज़ आऊँगा न उनके दोषों को दूर करने की कोशिशों से। मैं शेखी नहीं बघार रहा। मेरे इस दावे पर भी किसी को यक़ीन नहीं आएगा। मैं इस सिलसिले को आगे नहीं बढ़ाऊंगा। मुझे उम्मीद है कि यह सुनने वाले के मन में अपने आप आगे बढ़ता चला जाएगा—अन्त तक, या अनन्त तक। मैं अपनी अधूरी कोशिशों से बाज़ आ जाना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कोई मेरी अधूरी कोशिशों का अन्त कर दे। मेरे अन्त से पहले। मेरा अन्त अब दूर नहीं। मैं चाहता हूं कि कोई मेरे चाहने का अन्त कर दे। मेरी यह ख़्वाहिश मेरी रिपोर्ट में शामिल नहीं होनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि कोई मेरी ख़्वाहिशों का अन्त कर दे। मैं जानता हूं कि मेरी यह ख़्वाहिश कभी पूरी नहीं होगी। मैं कुछ नहीं जानता। मैं इस चक्कर मे पहले भी कई बार फंस चुका हूं। मैं शुरू से ही इसी चक्कर में फंसा हुआ हूं। सब इसी चक्कर में फंसे हुए हैं, वे जानें या न जानें। इस खयाल से मुझे कोई राहत नहीं मिलती। शायद इसीलिए मेरा काम मुझे अधूरा नज़र आता है, उसमें मुझे कई दोष नज़र आते हैं, उसे पूरा करने की और उसके दोषों को दूर करने की अपनी सारी कोशिशें मुझे अधूरी नजर आती हैं....। इसे ही मेरी रिपोर्ट समझ लिया जाए, मेरी अधूरी रिपोर्ट!

वह खम्बा यकायक ग़ायब हो गया तो मै मुस्कराया। वह मुस्कराहट एक पुरस्कार सरीखी थी जो मैंने अपने आपको दे दिया था। कुछ दूर निकल जाने के बाद मुझे कुछ लोग दिखायी

दिये। लगा कि वे वहां पिकनिक कर रहे थे। एक औरत बाकियों से अलग सर झुकाए खड़ी थी। मैं उसके पास जा खड़ा हुआ, सर झुका कर। कुछ क्षण खामोश रहने के बाद मैंने जेब से एक दियासलाई निकाली और उसे अपनी हथेली पर रख हथेली उसकी ओर बढ़ा दी। वह मुस्करायी। फिर उसने सर उठाया, मुझे देखा, और दियासलाई को कबूल कर लिया। मैंने कहा, मैं अभी अभी किसी को अपने अधूरे दोषपूर्ण काम की अधूरी दोषपूर्ण रिपोर्ट दे कर आया हूं। उसने पूछा, आप काम क्या करते है ? मैंने कह दिया, कुछ लिखता विखता रहता हू, पता नहीं आप उसे काम मानेंगी भी या नहीं। उसने पूछा, कितना कमा लेते हैं ? मैंने कहा, लिखने विखने में खास कमाई नहीं होती। वह बोली, कुछ तो होती ही होगी। मैंने कहा, आप भी कमाल की औरत हैं, पहली मुलाक़ात में ही कमाई को ले बैठीं, अब शायद यह भी पूछ लें, मेरी बीवी की उम्र क्या है, बच्चे कहां हैं, मकान कितना बड़ा है। वह हंसी। फिर उसने मेरी दी हुई दियासलाई को यूं अपने होठों में दबा लिया जैसे वह सिग्रेट हो। मैंने पूछा, आपका नाम क्या है ? उसने बताया लेकिन मुझे सुनायी नहीं दिया। उसने फिर बताया तो भी मुझे सुनायी नहीं दिया। उसने नाम तीसरी बार बताया तो मैंने पूछा, आप पैदा कहा हुई थीं। उसने कहा, मैं क़ाबुल में पैदा हुई थी। मैं उसी दम उसके साथ उड़कर क़ाबुल पहुंच गया। वहां अन्धेरे में गोलियाँ दागी जा रही थीं।

मुझे मालूम नहीं मैं वहां क्यों जा पहुंचा था लेकिन वहां के अपूर्ण अन्धेरे में दो जगमगाते अजनबियों को देख मुझे इतनी दहशत हुई कि मैंने सहमे सहमे इशारों से उन्हें समझाना शुरू कर दिया कि मैं अपनी किसी गुमशुदा कुंजी की तलाश में ग़लती से उनके कमरे में दाखिल हो गया था, वे मुझे मुआफ़ कर दें। मेरे इशारों से उनकी सूरतों की सख़्ती में कोई अन्तर न आया तो मैंने सोचा मैंने जो मुनासिब समझा कर दिया, अब शायद वे मुझे रोकेंगे नहीं, मुआफ़ भले ही न करें। मैं उसी दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा जिस से मैं अन्दर आया था। दरवाज़ा खटाक से बन्द हो गया। मेरी दहशत दुगुनी हो गयी। मुझे यक़ीन था कि दरवाज़ा उन दोनों के आदेश पर ही बन्द हुआ था। मैंने मुड़ कर उनकी तरफ़ देखा तो उनके चेहरों पर मुझे कुछ दिखायी नहीं दिया। मैं उनके साथ किसी बहस में नहीं पड़ना चाहता था। बहसों में हमेशा मेरी हार होती है। दलीलों के बजाय मेरे मुंह से आरोप और उलाहने ही फूटते रहते हैं जिन से मेरे मुखालिफ़ों का प्रकोप और पक्ष और प्रखर हो उठते हैं। मैंने दूसरे दरवाजे की तरफ़ बढ़ने का फ़ैसला कर लिया, अबकी बार मैं बढ़ने के बजाए लपक कर एक ही छलांग में दरवाज़े से बाहर निकल जाना चाहता था—गिर जाने या दरवाज़े से टकरा जाने के खतरे के बावजूद। खुली आंखों लपकना मेरे लिए कठिन होता है। मैंने आखें बन्द कर लीं, और ऐसे छलांग लगायी जैसे कोई कायर किसी कुएं में कूद रहा हो। इस बार मुझे बन्द होते दरवाज़े की खटाक के साथ ही उस मे अपने माथे की टक्कर की करारी आवाज सुनायी दी और मेरी आखें खुल गयीं। उन दोनो की सूरतों की सख्ती में हंसी या सहानुभूति की कोई दरार दिखायी दी न किसी और प्रतिक्रिया की। उस अपूर्ण अन्धेरे में वे दो गूंगे बहरे पहरेदारों की तरह जगमगा रहे थे। एक दरवाज़ा और था और वह बन्द था। उसे आज़माने से पहले उन दोनों की चुप्पी को तोड़ने की एक और कोशिश करनी चाहिए, मैंने सोचा, या कम से कम उन से एक और इल्तिजा करनी होगी, अपनी भूल को और खुल कर स्वीकार करना होगा, उन्हें आश्वस्त करना होगा कि मैं वहां चोरी या किसी और बुरे इरादे से नहीं घुसा था, कि मैं किसी को उनके और उनके उस कमरे के बारे में नहीं बताऊंगा। यह सब कहने के लिए मैं हाथ बान्ध कर उनके सामने खड़ा हो गया। मुझे खतरा था वे मेरी विनम्रता के अतिरेक को मेरा व्यग्य समझेंगे, इसलिए हाथों की तरह मैंने अपने होंठ भी अच्छी तरह बान्धे हुए थे ताकि उनमें से कोई मुस्कराहट न फूट निकले। जब कुछ कहने की कोशिश की तो होंठ कांप कर रह गये लेकिन खुले नहीं। सो मैंने याचनाएं और आश्वासन अपनी आंखों

से उंडेलने शुरू कर दिये। पता नहीं उन्हें मुझ पर दया आयी या मुझ से घृणा हुई, उन्होंने अपने किसी गुप्त संकेत या यन्त्र से तीसरा दरवाज़ा खोल दिया। मैंने सर झुका कर आभार प्रगट किया और धीरे धीरे दरवाज़े की तरफ़ बढ़ना शुरू कर दिया। बाहर भी अन्धेरा तो था लेकिन हवा चल रही थी। मैंने मुड़ कर नहीं देखा।

अपने कमरे में बन्द चीते की तरह टहल रहा हूं, इधर से उधर, उधर से इधर, एक कोने से दूसरे कोने तक। कमरा खाली है, कमोबेश रौशनी फीकी है, कमोबेश। मैं इस समय कामनाहीन तो नहीं लेकिन कामनामग्न भी नही। खुल खिल जाने की प्रतीक्षा तो है लेकिन अकुलाहट नही। शायद प्रतीक्षा अतीव्र है। टहल तो चीते की तरह रहा हूं लेकिन बेचैनी में नहीं, बस यूंही, आदत के आदेश पर, बुझी बैठी कामनाओं को कुछ और बुझा बिठा देने के लिए, खुलने खिलने की प्रतीक्षा को सुला देने के लिए। कमरे में बन्द इसलिए हूं कि कमरे से बाहर होते ही कामनाओं के शिकंजे में कस जाता हूं, इतना बेचैन हो उठता हूं कि किसी एक नुक़्ते पर निगाह नहीं टिकती, किसी एक आशा से पर्याप्त शान्ति और अशान्ति नहीं मिलती। माया कहती है मैं अपने कमरे में ही रहूं तो बेहतर है, उसके लिए भी, मेरे लिए भी, और शायद देश और दुनिया के लिए भी। मैं उस से सहमत हूं। वैसे जब कमरे में बन्द होता हूं तब भी माया मुझ से पूरी तरह मुक्त होती है न मैं उस से। कान उसकी हरकतों को टटोलते रहते हैं, मन उसके लिए मचलता रहता है। माया दरअसल मेरी सांसों में समायी रहती है।

इस वक़्त वह बाहर किसी से बात कर रही है। या शायद किसी की बात सुन रही है, जिसकी आवाज़ की तराश से मैंने अन्दाजा लगा लिया है कि वह वही काली करारी नयी इस्तरी करने वाली होगी जिसे मैं पहले देख तो चुका हूं, सुन शायद अब ही रहा हूं। कोई बात मुझे पूरी तरह सुनायी नहीं दे रही। बातों के बीचोबीच कभी कभी उसकी पाज़ेब की आवाज़ सुनायी दे जाती है और मुझे लगता है जैसे वह अपनी ही बात को बीच बीच में थाप दे देती हो।

मुझे माया से ईर्ष्या होती है, उस से कोई डरता नहीं। सब्ज़ी फल वाले, कबाड़ी, पेपर वाला, काम करने वालियां, पड़ोसियों के बच्चे, बरतन बेचने वालियां, छुरी चाकू तेज करने वाले, बासमती चावल बेचने वाले,फूल वाले, कचरा बीनने वालियां, चन्दे बटोरने वाले, साड़िया बेचने वाले, अन्ध-विद्यालय के अनाथ—सब उस से इस तरह से बात करते हैं जैसे वे उसे जानते हों, वह उन्हें, और अच्छी तरह। मुझ से सब डरते हैं, परहेज़ करते हैं, दूर भागते हैं। किसी किसी के चेहरे पर तो यह प्रश्न अंकित रहता है कि माया मुझे बरदाश्त कैसे करती है।

अगर मैं इसी वक़्त दरवाजा खोल दूं तो माया से बात करने वाली काली करारी औरत झुलस कर चुप हो जाएगी।

मैं दरवाजा खोल देता हूं। बाहर नौ दस बरस की एक बूढ़ी बच्ची माया के सामने खड़ी उसे अपनी दास्तां सुना रही है। मै दरवाजा बन्द कर लेता हूं और फिर चीते की तरह टहलना शुरू कर देता हूं, इधर से उधर, इस कोने से उस कोने तक, उस कोने से इस कोने तक।

मेरा हाथ उसके हाथ में था और वह मुझे एक अपूर्ण अन्धेरे के अन्दर खींच रही थी, कुछ इस तरह से जैसे उसे सब साफ़ दिखायी दे रहा हो, या शायद सब तो नहीं लेकिन कुछ ऐसा जो सिर्फ़ उसे ही दिखायी दे रहा हो, मुझे नहीं।

अगर मुझे भी वह दिखायी दे रहा होता जो उसे दिखायी दे रहा था तो पता नहीं मेरी प्रतिक्रिया क्या होती, मैं खिंचने से इनकार कर देता या कहता खींचो मत मैं इस अन्धेरे में उतरने के लिए तुम से ज़्यादा उतावला हूं।

उसका हाथ अन्धेरे की तरह कोमल न होता तो शायद मैंने अपना अकोमल हाथ एक क्रूर झटके से छुड़ा लिया होता। वह अन्धेरा इतना घना और अजनबी न होता तो शायद मेरा हाथ उसके हाथ में होता ही नहीं।

उसे मालूम है, मैं घने अजनबी अन्धेरों से डरता हूं, इसीलिए शायद वह मुझे अपनी तरफ़ खींच रही थी, दिखाना चाहती थी कि घने अन्धेरों में ऐसा कुछ नहीं होता जिस से आदमी डरे।

घिसिटता खिंचता हुआ मैं महसूस कर रहा था जैसे वह मुझे किसी आम अन्धेरे में नहीं बल्कि अपने ही किसी खास अन्धेरे में ले जा रही हो, या शायद अपने ही अन्दर। मैं महसूस कर रहा था जैसे वह ख़ुद साक्षात् अन्धेरा हो।

अगर मुझे यह एहसास न हुआ होता तो शायद मैंने उस से तकरार की होती, कहा होता— कहां ले जा रही हो मुझे, छोड़ो, मैं नीले अन्धेरों का शैदाई हूं, ऐसे काले घने अजनबी अन्धेरों का नहीं।

उस रात से पहले कभी मैंने उसकी तुलना घने अजनबी अन्धेरे से नहीं की थी।

उस रात से पहले कभी उसने वैसी मज़बूती से मेरा हाथ पकड़ मुझे किसी ऐसे घने अन्धेरे में उतारने की वैसी कड़ी कोशिश नहीं की थी कि मुझे महसूस हुआ हो वह मुझे अपने ही अन्दर उतार रही हो।

उस रात से पहले कभी मैंने उसके हाथ की कोमलता की तुलना अन्धेरे की कोमलता से नहीं की थी।

अन्धेरा इतना घना था कि मेरी आंखें अपने आप बन्द हो गयीं, शायद यह सोच कर कि ऐसे अन्धेरों में आंखें बेकार हो जाती हैं। आंखें बन्द होते ही मेरे होंठ थोड़े से खुल गये, उसी तरह जैसे अन्धे भिखारियों या गायकों के हर वक़्त खुले रहते हैं। मुझे यह खतरा नहीं था कि

अन्धेरे में ठोकर खा कर मैं गिर पड़ूंगा, घायल हो जाऊँगा, मुझे ख़तरा था कि अन्धेरे में उतार कर वह मेरा हाथ छोड़ देगी और मैं बाहर निकल सकूंगा न अन्दर रच रस सकूंगा।

उस रात से पहले मैंने उसे अपने नीले अन्धेरों में उतारने की कई नाकाम कोशिशें की थीं लेकिन हर बार उसने अपना हाथ छुड़ा लिया था।

उस रात शायद वह मुझे यह दिखाना चाहती थी कि असली अन्धेरे नीले नहीं होते, घने होते हैं, उन से जो डर महसूस होता है वह सघन होता है, उन की कोमलता का आकर्षण असाधारण होता है।

उस रात से पहले उसने मुझे यह सब दिखाने की कोशिश न जाने क्यों नहीं की थी।

उस रात से पहले वह मुझे उजालों के जाल में ही फंसाए रखने की कोशिश न जाने क्यों करती रही थी।

डर के बावजूद मन तो यही हो रहा था कि उन्मुक्त हो कर उसके साथ हो लूं और देखूं वह मुझे उस अन्धेरे की थाह तक ले जा सकेगी या नहीं लेकिन मुझे खतरा था कि अगर मेरे हाथ और उसके हाथ के बीच का वह भीना सा तनाव खत्म हो गया तो उस अन्धेरे के आकर्षण में इकहरापन आ जाएगा और वैसे भी अजनबी अन्धेरे में निःसंकोच उतरना उस की अजनबियत का निरादर होगा।

जिस अन्धेरे में वह मुझे उतार रही थी वह इकहरा नहीं था।

जिन उजालों के जाल मे उस रात से पहले उसने मुझे फँसाए रखने की कई कोशिशें की थीं वे सब इकहरे थे, इतने इकहरे थे कि अगर मैं सचमुच उनमें फंस भी गया होता तो शायद अन्दर से उन से आज़ाद ही रहता, आज़ाद ही महसूस करता।

जिन नीले अन्धेरों में मैंने उस रात से पहले उसे खींच ले जाने की कोशिशें की थीं वे सब भी इकहरे थे।

मैं हैरान हो रहा था कि उसने उस अन्धेरे को तब तक कहां छिपा रखा था क्यों छिपा रखा था कि उस अन्धेरे की थाह पा लेने के बाद में किसी और अन्धेरे को कैसे अपना सकूंगा।

मेरा हाथ उसके हाथ से ऐसे ऐसे सवाल पूछ रहा था जैसे मैंने शायद ही कभी उस से पूछे हों। मेरे होंठ उसके होंठों से कई और सवाल पूछना चाहते थे।

अब मैं चाह रहा था कि वह मेरे संकोच की परवाह न करे और अपने अन्धेरे के अन्तिम छोर तक ले जा कर मुझे खत्म कर दे। उसके हाथों खत्म हो जाने की ख्वाहिश वैसी शिद्दत से पहले कभी नहीं हुई थी।

मुझे खतरा था कि अपने उस अन्धेरे के अन्तिम छोर तक ले जा कर वह मुझे वहां छोड़ खुद कहीं और जा छिपेगी।

मैं चाह रहा था वह कहे तुम कैसे मर्द हो तुम्हारी औरत तुम्हारे साथ है और तुम अन्धेरे से डर रहे हो हाथ छुडाने की कोशिश कर रहे हो आगे बढ़ने से संकोच कर रहे हो तुम्हें एहतियात इतनी प्यारी क्यों तुम बचे क्यों रहना चाहते हो तुम डूब क्यों नहीं सकते।

अगर उसने यह सब कह दिया होता तो मुझे अच्छा नहीं लगता, महसूस होता वह क्रूर है।

मैं चाह रहा था वह यह सब कहे ताकि मैं उसे कह सकूं तुम बहुत क्रूर हो तुम्हें अन्धेरे में खामोश रहना नहीं आता।

नही मैं नहीं जानता मैं क्या चाह रहा था क्या सोच रहा था क्यों उसके हाथों खिंचता हुआ सा उस अन्धेरे में उतर भी रहा था, न उतरने की कोशिश भी कर रहा था। उसका हाथ मेरे हाथ को आश्वासन दे रहा था।

अगर उसने मेरा हाथ छोड़ दिया होता तो मैं क्या करता—उसे कोसता, आगे बढ़ता चला जाता, वहीं ढेर हो जाता, लौट आता?

मेरे संकोच का असली कारण मेरा डर नहीं था बल्कि यही अन्देशा था कि उस अन्धेरे के अन्दर ले जा कर वह मुझे जो दिखाएगी उस से मुझे निराशा होगी और मैं उस निराशा को उस से छिपा नहीं सकूंगा और हमारा साथ फिर हमेशा के लिए टूट जाएगा।

मेरी हिचक का असली कारण मेरा संकोच और संकोच का कारण वह अन्देशा नहीं था बल्कि यह ख्वाहिश थी कि उसे यह आभास हो कि मैं उसके अन्धेरे की थाह पाने से परहेज कर रहा था ताकि मुझे यह महसूस होता रहे कि वह ज़बरदस्ती मुझे अपने उस अन्धेरे की थाह तक ले जाने के लिए ही खींच घसीट रही थी।

हमारी खामोशी उस अन्धेरे को और गहरा घना कर रही थी।

अगर वह अन्धेरा खालिस न होता तो हम खामोश न रह पाते।

अगर हम खामोश न होते तो मुझे यह खयाल न आता वह अन्धेरा खालिस था।

मैं इन्तज़ार कर रहा था कि मेरा वह खयाल विश्वास में बदल जाए।

अगर मेरा वह खयाल विश्वास में बदल गया होता तो शायद मेरा संकोच झड़ गया होता।

जब वह बेहोश हो रही थी, मै उसके उरोजों को अपनी निगाहो मे बुहार रहा था। उस मजलिस में बैठे कुछ और लोग भी शायद यही चोरी कर रहे हो। मैं और लोगों की उपस्थिति से आगाह होते हुए भी कल्पना कर रहा था कि उसके और मेरे सिवा वहां कोई नहीं था, हम दोनों एक पेड तले खड़े थे, पेड की शाखें हवा मे झूल रही थीं, उसके उरोजों के अंगूर मक्की के दानो में बदलते जा रहे थे, मेरी निगाहें मेरी अंगुलियो की पोरों में, उसके होंठों मे उसकी बातें बुलबुलों की तरह टूट फूट रही थीं, मेरे होठ उन बुलबुलो के लिए हुमक रहे थे। उस मजलिस में बैठे कुछ और लोग भी शायद इसी कल्पना से खेल रहे थे।

उसकी सूरत से यही आभास हो रहा था कि वह बेहोश हुई जा रही थी—उसकी आंखे फड़फड़ा रही थीं, चेहरा उड़ा जा रहा था, उस पर हवाइया उड़ रही थीं। 'हवाइयों' के बारे में सुना पढ़ा तो बहुत था लेकिन किसी खूबसूरत औरत के चेहरे पर उनकी उड़ानें देखने का वह पहला अवसर था। मुझे अपूर्व आनन्द आ रहा था—किसी को बेहोश होते और खुद को खत्म होते महसूस करने का आनन्द। बेहोश होती हुई वह भी आनन्दविभोर नज़र आ रही थी। लेकिन ऐसा भी लग रहा था जैसे वह बेहोश हो रही होने का अभिनय कर रही हो, यह देखने के लिए कि कोई दर्शक लपक कर उसे अपनी बाहों में ले लेने की हिम्मत करता है या नहीं।

उसे संभालने का कोई संकल्प किये बगैर मैंने लपक कर उसे अपनी बांहों में ले लिया तो किसी ने कोई धमकी दी न उसने मुझे परे धकेला। उसके मुह से एक धीमी सी सिस्की निकलती सुनायी दी तो मैंने अपने होंठ उसके होंठों पर यूं रख दिये जैसे कोई दो फूलों पर दो पत्ते रख दे। फिर मैंने एक फूंक सी मारी तो उसकी आंखें खुल गयीं और मैं खिल उठा।

उसके सीने का सख्त नर्म गुदाज मुझे महसूस हो रहा था और वह मजलिस बिखरनी शुरू हो गयी थी, मानो जिस खेल को देखने वे लोग आए थे वह खत्म हो गया था। खुद मुझे लग रहा था जैसे वह खेल अभी शुरू हुआ हो। बेहोश होती हुई या बेहोश हो रही होने का अभिनय करती हुई किसी खूबसूरत औरत को संभालने और बहाल कर देने का अवसर मुझे पहले कभी नहीं मिला था। मैं इन्तज़ार कर रहा था कि वह किसी भी क्षण तुनक कर मुझे कह देगी, तुम हो कौन? मैं अपने दुःसाहस पर हैरान हो रहा था, अपनी किस्मत पर खुश। उसके सीने का सख्त नर्म गुदाज़ और सख्त नर्म होता जा रहा था, उसकी अधखुली आंखें मुस्करा रही थीं, उसके होंठ मेरे होंठों से अठखेलिया कर रहे थे, और लोग ग़ायब हो चुके थे,

मेरा स्पर्श उसे उकसा रहा था, उसका मुझे। अब मुझे यकीन हो गया था वह नहीं कहेगी, तुम कौन हो?

लेकिन वहां उस तरह झूलते हुए खड़े रहने में कई खतरे थे। अगर हम नाच रहे होते या निःसंकोच चूम-चाट रहे होते तो शायद हमें किसी खतरे की चिन्ता न रहती लेकिन हम तो अभी भी उसकी बेहोशी की बदौलत या बहाने एक दूसरे से लिपटे हुए थे—मैंने लपक कर उसे थाम लिया था, वह गिरते गिरते बच गयी थी, मैंने उसके होठों पर अपने होंठ रख कर फूंक मारी थी, उसकी आंखें खुल गयी थीं, मैं खिल उठा था, कसाव के कारण हमारे जिस्म जाग उठे थे लेकिन हम खुद पूरी तरह उस सजगता में शरीक नहीं हुए थे, खतरों की आगाही से आजाद नहीं हुए थे। कायदे से अब हमें अलग हो जाना चाहिए था।

सो मैंने उसकी पीठ थपकते हुए कहा—तुम्हें तो बुखार है!

मेरी आवाज़ की चिन्ता सच्ची थी, उसका जिस्म तप रहा था।

मैंने उसके माथे को छू कर फिर कहा—तुम्हें तो बहुत तेज़ बुखार है!

अब वह मेरे सहारे खड़ी तो थी लेकिन मेरी बाहों में नहीं थी

—कहीं से थर्मामीटर मिल जाए तो पता चले कितना बुखार है।

वह ख़ामोश रही, मानो कह रही हो, तुम जो ठीक समझो करो।

पहले मैंने सोचा उसे वहीं बिठा थर्मामीटर की तलाश में निकल जाऊं, फिर खयाल आया जब लौटूंगा वह वहां नहीं होगी, कोई और उसे कहीं और ले गया होगा, शायद उन लोगों में से ही कोई जो न जाने अब कहां ग़ायब हो गये थे।

हम एक बड़ी सी इमारत में थे जो कोई होटल भी हो सकता था, सराए भी।

मैं उस से पूछना चाहता था हम कहां थे, वह वहां किसके साथ आयी थी, वे लोग कहां ग़ायब हो गये थे, उसका नाम क्या था, लेकिन मुझे मालूम था वैसे किसी भी सवाल से तिलिस्म टूट जाएगा।

—चलो, किसी से पूछते हैं थर्मामीटर कहां मिलेगा।

थर्मामीटर न जाने क्यों उस वक़्त मुझे इतना ज़रूरी नज़र आ रहा था।

वह चुपचाप मेरा सहारा लिये मेरे साथ हो ली। मेरा बाज़ू उसकी कमर से लिपटा हुआ था, उसकी लटें मेरे कन्धे पर झूल रही थीं। उसके बालों पर बादलों का ग़ुमान हो रहा था, कमर पर रेशम का।

बाहर जो नज़र आया मैंने उस से पूछा थर्मामीटर कहां से मिलेगा। किसी ने ध्यान से मेरी बात नहीं सुनी। एक औरत ने सुनी और वह यूं भड़क उठी जैसे मैंने उस से वेश्यालय का रास्ता पूछ लिया हो, एक लम्बा आदमी सुन कर यूं हंसा जैसे मैंने उसे कोई अश्लील लतीफ़ा सुना दिया हो। वह देख रही थी कि मैं अपनी खोज में असफल हो रहा था। शायद मुझे छूट देने के लिए उसने कहा उसका बुख़ार उतर गया था।

—वैसे वह बुखार था ही नहीं, कभी कभी यूंही अचानक मेरे बदन मे आग सी लग जाती है।

यह कहते कहते वह मेरा सहारा छोड़ सीधी चलने लगी और मुझे महसूस हुआ जैसे उसने मेरा साथ छोड दिया हो। मेरे कन्धे से उसके बालों का साया हट गया, उसकी कमर से मेरा हाथ। मैं सोच रहा था वह कहेगी वह बेहोश भी नहीं हुई थी, कभी कभी यूं ही उसकी आंखें मुंद जाती हैं और उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगती हैं और लोग समझते हैं वह बेहोश हो गयी है। मुझे खतरा था वह कहेगी वह अब ठीक हो गयी है, उसे मेरी मदद की जरूरत नहीं, और यह कहती हुई मुझ से अलग हो अपने रास्ते पर अकेली चलना शुरू कर देगी और मैं अपने रास्ते की तलाश में तड़पता। अगर उसने ऐसा किया होता तो मैं न जाने क्या करता, शायद वहीं बैठ अपनी क़िस्मत को कोसना शुरू कर देता।

जहां हम उस वक़्त थे वहां से मुझे एक कमरा न जाने कैसे दिखायी दे रहा था—अलग थलग, जैसे किसी इमारत का हिस्सा न हो, जैसे कमरा न हो, कोई पनाह हो।

—चलो उस कमरे में कुछ देर के लिए आराम कर लेते हैं।

मेरा खयाल था वह कहेगी मुझे आराम की ज़रूरत नहीं, आप आराम करें मैं अपने घर जा रही हूं, या पूछेगी वह कमरा किसका है, या नाराज हो कहेगी मैं ऐसी वैसी औरत नहीं, लेकिन जब वह चुपचाप मेरे साथ उस तरफ़ चल पड़ी तो मुझे चिन्ता हुई उस कमरे का मालिक हमें दुत्कार देगा। कमरे का दरवाज़ा खुला था, कमरा किसी दूसरे दर्जे के होटल के कमरे की तरह साफ़ और कोरा। दाखिल होते ही मैंने दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया। उसने एतराज किया न किसी और ने तो मुझे हैरानी भी हुई, राहत भी मिली। उसके चेहरे पर किसी चिन्ता या आशंका का साया मुझे नजर नहीं आया तो मुझे सन्देह हुआ वह शायद पहले भी उस कमरे में आराम कर चुकी हो। मेरे मन में मैल की लहर सी उठी लेकिन मैंने मुंह नहीं खोला। अब वह बिस्तर पर दराज़ थी। उसका नीला ब्लाउज और काली स्कर्ट ऊपर की तरफ़ खिंचे हुए थे, उसकी आंखें बन्द थीं। मुझे झुंझलाहट हुई कि उस से पहले मैंने उसके लिबास को नोट क्यों नहीं किया था। इसी झुंझलाहट के कारण मेरे माथे पर बल पड़ गये होंगे।

—आप किस उलझन में जा पड़े, आइए इधर मेरे साथ लेट कर थोड़ी देर आराम कर लीजिए, नहीं तो कोई और आ जाएगा।

मुझे खुश होना चाहिए था कि किसी आनाकानी के बगैर वह मेरे साथ उस कमरे में चली आयी थी और अब मुझे अपने साथ लेट जाने की दावत दे रही थी, लेकिन मैं खुश नहीं हुआ—'आप' से उसने मुझ से जो दूरी बना ली थी मुझे अखर रही थी। मैंने फ़ैसला कर लिया मैं भी अब उसे 'तुम' कह कर नहीं बुलाऊंगा। लेकिन मैं उसके साथ जा लेटने में देर नहीं करना चाहता था क्योंकि मुझे भी खतरा था कि कोई और आ जाएगा और कहेगा तुम किसकी इज़ाजत से इस कमरे में घुस आए हो। अपने माथे के बलों और अपनी खफ़गी के समेत मैं उसके साथ लेट गया। उसने लेटे लेटे ही सेन्डल उतार दिये थे—जब मैं झुंझला रहा था वह सेन्डल उतार रही थी, और मैं सोच रहा था उसके पैरों को सेन्डल उतारने में

तकलीफ क्यों नहीं हो रही थी। मैं लेटे लेटे अपने बूट नहीं उतार सकता था, कोशिश भी नहीं करना चाहता था, डर था टांगों मे बल पड जाएंगे, जुराबों की बदबू कमरे मे फैल जाएगी। कुछ क्षण मैं इस इन्तजार मे कसा रहा कि वह कहेगी, बूट तो उतार लीजिए। फिर मैंने पछताना शुरू कर दिया कि लेटने से पहले मुझे बूट और जुराबें उतार पैर धो लेने चाहिये थे, कमीज पतलून अगर उतार नहीं तो ढीली जरूर कर लेनी चाहिए थीं। उसकी तरफ देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी लेकिन देखना जरूर चाहता था, यह जानने के लिए कि उसने लेटे लेटे ही ब्लाउज़ स्कर्ट अगर उतारे नहीं तो ढीले कर लिये थे या नहीं।

पता नही क्यो लेकिन लेटते ही मैंने मुरझाना शुरू कर दिया था। कई किस्म के काले संकोच मुझे डसने लगे थे। मेरी असली अन्दरूनी ख्वाहिश उस समय यही थी कि उसे वहीं छोड़ कहीं और जा पड़ू। लेकिन क्योंकि ऐसा मेरे साथ हर स्थिति मे होता है, इसलिए मुझे परेशानी तो हो रही थी, हैरानी नहीं। मैंने फ़ैसला कर लिया था मैं कोई पहल नहीं करूंगा।

—तो आप कोई पहल नहीं करेंगे ?

मैं हगा न हिला।

—अगर मुझे सचमुच का बुखार होता तो अच्छा होता, आप मुझे थर्मामीटर तो लगाते।

उसकी हंसी मुझे अश्लील तो लगी, बुरी नहीं। मैं सीधा पड़ा रहा।

जब उसने करवट बदल कर एक टांग और एक बांह से मुझे लपेट सा लिया तो मुझे लगा कोई कमसिन किसी बूढ़े को भरमा रही हो।

—बुखार शायद अब आपको हो गया है, ज़रा मुंह तो खोलिए।

मैंने मुह खोला तो उसने एक अंगुली मेरी जीभ के नीचे रख दी। मेरा खयाल था वह हंसेगी लेकिन वह गम्भीर बनी रही। एक मिनिट बाद उसने अंगुली निकाल कर उसे गौर से देखा।

—आपका टेम्प्रेचर तो नार्मल से भी नीचे है।

उसने मेरी कमीज़ मेरी पतलून से बाहर खींच कर कमीज के बटन और पतलून की ज़िप खोल दी, फिर अपना ब्लाउज़ उतार स्कर्ट को खींच कर पैरों के हवाले कर दी। उसने अंगिया पहन रखी थी न अन्डी।

अब मैं उसके हाथ में था, उसके होंठ मेरे होंठों से लिपटे जा रहे थे। जब मैंने जीभ उसके मुंह में डाली तो उसकी जीभ को गुम पाया। महसूस हुआ मेरी जीभ किसी अन्धे कुए मे लटक गयी हो। जब मैंने उसे बाहर निकालना चाहा तो उसके होठों ने उसे पकड़ लिया। अब मुझे लगा जैसे मेरी जीभ किसी पोपले मुंह में जा फंसी हो। उसके दांत गायब थे। आंखे खोल कर देखने की हिम्मत नही हुई लेकिन मुझे यकीन सा होता जा रहा था कि वह बुढ़िया में बदल गयी थी। इसके साथ ही शायद मैं बेहोश हो गया था, क्योंकि जब मेरी आंखे खुली तो वह बिस्तर के पास खड़ी थी।

—मैं अब जा रही हू, आप को शादी के पण्डाल में मिलूंगी, जल्दी जल्दी ठीक ठाक हो यहा पहुंच जाइए।

मै उस मे कुछ कहता पूछता, इस मे पहले ही वह दरवाज़ा खोल बाहर निकल गयी, और अब एक नर्स-नुमा मोटी औरत मुझ पर झुकी हुई थी।

—उठिये, मुझे बिस्तर ठीक करना है।

मै उठ गया। जब वह औरत बिस्तर ठीक करने के बाद जाने लगी तो मैंने पूछा—कमरे का किराया ?

—पन्द्रह मौ।

—पन्द्रह मौ !!

मेरी जेब में तो सिर्फ़ पांच सौ थे। चेकबुक भी नहीं थी। वह शादी का पण्डाल न जाने कहां था। मै वहा किसी को जानता भी नही था। मुझे तो यह भी मालूम नहीं था कि मैं था कहा, किस शहर में, या किस शून्य में; सोचते सोचते मै इतना घबरा उठा कि उस कमरे में खड़े रहना मेरे लिए नामुमकिन हो गया। बाहर निकला तो एक भीड़ मेरे स्वागत में खड़ी खिलखिला रही थी।

मैं चढाई चढ़ रहा था। कुछ तो चढ़ाई कड़ी थी, कुछ चढ़ने के अजनबी एहसास की तीव्रता का असर था, मेरे जबड़े कसे हुए थे, माथा सिलवटाया हुआ था, घुटने कड़कड़ा रहे थे, मुट्ठिया भिची हुई थीं, आंखें चुन्धियाई हुई थीं, लेकिन इरादे में कोई खम अभी तक नहीं आया था। चढ़ाइयां चढ़ने का मुझे अनुभव है न शौक़ न यह भ्रम कि मैं इरादा बान्ध लूं तो कोई भी चढ़ाई चढ़ सकता हूं। मैं ऊँचाइयों से डरता हूं। ऊँचाइयों पर टिके बैठे लोगो से भी। उनकी नज़रो से अपने आपको और नीचे की दुनिया को देखता हूं तो खुद को भी नीच पाता हूं, नीचे की दुनिया को भी, जिस से यह अनुमान लगा सकता हूं कि अगर खुद ऊपर कहीं जा बैठूंगा तो मुझे भी नीचे के लोग और उनकी दुनिया नीच नज़र आने लगेगी। लेकिन कल रात मैं चढ़ाई चढ़ रहा था और मेरी आंखें ऊपर पहुंच जाने की आशा के नशे के कारण यूं बन्द हुई जा रही थीं जैसे लोगों की शास्त्रीय संगीत सुनते सुनाते या प्यार करते करवाते या किसी खास दर्द या शराब को पीते समय हो जाती हैं। मुझे कुछ मालूम नहीं था कि मैं अपने स्वभाव के प्रतिकूल उस मुहिम में कैसे जुट गया था, किसके बहकावे या आदेश पर, किस प्रलोभन के चक्कर में।

आखिर जब मुझे दिखायी दिया कि मैं किसी पहाड़ी पगडंडी पर नहीं बल्कि सुलगते हुए मल्बे के एक पहाड़ पर ही चढ़ फिसल रहा था तो मेरी आंखें खुल गयीं, नहीं, उन्हें बन्द करना नामुमकिन हो गया, चढ़ाई चढ़ने की कोशिश किये जाना और मुश्किल, नीचे लौट जाना या वहीं रुक जाना नामुमकिन। कुछ असमंजस के बाद मेरे मन में एक और मोड़ आया और मैंने चढ़ते चले जाने की कोशिश को जारी रखने का फ़ैसला किया। उस असमंजस के दौरान क्या क्या ख़याल आए, याद नहीं। यह भी हो सकता है खयाल एक भी न आया हो। बड़े बड़े फ़ैसले हमेशा खयालों के आधार पर ही नहीं लिये जाते। अब उठते हुए धुएं की आन बान याद आती है, मल्बे की दुर्गन्ध याद है, अपनी यह एहतियन याद है कि मेरे पैर किसी लाश पर न जा पड़ें, कि अगर उन्हें किसी घायल ने पकड़ लिया तो क्या करूंगा। पैर पत्थर हो गये महसूस हुए, उन्हे मल्बे की जकड़ पकड़ से बार बार छुड़ाते चले जाना हर क्षण और मुश्किल होता हुआ महसूस हुआ।

जब तक आंखें कमोबेश बन्द थीं, ऊपर चढ़ते चले जाने की ज़हमत को जैसे तैसे उठाए चले जाने कि ज़िद का सहारा था, ऊपर पहुंच कर किसी नयी नज़र से नीचे देख सकने के भ्रम का भरोसा भी था, अपनी अरुचि पर विजय पा लेने की संभावना का सरूर था। लेकिन अब पूरी तरह खुल चुकी आखों को उस सुलगने मल्बे से उठता हुआ धुआं उमेठ रहा था। मल्बों

में घरेलू सामान और कूड़े कचरे के अलावा अधजली सुलगती लाशों की बू भी मिली हुई थी। मैंने अब आंखें कुछ इस तरह से कस कर बन्द कर लीं कि महसूस हुआ जैसे उन्हें कहीं अन्दर धकेल दिया हो। आंखें बन्द होते ही मानो मेरी ताकत में अन्धेरे की ताक़त भी आ मिली हो, और मैं कुछ ही देर में मल्बे के उस सुलगते हुए पहाड़ की चोटी पर जा खड़ा हुआ और मेरी आंखें अपने आप फिर खुल गयीं। मैं सामने देख रहा था। सामने कुछ नहीं था। तभी दो आदमी मुझ से दो तीन क़दम आगे खड़े दिखायी दिये। उन दोनों ने एक सफेद बैल को अपने और मेरे सर के ऊपर अपने हाथों पर उठा रखा था। बैल का पेट फूला हुआ था, आंखें खुली थीं। उन आदमियों ने दो बार उसे धीरे धीरे झुलाया और तीसरी बार उचक कर उसे नीचे फेंक दिया। नीचे गिरते ही वह प्लास्टर ऑफ पेरिस से बनी किसी मूर्ति की तरह टूट फूट गया। मैं कुछ पूछने के लिए उनकी तरफ़ बढ़ा तो वे दोनों धुएं में ग़ायब हो गये। मैंने नीचे उतरना शुरू कर दिया।

चढ़ाई चढ़ते चढ़ते हम चोटी के इतने करीब पहुंच चुके थे कि नीचे की तरफ़ निगाह डालने के ख़याल से ही मुझे ख़ौफ़ आ रहा था। उस ख़ौफ़ की गोद में बैठी ख़ुशी मुझे नीचे की तरफ़ निगाह डालने पर मजबूर कर रही थी, मैं उसके जबर को झटक देने की कोशिश।

माया मुझे ऊपर की ओर खींच रही थी, आंखों से भी और हाथों से भी—मेरे हाथ उसके हाथों में थे, कुछ इस तरह से जैसे वह मेरी मा हो या मैं उसका बूढ़ा बाप। मेरी आंखें उसकी आखों में थीं, जैसे वह मेरी माशूका हो और मैं उसका आशिक।

फिसल कर नीचे लुढक जाने का अंदेशा न होता तो मुझे अपनी स्थिति और उपमाओं पर हंसी आ गयी होती, लेकिन फिसलने के डर के बावजूद मैं माया की मनाही की परवाह किये बगैर नीचे के बारे में ही सोच रहा था, नीचे की तरफ़ ही खिंच रहा था, नीचे की तरफ़ देखने की ही कोशिश कर रहा था, अपनी आंखों से नहीं, अपनी कल्पना की ही आखों से, और नीचे के नज़ारे मुझे साफ़ दिखायी दे रहे थे, सम्मोहित कर रहे थे, नीचे खींच रहे थे।

छोटे छोटे पहाडी घर ढलानों से चिपके हुए, उलझे हुए रास्तों की बल खाती रस्सियां, पौधों जैसे पेड, फूलों की बिन्दिया, नन्हें नन्हें लोग, धुएं के सांप, नन्हें नन्हें जानवर, हवा में टके हुए परिन्दे, खामोशी में डूबा हुआ शोर, खूबसूरत उदासी, उदास खूबसूरती, सारी ज़िन्दगी।

उधर चोटी इतनी क़रीब नज़र आ रही थी कि कुछ ही देर बाद उस तक पहुच उस पर बैठ जाने के ख़याल से मुझे निराशा हो रही थी, माया का मैं कुछ सोच नहीं पा रहा था, और मैं माया से कहना चाहता था, चलो अब नीचे चलते हैं, ऊपर की हवा ले ली, चोटी को करीब से देख लिया, उसे सर कर सकने की सम्भावना का सरूर भी ले लिया, लेकिन एक भी लफ्ज मेरे मुंह से निकल नहीं पा रहा था।

चोटी के पास पहुच कर नीचे से प्यार का हमला शायद मुझ पर ही हो रहा था, माया पर नहीं, या अगर उस पर भी हो रहा था तो वह कुछ इस तरह से कसी हुई थी कि मझे कुछ पता नहीं चल रहा था, क्योंकि उसमे जो ताक़तें हैं मुझ में नहीं। मेरे हाथों की कपकंपी से उसने अनुमान लगा लिया होगा मैं डगमगा रहा था। उसके हाथो की जकड से मैं जान गया था उसने मेरी बेजा दुर्बलता को बूझ लिया था।

रह रह कर मेरे मन में यह उल्टी उमंग उठ रही थी कि मैं उसे एक भरपूर झटका दूं ताकि हम दोनों नीचे की तरफ़ लुढ़कना शुरू कर दें, क्योंकि मैंने अभी तक यह स्वीकार नहीं किया था

कि अब हम दोनों चाहें तो भी आसानी से नीचे नहीं जा सकेंगे, वैसे नीचे लौट जाने की ख्वाहिश का कोई खास कारण या मक़सद मुझे मालूम नहीं था। हो सकता है इसीलिए नीचे लौट जाने की ख्वाहिश हो रही थी।

हो सकता है किसी कारण या मक़सद का मोह ही मुझे नीचे खींच रहा था, हो सकता है चोटी तक न पहुंचने की ख़्वाहिश ही नीचे लौट जाने की ख़्वाहिश का कारण या मक़सद हो। जो हो अचानक मुझे एक झटका सा लगा। मेरी आंखें माया की आंखों के और मेरे हाथ माया के हाथों के शिकंजे से रिहा हो गये, और मैं नीचे की तरफ़ लुढ़कने लगा—माया की आवाज़ों को अनसुना करता हुआ, अपनी देह की दुहाइयों को कुचलता हुआ, अपने दिमाग़ की धुन्ध के बावजूद, क्योंकि उस समय नीचे पहुंच कर गुम हो जाना मुझे किसी चोटी पर चढ़ बैठने से ज़्यादा ज़रूरी और आकर्षक लग रहा था।

उस वक़्त मैं सिर्फ़ भाग रहा था, भागने को भाग नहीं, मुड़ कर देखने का ख़याल आया न अपने साथ भागने वालों से कुछ पूछने का। अगर हमारा पीछा करने वाले शोर मचा रहे होते, गालिया दे रहे होते, पत्थर मार रहे होते तो दहशत कुछ कम होती, लेकिन सब कुछ सन्नाटे में लिपटा हुआ था, मानो पैरों तले रुई बिछी हुई हो, कानों में सीसा भरा हुआ हो, पता नहीं हम भागने वाले शुरू में कितने थे, वे पीछा करने वाले कितने। पता नहीं कितनी देर बाद मैंने देखा हम भागने वाले सिर्फ़ दो रह गये थे, पीछा करने वाला शायद एक भी नहीं। उस दूसरे का मुझे मालूम नहीं, मैं महसूस कर रहा था जैसे कोई डाक्टर मुझे ट्रेडमिल पर चढ़ा कर खुद टेनिस खेलने चला गया हो। ख़याल आया शायद वह दूसरा दरअसल पीछा करने वालों में से ही एक था और अब मेरे साथ मिल गया था। फिर ख़याल आया शायद वह भी मेरे बारे में यही सोच रहा हो। दूसरे का पता नहीं, मेरे मन में दहशत की जगह जड़ सी थकावट ने ले ली थी। दहशत के मारे सोच समझ सिफर हो गयी थी, अब वह प्रखर हो रही थी। अब याद आ रहा था कि मैं मारे जाने के डर के कारण ही भाग रहा था। मारे जाने के डर से बड़ा डर कोई और नहीं होता, भगवान का डर भी नहीं। भगवान से लोग डरते नहीं, डरने की कोशिश करते रहते हैं, या सिर्फ़ नाटक। भगवान पर भरोसा न करने वालों की बात दूसरी है, वे भगवान से सही मायनों मे डरते हैं। मैं उन्हीं अभागों में से एक हू, इसीलिए मेरे मारे जाने के डर मे कोई खोट नहीं थी, किसी दैवी सहारे या सहायता का आसरा नहीं था। इसीलिए शायद मुझे सब कुछ सन्नाटे में लिपटा हुआ महसूस हुआ था। वही डर अब थकावट में बदल गया था, ऐसी थकावट में कि हम टूट जाने के बाद भी महसूस करते हैं, भाग रहे हैं। वह दूसरा भी शायद मेरी जैसी दशा में ही था। अन्धेरे और दृष्टि की धुन्धलाहट के कारण उसकी सूरत साफ़ थी न मनस्थिति। उस से बात करने की इच्छा तो बार बार हो रही थी लेकिन अपनी आवाज़ का कोई भरोसा नहीं था कि ऐसे अवसरों पर वह अक्सर मुझे दग़ा दे जाती है।

अब याद नहीं कितनी देर बाद मैं बहाल हुआ लेकिन जब हुआ तो दृश्य बदल चुका था। वह दूसरा शायद तब तक मुझ में ही घुलमिल गया था। अब मैं खुले अन्धेरे के बजाय एक जगमगाते कमरे में था। वह जगमगाहट धूप की भी हो सकती थी, बिजली की भी। जलते हुए बल्ब अब नज़र नहीं आते, चकाचौंध ही नज़र आती है, जिसमें वह कमरा बहुत बड़ा और नंगा नज़र आता है। उसकी दीवारें सफ़ेद और खाली हैं, सामान के नाम पर कई अस्पताली किस्म के कोरे पलग बिछे हुए हैं जिनके नीचे लोग लेटे हुए हैं, कुछ इस तरह से

कि मुझे लगता है वे बीमार नहीं, छिपे हुए हैं। मैं झुक झुक कर उन्हें देख रहा हूं—एक एक कर के—और जिसको देखता हूं उसकी आंखें बन्द हो जाती है। उन में कुछ औरतें भी हैं। मैं किसी को पहचान नहीं पाता लेकिन अनुमान लगाता हूं शायद वे वही हैं जो पिछले दृश्य मे मेरे साथ भाग रहे थे। जब पहला पत्थर मेरी पीठ पर पड़ता है तो मैं सोचता हूं अगर सर या सीने पर पड़ता तो शायद क़िस्सा तमाम हो जाता। जिस वक़्त पत्थर मेरी पीठ पर पड़ा मैं झुक कर एक पलंग के नीचे लेटी एक सहमी हुई औरत को देख रहा था। वह आंखें बन्द किये अपने पेट पर हाथ फेर रही थी। मैं समझ गया था उसके पेट में बच्चा था और वह शायद हिलडुल रहा था जिस से उस औरत के भय में आनन्द की कौन्ध भी आ गयी होगी। मैं उस औरत में इतना तल्लीन सा हो गया था कि उस पत्थर की मार से चौंका तो ज़रूर लेकिन चीखा नहीं और न ही उस औरत के पेट से मेरी आंखें हटीं। उसका आदमी शायद किसी दूसरे पलंग के नीचे छिपा हुआ था। मैं दूसरे पत्थर की प्रतीक्षा में वहीं झुका हुआ था ताकि उस औरत की आंखें खुलें और मैं उसे अपनी आंखों का सहारा दे सकूं। उसकी आंखें खुलीं तो मुझे लगा उसे पता चल गया था कि मेरी पीठ पर पत्थर पड़ा था—वह अपनी आंखों से मुझे आराम पहुंचा रही थी। उसका चेहरा भय और चिन्ता और गर्भ के कारण कसा हुआ तो ज़रूर था लेकिन उस से उसके आकर्षण में कोई कमी हुई दिखाई नहीं दे रही थी।

वह पत्थर किसी खिड़की के शीशे को तोड़ कर अन्दर आया था या किसी और रास्ते से, मैं कह नहीं सकता क्योंकि मुझे कोई आवाज़ सुनायी दी थी न किसी खिड़की का कोई शीशा टूटा दिखाई दिया था। सन्नाटा पहले दृश्य के सन्नाटे सा ही था, दहशत वैसी नहीं थी, वर्ना मैं झुक झुक कर पलगो के नीचे न झाँक रहा होता। जो पत्थर मेरी पीठ पर पड़ा था वह लुढ़क कर उस औरत के पास चला गया था। वह मेरी पीठ को अपनी नज़रों से सहला रही थी, मैं उस पत्थर को यूं देख रहा था जैसे वह मेरे किसी दुश्मन का पत्र हो।

मैं सोच रहा था पत्थर मारने वाले सोच क्या रहे थे, सोच सोच कर क्यों पत्थर मार रहे थे, बाक़ायदा पत्थराव क्यों नहीं कर रहे थे, उनके पास और हथियार भी होंगे, पत्थर वे अपने साथ लाए होंगे या वहीं कहीं से उठा उठा कर फेंकेंगे। ये सारे सवाल मेरी निगाहों में से फूट फूट कर उस औरत की आंखों मे बैठने जा रहे थे जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था लेकिन जिसमें मुझे पहले कहीं देखी हुई एक ख़ूबसूरत औरत की आकृति दिखायी दे रही थी। उस औरत को उस कमरे में छिपे दूसरे लोगों और खुद मेरे बारे में क्या और कितना मालूम था, मैं नहीं जानता था लेकिन मेरा अनुमान था कि उसे मुझ से ज़्यादा ही मालूम होगा, और यह भी कि उसका डर हम सब के डर से ज्यादा स्याह था। उसके पेट की चिकनाहट और गोलाई मुझे एक खूबसूरत सेब की सी लगी और उसके पास पड़े उस पत्थर पर भी मुझे अब एक सेब का गुमान हुआ। कुछ और झुक कर मैंने उस सेबनुमा पत्थर को हाथ मे ले लिया और फिर ख़ुद उस औरत की तरफ़ खिसकना रेंगना शुरू कर दिया। मैंने देख लिया था उस पलंग के नीचे मेरे लिए भी लेटने की जगह बनायी जा सकती थी। अगर उसे आपत्ति हुई तो वह सर हिला कर या किसी और संकेत से मुझे रोक देगी और मैं रुक जाऊँगा। उसने अपने आपको समेट कर मेरे लिए कुछ जगह छोड़ दी जिसमें मै सिमट कर समा गया। अगर इसके

आदमी ने हमें पकड़ लिया तो हम दोनों उसके हाथों पिट जाएंगे, मैं जानता था। लेकिन अगर उसका आदमी होता और उसी कमरे में होता तो अब तक उसके पास पहुंच गया होता। शायद वह भाग दौड़ के दौरान उस से बिछुड़ गया हो, मारा गया हो, उसे छोड़ गया हो। शायद वह मुझे ही अपना आदमी समझ बैठी हो, अपना आदमी बना लेना चाहती हो।

उसके साथ लेटे लेटे मैं सोच रहा था हम जरूर किसी तरह किसी हिन्दू मुसलिम दंगे से भाग-बच कर उस कमरे में पहुंच गये होंगे। लेकिन उस कमरे की चकाचौन्ध मेरी समझ में नहीं आ रही थी। मन हुआ उस औरत से पूछूं। डर हुआ मेरी आवाज़ सुन कर उस कमरे में छिपे दूसरे लोग भी बोलना शुरू कर देंगे। उस सन्नाटे में ही सुरक्षा थी। उस औरत के पहरावे से मैंने अनुमान लगा लिया वह मेरे मज़हब की नहीं थी। मुझे वहां उसके पास उस तरह पड़ा हुआ नहीं होना चाहिए था। कायदे से मुझे तो उन लोगों के साथ होना चाहिए था जिन से भाग कर वह वहां छिपी हुई थी। मैं उनके साथ नहीं हो सकता था, लेकिन अगर वे लोग वहा आ धमके तो मुझे पहले तो यह साबित करना होगा कि मैं उन्हीं के मज़हब का था, फिर वहां उस कमरे में उस पलंग के नीचे अपनी मौजूदगी की कोई सफ़ाई पेश करनी होगी। किसी को मेरी कोई सफ़ाई मंज़ूर नहीं होगी। उस औरत ने मेरे संशयों को ज़रूर सूंघ लिया होगा, इसीलिए अब और सिकुड़ सिमट रही थी। मैं उसे कोई आश्वासन देना चाहता था, किसी शब्द या स्पर्श से, लेकिन मुझे डर था वह और डर जाएगी, शोर मचा देगी, उसका गर्भ गिर जाएगा। यह सब सोचते सोचते और उस पत्थर को सहलाते सहलाते मैं सो गया या बेहोश हो गया।

जब होश आया तो दृश्य बदल चुका था। अब मैं एक घरेलू से कमरे में खडा सोच रहा था मैं वहां क्यों था। कमरा बेगाना था, उसका सामान बेगाना था, दीवारें नंगी थीं, फ़र्श नंगा था, रौशनी नंगी थी। तभी एक जाबर आदमी अन्दर आया जिसे देख कर मैं दहल गया। उसके जबड़े कसे हुए थे, कनपटियां फड़क रही थीं। उसने पता नहीं कैसे हाथ बढ़ा कर आसानी से मेरी पेटी खींच ली और फिर उसे दो बार हवा में लहरा कर एक करारी आवाज पैदा की। मेरी पतलून ढीली हो गयी थी, मुझे खतरा था वह नीचे खिसक जाएगी, मै कोशिश कर रहा था उस आदमी को पता न चले। वह यूं खड़ा था जैसे किसी का इन्तजार कर रहा हो। कुछ देर बाद एक अर्धनग्ना अन्दर आयी। उसकी चाल में कोई संकोच नहीं था। मेरी निगाहें चोरी से उसकी देह को बुहार कर उसके पैरों पर जा टिकीं जिन पर मुझे दो कोमल पीले परिन्दों का गुमान हुआ। मुझे अपने एक पुराने अमरीकी मित्र की पत्नी याद हो आयी जिसे वह अक्सर अपनी पेटी से पीटा करता था और दावा किया करता था कि उसे पीटने में उतना ही आनन्द आता था जितना उसकी पत्नी को पिटने में। उसे मालूम नहीं था कि उसकी पत्नी अक्सर कभी मुझ से और कभी माया से शिकायत किया करती थी, कहती थी उसे डर था किसी रात वह उसे मार डालेगा या वह उसे मार डालेगी। मैं डर जाता तो वह मेरे गाल थपक कर कहती थी—तुम डरपोक हो। एक बार उसने मुझे अपने नितम्बो पर पेटी की मार से बने नीले साँप दिखाए थे और कहा था मैं उन्हें सहलाऊं। उस बेगाने कमरे में खड़ी उस

बेगानी हिन्दुस्तानी औरत में मुझे वह अमरीकी औरत दिखाई दे गयी थी और उस जाबर हिन्दुस्तानी आदमी में अपना वह अमरीकी दोस्त। मेरा गला सूख गया।

उधर वह जाबर आदमी उस औरत को आंख के इशारे से फ़र्श पर लेट जाने का आदेश दे रहा था। मैं सोच रहा था उस आदमी को कैसे बताऊं कि अगर उसने उस औरत को पीटा तो मुझे रोना आ जाएगा, शायद उल्टी भी, शायद मैं बेक़ाबू हो अपने नाखूनों से उसकी आंखें नोच लूं। औरत के बाल उसके नितम्बों को छू रहे थे। अगर वह कुछ देर और खड़ी रहा तो वह आदमी उसके बाल खींच कर उसे नीचे गिरा देगा। फिर वह यूं बैठ गयी जैसे कोई ढेर हो जाए। उस आदमी ने मेरी तरफ़ यूँ देखा जैसे पूछ रहा हो क्या सोच रहे हो। मैं अपनी पतलून पकड़े पिचका हुआ सा खड़ा था। उस आदमी को हंसी आ जानी चाहिए थी लेकिन उसका मुंह मुक्के की तरह बन्द था और उसके हाथ से मेरी पेटी काले सांप की तरह लटकी हुई थी। उस औरत ने टांगें तो पसार दीं लेकिन वह पूरी तरह लेटी नहीं। उसकी निगाहें उस लटकी हुई पेटी से लिपटी हुई थी। उसकी आंखों में अटे हुए भय में वासना की कुछ चिनगारियाँ भी दिखायी दे रही थीं। अब मुझे उस पर दया के बजाय क्रोध आ रहा था। अगर वह चीखी चिल्लायी होती, अगर उसने उस आदमी को गालियाँ दी होतीं, अगर उसने खुल कर मुझ से कहा होता कि मैं उस आदमी को समझाऊं, अगर उसने मुझे ही दफ़ा हो जाने के लिए कह दिया होता तो मुझे उस पर क्रोध न आता। लेकिन ऐसा सोच कर शायद मैं अपनी शर्म और बुज़दिली को छिपाने की ही कोशिश कर रहा हूं। मेरी बुज़दिली का सब से बड़ा सबूत तो यही था कि मैं उस आदमी से अपनी पेटी छीनने के बजाय अपनी पतलून पकड़े खड़ा था, किसी बुद्धू लड़के की तरह। वह औरत मेरी शर्म में इजाफा नहीं करना चाहती थी, इसीलिए वह अब मेरी तरफ देख रही थी न मुझ से मदद मांग रही थी। उसने देख लिया था मैं बुज़दिल हूं। उस आदमी के लिए उसके दिल में इज़्ज़त है, नफ़रत के बावजूद, क्योंकि वह जाबर है; मेरे लिए उसके दिल में कुछ भी नहीं, क्योंकि मैं कायर हूं। मैं अपने आपको लताड़ने का लुत्फ ले रहा था। वह औरत मेरी रूहानी बहन थी। ज़रूर उसे पिटने में मज़ा आता होगा। फिर मुझे खयाल आया मैं उन्हें जानता तक नहीं, उन्हें समझ कैसे सकता हूं। मुझे तो इतना भी मालूम नहीं था कि मैं उस नाटक का दर्शक कैसे बन गया था। अगर मुझ में ज़रा सी हिम्मत भी होती तो मैं इन दोनो से कहता यह क्या तमाशा हो रहा, पूछता मुझे यहां कौन लाया, कहता मेरी पेटी वापस करो मैं जा रहा हूं। हिम्मत न सही अगर मुझ में ज़रा सी अक़ल होती तो भी मैं किसी तरकीब से इस औरत को पिटने से बचा सकता, उस आदमी को पीटने से रोक सकता, अपने आपको दोनों की नज़रों से गिरने से बचा जा सकता। ज्यादा से ज्यादा यही तो होगा कि यह आदमी मेरी पेटी से मुझे भी पीट डालेगा, वह पिटाई क्या इस अवस्था से ज्यादा बुरी होगी जिसमें मैं अब खड़ा हूं! और फिर यह भी तो हो सकता है कि मुझे बोलते देख यह औरत उठ खड़ी हो, बोलना शुरू कर दे, मेरे साथ मिल कर इस जाबर आदमी के खिलाफ डट जाए। इस संभावना से मुझे आदिम आनन्द मिलता है, किसी दूसरे की औरत का मन हर लेने का आनन्द, शिकार में जीत जाने का आनन्द, अपने अहम् को आहत होने से बचा लेने का आनन्द। उस आदमी की नजर से बच कर मैंने औरत की

तरफ देखा। उसने उस आदमी की नज़र से बच न सकने के कारण मेरी तरफ़ देखा तो नहीं लेकिन उसके चेहरे पर दौड़ गयी सुर्खी से मुझे पता चल गया कि उसने मुझे समझ लिया था। अब शायद मैं कुछ कर सकूं।

उस आदमी का ध्यान अपनी तरफ़ करने के लिए मैं खनकारा तो वह औरत यूँ चौंक उठी जैसे उसने मेरी खनकार को पहचान लिया हो। और उसी क्षण मैंने उसे पहचान लिया——वह वही औरत थी जिसके साथ न जाने कब मैं उस पलंग के नीचे जा छिपा था। ऐसा महसूस हुआ जैसे सारा रहस्य मेरी समझ में आ गया हो। मेरी नज़रें औरत के पेट की कसी हुई गोलाई पर जा टिकीं। उस कसे हुए पेट के कारण ही वह मुझे अर्धनग्ना नज़र आयी होगी। औरत अब मेरी तरफ़ पीठ किये खड़ी थी। मुझे वह सेबनुमा पत्थर याद आ गया जिसे सहलाते सहलाते मैं उस पलंग के नीचे बेहोश हो गया था। वह पत्थर अब शायद इस औरत के पास हो। इसने उसे अपने पति से छिपा कर रखा होगा। इसकी बच्ची उस पत्थर से खेला करेगी। जब यह प्रसव पीड़ा में बेहाल हो रही होगी तो शायद उसी पत्थर को दबोचने से उसे कुछ चैन मिले।

तभी उस आदमी की आवाज़ उस पत्थर की तरह मुझ पर चोट करती है : जी भर के देख लो इस बेहया को कि आज मैं इसकी जान ले लूंगा।

औरत अब उस नंगे फर्श पर नंगी पड़ी थी। मैं उसके कसे हुए चिकने पेट को अपनी आंखों से सहला रहा था। वह कड़ी आंखों मे उस आदमी को देख रही थी, वह मेरी पेटी पर यूं हाथ फेर रहा था जैसे किसी तलवार की धार देख रहा हो।

फिर पता नहीं मुझे क्या हुआ मैंने एक झपट्टा मार कर अपनी पेटी छीन ली और उस आदमी को पीटना शुरू कर दिया।

मेरा एक हाथ पतलून को पकड़े हुए था, दूसरा पेटी चला रहा था, वह आदमी अपने चेहरे को पेटी की चपतों से बचाने की कोशिश कर रहा था, उसके मुंह से गालियाँ फूट रही थीं, औरत अपने पेट को सहला रही थी, मुझे वह सेबनुमा पत्थर याद आ रहा था।

एक मोट पर मेरे काले घोड़े ने अचानक आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। मुझे झुंझलाहट तो हुई लेकिन साथ ही उस झुंझलाहट को काबू करता हुआ यह एहसास भी हुआ कि घोड़े का इनकार वाजिब था क्योंकि उसे मालूम हो गया था मुझे मंजिल का कुछ पता था न उस तक पहुंचाने वाले किसी रास्ते का, कि दरअसल वह इनकार इनकार नहीं था, मुझे आराम से सोचने, अपने दिलोदिमाग़ को टटोलने, का मशवरा या संकेत था, ठिकाने को लौट जाने का सुझाव था, दो मासूम बच्चों को लिये लिये उस अंधेरे इलाक़े में भटकने पर कड़ा कटाक्ष था। जल्दी ही मुझे यक़ीन हो गया कि मेरा घोड़ा मेरे कुत्ते की ही तरह मुझे मेरी मूर्खताओं से बचाने की कोशिश कर रहा था। दोनों बच्चे खामोश और खौफ़ज़दा थे। बड़ा मेरे पीछे बैठा मेरी पीठ से चिपका हुआ था, छोटा मेरे आगे बैठा मेरी बाहों में कसा कांप रहा था। घोड़ा जमा सा खड़ा खुर मार रहा था और फूले हुए नथुनों से आलोचनात्मक आवाज़ें निकाल रहा था। बीच बीच में वह कभी गरदन मरोड़ कर मुझे घूर लेता, कभी मेरे आगे बैठे बच्चे को दुलार लेता। मैं उसे आगे बढ़ने पर मजबूर तो कर सकता था लेकिन मैंने ऐसा किया नहीं क्योंकि मुझे खतरा था वह बिगड़ उठा तो मुझे सबक सिखाने के लिए वह बच्चों को खतरे में डालने से बाज नहीं आएगा। मेरा घोड़ा और मेरा कुत्ता मेरी ही तरह क्रोध में अंधे हो अक्सर अतिविकृत हरकतें कर गु. रते हैं।

मुझे माया की याद सता रही थी और यह सवाल भी कि बच्चे उस रात मेरे साथ क्यों थे, इतने छोटे कैसे हो गये थे, कायदे से उन्हें अपने अपने घर में होना चाहिए था, अपने अपने बच्चों के पास। इस सवाल का सीधा सामना करने के बजाए मैं इसके इधर उधर झांक रहा था, और इस खयाल का सहारा ले रहा था कि रात की दुनिया में सब संभव है, सब अयथार्थ है, सब सुन्दर और शुभ भले ही न हो। इस खयाल की व्याख्या सी करता हुआ एक और खयाल आया कि वह काला घोड़ा असली था न वे बच्चे न वह स्थान न वह समय न स्वयं मैं न मेरा कोई खयाल। लेकिन इस खयाल के बावजूद मैं घोड़े पर सवार घोड़े पर झुंझला रहा था और किसी नयी घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। हो सकता है कुछ देर के लिए मेरी आंख लग गयी हो क्योंकि मैंने देखा कि अब हम एक इमारत के सामने खड़े थे। वह इमारत भी शायद असली तो नहीं थी लेकिन थी, उसी तरह जैसे वह घोड़ा था, वे बच्चे थे, मैं था, मेरे वे खयाल थे, उस इमारत पर मेरा आश्चर्य था। मैं बच्चों को बारी बारी घोड़े की पीठ से उतारने की सोच ही रहा था कि वे दोनों छलांग मार कर ख़ुद ही उतर गये। जब तक मैं उतरा वे दोनों उस इमारत में दाखिल हो चुके थे। मैं घोड़े को भूल इमारत की तरफ़ भागा।

अंदर जा कर देखा तो बच्चे बहुत खुश नज़र आए। वे इधर उधर यूं दौड़ देख रहे थे जैसे अपने घर में हों। अन्दर चीजें बहुत कम थीं, जो थीं क़रीने से रखी हुई थीं, और दोनों बच्चे बंदरों की तरह दौड़ फुदक रहे थे। मैं उन्हें मना भी करना चाहता था और उनकी ही तरह दौड़ना फुदकना भी चाहता था। अगर बड़प्पन का एहसास न होता तो मैंने एक दो किलकारियां तो मार ही दी होतीं। उस वक़्त भी मेरे अंदर असली नक़ली की बहस तो चल रही थी लेकिन बच्चों की मस्ती मुझे अच्छी लग रही थी। सो मैंने उस इमारत की सैर सी शुरू कर दी। बड़े बड़े कमरे सामान की कमी के कारण और बड़े लग रहे थे। कुछ कमरों की दीवारों पर तसवीरें खुदी हुई थीं, इसलिए उन पर गुफ़ाओं का गुमान होता था। रह रह कर महसूस हो रहा था जैसे मुझे बना बनाया घर मिल गया हो। बच्चों की उछल कूद मुझे इतनी अच्छी लग रही थी कि मैं भूल गया था कि उन बच्चों को अपने अपने घर में अपने अपने बच्चों के पास होना चाहिए था। नहीं, शायद मैं भूला नहीं था, शायद मैंने उस उलझन को स्थगित कर दिया था, इस तर्क से कि अगर मैं वहां हो सकता था, वह इमारत अचानक कहीं से उतर कर हमारे सामने खड़ी हो सकती थी, तो हमारे बड़े बड़े बच्चे रूप बदल कर छोटे क्यों नहीं हो सकते थे! इस तर्क में कई त्रुटियां थीं, मैं जानता था लेकिन उस वक़्त मैं उन्हें देखना चाहता था न दूर करना चाहता था। मैंने अब इस उम्मीद का दामन पकड़ लिया था कि माया भी जल्द ही किसी जादू के कमाल से वहां पहुंच जाएगी—शायद घोड़ा उसे लिवाने उड़ गया हो।

माया को याद करता हुआ मैं एक कमरे में दाखिल हुआ तो मुझे एक औरत पेट के बल फ़र्श पर यूं लेटी हुई दिखायी दी जैसे कोई किताब पढ़ रही हो। उसके पैर छत की तरफ़ उठे एक दूसरे से खेल रहे थे। मुझे लगा मैं मुद्दतों बाद किसी भरी पूरी औरत को किसी किशोरी की सी अल्हड़ मुद्रा में मस्त देख रहा था। मन हुआ चुप मार कर खड़ा रहूं। खयाल आया उसका डीलडौल माया का सा ही है, कहीं वह माया ही न हो। मेरे इस ख़याल के जवाब में ही मानो उस औरत ने लेटे लेटे ही गरदन को मरोड़ कर मेरी तरफ़ देखा। मैं कांप उठा—एक साथ दो परस्पर विरोधी विचार मेरे मन में कौंध गये : यह तो माया ही है, यह माया नहीं! उधर वह यूं सहज मुस्करा रही थी जैसे मुझे वहां देख उसे कोई हैरानी न हुई हो, जैसे किसी को कहीं भी देख कर उसे कभी कोई हैरानी न होती हो। मेरा खयाल था मुझे देख लेने के बाद वह उठ खड़ी होगी लेकिन वह उसी तरह पेट के बल लेटी रही और उसके पैर एक दूसरे से खेलते रहे। मैं ही आगे बढ़ा और उसके पास जा कर ऐसे ज़ाविये पर खड़ा हो गया जिस से उसे गरदन मरोड़ने की जरूरत न पड़े। पास से भी मुझे उसमें माया नज़र तो आती रही लेकिन साथ ही यह खयाल पुख़्ता होता गया कि वह माया नहीं थी, हो ही नहीं सकती थी। उसकी आंखों में एक सादा सा स्वागत तो था, पहचान की चिंगारी नहीं थी। मेरी अपनी आंखों में न जाने क्या क्या था लेकिन मेरे होंठों से बहुत सी सफ़ाइयां और बातें एक साथ फूट निकलीं थीं—मैं अपने दो बच्चों के साथ कहीं जा रहा था कि मेरा घोड़ा अचानक इस इमारत के सामने आ रुका और मैंने सोचा कुछ देर के लिए यहीं दम क्यों न ले लें और फिर मैं इस इमारत की सुंदरता पर मोहित हो गया और मेरे बच्चों ने बदरों की तरह दौड़ना

फुदकना शुरू कर दिया और अब मैं यहां खड़ा सोच रहा हूं आपको ज़रूर बुरा लगा होगा कि हम लोग यूं अंदर घुस आए जैसे यह घर हमारा ही हो....

अगर उस औरत ने हाथ के इशारे से मुझे रोक न दिया होता तो मैं न जाने कितनी देर और बोलता चला जाता। जब मैं खामोश हुआ तो मुझे बच्चों का शोर सुनायी दिया। वे किसी दूसरे कमरे में ऊधम मचा रहे थे। मैं उस औरत से उनके शोर की मुआफी सी मांगता हुआ उन्हें चुप कराने के लिए उधर जाने ही वाला था कि एक खुली खिड़की से मुझे अपना घोड़ा भागता हुआ दिखाई दिया। वह ऐसे भाग रहा था जैसे वही घोड़ा भागता है जिसने अपने मालिक का साथ छोड़ देने का फ़ैसला कर लिया हो। मैं सब कुछ भूल उस खुली खिड़की से बाहर कूद गया। वह औरत ज़रूर उठ खड़ी हुई होगी लेकिन मैंने मुड के देखा नहीं। उसकी हंसी की आवाज़ मानो मेरे पीछे भाग रही थी। घोड़ा अंधेरे में गुम हो चुका था लेकिन उसके भागने की आवाज़ मुझे दिखायी दे रही थी। मैंने घोड़े को आवाज़ देने के लिए मुंह खोला और फिर बंद कर लिया—घोड़े का नाम मुझे मालूम नहीं था। उसी क्षण मुझे याद आया वह घोड़ा मेरा नहीं था, और साथ ही यह भी कि कोई भी असल में मेरा नहीं था। परेशानी के बावजूद मुझे खामोश सी हंसी भी आ गयी। वह भी मेरी नहीं थी। अब सहसा मेरी आंखों में आंसू आ गये। यह सोचने का अवकाश मुझे नहीं मिला कि वे भी मेरे नहीं थे, क्योंकि तभी मुझे आभास हुआ कि मेरे पीछे कोई खड़ा था। मुड़ कर देखा तो एक लंबे आदमी के चमकदार दांत नज़र आए। उसने कहा, मैं तुम्हारी मदद करूंगा। मैंने मान लिया कि वह अंदर लेटी औरत का पति या प्रेमी या कोई कारकुन होगा। यह मानते हुए मुझे कुछ तकलीफ़ हुई क्योंकि अभी भी मैंने इस संभावना का दामन नहीं छोड़ा था कि वह औरत माया ही थी, अगर संपूर्णतया नहीं तो किसी न किसी मात्रा में तो ज़रूर। मैंने खामोश रह कर उस आदमी की पेशकश स्वीकार तो कर ली लेकिन यह नहीं समझ पाया कि उसकी मदद क्या रूप लेगी—वह घोड़े को पकड़ने में मेरी मदद करेगा या उसे भूल जाने में या नया घोड़ा खरीदने में या हमेशा के लिए मुझे उस इमारत में पनाह दे कर हमेशा के लिए उस या किसी भी घोड़े की ज़रूरत से मुक्त कर देने में। उसने मेरे कंधे पर हाथ रखा तो मुझे महसूस हुआ जैसे उसने कह दिया हो, चिंता क्यों करते हो, सब कुछ अगर ठीक न हो सका तो भी तुम्हें इतना कष्ट नहीं होगा जितने का तुम्हें डर है! इस अनुमानित मूक आश्वासन से मेरी चिंता दूर हुई न कम लेकिन मेरा गला अनायास रुंध गया, और मैंने उसे बताना शुरू कर दिया कि घोड़े ने मेरा साथ यूं छोड़ दिया था जैसे वह मेरा न हो, माया मेरे साथ नहीं थी लेकिन अंदर औंधी लेटी उस औरत में न जाने क्यों नज़र आ रही थी, बच्चे मुझे भूल खेल कूद में मस्त हो गये थे, मुझे कुछ मालूम नहीं था कि मुझे कहां जाना है और क्यों, मेरा क्या होगा! यह सब मैंने उसे बोल कर नहीं, सोच कर ही बताया होगा क्योंकि जिस हालत में मैं उस वक्त था उसमें मेरे मुंह से सिस्कियाँ तो फूट सकती थी कोई बात नहीं। उस आदमी ने कहा, तुम मेरे साथ तो चलो। मैंने सोचा वह मुझे अंदर चलने के लिए कह रहा था। मैं उस औरत को एक बार फिर देखना चाहता था, देखना चाहता था वह अब भी पेट के बल लेटी हुई थी या नहीं, उसके पैर अब भी छत की ओर उठे एक दूसरे से खेल रहे थे या नहीं, उसमें

अब भी मुझे माया नजर आएगी या नहीं। मैं यह भी देखना चाहता था कि उस आदमी का उसके साथ क्या रिश्ता था। मैं अंदर जा कर आराम करना चाहता था, घोड़े और माया को भूल जाना चाहता था, कुछ खाना-पीना चाहता था, बच्चों को कुछ खिलाना पिलाना चाहता था, उस औरत से बातें करना चाहता था, उस आदमी की आंखों में धूल झौंक कर उस औरत के साथ सोना चाहता था। लेकिन अंदर चलने के बजाए वह आदमी उस दिशा में चल रहा था जिसमें मैंने घोड़े को भागते हुए देखा था।

अब मैं उसके पीछे पीछे चल रहा था और वह मुझ से मेरे या मेरे घोड़े के बारे में पूछने के बजाए मुझे अपने और उस इलाक़े के बारे में खुश्क और अनावश्यक जानकारी दिये जा रहा था। कुछ देर तक मैं इस इंतजार में रहा कि वह उस औरत के बारे में भी कुछ बताएगा लेकिन वह उसकी बातों से इस तरह ग़ायब थी जैसे वह उसे जानता ही न हो, या जानता हो कि मैं उसके बारे में जानना चाहता था, उसके साथ सोना चाहता था। उसके साथ सोने का खयाल मेरे मन में आया तो था लेकिन जल्द ही चला भी गया था। खैर तो मैंने उस आदमी को टोकते हुए कहा, पुलिस को तो इत्तला कर ही देनी चाहिए। वह बोला, कोई फायदा नहीं होगा, पुलिस वाले उल्टा तुम्हें तंग करेंगे, पूछेंगे घोड़ा तुमने लिया कहां से, कहेंगे, घोडा चोरी का होगा, इसीलिए भाग गया, तुम्हारा होता तो कभी न भागता, घोड़ा वफ़ादार जानवर है, मालिक का साथ मरते दम तक नहीं छोड़ता। मुझे लगा पुलिस वालों की संभावित पूछताछ के बहाने वह अपने संदेह उगल रहा था। मैंने कहा, मुनादी ही करवा देनी चाहिए। वह बोला, किस ज़माने में रहते हो तुम, आजकल मुनादी कौन करवाता है! मैं समझ गया उसे मेरा घोड़ा ढूंढ़ने में कोई दिलचस्पी नहीं थी, वह यूंही बेकार बातों से ही मेरा दिल बहलाना चाहता था। मैंने पांव पटख और दांत पीस कर कहा, मैं सैर करने और गप्प मारने के मूड में नहीं। उसने पांव पटख और दांत पीस कर कहा, तो तुम किस मूड में हो? उसने मेरी झुंझलाहट की जो नक़ल सी उतार दी थी उस से मुझे सारी स्थिति की बेहूदगी का बोध हो गया लेकिन उसे बदलने की कोई सूरत नज़र न आयी। मैंने खामोश रहने का फ़ैसला कर लिया और उस फ़ैसले के बोझ तले दबना और तिलमिलाना शुरू कर दिया।

मैं अपने दाहिने घुटने पर दोनों हाथ रखे एक एक सीढ़ी ऐसे उतर रहा था जैसे मुझे डर हो मेरा दाहिना घुटना मेरे उस काले घोड़े की ही तरह मुझे दगा दे कर टूट या भाग जाएगा। पता नहीं क्यों लेकिन यह ख़याल मेरे मन में किसी फूल की तरह खिला हुआ था कि वे सीढ़ियां धरती के बतन में जा खत्म होती थीं और वहां पहुंचते ही मुझे कोई नायाब तसल्ली मिल जाएगी। कई और लोग भी वे सीढ़ियां उतर रहे थे। मुझे उनकी फुरती से ईर्ष्या हो रही थी, उनकी उतावली पर झुंझलाहट। उन्हें अपने घुटनों से कोई शिकायत थी न उन पर कोई शुबह। अगर वे सीढ़ियां नीचे धरती के बतन की ओर जाने के बजाय ऊपर आकाश की बेपनाही की ओर जा रही होतीं तो मै उन लोगों की उतावली को अधिक स्वाभाविक मान लेता लेकिन शायद धरती के बतन में उनके लिए भी कोई नायाब निधि पडी हुई हो। लेकिन मेरा असली अनुमान यही था कि नीचे मेरे लिए कोई नायाब तसल्ली होगी न उनके लिए कोई नायाब निधि, कि नीचे सिर्फ़ पानी होगा, शायद किसी खास तासीर का पानी जिसमें डुबकी लगा लेने के बाद हम सब के सारे पाप धुल जाएंगे, हम सब पाक हो जाएंगे, कुछ देर के लिए।

कुछ लोग उन्हीं सीढ़ियों से ऊपर भी आ रहे थे। मैं उनके चेहरों की तलाशी लेने की कोशिश कर रहा था, इसलिए भी मेरी रफ्तार सुस्त थी और मैं दूसरों के लिए एक रुकावट सा बना हुआ था। मैं उम्मीद कर रहा था कि ऊपर आने वालों में से कोई मेरी मूक याचना के जवाब में मेरे पास रुक कर मुझे नीचे का हाल बता देगा, कह देगा कि मुझे नीचे उतरते जाना चाहिए या वहीं से ऊपर लौट जाना चाहिए, उसी तरह जैसे सिनेमा हाल में से बाहर निकलते हुए कुछ लोग बाहर खड़े लोगों को बता देते हैं कि फ़िल्म बढ़िया है या बकवास। लेकिन किसी ने मुझे कुछ नहीं बताया और मैं अपनी सुस्त रफ़्तार और असहयोगी घुटने के बावजूद आखिरकार नीचे पहुंच गया। आखिरी सीढ़ी पर माया खड़ी दिखायी दी। मेरे मन में खिला ख़याल-फूल मुस्कराया—शायद यही मेरी नायाब तसल्ली हो! उस मुस्कराहट में विस्मय का कोई अंश नहीं था—किसी भी स्थिति या कैफ़ियत में माया की उपस्थिति या अनुपस्थिति पर अब मुझे विस्मय नहीं होता, सिर्फ़ खुशी या खफ़गी ही होती है, क्योंकि मैंने अब मान लिया है वह किसी भी समय कहीं भी हो सकती है, कि रात को खास तौर पर वह अपने खाकी बंधनों से आज़ाद हो जाती है। मैंने यह तो एक मुद्दत से माना हुआ है कि मैं रात को भी किसी बंधन से पूरी तरह आज़ाद नहीं हो पाता, ख़ास तौर पर अपने खाकी तर्क के बधनों से।

सो मैंने माया से उसकी वहां मौजूदगी के बारे में कुछ नहीं पूछा। माया के साथ ही मुझे उसके क़दमों में बिछा तालाब भी नज़र आ गया था और मैं खुश हो रहा था कि मेरा अनुमान सही निकला था। नीचे पहुंचते ही मेरा दाहिना घुटना बहाल हो गया था। माया अब मेरा हाथ पकड़ मुझे उस तालाब की सीढ़ियों की तरफ़ खींच रही थी। उसके चेहरे पर एक जवान शरारत मचल रही थी, आंखों में एक जवान मदहोशी। उसे देखते ही मैं दूसरो को भूल गया था। दूसरे इधर उधर थे लेकिन मेरे लिए न होने के बराबर थे। मैं माया और पानी में डूबा हुआ था। मैंने माया से कहा, कपड़े तो उतार लेने दो। उसी वक़्त दिखायी दिया कि सब कपड़ों समेत नहा रहे थे। माया के साथ तालाब की सीढ़ियां उतर मैंने डुबकियां लगानी शुरू कर दीं। हमारी या किसी और की डुबकियों से कोई आवाज़ पैदा नहीं हो रही थी, जिस से मुझे महसूस हो रहा था जैसे पानी के बजाय हम गीले अंधेरे में डुबकियां लगा रहे हों। माया को यह बात बताने का मन हुआ, फिर खयाल आया कोई किसी से कुछ कह नहीं रहा था, शायद सब वहां अपनी आवाजो के विसर्जन के लिए ही आए थे।

कुछ डुबकियों के बाद हम बाहर निकल आए। हमारे कपड़े गीले और भारी हो जाने चाहिएं थे लेकिन वे पहले से भी ज़्यादा सूखे और हल्के लग रहे थे। मैंने देखा कि हमारे कपड़ों के रंग बदल गये थे—माया की सफ़ेद साड़ी पीली हो गयी थी, लाल चोली सफ़ेद, मेरा नीला कुरता काला हो गया था, सफ़ेद पाजामा नीला। हम दोनों ने एक दूसरे को देखा और अनायास एक साथ कहा, हमारे चोले बदल गये! कोई आवाज़ पैदा नहीं हुई थी लेकिन बाक़ी लोगों ने मानो हमारी बात सुन ली हो। वे सब हमें यूं देख रहे थे जैसे हम विदेशी हों।

फिर ऊपर कितनी देर और दिक़्क़त के बाद पहुंचे, मुझे कुछ याद नहीं, लेकिन ऊपर पहुंचते ही मैंने देखा माया का स्थान मेरी मा ने ले लिया था। मुझे हैरानी इस मायाकल्प पर नहीं, इस बात पर हो रही थी कि मेरी मां खुश नज़र आ रही थी और शायद खुशी के सुर्ख आलोक में कुछ खूबसूरत भी। उसकी आंखों से अरमानों और हसरतों का धुआं नहीं फूट रहा था, उसके चेहरे पर कृतज्ञता का धीमा अलाव जल रहा था। मुझे उसके अंतिम दिन याद आ गये, जब उसकी कोई छोटी सी ख्वाहिश पूरी हो जाती थी और उसका चेहरा एक क्षणिक चमक से चौंक जाता था। उसकी एक बड़ी ख्वाहिश पूरी नहीं हुई थी, मैंने ही पूरी नहीं होने दी थी। वह चाहती थी मैं एक बार उसे हरिद्वार ले जा उसे हर की पौढ़ी पर स्नान करवा दूं। उसकी शारीरिक और अपनी मानसिक हालत को देखते हुए मुझे यह काम असंभव नज़र आता था, और मैं तरह तरह के बहाने और रुकावटें तराश टालमटोल करता रहता था। मां की आंखों में मुझे उन बहानों और रुकावटों की याद दिखायी दी तो उसकी कृतज्ञता तो मैं समझ गया लेकिन यह नहीं समझ पाया कि माया ने मां का या मां ने माया का रूप कैसे ले लिया था। फिर मैंने देखा मां ऊपर उड़ी जा रही थी, माया मेरे साथ खड़ी थी, हम दोनों उसकी उड़ान में अपना उड़ना देख रहे थे।

तमाशा देखती उस भीड़ में से एक आदमी मुझे घूर रहा है। उसका चेहरा मुझे जिस चेहरे की याद दिला रहा है वह मुझे याद नहीं आ रहा। मैं उसकी आवाज़ पहचानने की कोशिश करता हूं क्योंकि आजकल अक्सर पुराने चेहरे मुझे याद नहीं आते लेकिन आवाज़ें याद आ जाती हैं और फिर कभी कभी उन आवाज़ों के सहारे चेहरे भी, लेकिन उसकी आवाज़ मुझे किसी आवाज़ की याद नहीं दिला रही। मुझे वैसी ही झुंझलाहट हो रही है जैसी उस वक़्त होती है जब किसी का नाम याद नहीं आता या आधा याद आ जाता है और आधा याद के इर्दगिर्द मक्खी की तरह उड़ता रहता है।

वह घूर मुझे रहा है, बात उस बुझी हुई औरत से कर रहा है जिसकी शिकायतों का शिकार इस वक़्त मैं हूं।

मैं उस औरत को नही जानता लेकिन वह शिकायत कर रही है मैंने उसको धोखा दिया है, उसे इधर का रहने दिया है न उधर का, और अब उसे न पहचानने का बहाना कर रहा हूं।

ये शिकायतें उसके मुंह से नहीं, उसकी आंखों से फूट रही हैं।

मैं सोच रहा हूं अगर मै उसकी आंखों की भाषा समझता हूं तो शायद मैंने कभी उनमें झांका हो, उन्हें चूमा हो, उन्हें चूमते समय महसूस किया हो मैं शून्य को चूम रहा हू।

मैं सोच रहा हूं शायद कभी किसी बेहोशी के आलम में मैंने उसे जाना हो, किसी न किसी हद तक, शायद मैंने उसे कोई धोखा दिया हो, शायद उस धोखे के कारण वह इधर की रही हो न उधर की, शायद उस से बचने के लिए ही मैं उसे न जानने का बहाना कर रहा हूं।

उस से पूछता हूं वह मुझे बताती क्यों नहीं कि मैं उसे कब और किस आलम में जानता था, कि मैंने उसे क्या धोखा दिया है, कि इधर और उधर से उसकी मुराद क्या है, कि उसे न पहचानने का बहाना करने से मुझे फायदा क्या होगा, कि वह मुझ से चाहती क्या है, कि वह आदमी कौन है जो घूर मुझे रहा है, बात उस से कर रहा है।

ये सवाल मेरे मुंह से नही, मेरी आंखों से ही फूट रहे हैं और उसके चेहरे के कोरेपन से मुझे पता चल जाता है कि उसने उन्हें नहीं सुना, जिस से मैं अनुमान लगा लेता हूं कि वह मेरी आंखों की भाषा नहीं जानती, जिस से मैं समझ जाता हूं कि वह मुझे नहीं जानती, सिर्फ़ उसे जानती है जो घूर मुझे रहा है, बात उसके साथ कर रहा है।

अभी तक उस आदमी की बातें मैने सुन कर भी नही सुनी, क्योंकि मैं उस बूढ़ी हुई औरत की शिकायतें सुनने और फिर उस से अपने सवाल पूछने में ही डूबा हुआ था, लेकिन अब मैं उसे साफ़ सुन रहा हूं।

वह उसे समझा रहा है वह मेरा ख़याल छोड़ दे, मुझ से कोई आशा न बाँधे, कोई शिकायत न करे, कि मैं उस से आजाद हो गया हूं, और अब उसे चाहिए कि वह उसका दामन पकड ले कि वैसा करने से ही वह इधर या उधर से जुड़ पाएगी।

उस आदमी की बातें उसकी आखों से नहीं, उसके मुंह से फूट रही हैं।

उसकी आंखों से सिर्फ़ हिक़ारत फूट रही है जिसका निशाना मैं हूं।

उसका चेहरा अब मुझे अपने ही भूले हुए एक चेहरे की याद दिला रहा है, उसकी आवाज़ अपनी ही भूली हुई एक आवाज़ की।

बस से उतरते ही मुझे एक लंबा आदमी दिखायी दिया और मुझे लगा सारा सामान वह अकेला ही संभाल लेगा और हमें वहा ले जाएगा जहां हमें जाना था। उसकी लंबाई और सूरत मे मुझे कुछ ऐसा दिखायी दिया होगा कि मैंने मान लिया था उसे हमारे स्वागत के लिए ही भेजा गया होगा। मैंने सामान की तरफ इशारा किया तो उसने हाथ और आंख के इशारे मे ही पूछा सामान ले जाना कहां है। मै असमंजस में पड़ गया लेकिन माया ने एक तरफ़ इशारा करते हुए कहा, उधर चौक के पास। मुझे यह तो मालूम नहीं था कि हमें कहां जाना था लेकिन उधर चौक के पास हमें नहीं जाना था, इतना मुझे मालूम था, सो मैंने माया से कहा वह क्यों गलत पता बता रही थी। माया तुनक कर बोली, तो तुम सही पता क्यों नहीं बता देते? मैंने कहा, मैं बताने जा ही रहा था कि तुमने ग़लत पता बता दिया। वह लंबा आदमी हमारी तकरार पर मुस्करा रहा था। मुझे उसकी मुस्कराहट भी लंबी दिखायी दी। उधर माया कह रही थी, तो अब बता दो ना, कौन रोक रहा है। उसे मालूम था मुझे मालूम नहीं था हमें कहां जाना था। लंबे आदमी ने सामान को हाथ तक नहीं लगाया था। उसे शायद शक हो गया था कि हम उसे उसकी मज़दूरी नहीं देंगे। मुझे डर था कि हमें बहस में उलझा हुआ छोड़ वह लंबा आदमी भी चल देगा और हम अपने सामान को देखते रह जाएंगे। अन्धेरा बढ़ रहा था, माया का रुख टेढ़ा हो गया था, मेरा जी चाह रहा था उस लंबे आदमी से कह दूं, यह सामान तुम जहां चाहो ले जाओ, हमें इसकी जरूरत नहीं। हर मुश्किल या मुसीबत मे मुझे ऐसे ही बेहूदा समाधान सूझ जाते हैं, जो असल में समाधान कम और मेरी हताशा के प्रमाण ज़्यादा होते हैं। अब मुझे खयाल आया कि माया का बताया हुआ गलत पता और मुझे भूला हुआ सही पता दोनों वहां से इतने दूर थे कि वहां तक पैदल जाना नामुमकिन होगा। मैं उस लंबे आदमी को झटकना चाहता था, सो मैंने उस से कहा, भई हमारा सामान टेक्सी स्टैण्ड तक पहुंचा दो, खड़े खड़े हमारा मुंह क्या देख रहे हो? माया बोली, अब अपना ग़ुस्सा इस बेचारे पर मत उतारो! लंबा आदमी झट से बोल उठा, मैं बेचारा नहीं, माजी। वह ठीक ही कह रहा था उस जैसा लंबा आदमी बेचारा हो ही नहीं सकता था, लेकिन मैं उसे अपनी तकरार में शरीक नहीं होने देना चाहता था, सो मैंने फ़ैसला किया कि मैं खुद ही सामान को घसीटता हुआ टेक्सी स्टैण्ड तक ले जाऊँगा, यह जानते हुए भी कि वह सामान मुझ से घसीटा नहीं जाएगा। आस पास कोई टेक्सी स्टैण्ड भी मुझे नज़र नहीं आया। फिर भी मैं माया और लंबे आदमी की तरफ़ से रुख फेर कर कुछ फासले पर बिखरे पड़े अपने सामान की तरफ चल दिया, यह सोचता हुआ कि सामान हम से

इतनी दूर कैसे जा पड़ा। सामान के पास पहुंच मुड़ कर देखा तो लंबा आदमी झुका हुआ माया मे यूं बात कर रहा था जैसे उसे मेरे खिलाफ़ भड़का रहा हो या मेरे बारे में कोई पूछताछ कर रहा हो। सामान की हालत खराब थी। दोनों बक्सों के बख़िये उधड़े हुए थे, दोनों थैले खुले थे। मैं सामान को घूर ही रहा था कि माया की आवाज़ आयी, पराए सामान को क्यों घूर रहे हो? लंबे आदमी की हंसी मुझे गाली सी लगी। मैं कुछ बकने ही वाला था कि मैंने देखा माया भी हंस रही थी और साथ उसे इस तरह से कुछ कह रही थी जैसे वह उसका क़रीबी दोस्त हो। मैंने उधड़े हुए बक्सों को दो ठोकरें मार कर अपने ग़ुस्से को तो बुझा लिया लेकिन अपने पांव को घायल कर दिया। उसी वक़्त एक टेक्सी पता नहीं कहां से आ कर उस सामान के पास खड़ी हो गयी तो मैं माया से कहे बगैर उस टेक्सी में बैठ गया। सामान टेक्सी वाले ने उठा कर ट्रंक में ठूंस दिया तो माया भी आ कर टेक्सी में बैठ गयी। अब वह लंबा आदमी यूं हमें विदा कर रहा था जैसे मज़्दूर न हो हमारा ही कोई सगा सम्बन्धी हो। मैं सोच रहा था वह सामान हमारा ही होगा, वह लंबा आदमी शायद मज़्दूर नहीं था, हमारा सगा सम्बन्धी हो न हो, और उस टेक्सी वाले को शायद पता हो कि हमें कहां जाना था। टेक्सी आखिर एक ऐसी जगह पर रुकी जहां एक छोटी सी भीड़ खड़ी कोई तमाशा देख रही थी।

कई बिस्तर बदल चुका हूं. किसी में चैन नहीं मिला, इतना या ऐसा चैन नहीं मिला कि किसी दूसरे बिस्तर मे जा पडने की तडप न रहे। सब पलंग पहियेदार हैं, सब बिस्तर खाली है। मैं शायद किसी अस्पताल के किसी ऐसे वार्ड में अकेला हूं जिसमें उन मरीजों का इलाज किया जाता है जिन्हें किसी बिस्तर में चैन नहीं मिलना, इतना और ऐसा कि उन्हें किसी दूसरे बिस्तर में जा पड़ने की तड़प न रहे। सोचता हूं बेचैनी और असन्तोष का कारण शायद बिस्तर न हो, केवल बिस्तर न हो, पलंग भी हो, उसकी पोजीशन भी—ठीक पलंग, ठीक बिस्तर, ठीक पोजीशन।

कमरा किसी बड़े हाल से भी बडा है, पलंग सिर्फ़ पाँच हैं। मैं पाँचों को आज़मा चुका हूं। फ़ैसला करता हूं कि पहले बिस्तर और पलंग का तालमेल बिठाना चाहिए, पोज़ीशन के चुनाव का चक्कर बाद में, क्योंकि सही स्थान और स्थिति का चुनाव बहुत कठिन होगा। साथ ही चैन के माप का फैसला भी मन ही मन कर लेने का फ़ैसला कर लेता हूं।

फ़ैसले कर लेना आसान है, उन पर अमल करना असम्भवप्राय, मेरे लिए, अक्सर, मैं जानता हू।

हर पलंग और हर बिस्तर और हर सम्भव स्थान स्थिति और इन सब के आपसी तालमेल की तमाम सम्भव त्रिकोणों की कल्पना से सर भन्ना जाता है। अगर हर सम्भव स्थिति मे एक एक रात भी गुज़ारूंगा तो बाक़ी की ज़िन्दगी यहीं बरबाद हो जाएगी।

झुंझला कर एक पलंग को इधर उधर खींचना-घसीटना शुरू कर देता हूं। पलंग पहियेदार हैं, फ़र्श हमवार है, जगह बहुत कम है शोर बहुत कम हो रहा है, मुझे इस खेल में मज़ा आने लगा है, मै भूल जाता हूं इस खेल का मक़सद क्या था, चैन की चिन्ता भी नहीं रहती, समय और स्थान से भी बेखबर सा हो जाता हूं। मैं अब किसी ऐसे खिलाड़ी या दौड़ लगाने वाले सा हो गया हू जो खेलते खेलते या दौड़ लगाते लगाते एक हद के बाद कुछ देर के लिए मक़सद और जिस्म की बन्दिशों से आज़ाद हो जाता है।

इसी कैफ़ियत में मेरी निगाह अनायास एक खिड़की के एक पल्ले के साथ सटे हुए अपने चेहरे पर जा पडती है और मुझे ज्ञान हो जाता है मैं पागल हो गया हूं और मेरे पागलपन का कोई इलाज नही।

उसके कमरे का दरवाज़ा आधा खुला या बन्द था और उसमें खड़ी वह मुस्करा रही थी।

मुझे उसकी सूरत और साख्त और मुस्कराहट में उन तमाम औरतों के किसी न किसी रंग अंग ढंग ढोंग के किसी न किसी गुण दोष का कोई न कोई नमूना झिलमिलाता नज़र आ गया जिन्हें मैंने किसी मौज मस्ती स्वप्न में मन ही मन सराहा चाहा था।

ऐसी औरतों की संख्या मेरी कामनाओं और नाकामियों की संख्या की तरह बहुत बड़ी है।

मुझे महसूस हुआ मैंने उन सब औरतों को उस औरत में देख लिया हो।

मैं डर गया।

डर के बावजूद मैं उसकी तरफ़ बढ़ा तो वह पीछे हट कर एक पलंग पर बैठ गयी।

उसने अपनी सारी अंगुलियों को नचाते हुए यूं मुझे अपने पास बुलाया जैसे कोई ममतालू औरत मुहल्ले के किसी शर्मीले बच्चे पर अपना जादू चला रही हो।

मैं उसके पास जा बैठा।

उसने मेरी पीठ को सहलाना शुरू कर दिया।

पीठ सहलाने वाली औरतें मेरी जान निकाल लेती हैं।

ख्वाहिश हुई कि अपनी कमीज़ बनियान उतार दूं और कहूं, अब सहलाओ और उस वक़्त तक सहलाती रहो जब तक मेरे सारे दर्द सो न जाएं, मेरी आंखें मुंद न जाएं।

उसने मेरे मन की बात को भांप लिया और मेरी क़मीज़ बनियान को ऊपर खींच कर मेरे सर पर टांग दिया और मेरी पीठ को प्यार और महारत के साथ सहलाना शुरू कर दिया।

उसकी अंगुलियां कलियों सी महसूस हो रही थीं और उनके स्पर्श में मुझे उन असंख्यप्राय औरतों के स्पर्श का सुख मिल रहा था जिन्हें मैंने किसी मौज मस्ती स्वप्न में मन ही मन सराहा चाहा था।

ख़्वाहिश हुई उस से पूछूं वह कौन थी।

उसने फिर मेरे मन की बात को भांप लिया और कहा, मैं एक नहीं अनेक हूं।

उसकी आवाज में मुझे असंख्य आवाज़ें सुनायी दीं। मैं समझ गया था वह माया का ही एक रूप थी।

हम तीन थे। वह मुझे मुझ से ज़्यादा बूढ़ा नज़र आ रहा था, उसकी बीवी हम दोनों से कम, इतनी कम कि हमारे मुक़ाबले में वह जवान अगर नहीं तो अधेड़ ज़रूर नज़र आ रही थी, मुझे, और किसीका मैं कह नहीं सकता, और किसी की ओर उस वक़्त मेरा ध्यान नहीं था, माया की तरफ़ भी नहीं, माया उसवक़्त कही और थी, किसी और लीला की साक्षी या भागीदार, हम तीनों के इलावा और कोई कहीं आस पास था न मेरी चेतना या स्मृति में।

मेरी चेतना और स्मृति सिमिट कर सिफ़र में बदल गयी थीं, एक ऐसे सिफ़र में जिसमें मुझे वे दोनों तो दिखायी दे रहे थे, और कोई नहीं, और कुछ नहीं, जिसमें मैं ख़ुद ख़ाक के एक सचेत ज़र्रे से ज़्यादा नहीं था, और मैं अपनी इस कैफ़ियत पर इतरा रहा था, उन दोनों से अलग और ऊपर, उन्हें धोखा सा देता हुआ, चाहता हुआ कि वे मेरी चोरी पकड़ लें, मुझ से पूछें, तुम इतरा किस बात पर रहे हो, अपनी औक़ात भूल कैसे गये, और मैं कोई जवाब देने के बजाय इतराता रहूं, मुस्कराता रहूं, और वे तंग आ कर रुख़ फेर लें।

हम तीनों उस उजाड़ में न जाने क्यों और कैसे इकट्ठे हो गये थे, वे दोनों तो एक दूसरे के साथ ही वहां पहुंचे होंगे, मैं ही पता नहीं कैसे वहां जा टपका था- -किसी आंसू की तरह—और सोच रहा था कि शायद वह मुझे अपने होंठों से पोंछ ले और उसका पति कड़क कर पूछे, यह क्या कर रही हो, हम इसलिए तो यहां नहीं आए थे, खबरदार...!

मैं उन दोनों के बीच कोई दरार नहीं डालना चाहता था, उन दोनों के बीच कोई दरार अब शायद मुमकिन भी नहीं थी, मैं उन दोनों के साथ घुलमिल जाना चाहता था, कुछ देर के लिए, उतनी देर के लिए जितनी के लिए हम वहां थे, उस उजाड़ में एक दूसरे के साथ थे, इसीलिए कभी ख़ाक के एक ज़र्रे सा महसूस कर रहा था, कभी एक आंसू सा।

शायद हम तीनों को कहीं एक साथ जाना था, शायद इसीलिए हम उस उजाड़ में इकट्ठे हुए थे, किसी पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार, जो मुझे याद नहीं थी, जो हो सकता है उन दोनों को याद हो, शायद हमने बहुत पहले, जवानी में, तै किया हो कि बुढ़ापे में एक दिन हम ऐसे उजाड़ में मिलेंगे जिसका हम में से किसी के जीवन के साथ कोई सम्बन्ध न हो और फिर वहां से किसी ऐसे मुक़ाम की तलाश में निकल पड़ेंगे जिसका हम तीनों के जीवन से बहुत गहरा सम्बन्ध हो।

इस आख़िरी संभावना ने मुझे एक दम अन्धिया सा दिया, कुछ देर के लिए, और जब मेरी दृष्टि लौटी तो वे दोनों मेरी तरफ़ यों देख रहे थे जैसे दो चिन्ताग्रस्त, रिश्तेदार किसी ऐसे

मरीज़ की तरफ जो किसी संगीन जुर्म से अभी अभी बरी हुआ हो या किसी बड़े आपरेशन के बाद अभी अभी होश मे आ रहा हो।

उसके होंठों पर हैरान सा प्यार पुलक रहा था, उसके पति के होठों पर साफ मुस्कराहट जिसमें सन्देह की सुर्खी नहीं थी, और मुझे लगा अब कुछ और सोचने की जरूरत नहीं, और मैंने कहा, तो अब चलें?

अब हम एक काली कार में बैठे उड़े जा रहे थे, और कार कभी एक काले घोड़े मे बदल गयी महसूस होती—जिसपर वह अपने पति और मेरे बीच फंसी बैठी महसूस होती—कभी एक करारी कश्ती में—जिसकी पतवार उसके पति के हाथों में होती और जिसमें बैठे हुए हम दोनों किसी नये जोड़े से दिखायी देते, मुझे, उसका या उसके पति का मैं कह नहीं सकता।

मुझे कभी कोई पहाड़ किसी परिन्दे की तरह उड़ता हुआ नज़र आ जाता, कभी कोई पेड़ किसी पहाड की तरह, कभी बादलों के गुच्छे बड़े बडे काले अंगूरों के गुच्छों से नज़र आते, कभी अन्धेरा बादलों के पहाड़ों सा, और यह सब देख देख कर मैं डर भी रहा था, निडर भी महसूस कर रहा था।

कभी मन होता पूरे जोर से चीखूं चिल्लाऊं, कभी महसूस होता चीखने चिल्लाने का अब कोई अर्थ नही रहा, क्योंकि कहीं कोई नज़र नहीं आ रहा था, हां एक उडती लुढ़कती झाड़ी पर एक क्षण के लिए एक बूढ़ी भिखारिन का गुमान जरूर हुआ था, और एक बार एक उजड़े हुए मकान के अधखुले मुहाने पर एक मोटा सा आदमी बैठा अपने नंगे पेट को प्यार से निहारता हुआ दिखायी दिया था, थोड़ी देर के लिए, और मैंने उस से पूछा था, हम कहां हैं, लेकिन उसने या तो कोई जवाब नहीं दिया था या उस वक़्त दिया था जब हम वहां से आगे निकल गये थे।

वह कभी अपने पति से और कभी मुझसे लिपट जाती, जब वह अपने पति से लिपटती तो मैं फ़ालतू सा हो जाता और माया को याद करने लगता, जब वह मुझ से लिपटती तो मैं पुरस्कृत महसूस करता और सोचने लगता कि माया को यह सब बता सकूंगा या नहीं।

उसके मुंह से लगातार जो सीत्कार फूट रही थी वह हलाल किये जा रहे किसी जानवर की सी भी हो सकती थी, विभोर होने का अभिनय कर रही किसी अभिसारिका की भी, और मैं उस आवाज को पी रहा था, रागद्वेष से ऊपर उठने की कोशिश कर रहा था, सोच रहा था कि हम ज़्यादा देर तक उस आलम में नहीं रह सकेंगे, उस आलम के बाद की उदासी के बारे में सोच सोच कर उदास हो रहा था।

उस उदासी में जीवन भर की उदासियों की राख रची हुई थी।

उसने पूछा, आपको बुखार कब से है? मै नहीं जानता था मुझे बुखार था। हम नाच रहे थे। मुझे उसका नाम याद नहीं आ रहा था या शायद मालूम ही नही था। हम अन्धेरे में नाच रहे थे। दूसरे कमरे के प्रकाश के कुछ फाहे उस अन्धेरे से चिपके हुए थे। उस कमरे में शायद उसका साथी माया के साथ बैठा हुआ था। अन्धेरे में वह मेरे साथ सटी हुई थी। उसने फिर पूछा, कब से है बुखार? उसकी आवाज़ मे आग थी। मैंने कहा, जब हम उसकी मां के घर में रहते हैं तो मुझे बुखार हो जाता है, जब हम मेरी मां के घर में रहते हैं तो उसे। अपने जवाब पर मुझे हंसी आ गयी, उसे नहीं। मैंने सोचा बडी गम्भीर औरत है। मैंने अपनी हंसी को बीच में ही दबोच लिया और कहा, वैसे उसकी मां को चल बसे कुछ बरस हो गये हैं; मेरी को तीन। इस बात पर भी वह हंसी नहीं लेकिन कुछ ढीली ज़रूर पड़ गयी। मेरा खयाल था कहेगी मैं और नाचना नहीं चाहती। मैं दूसरे कमरे मे जा कर देखना चाहता था माया क्या कर रही है कुछ देर की खामोशी के बाद उसने कहा, तो आप लोग एक दूसरे की मां के घर रहना छोड़ क्यों नहीं देते? मुझे मालूम था वह यही कहेगी। सवाल खत्म होते होते वह फिर मेरे साथ सट गयी थी। मुझे तुरत कोई ऐसा जवाब नहीं सूझा जिसके बाद उसके सवाल बन्द हो जाने की आशा हो सकती। यों भी मैं कुछ देर खामोश रह कर स्पर्श-सुख लेना चाहता था। लेकिन मै जानता था ज़्यादा देर खामोश रहूगा तो वह ढीली पड़ जाएगी या पीछे हट जाएगी या पूछेगी आप जवाब क्यों नहीं दे रहे। मैं उसे खफ़ा नहीं सिर्फ़ खामोश करना चाहता था। दूसरे कमरे मे जा कर माया को देखने की ख्वाहिश के बावजूद उस अन्धेरे में उसके साथ धीरे धीरे नाचना मुझे अच्छा लग रहा था। उसके सवालों के बावजूद उसका स्पर्श मुझे अच्छा लग रहा था। दूसरे कमरे के प्रकाश के फाहों के बावजूद वह अन्धेरा मुझे अच्छा लग रहा था। उस से पहले वैसे अन्धेरे मे उसके साथ मैं कभी नहीं नाचा था, उसके बाद किसी अन्धेरे मे उसके साथ नाचने की कोई कामना थी न आशा। स्पर्श-सुख के बावजूद मेरे मन मे या उस माहौल में कहीं कुछ ऐसा था जो मुझे चुभ रहा था। मै उस चुभन को भूल जाना चाहता था लेकिन वह मेरे माथे के बल में बैठ गयी थी। मैंने कहा, बात यह है हमारा अपना अलग अभी कोई घर नहीं, इसलिए हम एक दूसरे की मां के घर रहने पर मजबूर है, फ़िलहाल, जब अपना घर बन जाएगा तो हम वहां रहना शुरू कर देंगे, लेकिन उसके बाद भी ज़रूरी नहीं हमें बुखार न हो, बल्कि ऐन मुमकिन है कि हमारा बुखार कभी उतरे ही नहीं। मेरे इस जवाब पर भी जब उसे हंसी नहीं आयी तो मुझे निराशा हुई। मैं ढीला पड़ गया। माथे के बल में बैठी चुभन फड़फड़ाने लगी। मैंने अपने माथे पर हाथ फेरा

तो वह बोली, आप बार बार मेरी कमर से अपना हाथ हटा क्यों लेते हैं; मुझे महसूस होता है मानो आप इस अन्धेरे में मुझे अकेली छोड़ खुद कहीं और उड़े जा रहे हों; क्या आप उनके साथ भी ऐसा ही करते हैं? मेरा हाथ उसकी कमर पर लौट आया था। मैंने उसकी बात का कोई भी जवाब न देने का फ़ैसला कर लिया था। उस फ़ैसले में ख़फ़गी की ग्वाक नहीं थी। उसकी गम्भीरता मुझे अब अच्छी लग रही थी। उसके वार से वैसा ही करारा अनुभव हुआ था जैसा किसी किसी चपत से कभी कभी होता है। उसने ज़रूर मेरी मुरझाहट को महसूस किया होगा। मुझे उबारने के लिए ही शायद उसने नर्म स्वर में कहा, आपको अब कहीं अपना घर बना लेना चाहिए, टोरान्टो के बारे में क्या खयाल है? मैं चौंक उठा। कल ही रात मैंने एक स्वप्न में माया से कहा था, टोरान्टो के बारे में क्या खयाल है। उसने पूछा, आप चौंक क्यों उठे? मैंने तो यूँही मज़ाक़ किया था? वह हंस रही थी और मैं टोरान्टो में घूम रहा था। मैंने कहा, इसमें मज़ाक़ की क्या बात है; टोरान्टो मुझे मन्ज़ूर है; वहां कोई हमारी जान पहचान का नहीं; वह शहर हमारी माओं के घरों से भी बहुत दूर है, इसलिए हम शायद बुखार से भी मुक्त हो जाएँ, मैं अभी जा कर माया से बात करता हूं, आप यहीं रुकिये, मैं आपके साथी को यहीं भेज दूंगा। जब मैं उस से अलग हुआ तो वह बोली, बहानों की ज़रूरत नहीं, जाइए जहां जी चाहे घर बनाइए मेरी बला से, बस इतना याद रखिये आपको बुख़ार से मुक्ति नहीं मिलेगी, माया से भले ही मिल जाए।

उन दोनों को देखे और भूले इतने बरस बीत गये थे कि एकाएक उन्हें वहां देख मैं इतना विस्मित हुआ कि उन से या अपने आप मे यह पूछना भी भूल गया कि हम सब कहां थे, मैं उनके कमरे में था या वे मेरे में, कि वह संयोग हुआ कैसे! नहीं, मैं न विस्मित हुआ था, न कुछ भूला था। उस समय मेरा उनके साथ उस कमरे में होना शायद मुझे अपनी ही किसी पुरानी मनोकामना का एक स्वरूप मात्र महसूस हुआ होगा जिसे देख मैं शायद सिर्फ़ दंग रह गया था। वह कमरा, वे दोनों, मैं खुद, मेरी प्रतिक्रिया—यह सब उन पहले कुछ क्षणों मे किसी स्वप्न की आकस्मिक शुरूआत जैसा जान पड़ा था।

वह कमरा इतना विशाल और वीरान सा था जैसे किसी पुराने नारीख़ी महल या डाक बंगले का कोई खाली शयनकक्ष हो।

वह मुझे कुछ और पीली और पारदर्शी हो गयी दिखायी दी थी, वह कुछ और लाल और लहीम। उसने वही गुलाबी नाइटगाउन पहना हुआ था जो उसने उस रात से बरसों पहले उस रात पहना हुआ था जिस रात मैं पहली बार उसे देख फ़ना हो गया था। उस फ़ैसलाकुन रात से पहले उसे देखा तो कई बार था लेकिन उसे देख फ़ना मैं उसी रात ही हुआ था। इसीलिए उसका वह गुलाबी नाइटगाउन मेरी स्मृति में अंकित था। और उसके जिस्म की धूप का जलाल भी। उस रात जब मैं उसके पति, अपने दोस्त, के साथ उनके घर पहुंचा था तो वह आग के सामने बैठी कोई किताब पढ़ रही थी। मुझे देख वह चौंक कर खड़ी हो गयी थी। आग के आलोक में वह उस गुलाबी नाइटगाउन वग़ैरह के बावजूद मुझे एक दम अवस्त्रा नज़र आयी थी। अवस्त्र अप्सरा! और मैं फ़ना हो गया था। उसके पति ने मज़ाक़ किया था, तुम तो इतने ज़र्द हो गये हो जैसे किसी भूत को देख लिया हो! मेरी आंखे नीची हो गयी थीं, वह फिर बैठ गयी थी, उसका पति हम दोनों के बीच किसी सतर्क निगहबान की तरह खड़ा था। उसे भी शायद मेरे फना हो जाने की खबर हो गयी थी।

और अब हम तीनों बरसों बाद अचानक एक विशाल वीरान कमरे में खड़े थे—उसका पति और मैं साधारण लिबास में, वह नाइटगाउन में, शायद उसी नाइटगाउन में जो उसने उस रात पहना हुआ था जिस रात मैं फ़ना हुआ था।

मैं दोबारा फ़ना हो जाने की प्रतीक्षा में था लेकिन उस कमरे में आग थी न उसके जिस्म की धूप में वह जलाल था और न मैं अब फ़ना हो सकने के काबिल रह गया था। एक जलवे से

शायद एक ही बार फ़ना हुआ जा सकता है। एक बार फना हो चुका आदमी शायद दूसरी बार फना नहीं हो सकता।

मैंने आंखें बन्द कर कल्पना करने की कोशिश की कि हम बरसों पहले की उसी रात को दोबारा जी रहे थे। इस कोशिश में मैं नाकाम रहा। मन हुआ उन दोनों से पूछूं उन्हें वह रात याद थी या नहीं लेकिन वे दोनों उस प्रश्न के लिए अनुपस्थित दिखायी दिये, इस सीमा तक कि मुझे विश्वास सा हो गया कि मैं उन्हें स्वप्न में ही देख रहा था, कि शायद स्वप्न में ही वह बरसों पुरानी रात दोहरायी जा रही थी, कि जो मैं उस रात हकीक़त में नहीं कर सका था शायद अब कर सकूं, उस स्वप्न में।

मैं दो कदम चल कर उसके पास पहुंच गया। उसका पति अब हमारी तरफ़ पीठ किये खड़ा था। मुझे लगा मानो उसने कह दिया हो, आज मैं निगहबानी नहीं करूंगा। उसकी पीठ मुझे किसी दीवार सी महसूस हुई, उन दोनों की खामोशी किसी अथाह बात सी, अपनी कामना किसी अदम्य देश सी, बरसों पुरानी उस रात की स्मृति किसी अलौकिक प्रेरणा सी।

और फिर मैं उस से लिपट गया, वह मुझ से। मैंने उसके कपड़े उसके बदन से छीलने शुरू कर दिये, उसने मेरे मेरे बदन से। उसने मुझे चूमना चूसना शुरू कर दिया, मैंने उसे। कुछ देर तक हमने यह सब खड़े खड़े ही किया, फिर हम एक दूसरे के ऊपर गिर पड़े, और फिर हम एक दूसरे में बदल जाने की कोशिश में अपने आपको फना कर डालने में डूब गये।

उसका मैं कह नहीं सकता, डूबा हुआ मैं उसके पति, अपने दोस्त, की एक तकरीर सुन रहा था :

> मैं तुम्हारा राज जानता हू, माया नहीं जानती। मुझे वह रात याद है जिस रात उस राज का जन्म हुआ था। तुम्हें यह अवसर इसलिए मिल रहा है ताकि तुम एक दूसरे से मुक्त हो जाओ, मरने से पहले, और मुझे इसलिये ताकि मै अपनी जलन से मुक्त हो जाऊँ। यह इसी आलम में सम्भव है, इसीलिए हम इस आलम में हैं, कुछ देर के लिए, जिसके बाद हम फिर अपनी अपनी सीमाओं में सिमिट कर रहना सहना शुरू कर देंगे। इस अवसर का फ़ायदा बेधड़क हो कर उठाओ, अच्छी तरह भोग लो, एक दूसरे को, फिर न कहना कोई कसर छूट गयी। मैं तुम्हारी तरफ़ पीठ किये खड़ा हूं क्योंकि इस तरह मैं तुम्हें ज़्यादा सफ़ाई से देख सकता हूं, जो तुम नहीं कर रहे या कर पा रहे, वह भी देख सकता हूं, जो तुम करना चाहते हो लेकिन नहीं कर सकते वह भी देख सकता हूं, और मैं यह सब देखना चाहता हूं ताकि मैं अपनी जलन से मुक्त हो सकू, जब तक मैं उस जलन में जल नहीं जाता, मैं मुक्त नहीं हो सकूगा, जब तक तुम एक दूसरे में फ़ना नहीं हो जाते, तुम मुक्त नहीं हो सकोगे, मुक्ति मोह से ऊपर, मोह को मारने के लिए मोह में डूबना ज़रूरी....।

उसका उपदेश सुनते सुनते मैं डूब रहा था और डूबते डूबते मैं उसका उपदेश सुन रहा था।

जब मुझे होश आया मैं माया के साथ लिपटा सिसक रहा था और वह कह रही थी, आज फिर शायद स्वप्न में तुम्हें वही दोनों दिखायी दे गये।

मुझे मालूम था वह उस वक़्त घर से बाहर कहीं होगा और वह घर मे बन्द सो या नहा-धो रही होगी। उस रात मे पहले कभी उनके घर जाने का कोई अवसर या बहाना मुझे नहीं मिला था, इसलिए उस रात वहा जाने मे मुझे सकोच भी हो रहा था, उल्लास भी। अगर मुझे यह मालूम न होता कि वह उस वक्त घर में नहीं होगा और वह सो या नहा-धो रही होगी तो मुझे संकोच होता न उल्लास। मैं नही जानता था कि मुझे कैसे मालूम था कि वह घर में बन्द होगी और सो या नहा-धो रही होगी। किसी ने मुझे यह जानकारी नहीं दी थी। दी होती तो मुझे विश्वास शायद ही आता। वह जानकारी थी ही नहीं, शायद मेरी कल्पना का ही कोई ऐसा आश्वासन था जिस पर मैंने अनायास विश्वास कर लिया था। वैसे उस विश्वास का एक ठोस कारण या प्रमाण भी मेरे पास था, मेरी जेब में था—उनके घर के प्रवेशद्वार की छोटी सी चाबी।

मुझे उनके घर कोई चीज़ पहुंचानी थी। वह चीज न जाने क्या थी। उसे वहां पहुंचाने का काम मुझे न जाने किसने दिया था, किसीने दिया था या मैंने ही उसे अपने ऊपर लाद लिया था, मै अब नहीं कह सकता, उस वक़्त मेरे मन में यह सवाल ही नहीं उठा था, क्योंकि उस वक़्त मैं वहां जाने के संकोच और उल्लास में ही खोया हुआ था। मैं वहां जाने के उस अवसर या बहाने का फायदा उठाना चाहता था, वह चीज वहां पहुचाने के बहाने उनके घर और जीवन में झाँक लेना चाहता था, कुछ कुछ उस चोर की तरह जो किसी बहाने से उस घर में एक बार झाँक लेना चाहता है जिसमें कभी वह चोरी करने का इरादा रखता हो।

उनके घर की जो चाबी मेरी जेब में थी वह बहुत छोटी थी, जिस से मैंने अन्दाजा लगा लिया था कि उनके घर का ताला भी बहुत छोटा होगा।

मुझे मालूम नहीं था कि वह चाबी मुझे किसने दी थी। वह चाबी से ज्यादा चाबी के एक प्रतीक सी महसूस हो रही थी। शायद वह भी उसी चीज़ के साथ मुझे मिल गयी थी जिसे मैंने उनके घर पहुचाना था।

मुझे खतरा था वह नन्ही नाखून सी चाबी मै रास्ते मे ही कहीं खो या फेंक दूगा, लेकिन मुझे भरोसा था कि उस चाबी के बग़ैर भी मै उस छोटे से ताले को खोल लूंगा, उसी तरह जैसे कभी कभी अपने लेटरबाक्स के नन्हे कनछल्ले से ताले को मरोड़ कर मैं खोल लिया करता हूं।

यह कल्पना कर मुझे काली फुरेरी आयी थी कि कुछ और लोगों ने भी यदा कदा ज़रूरत पड जाने पर उस नन्हे ताले को मरोड़ कर खोल लिया होगा, उस वक़्त जब वह घर से बाहर कहीं घूम भटक रहा होता होगा और वह घर में बन्द सो या नहा-धो रही होती होगी।

मेरी इस धारणा का आधार न जाने क्या था कि वह उसकी अनुपस्थिति में घर में बन्द सोयी रहती थी या नहाती-धोती रहती थी, सो कर उठते ही नहाना-धोना शुरू कर देती थी और नहा-धो लेने के बाद फिर सो जाती थी।

कभी किसी कल्पना में मैंने उसे खाते, पीते, पढ़ते या कोई और काम करते नहीं देखा था, कभी किसी कल्पना में मैंने उसे उसकी उपस्थिति में उस घर में नहीं देखा था। घर से बाहर उसके साथ मैंने उसे कई बार देखा था, कल्पना में भी और वैसे भी, और हर बार कल्पना की थी कि वह काफी देर सो और नहा-धो कर उसके साथ बाहर निकली होगी, कि वह किसी बहाने उसे कहीं बाहर छोड़ फिर घर लौट नहाना-धोना और सोना शुरू कर देगी।

अपनी इन तमाम कल्पनाओं में से ही मैंने वह धारणा निकाल ली होगी जिसका और कोई आधार शायद नहीं था।

उस रात उनके घर जा मैं उस धारणा की तस्दीक़ करना चाहता था—चोरी चोरी, उनके घर की खामोशी या आवाज़ों से, किसी दरवाज़े की दरार या चाबी के सूराख से आंख लगा कर उसे सोये या नहाते-धोते देख कर।

इस ख्वाहिश से जो खौफ़ मुझे हो रहा था वह किसी नशे से कम नहीं था।

तो जब मैं बीसियों सीढ़ियां चढ़ उनके दरवाज़े के सामने जा खड़ा हुआ तो वह चीज मेरे बाएँ हाथ में थी और वह चाबी दाएँ में। वह चीज़ न जाने क्या थी, किसने मुझे दी थी, किसीने दी थी या खुद मैंने ही उसे कहीं से खरीद या बटोर लिया था। वह चीज़ बड़ी या वज़नी नहीं थी, वर्ना उसे बाएँ हाथ से लटकाए लटकाए ऊपर चढ़ने में ज़रूर मुझे दिक्क़त होती। संभव है वह चीज़ मेरा चाव ही हो, या मेरे चाव का कोई प्रतीक—कोई पीला फूल या हरी पत्ती।

दरवाज़े से लटकता हुआ ताला भी ताले के प्रतीक सा ही नज़र आया। उसे देख मुझे जो हैरानी हुई वह होनी नहीं चाहिए थी, क्योंकि मैं उस ताले के लिए तय्यार था, उसकी चाबी मेरे दाएँ हाथ में थी, लेकिन जब तक मैंने वह ताला देखा नहीं था तब तक मैंने अन्दर से स्वीकार नहीं किया था कि वह बाहर जाते समय उसे अन्दर बन्द कर जाता है। अब मैं समझ गया मैं क्यों कल्पना में उसे सोए या नहाते-धोते ही देखा करता था। घर में बन्द अकेली औरत और कर भी क्या सकती है! वैसे वह बन्द दरवाज़े और दीवारों से अपना सिर फोड़ सकती है, चीख-चिल्ला कर पड़ोसियों को इकट्ठा कर सकती है, फ़रियाद कर सकती है, कई और हरकतें कर सकती है, आत्महत्या कर सकती है। लेकिन मेरी कल्पना में वह अपनी क़ैद पर खुश थी क्योंकि उसे सोना और नहाना धोना पसंद था। और फिर क्या मालूम कितने लोगों के पास उस ताले की चाबी थी। इस से आगे मैंने नहीं सोचा था।

वह ताला वहां नन्हे से तमग़े की तरह लटक रहा था। ताला खोलने से पहले घन्टी बजाने का खयाल आया और चला गया—वह ताला आख़िर इसीलिए तो था कि लोग घन्टी न बजाएं :

जिनके पास चाबी नहीं होती होगी वे उस ताले को देख लौट जाते होंगे। मेरे पास चाबी थी। मैं ताला खोल कर अन्दर झाँक सकता था, वह चीज़ उसे देते समय उसकी आंखों में भी, शायद उसकी सोयी धोयी देह के अन्दर भी, शायद उसकी रूह के अन्दर भी।

अपने इन ख़यालों की खुशबू से मैं मस्त तो हो रहा था लेकिन इतना नहीं कि खतरों से बिलकुल बेख़बर हो जाऊँ। खतरों पर नज़र रखते हुए मैंने वह ताला खोल दिया। दरवाज़ा खोलते समय किसी पराये घर में घुसने का अवैध सरूर तो मुझे आया ही, यह भी महसूस हुआ कि मैं किसी परायी ज़िन्दगी में दाखिल हो रहा था।

अगर उस वक़्त अन्दर से कोई आवाज़ आ गयी होती तो शायद मैं वहीं मर जाता।

अन्दर घुसते ही मुझे महसूस हुआ कि अन्दर कहीं मेरी मौत सो या नहा-धो रही थी। मैंने उस चीज को वहीं फेंक दिया और खुद यूँ पीछे हटने लगा जैसे कोई मुझे बाहर धकेल रहा हो।

मैं कार दौड़ा रहा था, एक मोड़ से दूसरे मोड़ तक, किसी दूसरे से आगे बढ़ जाने के लिए नहीं, किसी दूसरे को अपने से आगे बढ़ जाने से रोकने के लिए भी नहीं, बल्कि इस डर से कि अगर ज़रा सी भी ढील हुई तो उस अजनबी सड़क पर नितांत अकेला रह जाऊँगा।

मेरी घबराहट का मूल कारण यही डर था लेकिन कुछ और कारण भी जरूर रहे होंगे।

मेरी निगाह उस कार पर टिकी हुई थी जो हर मोड़ पर मुझ से पहले पहुंच रुक जाती थी, जैसे मुझे वहा पहुंच जाने का अवकाश दे रही हो। जूंही मैं वहा पहुच कर रुक जाता, वह छूट निकलती, और मैं कुछ क्षण झुंझला लेने के बाद फिर उसके पीछे हो लेता।

मुझे यह मालूम नहीं था कि उस कार को चला कौन रहा था। मेरा अन्दाजा था कि मेरा ही कोई मेहरबान होगा जो मुझे उस अजनबी सड़क पर अकेला नहीं छोड़ना चाहता था, जिसकी रफ़्तार मेरी से ज़्यादा तेज़ थी, जो मेरी मदद भी कर रहा था और यह भी जतला रहा था कि उसे मेरी ज़रूरत नहीं मुझे उसकी ज़रूरत है।

हर मोड़ पर पहुंच कर जब मैं उसे अगले मोड के लिए छूट निकलते देखता तो मेरा जी चाहता मैं वहीं रुका रहूं, देखूं कि वह धीमा पड़ता है या नहीं, लेकिन फिर बेहतरी उसका पीछा करने में ही नज़र आती, खयाल आता झूठा अहंकार ठीक नहीं, कोई जोखिम नहीं उठाना चाहिए, और मैं फिर उसके पीछे हो लेता।

उस अजनबी सडक पर अकेले रह जाने के अलावा यह कौतूहल भी मुझे उसके साथ बाँधे हुए था कि वह जा या मुझे ले जा कहां रहा था।

उधर वह शायद मेरी निर्भरता का तमाशा देख रहा था, मुझ से खेल रहा था, मुझे उलझा रहा था, शायद मुझे किसी मोड़ तक ले जा कर खुद ग़ायब हो जाना चाहता था।

अपने इस अन्देशे के अन्दर सुलगते अपने सन्देह पर मुझे शर्म आ रही थी, जिसे अपने आप से छिपाने के लिए मैं याद कर रहा था कि सब से अधिक सन्देह मुझे दूसरों पर नहीं बल्कि अपने आप पर ही होता है—अपनी नियत पर, अपनी सम्भावनाओं पर, अपनी समर्थता पर, अपने अस्तित्व पर, अपने सन्देह पर।

उसके पीछे कार दौड़ाता हुआ मैं लताड़ अपने आपको ही रहा था, उसे नहीं, बल्कि उसके आत्मविश्वास की तो मैं मन ही मन प्रशंसा ही कर रहा था।

अब पता नहीं किस मोड़ पर पहुंच अचानक मुझे यकीन हो गया कि मेरी घबराहट का असली कारण शायद यही था कि माया मेरी कार में नहीं थी, उस कार में थी जिसका मैं पीछा कर रहा था, या शायद जिसका पीछा मैं पूरी तरह से नहीं कर रहा था, क्योंकि मेरी असली ख्वाहिश शायद यही थी कि वह माया को ले कर भाग जाए, गायब हो जाए, ताकि मैं माया-मुक्त हो जाऊँ, और उन दोनों को मेरी इस ख्वाहिश की खबर थी, इसीलिए वे मुझ से खेल रहे थे।

अपूर्ण अन्धेरे के मन्दिर में कीर्तन हो रहा था। उपासकों के गले फटे हुए थे, आवाज़ें कंटीली थीं, आंखों में खून और शब्दों में शोर रचा हुआ था।

मैं एक कोने में यूं बैठा था जैसे किसी ने फूंक मार मुझे बुझा दिया हो।

मुझ जैसे कई और भी इधर उधर बुझे बैठे थे।

मैं डर रहा था उपासकों ने अगर मुझे देख लिया तो मुझ पर झपट पड़ेंगे।

मैं सोच रहा था मुझ जैसे दूसरे भी उपासकों से डर रहे होंगे।

मैं अपूर्ण अन्धेरे के उस मन्दिर से बाहर भाग जाने के स्वप्न देख रहा था, उपासकों के उन्माद के अन्त की प्रतीक्षा कर रहा था, पश्चात्ताप की पीली आग में झुलस रहा था, सोच रहा था मेरे जैसे दूसरे भी इधर उधर बैठे यही सब कर रहे होंगे, अपने अनुमानों में लिपटे बैठे उपासकों के कड़वे कीर्तन को झेल रहे होंगे।

मेरी आंखें बन्द थीं।

अचानक मुझे कुछ सफेद गुंबद उस अपूर्ण अन्धेरे में से उभरते हुए दिखायी दिये। वे बादल भी हो सकते थे, गुब्बारे भी, मेरे वहम भी, उड़ते हुए प्याज़ भी, किसी मरते हुए इन्सान के ख्वाब भी।

उन्हें देखते गिनते और उनके बारे में सोचते सोचते मैं उस अपूर्ण अन्धेरे में हो रहे हिंसक कीर्तन से दूर उन उपासकों की पहुंच से परे उड़ता चला गया—किसी शाइर के शाहीं की तरह।

हरी बत्ती का इन्तज़ार कर रहा हूं। इतनी रात गये बहुत ही कम लोग लाल बत्ती देख कार रोकते हैं। बत्तियाँ भी अक्सर बिगड़ी रहती हैं। यह चौक दुर्घटनाओं के लिए बदनाम है। उस बड़े अस्पताल की तरह जो इस चौक के किनारे किसी कामचोर चौकीदार की तरह खड़ा ऊंघता नज़र आता है। यह अस्पताल मरीज़ों को मारने के लिए बदनाम है। किस्मत और रसूख वाले लोग ही यहां से बच बाहर आते हैं। हर दूसरे तीसरे हफ़्ते कोई न कोई हौलनाक ख़बर इस अस्पताल के बारे में छप जाती है। अस्पताल के अन्दर बाहर मरने वालों की भीड़ लगी रहती है। यह अस्पताल आबादी को कम करने के अभियान में अपनी भूमिका अदा कर रहा है लेकिन लोग कीड़ों मकौड़ों की तरह पैदा होते और मरते रहते हैं। आबादी बढ़ती ही जाती है। दुःख की तरह।

मैं हरी बत्ती का इन्तज़ार कर रहा हूं और यही सब सोच रहा हूं। बत्ती शायद बिगड़ी हुई हो लेकिन मैंने ज़िद बाँध ली है कि जब तक हरी बत्ती नहीं आती मैं यहां से हिलूँगा नहीं। मैंने अपनी ज़िन्दगी ऐसी ही छोटी छोटी ज़िदों के सहारे गुज़ारी है।

इस क्षण मुझे यह होश नहीं मैं कहां से लौट रहा हूं। माया कहीं बैठी शायद चिन्ता कर रही हो। मैंने उसे हिदायत दे रखी है कि अगर मैं अचानक बेहोश या जख्मी हो जाऊं तो वह मुझे इस बड़े अस्पताल में न ले जाए—किसी भी हालत में। मुझे अन्देशा है कि ज़रूरत अचानक आ पड़ने पर वह बेचारी मुझे इसी अस्पताल में ले जाएगी। सोचेगी सभी अस्पताल एक जैसे हैं। सोचेगी सभी लोग यहीं जाते हैं। सोचेगी कोई न कोई सिफ़ारिश कोशिश करने पर मिल जाएगी। मुझे अन्देशा है कि हम दोनों की मौत इसी अस्पताल में होगी। हमारे कई सगे सम्बन्धी यहां मर चुके हैं। मौत से अब इस मुल्क में शायद ही किसी का दिल दहलता हो। मौत से न बीमारी से न भूख से न बेईमानी से न लाचारी से न ज़ुल्म से न गन्दगी से न महामारी से न भ्रष्टाचार से।

मैं हरी बत्ती का इन्तज़ार कर रहा हूं और शायद पागल हुआ जा रहा हूं। इस वक़्त कोई मुझे देख नहीं रहा। सिवाय उसके जिसे आम बोलचाल में ऊपर वाला कहते है। वैसे वह कहते हैं हर जगह रहता है। ऊपर नीचे दाएं बाएँ। हर एक में। हर चीज़ में। वह मझ पर मुस्करा रहा होगा। उसी तरह जैसे मैं खुद मुस्करा रहा हूं। मै वही तो हूं। इस खयाल से कोई ख़ौफ़ कम नहीं होता, कोई आशंका दूर नहीं होती।

अगर मैं इसी क्षण यहीं खत्म हो जाऊँ तो किसी को कोई फर्क नहीं पड़ेगा। माया को भी नहीं। बच्चों को भी नहीं। दोस्तों को भी नही। देश को तो हरगिज़ नहीं। सड़क साफ करने

वाला कोई कल सुबह शायद मुझे किसी तरह अस्पताल मे पहुंचा दे। माया को खबर मिलेगी तो वह सब से पहले यही सोचेगी मैं ठीक ही कहता था कि मेरी मौत वहीं होगी जहां मैं चाहता हू न हो। और फिर वह मेरी याद मे मरना शुरू कर देगी।

बत्ती बदल नहीं रही। न बदले, मैं यहीं रुका रहूंगा। शाम का वक्त होता तो मुश्किल हो जाती। अखबार और झाडन बेचने और भीख मांगने वाले अपनी रूं रूं से पागल कर देते। उन्हें मुंह बिगाड़ बिगाड़ कर मिमियाने में शायद मज़ा आता होगा। खास तौर पर कम उम्र के भिखारियों को। उनकी आंखों से मुझे हमेशा यही लगता है कि वे कार के अन्दर बैठे लोगों को उनकी कमीनगी का दीदार करवाने के लिए ही अपने मुंह बिगाड़ रहे होते हैं, अपनी आवाज़ों को कृत्रिम कराहों में बदल रहे होते हैं। मुझे लगता है वे चाहते है कि कारों में बैठे लोग उन पर चिल्लाएँ, उन्हें गालियाँ दें, उन्हें कोसें, उन्हें नसीहतें दें, कहे तुम लोग कोई काम धन्धा क्यों नहीं करते, और फिर तंग आ कर कुछ सिक्के उनके फैले हुए गन्दे हाथों पर रख कर कहें—जाओ, हरामखोरो, अब किसी और की जान खाओ।

अगर इस समय कोई लड़का कहीं से आ मेरी कार के साथ चिपक मिमियाना शुरू कर दे तो मैं क्या करूंगा?

अगर इस समय मुझे सड़क किनारे किसी भिखारी की लाश पड़ी नज़र आ जाए तो मैं क्या करूंगा?

अगर इस समय कोई मुझ से पूछे कि तुम्हारे मन की मुराद क्या है तो शायद मैं कह दूं, एक दिन के लिए मुझे भिखारी बना दो।

इस तमन्ना पर मेरे रौंगटे खड़े हो जाते हैं।

बत्ती अभी भी किसी बूढ़े भिखारी की आख की तरह लाल है।

एक उघडी हुई भिखारिन मुझे घूर रही है और साफ सुथरी आवाज़ में आदेश दे रही है—बाबा, दस रुपये दे दो तो मैं तुम्हें ऐसी दुआ दूंगी कि तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाएंगी।

उसकी आंखों में अकड़ है, उसका जिस्म जरा हुआ है। उस से कोई बू नहीं आ रही। उनके फटे पुराने कपड़े उसकी आवाज़ की ही तरह साफ़ सुथरे हैं। उसने हाथ नहीं फैलाया। उसके जरे हुए जिस्म में उजाला है।

मैं एक अर्से से उस जैसी किसी भिखारिन की तलाश में हूं। मुझे लगता है कि मैं उस से बात कर सकूंगा। मेरे चेहरे पर भी उजाला हो जाता है। मै उस उजाले का उस बूढ़ी भिखारिन की आंखों में देखता हूं।

—मुझे अपनी चमड़ी के नीचे जाने दोगी?

—क्या मतलब?

उसे वह अंग्रेज़ी मुहावरा नहीं आता होगा जिसका मैंने शाब्दिक अनुवाद कर दिया है, फिर भी वह मेरे सवाल पर सीख़पा नहीं हुई। उसके प्रतिप्रश्न में आक्रोश की कड़क नहीं।

—मुझे अपने अन्दर जाने दोगी?

वह हंसना शुरू कर देती है। उसके दाँत मैले और कटे कुतरे से दिखायी देते हैं, उसी तरह जैसे पान तम्बाकू खाने वाली कुछ खान्दानी बूढ़ियों के। शायद उसने मुझे गलत समझा हो। मैं उसके कन्धे पर हाथ रख कर उसे हल्का सा झटका देता हूं। उसकी हंसी बन्द हो जाती है। मै हाथ हटा लेता हूं।

—मुझे ग़लत मत समझो। इस उम्र में मेरी उम्र के किसी आदमी की किसी बात मे तुम्हें कोई ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए। मैं तुम्हारे तन मन में दाखिल हो कर दुनिया को तुम्हारी नज़रों से देखना चाहता हूं, उसे तुम्हारी सोच से समझना चाहता हूं।

—सिर्फ़ दुनिया को ही या मुझे भी?

—मैं तुम्हारे अन्दर जा कर तुम जैसा हो जाना चाहता हूं, थोडी देर के लिए।

—बाबा, तुम अब किसी के अन्दर क्या जाओगे, कैसे जाओगे, चले भी जाओगे तो करोगे क्या? छोड़ दो यह खबत! मुझे दस रुपये दो ताकि मैं तुम्हें वह दुआ दे सकूं जिस से तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर हो जाए, मेरे अन्दर जा कर मुझ जैसा हो जाने की चिन्ता भी।

—तुम मेरी बात समझी नहीं।

—मैं समझ गयी हूं।

—जितने रुपये मांगोगी दे दूंगा, मुझे ग़लत मत समझो।

—ग़लत नहीं समझूँगी, नहीं समझी, लेकिन जो तुम चाहते हो मुमकिन नहीं। कोई किसी दूसरे के अन्दर जा कर उस जैसा नहीं हो सकता। मैं भी नहीं, मैं जो सारी उम्र दूसरों के अन्दर जा कर दया के दिये जलाने की कोशिशों में नाकाम रही हूं।

—तुम हो कौन?

—एक अनुभवी भिखारिन।

—मैं नहीं मानता।

—तो मैं कौन हूं।

—शायद मेरी ही तरह दूसरों के तन मन की एक नाकाम खोजी।

—मेरे पास इस तरह की एय्याशियों के लिए वक़्त नहीं। मैं एक पेशेवर भिखारिन हूं। दया के दिये जला कर भीख बटोरना मेरा पेशा है। इतनी सी थी जब मैंने रिरियाना शुरू किया था। अब आख़िरी दिनों पर हूं, इसलिए रिरियाना बन्द कर दिया है। अब अकड़ कर भीख मागती हूं। दस रुपये से कम नहीं मांगती। दया के दिये नहीं जलाती। जब जलाया करती या जलाने की कोशिश किया करती थी तब भी नाकाम ही रहती थी। जो लोग भीख देते थे, दया के दबाव से नहीं, पीछा छुड़ाने के लिए ही देते थे या फिर धर्म निभाने के लिए ही, कुछ दे कर बहुत कुछ पाने के लिए ही। कुछ ऐसे भी हुआ करते थे जो हवस भरी निगाहों की क़ीमत अदा किया करते थे, यह सोचते हुए कि पैसा दो पैसा दे कर उन्होंने अपना पाप धो डाला हो। अब भी दिन भर में एक दो ऐसे मिल ही जाते हैं जो मेरी अदा पर हैरान या खुश हो कर मुझे दस रुपये दे कर कहते हैं, दुआ दो।

मैंने दस रुपये का नोट उसे देते हुए कहा—मुझे दुआ मत दो।

मैं कचराघर में अपने घर के कचरे की थैली फेंकने ही वाला था कि उस गन्दे अन्धेरे में मुझे एक बच्ची एक गुत्थी सी बनी बैठी दिखायी दी। अगर मैंने उसी क्षण उसे देख न लिया होता और कचरे की थैली उस अन्धेरे में उछाल दी होती तो वह थैली शायद उस से टकरा कर उसी के ऊपर खुल बिखर गयी होती। तब क्या उसके मुंह से अनायास कोई गाली या लानत या चीख़ फूट निकली होती और मेरे मुंह से कोई मुआफ़ी या पुचकार? तब क्या मैंने अपने हाथों से उस पर गिरे कचरे को हटाया होता? तब क्या मैंने उस से पूछा होता—बेटी, तू मुंह अन्धेरे यहां क्या कर रही है, तेरा घर कहां है, तुझे ठण्ड नहीं लगती? तब क्या मैंने उसे एक दो रुपये दे कर कहा होता—जा, कहीं से कुछ ले कर खा ले? तब क्या मुझे उस पर गुस्सा आया होता, अपने आप पर गुस्सा आया होता, शर्म आयी होती? तब क्या मुझे उस क्रान्ति की याद आयी होती जिसके मैं कभी सपने देखा करता था? तब क्या मैंने एक क्षण के लिए उस बच्ची को पढ़ा लिखा कर अपने पैरों पर खड़ा कर देने के खयाल का सामना किया होता?

यह सब मैं इस वक़्त अपनी मेज़ पर झुका सोच लिख रहा हूं। उस वक़्त तो मैंने कचरे की थैली को उछाल देने के बजाय उसे उस बच्ची के पास ही खड़ी एक उदास सूखी गाय के सामने फेंक दिया था। बच्ची उठ कर उस थैली के पास चली आयी थी। वहां पहुंच कर उसने मेरी तरफ़ देखा था। गन्दे अन्धेरे में उसके गन्दे चेहरे पर उसकी उजली आंखें किसी डरी हुई बिल्ली की आंखों की तरह चमक रही थीं। उस वक़्त मेरे बदन में एक झुरझुरी तो हुई थी और खास कुछ नहीं।

उसी शाम हमारा एक दोस्त ख़ाने पर आ गया था—साफ़, सुथरा, सादा, और ख़ुश। वह हमेशा खुश रहता है। मैंने कभी उसके मुंह से कोई शिकायत नहीं सुनी, समाज या संसार या सरकार या नियति के खिलाफ। उसकी मुस्कान हमेशा स्वच्छ और सरल होती है, उसकी बातें हमेशा गूढ़ और गहरी, उसके विचार हमेशा तीखे और ताज़ा।

अब याद नहीं वह क्या कह रहा था कि मैंने उसे कचराघर में बैठी उस बच्ची की डरी हुई आंखों के बारे में कुछ कह दिया। उस वक़्त तो उसने कुछ कहा नहीं, कुछ देर बाद जब रवाना हो चुका तो वह अचानक बोला—अगर तुमने उस वक्त उस बच्ची को किसी तरह यह जतला दिया होता कि वह बच्ची है तो तुम्हे झुरझुरी न होती और उसे यह महसूस न होता कि वह तुम्हारी नज़रों में जानवर थी।

मुझे लगा था कि मेरे दोस्त ने मुझे और उस बच्ची को एक झूठा दिलासा दे दिया है।

मैं उस अन्धेरे के बाग़ की खुशबू सूंघता हुआ सैर कर रहा था और सोच रहा था उजाले के बाग़ों से मुझे इतना पुराना बैर क्यों है। सोच और भी बहुत कुछ रहा था। नहीं, रात की सैर के दौरान मेरे मन में जो ग़ुबार से उठते रहते हैं, जो परिन्दे से उड़ते रहते हैं, यादों की जो मछलियां सी उछलती रहती हैं, हसरतों की जो परछाइयाँ सी तड़पती रहती हैं, शिकस्ता इरादों के जो पुरज़े से फड़फड़ाते रहते हैं, अन्देशों की जो राख सी उड़ती रहती है, इस और उस दुनिया की धूल के बारे में जो ऊलजलूल अनुमान से सुलगते रहते हैं, ईश्वर और इनसान के अस्तित्व के बारे में जो कटे फटे क़यास से सूझते रहते हैं—उन सबको सोच की उपाधि मैं नहीं दे सकता। तो कहूं कि मैं उस अन्धेरे के बाग़ में बस विचर रहा था—किसी अशांत आत्मा की तरह या किसी भूले भटके भूत की तरह या किसी बेघर बूढ़े की तरह। माया उस वक़्त उस अन्धेरे के बाग़ से दूर कहीं अपनी नींद में घर बनाए पड़ी हुई थी। उसे भरोसा था कि मैं सैर के बाद उसके पहलू में जा लेटूंगा, मुझे मालूम था कि सैर के दौरान जो कुछ भी होगा उस से मेरी किसी शंका या दुविधा का निवारण तो नहीं होगा लेकिन दूसरे दिन को सहने का दु:साहस मिल जाएगा। इसी आशा की बैसाखी टेकता हुआ मैं उस बाग़ के बीचों बीच बैठे एक भुरभुरे मक़बरे के चबूतरे की तरफ़ चल दिया। चबूतरा चाँदनी में चमक रहा था। कुछ देर वहां लेट मैं चाँद को निहारना चाहता था। चाँद को निहारने से चैन तो मुझे नहीं मिलता लेकिन यह भ्रम ज़रूर हो जाता है कि मिल रहा है। और फिर आंखों को तो कुछ आराम मिल ही जाता है। चबूतरे पर पहुंचा तो वे दोनों दिखायी दिये—एक दूसरे की टाँगों में टाँगें फँसाए, एक दूसरे के होठों में होंठ फँसाए, एक दूसरे की आंखों में आंखें डिबोए, कपड़ों के बग़ैर, हाँफते और हंसते हुए। मेरी उपस्थिति से आगाह होते ही मर्द ने मुझ से पूछा—सआदत हसन से मिलना चाहोगे?

उनकी हरकतें तो रुक गयी थीं लेकिन उनका उलझाव नहीं टूटा था। मर्द के प्रश्न ने मुझे चौंकाया तो ज़रूर लेकिन इसलिए नहीं कि प्रश्न अजीब था बल्कि इसलिए कि उस क्षण चाँद के अलावा सआदत हसन भी मेरी चेतना में मौजूद था, क्योंकि उसी शाम एक शख़्स ने बार में मुझ से कहा था, आपका चेहरा सआदत हसन मन्टो के चेहरे की याद दिलाता है।

—सआदत हसन मन्टो से?

—हाँ उसी से।

यह जवाब औरत ने दिया था।

—हाँ, अगर मुमकिन हो तो क्यों नहीं।

—उसे जानते हो?

यह सवाल मर्द ने किया था।

—जानता तो नही।

—एक दम बांगड़ू है!

यह राय औरत ने दी थी।

—होगा लेकिन उर्दू का सब से बड़ा कहानीकार भी तो है।

—उर्दू का सब से बड़ा बांगड़ू मानता है वह अपने आपको।

—यह उसकी बाग़ियाना कसरे नफ़्सी है।

उन दोनों में से किसी ने कोई जवाब नहीं दिया। मैंने सोचा वे फिर शुरू हो गये होंगे—उन्हें देखते ही मैं ऐसे ज़ाविये पर खड़ा हो गया था कि वे मुझे दिखायी न दें। ऐसा नहीं कि उन्हें एक दूसरे में डूबा हुआ देखना मुझे अच्छा नहीं लगा था बल्कि इसलिए कि मैं उनके आनंद में कोई विघ्न नहीं डालना चाहता था।

—मन्टो मेरा यार है।

यह सूचना औरत ने दी थी।

—तो तुम इस से क्यों उलझी हुई हो?

यह कहते कहते मैंने रुख उनकी तरफ़ फेर लिया और पाया कि वे मेरी तरफ़ देख रहे थे और हंस रहे थे। औरत मर्द के ऊपर थी।

—ताकि वह मेरी बेवफाई पर एक बड़ी कहानी लिख सके।

उसका जवाब मुझे पसंद आया, अपना सवाल बेहूदा लगा।

—उसे मालूम है?

—उसे मालूम ही नहीं उसी की उत्साहट ने हमें एक दूसरे से उलझाया है। यह हज़रत उनके अजीज़ दोस्त हैं।

—तुम्हें मायूसी हुई या सदमा लगा?

सवाल मर्द ने पूछा था।

—नहीं, मुझे खुशी हुई।

मैं मुंह फेर कर चलने लगा तो औरत ने आवाज़ दी—माया हाफ़िज़!

मेरी हंसी छूट गयी।

वह बीमार नज़र तो नहीं आता लेकिन शायद है। न होता तो हम सब इस तरह उसकी तीमारदारी में जुटे हुए न होते।

उसका चेहरा साफ और स्थिर नहीं। उसमें मुझे अपने असंख्य परिचितों के चेहरे झिलमिलाते दिखायी दे रहे हैं, अपनी कई सूरतें भी दिखायी दे रही हैं, इसीलिए शायद मैं उसे पहचान नहीं पा रहा।

हम सब उसके नौकर या रिश्तेदार शायद नहीं। हम सब उसके हितैषी भी शायद नहीं। दूसरों का मैं कह नहीं सकता, मुझे उस से ईर्ष्या भी हो रही है, उस पर दया भी आ रही है। मेरी दया शायद मेरी ईर्ष्या में से ही फूट रही है।

दूसरों में कई महिलाएँ भी हैं।

सम्भव है वह कोई बारसूख नेता हो। सम्भव है उसने हम सब पर कई प्रकार के एहसान किये हों। किसी की जान बचाई हो, किसी का ईमान। किसी को मकान दिलवाया हो, किसी को नौकरी, किसी के बेटे को दाखिला दिलवा दिया हो, किसी की बेटी को अच्छा वर। किसी को इन्कमटेक्स के फन्दे से निकाला हो, किसी को फाँसी के फन्दे से। किसी की बीवी को किसी बड़ी कुरसी में बिठा दिया हो, किसी के ख़ाविंद को कोई बड़ा ठेका दिलवा दिया हो।

सम्भव है वह कोई महात्मा हो जिसकी सेवा हमारा फ़र्ज़ हो।

सम्भव है हम सब उसके आशिक़ हों।

सम्भव है उसने हम सब पर कोई जादू कर रखा हो।

सम्भव है वह हमारा भगवान बन बैठा हो।

सम्भव की कोई सीमा नहीं।

अगर इतने सारे अनुमान मेरे मन को भरमा रहे हैं तो इनमें से कुछ दूसरों के मनों को भी भरमा रहे होंगे।

किसी दूसरे का चेहरा साफ और स्थिर नहीं। शायद हर दूसरे तीसरे क्षण हम सब अपने चेहरे एक दूसरे से बदल लेते हैं।

उधर वह कभी आराम से लेटा हुआ नज़र आता है, कभी बेचैनी में करवटें बदलता हुआ। कभी किसी क़दीमी बीमार की तरह कराहता हुआ नज़र आता है, कभी किसी उदास

मसखरे की तरह मुस्कराता हुआ। कभी कुछ खा पी रहा होता है, कभी उल्टी कर रहा होता है। कभी अपने बाल नोचता हुआ नजर आता है, कभी किसी दूसरे के, कभी किसी को दुलार रहा होता है, कभी किसी को दुत्कार। कभी हाय हाय कर रहा होता है, कभी ही ही।

सम्भव है वह यह सारी हरकते हमें उलझाने या कुछ सुझाने के लिए ही कर रहा हो।

मैं यहा से भाग क्यों नहीं जाता?

इतने लोग उसके इशारों पर नाच रहे हैं, उसे पता भी नहीं चलेगा कि मै ग़ायब हो गया हू।

मैं किसी से पूछ क्यों नहीं लेता क्या हो रहा है और क्यों?

मेरे आस पास एक कारख़ाना सा चल रहा है।

किसी से कुछ पूछना ग़लत लगता है।

फिर यकायक यह अफ़वाह सुनायी दे जाती है कि उसने फरमाइश की है कि नाच का इन्तज़ाम किया जाए।

अब कुछ लोगों को इधर उधर दौड़ाया जा रहा है, इस हिदायत के साथ कि नाचने वालियां मर्दों के भेस में हों, नाचने वाले औरतों के भेस में।

यह शर्त भी उसी ने रखी होगी।

इस शर्त हिदायत के बारे में सोचता सोचता मैं सो जाता हूं।

एक स्वप्न शुरू हो जाता है जिसमें वह एक क़ब्र में लेटा हुआ है और उस कब्र के इर्दगिर्द मुजरा हो रहा है।

मुर्दे का मुंह खुला था, आंखें बन्द थीं। मैं रो रहा था और सोच रहा था कि उसका मुंह भी बन्द होना चाहिए था। एक मक्खी उसकी ठोड़ी पर यू बैठी हुई थी जैसे उसके मुंह में दाखिल होने से पहले सोच रही हो कि मुर्दे के मुंह में दाख़िल हो कर वह करेगी क्या? मैं उस मक्खी को उड़ा या मार देना चाहता था लेकिन मुझे मालूम था मैं कुछ नहीं करूंगा। मुझ से कुछ दूरी पर एक और आदमी बैठा चुपचाप रो रहा था, कुछ कुछ मेरी ही तरह। उसने मुर्दे का एक हाथ यूं पकड़ रखा था जैसे उसे दिलासा दे रहा हो, घबराओ नहीं, तुम जल्द ही फिर ज़िन्दा हो जाओगे। शायद उसने मुर्दे के खुले मुंह को देखा हो, उसे बन्द करने के बारे में सोचा हो, उस मक्खी को उड़ा या मार देना चाहा हो। जब कुछ देर बाद मेरी और उसकी रुलाई सूख गयी तो मैंने इशारे से उसका ध्यान मुर्दे के खुले मुंह की तरफ़ खींचा। मुर्दे की ठोड़ी पर बैठी मक्खी उड़ कर मेरे सर पर आ बैठी। मैंने अपने सर पर हाथ मारा तो वह उड़ कर फिर मुर्दे की ठोड़ी पर जा बैठी। दूसरे आदमी के होंठों पर एक फीकी मुस्कराहट उभर आयी। मैंने आंखें नीची कर लीं। अब मैं उस से कहना चाहता था कि वह मुर्दे का हाथ छोड़ दे। मैं जानता था मुझे वह आदेश देने का अधिकार नहीं। वह हाथ छोड़ने से इन्कार तो कर हो सकता था, नाराज़ भी हो सकता था। मैं उसे नाराज़ नहीं करना चाहता था। औरों के आने से पहले मैं उसकी मदद से मुर्दे का मुंह बन्द कर देना चाहता था। मैं मुर्दे के चेहरे को कुछ देर ध्यान मे देखना चाहता था। पहले कभी किसी मुर्दे के चेहरे को ध्यान से देखने का अवसर मुझे नहीं मिला था, लेकिन जब तक मुर्दे का मुंह बन्द नहीं होता और वह मक्खी उड़ या मर नहीं जाती, मैं ध्यान से कुछ भी नहीं देख सकता था।

मैं खिसक कर दूसरे आदमी के पास पहुंच गया। उसने एक हाथ मेरी पीठ पर रख दिया तो मुझे फिर रोना आ गया। उसने मेरी पीठ थपथपा दी। अगर उसने उसीवक़्त मुर्दे का हाथ छोड़ दिया होता तो शायद मैंने उसकी पीठ थपथपा दी होती। उसका एक हाथ मेरी पीठ पर था, दूसरा मुर्दे के हाथ को पकड़े हुए था। यह स्थिति मुझे अजीब लग रही थी। इस बीच वह मक्खी मुर्दे की ठोड़ी से ग़ायब हो गयी थी। कहीं वह उसके मुंह में न जा घुसी हो? मैं दूसरे आदमी मे उस मक्खी के बारे में बात करना चाहता था लेकिन जानता था करूंगा नहीं। अब मुर्दे का मुंह बन्द कर देने का खयाल एक खस्ता इरादे में बदल गया था। मेरी रुलाई फिर बन्द हो गयी थी। मैंने धीमी आवाज़ में कहा, इसका मुंह अब किसी तरह बन्द कर देना चाहिए। उमने अपना हाथ मेरी पीठ से हटा लिया। कुछ देर वह यूं ख़ामोश बैठा रहा जैसे मेरे सुझाव पर ग़ौर कर रहा हो। फिर बोला, अब मुश्किल होगा। उसकी आवाज़ धीमी

नहीं थी। मैंने फिर कहा, कोशिश तो करें। वह उठ खड़ा हुआ। मैं कहना चाहता था, कोशिश बैठे बैठे भी की जा सकती है, लेकिन मैं बहस में उलझना नहीं चाहता था। मैं भी खड़ा हो गया। उसने मुर्दे का हाथ अब भी न छोड़ा होता तो मैंने ज़रूर उसे कह दिया होता, अब तो इस बेचारे का हाथ छोड दीजिए। मैंने सोचा, और नहीं तो उठने का यह फायदा तो हुआ। 'फायदा' शब्द मुझे अखरा अवश्य लेकिन उसका विकल्प मुझे नहीं सूझा।

अब मुझे कुछ मालूम नहीं था कि मुर्दे का मुंह कैसे बन्द किया जा सकेगा। सहसा मैं यह सोच कर परेशान हो उठा कि दूसरे आदमी का नाम तक मुझे मालूम नहीं था। मुर्दे का मुंह बन्द करने से पहले उस आदमी से बाक़ायदा परिचय करना मुझे इतना आवश्यक लगा कि मैंने मुर्दे पर टकटकी बाँध दी गोया उसे हमारा परिचय करवा देने के लिए उकसा रहा होऊं। उस आदमी ने कहा, मैं इसका सर पकड़ता हूं, आप इसकी ठोड़ी को नीचे से ऊपर की तरफ़ दबाइए, पूरे ज़ोर से। उसकी आवाज अबकी बार भी धीमी नहीं थी। मेरी टकटकी टूट गयी, साथ ही मुर्दे का मुंह बन्द करने का इरादा भी। मैंने फिर रोना शुरू कर दिया। दूसरे आदमी को पता नहीं मुझ पर तरस आया या ग़ुस्सा, उसने झुक कर एक हाथ से मुर्दे की खोपड़ी को जकड़ लिया, दूसरे से उसकी ठोड़ी को और जोर लगाना शुरू कर दिया। मैं रोते-रोते चिल्लाया, यह आप क्या कर रहे हैं, बेचारे का जबाड़ा टूट जाएगा!

उस आदमी ने सर उठा कर मुझे देखा। अब उसकी आंखों में आक्रोश था। उसने कहा, आप ही पीछे पड़े हुए थे, मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मुश्किल होगा। इसी बीच मुर्दे की पत्नी भी दूसरे कमरे से आ गयी थी। वह रो नहीं रही थी। उसने धीमी आवाज में कहा, आप लोग कुछ मत कीजिए। दूसरा आदमी अपने हाथ हटा कर सीधा खड़ा हो गया। मैंने धीमी आवाज़ में कहा, किसी डाक्टर को बुलवा लेना चाहिए। दूसरे आदमी और मुर्दे की पत्नी ने मेरी तरफ़ यूं देखा जैसे पूछ रहे हों, आप पागल तो नहीं हो गये। वह मक्खी अब मुर्दे के निचले होंठ पर बैठी अपने हाथ धो रही थी।

बात करते करते सहसा उसने बल खाना शुरू कर दिया। उसकी आंखें बन्द हो गयीं, होंठ खुल गये, हाथ उसके सीने को सहलाने लगे, टांगें कसमसाने लगीं। अब उसके मुंह से शब्दों के बजाय एक सुस्कार सी फूट रही थी।

मुझे उसकी मस्ती मे मज़ा भी आ रहा था, डर भी महसूस हो रहा था।

डर और मज़े का घोल मुझे मदहोश कर रहा था।

दौरे का शिकार हो जाने से पहले वह अपनी आकांक्षाओं की तसवीर खींच रही थी। और अब सहसा खुद उस तसवीर में बदल गयी थी।

उसे झंझोड़ने की ख्वाहिश हुई लेकिन वह इतनी तपी हुई नज़र आयी कि हाथ लगाने की हिम्मत नहीं हुई। हाथ ही नहीं, मेरा सारा जिस्म जल सकता था।

उसे देखते रहने भर से मेरी आंखें झुलसी जा रही थीं।

देखते ही देखते वह अपनी ही आग में जल राख हो गयी।

मैं उठा और कुछ कहे या किये बग़ैर उस राख की ढेरी को वहीं छोड़ आगे बढ़ गया।

उसकी टांगें दो सूखी टहनियों या बांहों की तरह आकाश की ओर उठी हुई थीं।

मेरी आंखें उसके पैरों पर टिकी हुई थीं।

उसके पैर किसी बुढ़िया के हाथों से नजर आ रहे थे।

उसकी ठोडी मेरे सर में चुभ रही थी।

मेरा सर उसके सीने पर टिका हुआ था।

उसका सीना उसकी सांसों के साथ उठ बैठ रहा था।

उसके पैरों पर आंखें टिका लेने से पहले मैंने सर उठा कर एक नज़र उसके चेहरे पर भी डाली थी।

उसका चेहरा एक बहुत पुरानी पड़ोसिन का था जिस पर मैं किसी ज़माने में खुफ़िया तौर पर फ़िदा था।

वह उम्र में मुझ से पन्द्रह बीस बरस बड़ी थी।

वह चेहरा पहचान लेने के बाद मुझे अपना सर उस सीने से उठा लेना चाहिये था लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया।

वह सीना मुझे उस चेहरे और उन टांगों से अलग महसूस हो रहा था जैसे उस पुरानी पड़ोसिन का न हो, किसी अनजानी प्रिया का हो।

मैंने आंखें मूंद कर उस सीने के गुदाज को सोखना शुरू कर दिया।

अब मुझे एक तसवीर नजर आ रही थी जिसमें एक बुढ़िया की टांगें प्रार्थना में आकाश की ओर उठी हुई थी, उसका चेहरा एक पिचके हुए आड़ू सा था, जिसमें टंकी उसकी आंखें किसी गुड़िया की सी थी, और उसका सीना किसी मुंहज़ोर दोशीजा का सा था, जिस पर टिका मेरा सर किसी बूढ़े बच्चे का सा।

इस तसवीर से मुझे रूहानी राहत मिल रही थी।

उमके कमरे का दरवाज़ा आधा खुला था। उसका वक्ष भी। मैंने दरवाज़े को किसी कच्चे तबलची की तरह थपथपाया तो उसकी आवाज़ आयी—क्या लेने आए हो?

—अपनी डाक।

उसकी हंसी से मैं समझ गया मेरा बहाना बेहूदा था।

अब वह दहलीज़ पर खड़ी मुझे देख रही थी। मैंने देखा उसकी चोली खूब कसी हुई थी। उसका आधा खुला वक्ष मैंने कल्पना में ही देखा होगा। मैंने मन ही मन अपनी कल्पना से कहा, एक बार फिर दिखा दो आधा जलवा।

उसके कमरे में दो काले अजनबियों को देख मुझे दुख तो हुआ, हैरानी नहीं। उसके कमरे में हमेशा कोई न कोई बैठा रहता था, कोई न कोई काला अजनबी, जिसे देख मुझे हैरानी नहीं, दुख ही होता था। वह कभी उन काले अजनबियों का परिचय मुझ से नहीं करवाती थी। मैं मन ही मन उसकी इस एहतियात की प्रशंसा किया करता था।

उसने एक निपट घरेलू औरत की तरह अपनी चोली में हाथ डाल एक कागज निकाला।

—मेरी कविता पढ़ोगे?

मैंने उसके हाथ से काग़ज़ लेते हुए महसूस किया जैसे वह मुझे मेरी मौत का परवाना दे रही हो। काग़ज़ गर्म था और उसमें से उसके सीने की सुगन्ध उठ रही थी।

—पढ़ कर सुना दूं?

इस पर वह बिगड़ गयी। उसने वह काग़ज़ मेरे हाथ से छीन उसे फिर चोली के पीछे छिपा लिया।

मेरा हाथ अचानक वीरान हो गया।

मैं उसकी चोली के पीछे छिपे उस काग़ज़ की ख़ुशकिस्मती की कल्पना कर ही रहा था कि एक काले अजनबी ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे अन्दर खींचने लगा।

अब वह अपना हाथ छुड़ाने के लिए कसमसाती हुई मेरी तरफ देख रही थी।

मैंने उसकी आंख से आंख नहीं मिलायी। मुझे लगा जैसे वह नाटक कर रही हो। उसके मुचड़े हुए मुंह में मुझे कई घटिया फ़िल्मों की अबलाओं की घटिया अदाकारी नज़र आ रही थी।

उधर दूसरा काला अजनबी मुझ पर झपट पड़ने को तैयार नजर आ रहा था।

—तो मैं चलता हूं, तुम अपने दोस्तों के साथ का मजा लो।

दोनों काले अजनबी एक साथ हंस पड़े।

मैं सीढ़ियां उतर ही रहा था कि उसकी आवाज़ सुन मैं ठिठक गया।

—फिर कब आओगे, अपनी डाक लेने ?

मैं बाकी की सीढ़ियां जल्दी जल्दी उतर गया।

उसने दो फूल मुझे दिखाए और मैं कुछ क्षणों के लिए अन्धा हो गया।

—इन फूलों का नाम बता सकते हो?

मेरे मुंह से कोई आवाज़ निकलती, उस से पहले ही वह फिर बोली—अगर तुमने नाम बता दिया तो मैं यह रात यहीं रह जाऊंगी, तुम्हारे पास।

मैंने वे फूल अपने हाथों में ले लिये। उन्हें सूंघने के लिए उन पर झुका तो वे दो परिन्दों में बदल गये। मैंने उनकी नन्हीं नन्हीं आंखों में झांकते हुए कहा—ये फूल नहीं, परिन्दे हैं।

—तो इन परिन्दों का नाम बता दो।

—ये तो एक दम नये नज़र आते हैं। शायद बेनाम, इन्हें कोई नाम देना पड़ेगा।

—तुम बहानों के पीछे अपने अज्ञान को छिपा रहे हो। तो मैं जाऊं किसी और से पूछने?

—नहीं मैं कोशिश.....

—अच्छा तो कोई अच्छा सा नाम ही इन्हें दे दो, अगर मुझे पसंद आ गया तो मैं कहीं और नहीं जाऊंगी, आज की रात।

मैंने आंखें मूंद कर उस क्षण को दुहराया जिसमें मैंने कुछ ही क्षण पहले उन फूलों को देखा था और देखते ही कुछ क्षणों के लिए अन्धा हो गया था।

—यह क्या हो रहा है? जादू?

उसकी आवाज़ हंसी में लिपटी हुई थी।

—नाम ढूंढ़ रहा हूं।

—अन्धेरे में?

—हां। मिल गया! इन परिन्दों का नाम होना चाहिए—पक्षूल!

मैंने आंखें खोल दीं। वह सर झुकाए खड़ी थी।

वह लड़खड़ा रही थी और उसका साथी उसे थाम लेने की कोशिश कर रहा था।

नहीं, वे दोनों लड़खड़ा रहे थे और एक दूसरे को थामने की कोशिश कर रहे थे।

नहीं, वे दोनों नाच रहे थे।

नहीं, वे दोनों नाच भी रहे थे, लड़खड़ा भी।

नहीं, वे दोनों नाचने के बहाने लड़खड़ा रहे थे या शायद लड़खड़ाने के बहाने नाच रहे थे।

लड़की को मैं कभी जानता था, लड़के के बारे में अनुमान लगा रहा था।

वह लड़की अब लड़की नहीं रही थी, वह लड़का भी लड़का नहीं था।

जब मैं उसे जानता था तब भी वह लड़की नहीं थी, औरत ही थी, लेकिन तब भी उसे लड़की समझना अच्छा लगता था, अब भी अच्छा लग रहा था। तब भी उसे लड़की समझ कर मै अपनी उम्र बढ़ा लिया करता था, अब भी मै वैसा ही कर रहा था।

उम्र को अपनी उमंग के अनुसार घटा बढ़ा लेने की मुझे आदत है, अपनी उम्र को ही नहीं, दूसरों की उम्र को भी।

जब मैं उसे जानता था, मैं उसे एक लड़की के रूप में ही देखना चाहता था। मैं खुद तब भी अपनी नज़र में बूढ़ा था। उसे अपनी तरफ खिंचा देख होंठों से मुस्कराहटें फूटती रहती थीं, आंखों से आंसू।

कल रात वह बरसों बाद दिखायी दी थी, और मैंने उसे वैसी ही देखा था जैसी बरसों पहले पहली बार।

मैं देख रहा था कि वह अधेड़पन की दहलीज पर खड़ी लड़खड़ा या नाच रही थी, कि उसका साथी भी वहीं खड़ा उसके साथ लड़खड़ा या नाच रहा था, लेकिन मैं उन दोनों को लडकी और लड़के का दर्जा दे रहा था, अपने आपको उन दोनों के बाप का।

मैंने माया से पूछा—उसे देखा?

माया मुस्करायी और बोली—हां देख लिया।

—उसके साथ वह लड़का कौन है?

—होगा कोई, तुम्हें क्या! और वह लड़का नहीं, आदमी है।

माया की मुस्कराहट में कोई बल नहीं था।

—कुछ पक गयी दिखायी देती है।

—पहले भी वह कच्ची नहीं थी।

माया हंस रही थी।

—उस लड़के से उसकी शादी हो रही है।

मैंने तो यूंही कह दिया था, धीमी सी प्रज्ञा के आधार पर, लेकिन माया ने मानो मेरी बात को निश्चित सूचना समझ लिया हो।

—बड़ी अच्छी बात है, आगे बढ़ कर उन्हें आशीर्वाद क्यों नहीं दे देते?

उसके स्वर में व्यंग्य की सुर्खी नहीं थी। वह मेरी तरफ़ देख रही थी। उसकी निगाह में कोई कांटा नहीं था। उसने मेरे चेहरे पर आश्चर्य का आलोक ज़रूर देख लिया होगा।

—आगे बढ़ कर आशीर्वाद दो, देख क्या रहे हो?

मैं उस लड़की को उस लड़के के साथ नाचते लड़खड़ाते देख रहा था। उन दोनों ने हमें नहीं देखा था। माया मेरे पास खड़ी थी। मेरे शरीर में उत्तेजना थी—शरीर की निष्काम उत्तेजना।

वह तीन अजनबियों से घिरी हुई थी। कुछ कह रही थी और कुछ पी रही थी। वे तीनों आगे की ओर उचके हुए उसे और उसकी बातों को पी रहे थे। उस वक़्त वह मुझे एक कमसिन अबला सी भी नजर आयी, एक बालिग़ बला सी भी। उसने मुझे नहीं देखा। उन तीनों ने मुझे देख तो लिया था लेकिन यह शायद नहीं देख सके कि मैं उसी को ढूंढ़ता हुआ वहां जा पहुंचा था। मैं उनके पास वाली मेज़ पर बैठ गया। अब मै उसकी बात सुन सकता था, उसकी अदाकारी देख सकता था, उनकी प्रतिक्रियाएं परख सकता था।

वह भर्रायी हुई आवाज़ में कह रही थी—उसने मेरी चोली को पकड़ लिया, मैंने रोका तो उसने मेरा हाथ मरोड़ कर मेरी चोली को एक दम फाड़ दिया और फिर उसने मेरे सीने को यूं मसलना शुरू कर दिया जैसे आटा गूंध रहा हो।

उन तीनों की आंखें अब उसके सीने को मसल रही थीं, उनके होंठ खुले और गीले थे, उनकी गरदनें यूं खिंची हुई थीं जैसे शिकारी कुत्तों की शिकार को सूंघ कर खिंच जाती है।

उसने एक घूंट ले कर सुबकती हुई आवाज में फिर बोलना शुरू कर दिया—उसने मेरी चोली को ऐसे पकड़ कर ऐसे खींचा.....

इस बार बोलने के साथ साथ वह अभिनय सा भी करती जा रही थी—चोली के खिचने और फाड़े जाने का अभिनय, हाथ मरोड़े जाने का, सीने के मसले जाने का। अभिनय करती करती वह खड़ी हो गयी थी। फिर वे तीनों भी खड़े हो गये थे, अब वे भी उसकी नकल उतारते हुए उसी का सा अभिनय कर रहे थे। मैं भी खड़ा तो हो गया लेकिन मैंने कोई हरकत नहीं की। बस हैरान होता रहा और डरता रहा कि वे तीनों उसके साथ कुछ और न करने लगें। अब मुझे यह शक भी होने लगा था कि वह रो कर उन्हें रिझा और उकसा रही थी। रोती हुई वह बारिश में भीगी किसी कामिनी सी नज़र आ रही थी।

अचानक उसने मुझे देख लिया और कसी हुई आवाज में बोली—तुम कब से खड़े पहरा दे रहे हो?

उन तीनों की हंसी में उसकी हंसी भी शामिल थी। अब मुझे पता चल गया वह रो नहीं रही थी, रोने का अभिनय ही कर रही थी ताकि वह उन तीनों को बारिश में भीगी हुई किसी कामिनी सी नज़र आए।

मन हुआ उस पर पिल पड़ूं लेकिन उन तीनो से लड़ने की ताकत मुझ में नहीं थी।

मैं करवट बदल कर फिर सो गया।

वह उसको पीट रहा था और वह एक टक मुझे देखे जा रही थी।

वह एक दीवान पर पेट के बल लेटी हुई थी। उसकी ठोडी एक गद्दी पर टिकी हुई थी, बाल उसके चेहरे पर छतराए हुए थे, बालों में से झाँकती हुई उसकी आखें कोरी और कसी हुई थीं।

जब उस की पेटी पटाक से उसके चूतड़ों पर पड़ती तो उसके जबड़े कुछ और कस जाते, औरत की कसी हुई आंखें एक क्षण के लिए बन्द हो जातीं, उसकी सारी देह में एक सिकुड़न सी दौड़ जाती, लेकिन उसके मुंह से कोई आवाज़ न निकलती।

हर प्रहार के बाद वह कुछ क्षण रुक जाता, उचटती नज़र से मुझे देखता, औरत की देह को देखता, अपनी पेटी को देखता, और फिर औरत पर टूट पड़ता।

उसकी पतलून उसके बूटों पर गिरी पड़ी थी। क़मीज के नीचे वह नंगा और मुरझाया हुआ था। जब वह पेटी को लहराता हुआ औरत पर झुकता तो उसकी क़मीज़ कुछ ऊपर खिंच जाती, उसके पीले सफ़ेद चूतड़ मुझे नज़र आ जाते, और मेरा मुंह अनायास खिंच जाता। औरत के चूतड़ों पर लाल नीले लस्से उभरते चले जा रहे थे। कई महीने पहले एक स्वप्न में उसने अचानक अपनी स्कर्ट उठा कर मुझे अपने चूतड़ों पर पड़े फीके नीले निशान दिखाए थे, कहा था छू कर देखो, बताया था उसके मर्द ने उसे पिछली रात खूब पीटा था।

जिस कमरे में हम तीनों थे वह शायद उनका था न मेरा, उनके घर का था न मेरे घर का, शायद हम किसी मोटल के कमरे में थे, शायद उन दोनों ने उसे कुछ देर के लिए किराए पर ले लिया था। मुझे कुछ याद नहीं आ रहा था कि मैं वहां कैसे पहुंच गया था, कि माया उस वक़्त कहां थी, कि वह दृश्य शुरू कब और कैसे हुआ था।

सब कुछ अटूट खामोशी में हो रहा था, इसलिए पेटी की पटाक हर बार पिछली बार से कुछ ज़्यादा ऊँची सुनायी देती थी।

मुझे मालूम था, न जाने कैसे, कि जब वह मुझे देखना बन्द कर देगी, वह उसे पीटना बन्द कर देगा, लेकिन अगर मैं औरत को इस आशय का कोई इशारा करूंगा तो वह और भड़क उठेगा। मुझे यक़ीन था कि अगर मैं मर्द को मना करूंगा तो भी वह और भड़क उठेगा।

मर्द मेरा एक मुश्किल दोस्त था, औरत मेरी एक प्लेटॉनिक प्रेमिका। अगर मुझे माया का डर न होता, अगर मुझे यह डर न होता कि माया मुझे छोड़ देगी, तो शायद औरत मेरी

सम्पूर्ण प्रेमिका भी हो गयी होती। अगर माया को यह डर न होता कि वह औरत मेरी सम्पूर्ण प्रेमिका हो जाने के बाद उसे, माया को, मेरे मन से निकाल देने में सफल हो जाएगी तो उसने शायद मुझे एक त्रिकोण सी बना लेने की इजाज़त दे दी होती।

वह औरत अपने मर्द मे डरती तो बहुत थी लेकिन उसे जब मौक़ा मिलता वह अपने डर का बदला उस से ले लिया करती थी—कभी किसी अजनबी के साथ सो कर, कभी उसके किसी वाक़िफ़ या दोस्त के साथ सो कर, कभी अपने किसी पुराने प्रेमी के साथ फोन पर लम्बी बात कर के, कभी अपने मर्द के सामने मेरी तरफ़ किसी ख़ास अन्दाज़ से देख कर, कभी धुत्त हो कर अपने मर्द का अपमान कर के, कभी कोई भडकीली पोशाक पहन कर या कोई उकसा देने वाली कामुक अदा दिखा कर।

मर्द को मुझ पर शक तो था लेकिन मुझ से कोई ठोस खतरा नही था, क्योंकि वह जानता था मैं माया का मुरीद था, कि मैं कभी किसी औरत के लिए माया को नहीं छोड़ूँगा, कि मैं दूसरी औरतों पर रीझ भले ही लूं, कोई ऐसा क़दम कभी नहीं उठाऊँगा जिस से माया के साथ मेरे सम्बन्ध में कोई खास दरार आ जाने का ख़तरा हो। फिर भी मुझे यह डर लगा रहता था कि किसी दिन अचानक वह मुझे पकड़ कर पूछ लेगा—तुम क्यों मेरी बीवी को पटा रहे हो—और फिर मुझे पीटना शुरू कर देगा। उसे एक बर्बर वहशी में बदल जाने में ज्यादा देर नहीं लगती थी। कभी कभी वह मज़ाक में मुझे धमका दिया करता था—अगर कभी मैंने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ लिया तो तुम्हारी खैर नहीं। ऐसी धमकियां वह अपनी औरत और माया के सामने भी कई बार दे चुका था। हर बार मुझे महसूस होता जैसे वे तीनों मिल कर मेरे मन की तलाशी ले रहे हों। कभी कभी धुत्त हो जाने के बाद या धुत्त हो जाने का बहाना करते हुए वह यह भी कह देता-—मैं माया के साथ सोना चाहता हूं, तुम इसके साथ, और हमारा यह चाहना स्वाभाविक भी है, क्योंकि हर शख्स अपने हर प्यारे दोस्त की बीवी के साथ कम-अज़-कम एक बार ज़रूर सोना चाहता है, हर औरत अपने प्रेमी के साथ, लेकिन तुम्हें यह भरोसा है कि माया कभी मेरे साथ सोने पर राज़ी नहीं होगी और मुझे यह यक़ीन है कि यह फ़ौरन तुम्हारे साथ सोने पर राजी हो जाएगी, क्यों मैं ठीक कह रहा हूं या गलत? वह औरत और माया ख़ामोश रहतीं, वह एक वहशियाना हंसी छोड़ देता, मैं सोचता, इस से मेरी दोस्ती का आधार क्या है!

और अब वह उसे पीट रहा था और मैं एक मुग्ध तमाशई सा वहां खड़ा सब देख रहा था और यह सोच कर शर्म महसूस कर रहा था कि मझे किसी न किसी मात्रा मे विकृत सा मज़ा भी आ रहा था, क्योंकि पिटती हुई सिन्थिया का एकटक मुझे देखते रहना मेरे साथ उसका प्लेटॉनिक सम्भोग ही तो था। मुझे इस खतरे से भी बीमार सी राहत महसूस हो रही थी कि शायद माया भी वहीं कहीं छिपी बैठी सारा दृश्य देख रही हो, कि वह किसी भी क्षण सिन्थिया को छोड़ मुझे पीटना शुरू कर देगा। मैं इरादा बाँध रहा था कि अगर उसने ऐसा किया तो मैं भी पिटते हुए एकटक उस औरत को देखता रहूंगा। इस इरादे के साथ ही मेरा यह संशय भी बँधता जा रहा था कि मैं अपने इरादे पर अमल नहीं कर सकूंगा।

मैंने आंखें बन्द कर लीं और अपने आपको एक साथ माया और अपने दोस्त के हाथों पिटते हुए देखा और पिटते पिटते उस औरत की तरफ़ देखते हुए देखा। फिर मैंने माया को अपने दोस्त के साथ और उस औरत को अपने साथ लिपटे हुए देखा। फिर मैंने देखा कि हम चारों किसी अदृश्य आतताई के हाथों पिट रहे थे।

मेरी आंखें न जाने कितनी देर और बन्द रहतीं, मैं न जाने और क्या क्या देखता, लेकिन जब मैंने उसकी आवाज़ सुनी, मेरी आंखें खटाक से खुल गयी।

—आज से मैं तुम्हारे साथ नहीं रहूंगी।

वह अपने मर्द के सामने सीधी खड़ी थी और एकटक उसे देख रही थी। वह अपनी पतलून पर पेटी कस रहा था और हंस रहा था।

—तो किसके साथ रहोगी?

—रहमान के साथ।

मैं कहते कहते रुका, मेरा नाम रहमान नहीं और तुम मेरे साथ नहीं रह सकती। फिर मै इस चिन्ता में डूब गया कि रहमान कौन था!

मैंने उसे छू कर देखा तो उसका जिस्म तपा हुआ था।

—तुम्हें तो तेज बुखार है?

उसने मुझे यूँ देखा जैसे मेरी हैरानी पर हैरान हो रही हो। मुझे याद आ गया कि उसने फोन पर बताया था कि उसे बुखार है।

—लेकिन बुखार में तुम यहां कैसे चली आयीं?

—यही तो मैं खुद समझ नहीं पा रही।

उस वक़्त तक मैंने शायद यही माना हुआ था कि वह सब कुछ स्वप्न मे हो रहा था।

—तो क्या तुम सचमुच यहा हो?

मेरी घबराहट मेरे मुंह से ही नहीं, मेरे शरीर के हर पोर से फूट रही थी। उसके जवाब का इन्तजार किये बगैर मैंने माया को जगाना शुरू कर दिया।

—क्या है?

—आखें खोल कर देखो तो!

माया उठने में देर कर रही थी।

—जल्दी करो।

मुझे उम्मीद थी माया उठकर देखेगी और कहेगी—तुम्हारा दिमाग़ खराब हो गया है? क्या देखूं? यहां तो कुछ भी नहीं, कोई भी नहीं।

लेकिन माया अवाक् मुझे देख रही थी, उसी तरह जैसे मैं अवाक् उस लड़की की तरफ़ देख रहा था जिसे बुखार था और जिसे उस वक़्त कहीं और होना चाहिए था, किसी दूसरे दयार में।

माया ने भी उसे छू कर देखा और कहा, इसे तो बुखार है, बहुत तेज। फिर उसने भी उस से पूछा कि वह यहां कैसे, उसे भी लडकी ने यही जवाब दिया कि यही तो वह खुद समझ नहीं पा रही। माया की हैरानी भी मेरी ही तरह की घबराहट में बदल गयी।

अब हम तीनों घबराए हुए थे और एक दूसरे को निगाहो से टटोल रहे थे, यह जानने के लिए कि रहस्य क्या था।

कुछ क्षण बाद जब मुझे नींद आने लगी और वे दोनों धुंधलाती नजर आयीं तो मुझे यक़ीन हो गया कि वह सब स्वप्न में ही हो रहा था, मेरे ही स्वप्न मे हो रहा था। फिर भी मेरी घबराहट में कोई कमी नहीं आयी, क्योंकि अब मैंने सोते सोते उस लडकी की समस्याओं और उसके बुखार के बारे में परेशान होना शुरू कर दिया, उन समस्याओं से जो वह हम दोनों से छिपाती रहती थी, जिन्हें हम दोनों उकेरते रहते थे, जिनकी जटिलता का संकेत देने के लिए ही वह शायद उस स्वप्न में आ गयी थी, अपने परिवार से दूर, बुखार के बावजूद।

इस वक्त मैं जगा हुआ हूं। मेरी घबराहट भी।

मैं उस मल्बे में एक मोती ढूंढ़ रहा था। वह मल्बा किसी महल का नहीं था, एक झौंपड़े का था जिसे बारिश और हवा ने गिरा दिया था। उस मल्बे में मोती की तलाश कोई मूर्ख ही कर सकता था। मुझे अपनी मूर्खता अच्छी लग रही थी। वैसे जिस मोती की मुझे तलाश थी वह किसी झौंपड़े के मल्बे में ही हो सकता था। उस मोती के बारे में और कुछ मुझे मालूम नहीं था। बस यह आशा जरूर थी कि अगर उस मल्बे को उकेरता रहूंगा तो वह मोती मुझे देर-सवेर मिल जाएगा। इस आशा का कोई आधार शायद नहीं था, सिवाए मेरी इस अभिलाषा के कि वह मोती मुझे मिल जाए, उसी मल्बे में।

हम एक बल खाती गली में थे। मैं मन ही मन उसकी तुलना अपने उस दोस्त के मन से कर रहा था जिस की तलाश में हम उस गली में जा फंसे थे। महसूस हो रहा था हम उस दोस्त के मन में जा फसे हों। माया मेरे आगे आगे यूं चल रही थी जैसे उसे मालूम हो हमारे दोस्त को कहां नज़रबन्द किया गया था। मालूम दरअसल उसे कुछ था न मुझे। हमें इतनी ही खबर मिली थी कि हमारे दोस्त को उसके चहेते बार से अग़वा कर लिया गया था। आजकल हर रोज़ कई अग़वा होते हैं लेकिन हमने कभी कल्पना में भी अपने उस दोस्त को अग़वा होते नहीं देखा था। खबर सुनकर हमें चिन्ता तो हुई थी लेकिन खुशी भी हुई थी क्योंकि हमें अपनी अनेक चिन्ताओं, खास तौर पर अपने घर की चिन्ता, से पलायन करने का बहाना मिल गया था। हम और सब कुछ भूल अपने उस दोस्त की तलाश में निकल पड़े थे। उस घुमावदार गली तक पहुंचने से पहले ज़रूर हमने कई और गलियों और सड़कों और वीरानों की ख़ाक छानी होगी लेकिन मुझे साफ़-साफ़ कुछ याद नहीं आ रहा था। और माया से मैं कुछ पूछना नहीं चाहता था क्योंकि मैं उसे अपनी कमज़ोर होती जा रही याददाश्त का एक और नमूना नहीं दिखाना चाहता था। इधर उसने यह ज़िद पकड़ रखी है कि मैं किसी डॉक्टर से मशविरा करूं और मैंने यह कि कोई डॉक्टर अब मेरे लिए कुछ नहीं कर सकेगा। वैसे भी अब हम एक दूसरे से कुछ पूछे बग़ैर ही एक दूसरे का मन पढ़ लेते हैं क्योंकि अब हमारे मनों में उन्नीस बीस का अन्तर ही रह गया है। उस अन्तर को नज़रअन्दाज़ करने की कोशिश में हम अक्सर कटते-फटते रहते हैं।

वह घुमावदार गली जगह जगह से कटी-फटी हुई थी। कुछ लोग उसकी मरहमपट्टी में मसरूफ़ थे। माया के हाथ में एक छोटी सी छड़ी थी, मेरे हाथ में एक कोरा काग़ज़। आगे आगे चलती हुई वह उस छड़ी को यूं घुमा रही थी जैसे कोई जादू कर रही हो, जैसे उसी जादू की मदद से उसने पहले भी हमारे कई अग़वाशुदा दोस्तों को उसी गली से बरामद किया हो। मैं माया के पीछे पीछे चलता हुआ उस काग़ज़ को यूं घूर रहा था जैसे वह कोई क़ानूनी परवाना हो जिसकी मदद से मैंने पहले भी हमारे कई अग़वाशुदा दोस्तों को बरामद करने में माया की मदद की हो। गली की मरहमपट्टी करने वाले लोग शायद उस छड़ी और काग़ज़ को देख कर ही हमारे रास्ते से हटते चले जा रहे थे। मैं सोच रहा था कि दोनों तरफ़ के ऊंचे ऊंचे मकानों की खिड़कियों के पीछे खड़े लोग भी सहमी हुई आंखों से उस छड़ी और काग़ज़ को ही घूर रहे होंगे। सब से ऊंची मंज़िलों में रहने वाले लोगों को दूर से वह छड़ी शायद एक बड़ी सी कलम और काग़ज एक छोटा सा पुरज़ा ही नज़र आ रहा होगा। मेरा मन कर रहा

था उस कागज़ को मरोड़ मराड कर वहीं कहीं फेंक दू—माया की छड़ी तो शायद हमारे किसी काम आ भी जाए, उस कोरे काग़ज़ का मुझे कोई फायदा नज़र नहीं आ रहा था।

अब कह नहीं सकता हम कितनी देर उस गली के घुमावों में गुमसुम भटकते रहे। कह नहीं मकता क्योंकि जब से मैंने माया के साथ मिल घर या तथाकथित घर की तलाश में भटकना शुरू किया है तब से ममय अक्सर मेरी चेतना मे मुक्त हो जाता है या शायद मेरी चेतना समय से. कह नहीं सकता, लेकिन एक घटना याद अनुभव और उस मे अगली या पिछली घटना याद अनुभव के बीच अक्सर ऐसे कोरे अन्तराल आ जाते हैं जिनकी लम्बाई के बारे में मुझे कुछ पता नहीं होता, इसीलिए सुविधा के लिए उन कोरे अन्तरालों को बेहोशी का पर्याय या परिणाम मान लेता हूं। जो हो एकाएक मैंने देखा वह गली एक गोलाकार मैदान में जा गिरी थी। मुझे हैरानी नहीं हुई। मुझे अब किसी 'चमत्कार' पर हैरानी नहीं होती। मैं उम अवस्था की प्रतीक्षा में हू जिसमें हर चीज़ या घटना एक 'चमत्कार' सी नजर आती है। गली का उस मैदान मे जा गिरना मुझे किसी नदी का किसी सागर मे जा गिरने सा लगा। सूखी नदी का सूखे सागर में। उस अग़वाशुदा दोस्त का उस मैदान में होना असम्भव नज़र आया, वापस उस गली में मुड़ जाना या उस मैदान को पार कर कही और पहुंचना और असम्भव। हम वहीं बैठ गये, मैदान के किनारे, यह देखने के लिए कि क्या होता है या शायद यूंही। आगे बढ़ना या पीछे हटना जब एक सा असम्भव या व्यर्थ नज़र आए तो बैठ जाना अनिवार्य हो जाता है, मुझ जैसों के लिए, माया मुझ जैसी नहीं लेकिन मेरे साथ रहती सहती वह मुझ जैसी ही हो गयी है, जैसे उसके साथ रहते सहते मैं उस जैसा। बैठते ही या बैठने के कुछ ही देर बाद हमारी आंखें बन्द हो गयी होंगी और किसी ने हमें उठा या फूंक मार कर उस कमरे में पहुंचा दिया होगा जिसमें हमारा वह अग़वाशुदा दोस्त नज़रबन्द था और जहां वह अब कपड़े बदल रहा था। उसे कपड़े बदलने का शौक है, वह हर वक़्त हर हालत में बना ठना रहता है, कोशिश करता है बना ठना रहे। उसने अगवा करने वालों को राजी कर लिया होगा कि वे उसे उसके या उसके माप के साफ कपड़े ला दें। मैंने देख लिया था कि माया के मन में भी वही खयाल आ रहा था। वह टाई बांध रहा था और हमारी तरफ यूं देख रहा था जैसे कह रहा हो कुछ पूछना हो तो पूछ लो फिर वे लोग आ जाएंगे और मैं कुछ कह नहीं सकूंगा।

—उन लोगों ने तुम्हें पीटा तो नहीं?

माया का सवाल सुन वह ऐसे मुस्कराया जैसे कह रहा हो माया मुझे तुम से ऐसे मामूली सवाल की उम्मीद नहीं थी।

—वे चाहते क्या हैं?

मैं समझ गया था वह माया के सवाल का जवाब नहीं देगा लेकिन मुझे पता चल गया था उन्होंने उसे जरूर पीटा होगा।

—अभी उन्होंने कुछ बताया नहीं।

—वे है कौन?

—अभी मुझे मालूम नहीं हुआ।

—तुम तो ऐसे तय्यार हो रहे हो जैसे किसी को अगवा करने जा रहे हो।

वह फिर मुस्कराया तो माया भड़क उठी।

—अगर तुम अगवा कर लिये जाने के बाद भी मस्त हो तो हम क्यों इतने बेहाल हो रहे हैं तुम्हारे लिये!

—तुम दोनों को बेहाल होने की कोई जरूरत नहीं।

—तो हम जाएं?

—जल्दी क्या है, अब आ गये हो तो उन से मिल भी लो।

—हम तुम्हें उनके चुंगल से छुड़ाना चाहते हैं, उनसे मिलना नहीं।

—तुम्हे घर मिल गया?

—नहीं।

घर का नाम ले कर उसने बात ही नहीं बदली थी हमारे घाव पर नमक भी छिड़क दिया था।

—तुम्हें हमारे घर की चिन्ता क्यों?

—तुम्हें मेरी चिन्ता क्यों?

—हम तुम से बहस करने नहीं आए।

—तुम आए नहीं लाए गये हो।

—कौन लाया हमें?

—वही और कौन!

—क्यों?

—वे तुम्हें दिखाना चाहते थे मैं उनके चुंगल से छूटना नहीं चाहता।

—क्या यह सच है?

—क्या?

—कि तुम उनके चुंगल से छूटना नहीं चाहते?

—सच ही समझ लो।

—लेकिन क्यों? मतलब तुम क्यों उनके चुंगल से छूटना नहीं चाहते?

—क्या करूंगा छूट कर! जब तक उनके क़ब्जे में हूं घर की चिन्ता से आज़ाद हूं।

उसने एक चुटकी नमक और हमारे घाव पर बुरक दिया था।

—एक बात और भी है, उनमें से एक औरत मुझ पर मस्त हो गयी है।

—और तुम?

—मैं हर उस औरत पर मस्त हो जाता हूं जो मुझ पर मस्त होने का आभास मुझे दे।

—तुम गधे हो।

—तुम दोनों जल रहे हो।

हमने अपना गुस्सा पी लिया।

—तो तुम अपनी मर्ज़ी से अग़वा हुए हो?

वह खामोश रहा।

—तो यह एक खेल है?

—तुम मेरे दोस्त हो या दुश्मन!

—हम तुम्हें बचाना चाहते हैं।

—किस से?

—उन सब से, खास तौर पर उस औरत से।

—वे सब सिर्फ दो हैं। एक वह औरत, दूसरा उसका पति।

—तो यूं बको कि तुम अग़वा नहीं हुए, एक और तिकोन बनाने जा रहे हो।

—तुम दोनों को तो खुश होना चाहिए।

—क्या मतलब?

जब काफ़ी देर तक उसने कोई ज़वाब नहीं दिया तो मैंने माया की तरफ़ देखा। वह मेरी तरफ़ देख रही थी और मुस्करा रही थी, गोया कह रही हो, बुद्धू होने का नाटक मत करो। मैं कोई नाटक नहीं कर रहा था। मैं अन्धेरे में था, अन्धेरे में ही रहना चाहता था, और डर रहा था वे दोनों मुझे अन्धेरे में रहने नहीं देंगे।

वह बौना कल रात फिर मिल गया। अगर उसने आवाज़ न दी होती तो मैं उसे कुचल कर अन्धेरे को चीरता हुआ आगे बढ़ गया होता। कल रात के आक्रोश ने मुझे किसी पागल बैल की तरह बेरहम और किसी आबदार चाकू की तरह तेज़ कर दिया था। आक्रोश हर रात की तरह मुझे अपने आप पर ही आया था, ऊपर से मैंने भले ही किसी दूसरे को उसका कारण और निशाना बना लेना चाहा हो। दूसरा कोई आसपास नहीं था, अगर था तो अन्धेरे में खोया हुआ या अन्धेरे का खाया हुआ ही था। अन्धेरा बहुत घना था, इतना घना कि उसे चीर डालने का खयाल मुझे बार बार आ रहा था। लेकिन उस अन्धेरे में भी उस बौने की मुस्कराहट मुझे साफ़ दिखायी दे रही थी। मैंने सोचा उस घने अन्धेरे में भी उसे मेरा आक्रोश साफ़ दिखायी दे गया होगा, इसीलिए वह अपनी मुस्कराहट से मुझे मोम बनाना चाह रहा था। पिछली बार वह मुझे पीछे की तरफ़ ले उड़ा था, उस क़स्बे की ओर जहा मैं पैदा हुआ था और जो अब पाकिस्तान में था, उस समय की ओर जब पाकिस्तान अभी पैदा नहीं हुआ था। उसकी आवाज़ को मैंने पहचान लिया था लेकिन उसे सुन मैं चौंका नहीं था, खुश ही हुआ था, और उसकी मुस्कराहट की कौंध देख मैं आश्वस्त हो गया था कि कोई चमत्कार दिखाने के लिए ही उस अन्धेरे में उतर आया था। उसकी मुस्कराहट ने मेरा आक्रोश हर लिया था। मैं अब किसी आबदार चाक़ू की तरह तेज़ होने के बजाए किसी पिघलती हुई मोमबत्ती की तरह नर्म हो गया था।

उछलता नाचता हुआ वह उस भीड़ मे से किसी मस्त क़लदर की तरह निकला तो उसकी सराहना और अवहेलना में उठी मिलीजुली आवाज़ों में एक आवाज़ मेरी भी थी। मैं उसकी मस्ती की सराहना कर रहा था। सुनने में आया था कि वह अब आखिरी दिनों पर है लेकिन आराम से अपने हुजरे में पड़े रहने के बजाय हर मौक़े मेले ठेले पर पहुंच जाता है, अपनी उम्र और इज़्ज़त की परवाह किये बग़ैर ऐसी ऐसी हरकतें कर जाता है जो उसकी सफ़ेद दाढ़ी को शोभा नहीं देतीं, काम भी कई जवानों से अधिक करता है, काम में करतब दिखाने से बाज नहीं आता, बच्चों की तरह हंसता है, नगे पांव घूमता है, मान मर्यादा की परवाह नहीं करता, उसके घर वाले उस से तंग आए हुए हैं, उसके प्रशंसक उस से मुंह फेरने लगे हैं, लेकिन वह अपनी नुमाइशी हरकतों से बाज़ नहीं आ रहा।

इन अफ़वाहों ने मेरी उत्सुकता को तो उकसाया था, मेरी श्रद्धा को कम नहीं किया था, बल्कि मुझे तो यह सब सुन यही महसूस हुआ था कि वह जो कर रहा था, ठीक ही कर रहा था—दूसरों के दिये हुए पैमानों को तोड़ रहा था, सीमाओं का उल्लंघन कर रहा था, मर्यादा को ललकार रहा था, अपने मन की मौज में अपने तन की नातवानियों को कुचल रहा था, अपने काम को किसी एक मुक़ाम पर रोक देने से इन्कार कर रहा था। उसकी तथाकथित कलाबाजियों में मुझे समाज और मृत्यु के खिलाफ़ एक बेधडक बग़ावत के आखिरी आयाम का दीदार हो रहा था।

कल रात जिस भीड़ में से वह उछलता नाचता हुआ निकला था, उसमें माया और मैं न जाने क्यों थे। उस मेले में हो रहे तमाशों में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं थी। हम आजकल हर रात अपने ही तमाशों में तल्लीन रहते हैं। हम आजकल खुद एक तमाशा सा बनते जा रहे है, एक ऐसा तमाशा जिसे करने वाले भी हम हैं, देखने वाले भी। हम आजकल रात रात भर कभी घर की तलाश में भटकते रहते हैं, कभी घर के रास्ते की तलाश में, कभी ऐसे रास्ते की तलाश में जो हमे घर से और घर की तलाश से और घर के रास्ते की तलाश से और रास्तों की तलाश से और तलाश की तमन्ना से और तमन्ना से मुक्त कर दे, मुक्त होने की तमन्ना से मुक्त कर दे। और जब मुक्ति का मोह भी मिथ्या नज़र आता है तो हम कभी एक दूसरे की तलाशी लेने लगते हैं, कभी अपनी अपनी, यह देखने के लिए कि कौन कौन सा मोह, या मूल मोह किस किस भेस में, कहां कहां छिपा बैठा है। हमें मोह के नानारूप देख निराशा होती है। हम आजकल रात को सोए सोए भी जागे रहते हैं, दिन को जागे जागे भी सोए रहते हैं। हम अक्सर रात को हर तरह की भीड से दूर रहते हैं। जब कभी अपनी किसी

गलती से या किसी गलत रास्ते के फरेब में आ किसी भीड़ में फंस या शरीक हो जाते हैं तो हमें बुरा नहीं लगता, बल्कि उन लोगों से ईर्ष्या होने लगती है जो स्वभाव या परिस्थितियों के तहत भीड़ के बगैर रह ही नहीं सकते, भीड़ में ही खुश रहते हैं, और उन लोगों से तो घोर ईर्ष्या होती है जो भीड में रहने के बावजूद अपना एकांत और रास्ता खोते नहीं, तमाशे देखते भी हैं और दिखाते भी, लेकिन खुद तमाशा नहीं बनते। तब यह तमन्ना फिर सुलग उठती है कि रातें खो कर नहीं, सो कर गुजारी जाएं, किसी असली घर और रास्ते की तलाश में तड़पने के बजाय जो घर मिला है, जो रास्ता मालूम है, उसी पर सन्तोष किया जाए।

कल रात भी कुछ ऐसा ही हुआ था। हम उस भीड़ में खड़े कलाबाज़ों का तमाशा देखते देखते अपनी तलाश और तड़प को भूल गये थे। और जब वह उछलता नाचता भीड़ में से निकल तमाशा दिखाने वाले कलाबाज़ों में शामिल हो गया तो हम दोनों उस पर अश अश करने लगे। उसकी सफ़ेद झाग सी दाढ़ी उसके काले लिबास पर सूरज की तरह दहक रही थी। उस भीड़ में उसके प्रशंसक भी थे, निन्दक भी, और वे भी जो प्रशंसा के बावजूद अब दबी ज़ुबान से उसे नीमपागल ठहराने लगे थे।

उसका कमाल देख मेरे मुंह से बेसाख्ता निकल गया—क्या बात है, उस्ताद!

माया के मुंह से हंसी छूट निकली जो मेरी बेसाख्ता दाद का ही एक रूप थी।

मुझे लगा था मानो उस्ताद खुद नहीं उसकी बनायी हुई कोई तसवीर ही अपना कमाल दिखा रही थी।

उस्ताद के सिवा सब कलाबाज नौजवान थे लेकिन उस वक़्त अपने उन्माद और उत्साह और कारीगरी के कारण उस्ताद उन सब से कहीं ज़्यादा जोशीला नज़र आ रहा था, सब से ऊंचा उछल रहा था, सब से अच्छा नाच रहा था, सब से ज़्यादा मस्त था। भीड़ की सामूहिक हैरानी धीरे धीरे सहमी हुई चिन्ता में बदलती जा रही थी। उस्ताद ने उन पेशेवर कलाबाज़ों में से एक छैलछबीली को चुन लिया था। वह एक शोले की तरह उसे अपनी लपेट में लिये नाच रही थी, उस्ताद खुद नाच भी रहा था और हवा के केन्वस पर उसकी तसवीरें भी बनाता जा रहा था, एक हाथ लम्बे अपने बुरश के साथ। रंग शायद उस नटिनी के शरीर से ही फूट रहे थे। हवा के केन्वस पर बनती मिटती उन तसवीरों में कभी वह लक्ष्मी नज़र आती, कभी सरस्वती, कभी तारा, कभी अहल्या, कभी महामाया, कभी सीता, कभी द्रौपदी, कभी कुन्ती, कभी राधा, कभी मन्दोदरी। उस्ताद खुद कभी मज्ज़ूब सूफ़ी नज़र आता, कभी मदहोश बैल। वे दोनों कभी नंगे नज़र आते कभी किसी पारदर्शी पोशाक में। कभी उस्ताद की दाढ़ी उस नटिनी के चेहरे से लटकती नज़र आती, कभी उस नटिनी के उरोज उस्ताद के सीने पर थरकते हुए। दूसरे कलाबाज़ अब पीछे हट कर भीड़ में शामिल हो गये थे। अब कभी वह नटिनी उस्ताद को अपनी अंगुली पर उठा कर फिरकी की तरह अपने सर पर घुमा देती, कभी उस्ताद उसे अपनी अंगुली पर उठा कर अपने सर पर। शुरू में उस्ताद भीड़ से आगाह था, अब वह भीड़ से ही नहीं, उस नटिनी से भी मुक्त होता जा रहा था। मुझे दिखायी दे रहा था कि जल्द ही वह अपने नाच से भी ऊपर उठ जाएगा, उसकी कलाबाज़ियां उसकी कलाकृतियों में बदल जाएंगी, जहां वह नटिनी होगी भी और नहीं भी होगी।

वह आदमी मेरे सामने बैठा अपने बारे में बोले जा रहा था और वह औरत मेरे पीछे बैठी मेरी अंगुलियों को सहला रही थी। मुझे अन्देशा था वह आदमी पूछ लेगा मैं अपने हाथों को अपनी पीठ पीछे क्यों छिपाए हुए था। मुझे और कई अन्देशे भी थे। उन सबको वह अपनी अगुलियों के कोमल कामुक स्पर्श से सोखती जा रही थी। वह आदमी अपनी तारीफ़ कर रहा था, मैं मन ही मन उस औरत की अंगुलियों की। उसके बालों से उसकी सुन्दरता की सुगन्ध आ रही थी। मुझे वह औरत याद आ रही थी जो एक रात मेरी गोद में आ बैठी थी, जब मैं एक सोफ़े की गोद में बैठा हुआ था, और जिस से मैंने संगीत का पहला सबक़ उसी रात लिया था। वह आदमी अपने संगीत के ही गुण गा रहा था, इसलिए मैंने यह मान लिया कि मेरे पीछे बैठी मेरी अंगुलियों को सहलाती वह खामोश औरत वही होगी जिसके बालों की तुलना मैंने मखमली अन्धेरे और बादलों से की थी, लेकिन उस औरत का उस आत्मविभोर आदमी के साथ होना मुझे अप्रिय लग रहा था। वह आत्मविभोर था, इसीलिए उसे दिखायी नहीं दे रहा था कि वह औरत मेरी अंगुलियों से खेल रही थी। उसका आत्मविभोर होना मेरे लिए हितकर था, शायद उस औरत के लिए भी। अब मेरी अंगुलियां उस औरत की अंगुलियों से खेल रही थीं। अब मुझे यक़ीन हो गया था कि अगर वह हमारी अंगुलियों का खेल देख भी लेगा तो कुछ नहीं कहेगा, कि उसे अपने मुंह से अपनी बड़ाई सुन इतना सुख मिल रहा था कि उसे उस समय कोई दुख नहीं हो सकता था कि वह मुझे मेरे समय और अधूरे ध्यान की उजरत सी दे रहा था—हमारी अगुलियों की आपसी क्रीड़ा को अनदेखा कर। मेरे पीछे बैठी औरत ने उठ कर ग़ायब होने से पहले जो स्वर गाया, वह शायद मेरे लिए संगीत के दूसरे सबक के समान था।

पहले सिर्फ़ पलंग नज़र आया, जिसे देखते ही ख़याल आया इस पर कोई अमीर मोटी बुढ़िया बैठी या बिछी नौकर-नौकरानियों पर हुक्म चलाती होगी, उन से मालिश करवाती होगी, उनकी बद्दुआएं लेती होगी। वह बुढ़िया ख़ूबसूरत तो शायद ही हो लेकिन नख़रीली ज़रूर होगी, अलसायी हुई आवाज़ में यूं बोलती होगी जैसे दूसरों पर एहसान कर रही हो। सोने से पहले और जागने के फ़ौरन बाद आईने में अपनी सूरत देखती होगी, मुंह बनाती होगी, मुस्कराती होगी, सोचती होगी उसके दांतों के सेट में दांत बनाने वाले ने शायद जानबूझ कर कई दोष रहने दिये। पलंग पर साफ़ सफ़ेद सिलवटहीन बिस्तर बिछा हुआ था और उस पर मेरी वह काल्पनिक औरत कौंध रही थी। किसी ज़माने में मुझे मोटी मुलायम अमीर औरतें बहुत भाती थीं। वह काल्पनिक बुढ़िया उसी ज़माने में से उड़ आयी होगी। असल में उस बिस्तर पर उस समय कोई नहीं था। फिर न जाने कैसे आंख झपकते ही एक साधारण औरत एक लड़की के साथ लेटी नज़र आयी। वह लड़की उस औरत की बेटी भी हो सकती थी, सहेली भी। औरत के बालों में धूप का छिड़काव था, लड़की की आँखों में नमी की झिलमिलाहट। औरत मुझे देख मुस्करायी तो उसके ऊपर वाले सामने के दो दांतों के बीच ख़ाली जगह की पतली सी लकीर के कारण मुझे उसकी मुस्कराहट में एक अश्लील सा इशारा दिखायी दे गया और कई बिस्तरों में पड़ी हुई मुस्कराती हुई औरतें मुझे एक साथ नज़र आ गयीं। उन्हें देख कर मुझे मुस्कराती हुई लाशों का खयाल भी आया था, वेश्याओं का भी। अब वह औरत अंगुली के इशारे से मुझे पास बुला रही थी। उस की अंगुली किसी नाबालिग लड़के के आधे अकड़े हुए लिंग सी लगी। मैंने सोचा उस औरत के साथ लेटी लड़की को भी यही खयाल आया होगा। मैं उनके पास पहुंचा तो वह औरत यूं हंसी जैसे कह रही हो, यह मेरी अंगुली है, किसी लड़के का लिंग नहीं। वह अंगुली अब मेरे लिंग की तरफ़ इशारा कर रही थी, वह औरत अपने निचले होंठ को सामने के दो दांतों तले दबाए हुए थी, मेरा लिंग अंगड़ाइयां ले रहा था, हालांकि क़रीब से उस औरत का चेहरा मुझे मकरूह नजर आ रहा था, उस लड़की का एक दम ठंडा। दोनों के जिस्म एक ही सफ़ेद चादर के नीचे शायद नंगे थे। मेरे आख़िरी अनुमान को शायद उस औरत ने आंक लिया था। उसने अचानक चादर उठा दी तो मुझे इतनी घिनलाहट हुई कि मैं मुंह मोड़ कर भागता बिलबिलाता हुआ उस कमरे से बाहर निकल गया। बाहर के अंधेरे में खड़ी माया ने मुझे थाम लिया।

मैं सोफ़े की गोद में बैठा हुआ था, वह मेरी गोद में। उसका रुख मेरी तरफ़ नहीं था। उसका बोझ न होने के बराबर था। उसके बालों से उसकी सुन्दरता की सुगन्ध आ रही थी। वह कमरा मेरा नहीं था। कमरे में और कोई नहीं था। कमरे में कोई ऐसी चीज़ मुझे नज़र नहीं आयी जिस से मेरी कोई स्मृति गुथी हुई हो। मैं उस समय स्मृतिशून्य था। मुझे अपने बारे में कुछ याद आ रहा था न उसके बारे में। लाइल्मी में ही मेरे मुंह से निकल गया—मैं आप से संगीत सीखना चाहता हूं, सिखाएंगी? और फिर मैंने उसके बालों को सहलाना शुरू कर दिया और अपनी आंखें मुंद लीं। अब मुझे महसूस हुआ जैसे मेरे हाथ मख़मली अन्धेरे को सहला रहे हों। मैंने सोचा अगर इसे मेरी यह हरकत बुरी लगेगी तो उठ खड़ी हो हुक्म देगी, मेरी नजरों से दूर हो जाओ! वह बोली—आपने पहले किस किस से संगीत की तालीम ली है? मैंने कहा—तालीम किसी से नहीं ली, बस कुछ उस्तादों को बार-बार सुना ज़रूर है, तालीम लेने का ख़याल अभी आया है। उसने उन उस्तादों के नाम पूछे तो मैंने तीन चार नाम ले दिये। मेरी आंखें अभी भी मूंदी हुई थीं, मेरे हाथ उसके बालों को सहला रहे थे। जब उसकी कोई प्रतिक्रिया सुनायी नहीं दी तो मैंने परेशान हो आंखें खोल दीं। उसका रुख़ अब मेरी तरफ़ था। वह मुस्करा रही थी। उसकी मुस्कराहट बालों में से छन कर आ रही थी। उसमें मुझे आलोचना का कोई कांटा नज़र नहीं आया। मैंने फिर उसके बालों को सहलाना और उसके चेहरे से हटाना शुरू कर दिया। अब महसूस हुआ जैसे मेरे हाथ बादलों को सहला रहे हों। कुछ देर तक वह मुस्कराती रही, मैं उसे निहारता रहा। उठ कर ग़ायब होने से पहले उसने एक स्वर गुनगुनाया तो मुझे लगा जैसे वह मुझे संगीत का पहला सबक़ दे रही हो। दूसरा सबक देने कब आएगी? हर रात इन्तजार करता हूं।

वह बच्ची मुझे यूं देख रही थी जैसे मेरे बारे में सब कुछ जानती हो, जैसे उसे मेरा सब कुछ दिखायी दे रहा हो, जैसे वह मुझे मेरा सब कुछ बता सकती हो। मैंने उसके गाल थपथपाए, उसके होंठों को छुआ, उसे पुचकारा, उसे उसका नाम ले कर पुकारा, लेकिन वह हंसी न मुस्करायी और न ही उसकी टकटकी टूटी। उसकी निगाह निडर थी। उस निगाह में कोमलता नहीं थी। उसे अपनी गोद में उठा लेने की हिम्मत मुझे नहीं हुई। अगर मैंने हाथ बढ़ाए होते तो भी शायद वह एकटक मुझे देखती रहती, मेरे पास नहीं आती, शायद मुंह फेर लेती, मुंह फेरते समय मुस्कराती भी नहीं। वह बच्ची मुझे अतिअसाधारण लगी।

—कैसे देख रही है आपकी तरफ़!

उसकी मां की आवाज़ सुन मैं चौंक उठा। उस आवाज़ से मुझे लगा जैसे वह भी मेरे बारे में सब कुछ जानती हो, जैसे उसे भी मेरा सब कुछ दिखायी दे रहा हो, जैसे वह भी मुझे मेरे बारे में सब कुछ बता सकती हो।

—इसकी शक्ल आप से मिलती है।

—सच?

शायद बहुत कम लोगों ने उस से कहा था कि उसकी बच्ची की शक्ल उस से मिलती है। उसके होंठ बच्ची को चूमने के लिए सिहर रहे थे, मेरे उसे चूमने के लिए भी, उसकी बच्ची को भी। अगर उसने उस वक़्त अपनी बच्ची को चूम लिया होता तो शायद मैंने भी उस बच्ची को चूम लिया होता। उसे शायद यह मालूम था, इसीलिए उसने अपनी बच्ची को नहीं चूमा। उस बच्ची को भी शायद यह सब मालूम था, इसीलिए उसने अब मुंह फेर लिया था।

मैं उस बच्ची और उसकी मां को पहली और शायद आखिरी बार देख रहा था। मैं उस आयोजन की भद्दी तड़क भड़क से अलग होने के लिए ही उस औरत के पास जा खड़ा हुआ था। वह बच्ची को उठाए यूं खड़ी थी जैसे उसे भी वह तड़क भड़क तंग कर रही हो। दूर से उन दोनों की सूरतें मुझे दिखायी नहीं दी थीं। दूर से मैं केवल बच्ची की मां की गरदन से आकर्षित हुआ था। लम्बी गरदन वाली औरतें मुझे अच्छी लगती हैं। उन्हें चूमने की ख्वाहिश होती है। चूमे जाते वक़्त उनकी गरदनों का लोच मुझे अच्छा लगता है। वह लोच उनके चुंबनों में भी महसूस किया जा सकता है। लम्बी गरदन वाली औरतों को क़रीब से देखने जानने की ख़्वाहिश होती है। पहले इस ख्वाहिश में हमेशा लालसा की लौ भी कांपा करती थी, अब अक्सर नहीं।

मैं उनके पास उस भट्टी तड़क भडक से अलग होने के लिए ही नहीं, लम्बी गरदन वाली उस औरत को क़रीब से देखने के लिए भी गया था। लेकिन पास जाते ही मैं उसकी बच्ची की सर्वज्ञ टकटकी का शिकार हो गया था, इसलिए उसकी मां को पूरी नज़र से मैंने तभी देखा जब उसने कहा था, कैसे देख रही है आपकी तरफ़! उसकी आवाज़ में वैसी ही गरिमा थी जैसी उसकी ग्रीवा में। उसे ध्यान से देखने के उस पहले क्षण में मैंने उसकी बच्ची को उसकी कोख मे निकलते भी देख लिया था और मैं लरज उठा था। उसका तो पता नहीं, उसकी बच्ची ने मेरी उस लरज़िश को ज़रूर लक्ष किया होगा। उसी लरज़िश से संभलने के लिए ही मैंने उनकी शक्लों के आपसी साम्य की बात कह दी थी। वैसे उनकी शक्लों में साम्य था ही, लेकिन आम तौर पर मैं ऐसे घिसेपिटे जुमलों से परहेज़ ही करता हूं।

—जब इसके दांत निकल आएंगे तो आप देखेंगी कि यह आप ही की एक नन्ही सी प्रति है।

वह मुस्करायीं, उसकी बच्ची नहीं।

तड़क भड़क मेहमानों के बढ़ते हुए हजूम के साथ बढ़ती चली जा रही थी।

मैंने एक अगुली से बच्ची की ठोड़ी को थोड़ा सा ऊपर उठाते हुए कहा—बड़ी तेज़ नज़र है आपकी बच्ची की।

अब बच्ची का बाप हमारी तरफ़ बढ़ रहा था। मैं उस से मिल चुका था। कुछ देर पहले उसी ने अगुली उठा कर मुझ से कहा था—वह मेरी बीवी है और उसकी गोद में मेरी एक साल की इकलौती बच्ची! मुझे लगा था जैसे वह किसी एलबम में लगी तसवीर की तरफ़ इशारा कर रहा हो। उसका आत्मतुष्ट स्वर मुझे अखरा था। और अब वह हमारी तरफ़ आ रहा था और उसके चेहरे पर एक आत्मतुष्ट मुस्कराहट चस्पां थी।

—आपके मियां इधर आ रहे हैं।

—हां, आ तो रहे हैं।

—मैं अब चलता हूं।

चलने से पहले मैंने झुक कर बच्ची को चूम लिया। मुझे उसकी मां की पुचकार सुनायी दे गयी थी। जब मैंने सर उठाया तो बच्ची अपना मुह पोंछ रही थी, उसकी मां मुस्करा रही थी, उसका पिता पूछ रहा था—आप चल क्यो दिये?

हम वे सीढ़ियां यूं चढ़ रहे थे जैसे ऊपर कहीं बैठा कोई किसी अदृश्य डोर से हमें ऊपर खींच रहा हो।

वे सीढ़ियां किसी मन्दिर या मस्जिद या गिरजाघर की भी हो सकती थीं, किसी क़िले या पुस्तकालय की भी, लेकिन थीं दरअसल सिर्फ़ सीढ़ियां ही जो ऊपर कहीं जा कर ख़त्म हो जाती थीं।

हम नहीं जानते थे हम उन्हे चढ़ क्यों रहे थे, इसीलिए शायद हमे महसूस हो रहा था कि कोई किसी अदृश्य डोर से हमें ऊपर खींच रहा था।

मेरे हाथों से भी दो थैले लटक रहे थे, माया के हाथों से भी। मै भी हाफ़ रहा था, माया भी। मैं भी पछता रहा था कि हम क्यों वे थैले उठा लाए, माया भी।

हांफते पछताते जब हम आखिरी सीढ़ी पर पहुंचे तो एक आदमी ने वे थैले हमारे हाथों से छीन हवा में उछाल दिये। उन्हें नीचे के अन्धेरे में गिरते हुए देख लेने के बाद जब हमने उस आदमी की तरफ़ रुख किया तो वह इशारे से हमें उस तरफ़ जाने का आदेश दे रहा था जहां हमें कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा था। हम उस तरफ़ चल दिये। मैंने माया का हाथ अपने हाथ में ले लिया। महसूस हुआ मैंने अपना हाथ माया के हाथ में दे दिया हो। अब मैं उसे तसल्ली दे रहा था, वह मुझे, हाथ के दबाव से। उसका हाथ ठंडा था, मेरा गर्म। मुझे ठंडे हाथों से राहत मिलती है, उसे गर्म हाथों से। थैलों के बग़ैर हम हल्के फुल्के हो गये थे, कुछ देर के लिए।

मै अपने काले घोड़े पर सवार उस सुनमान सडक के दोनो किनारों पर गुमसुम खड़ी खोखली इमारतो को देखता हुआ सोच रहा था मै इस रास्ते पर पहले भी भटक चुका हूं, टूटा फूटा सा, इसी काले घोड़े पर सवार, इसी सुनसान सडक के दोनों किनारों पर गुमसुम खडी इन्हीं खोखली इमारतों को देख सोचता हुआ कि मैं इस रास्ते पर....

घोडा बेक़रार है, बेक़ाबू हो सकता है, मैं डर रहा हूं मुझे यहां से उडा ले जा कहीं और पटख देगा।

अगर कोई यहीं कहीं दबा पड़ा घोड़े की टकाटक बजती गूंजती टाप सुन जाग उठे और मेरे सामने खड़ा हो पूछने लगे, तुम फिर यहा क्या करने लौट आए तो मैं उसे क्या जवाब दूंगा, कोई जवाब दे सकूंगा?

इधर उधर कोई कहीं दबा हुआ महसूस नहीं होता, खोखली इमारतें और खोखली हो गयी महसूस होती है, घोड़ा और बेक़रार, मै और भयभीत।

सारा दृश्य किसी दुःस्वप्न की तरह इतना साफ, सुथरा और रहस्यपूर्ण नज़र आता है कि मैं दहल जाता हू, मेरी आखें खुल जाती हैं, और मैं देखता हूं कि मेरे आसपास और मेरे पास अब कुछ भी नहीं—न काला घोडा, न सुनसान सडक, न खोखली इमारतें, न सोच, न याद, न भाषा, न यन्त्रणा, न अर्थ, न काम—सब सिफर हो गया महसूस होता है और मैं अपने घर पहुच गया हू।

उन दोनों के बीच एक पतली पारदर्शी चादर तनी हुई थी। इस तरफ़ वह लेटी हुई थी, उस तरफ़ वह। मैं इस तरफ़ खड़ा उस तरफ़ वाली को देख रहा था। चांदनी पर सर्दियों की पीली धूप का गुमान हो रहा था। चादर के कारण उस तरफ़ वाली के सीने पर एक रेतीली झिल्ली सी बिछी हुई महसूस हुई। इस तरफ़ वाली की पीठ मेरी तरफ़ थी। मेरी आंखें उसकी पीठ और कूल्हों की सैर करती हुई उस तरफ़ वाली के सीने की रेत पर जा बिछती थीं, बार बार, और मेरे मुंह से अनायास दो शब्द फूट रहे थे—माया काया—बार बार। मैंने फ़ैसला कर लिया था इस तरफ़ वाली काया है, उस तरफ वाली माया। अगर मैं उस तरफ खड़ा होता तो इस तरफ़ वाली मुझे माया नज़र आती, उस तरफ़ वाली काया। वे दोनों एक दूसरी को देख रही थीं, मैं उन दोनों को, और उन दोनों में एक दूसरी को, और उन दोनों में उन दोनों में से किसी एक को भी। मैं उन दोनों का भेद मिटा देने की कोशिश भी कर रहा था और उस भेद के मिट जाने की संभावना से सहम भी रहा था। वे दोनों एक दूसरी में न जाने किसे देख रही थीं, क्या देख रही थीं, शायद अपने आपको, अपनी असलियत को, अपनी नियति को, या शायद मुझ को। नहीं, मुझको नहीं। उस तरफ वाली को मैं इस तरफ़ वाली को देखते हुए देख रहा था, इस तरफ़ वाली को मैं उस तरफ़ वाली को देखते हुए देखने की कल्पना कर रहा था। काया का—यानी कि इस तरफ़ वाली का चेहरा मेरी कल्पना में कोरा था, मानो उस कोरेपन का अभिप्राय हो कि काया को देखना कुछ न देखने के बराबर हो, कुछ नहीं को देखने के बराबर हो, माया—यानी कि उस तरफ़ वाली—मुस्करा रही थी, शायद काया के चेहरे के कोरेपन पर। माया के सीने का रेतीला उभार मुझे मान्ट्रियाल के एक टॉपलेस बार में देखी एक काली करारी टॉपलेस वेट्रेस के सीने की याद दिला रहा था। उसका चेहरा भी कोरा था। मेरा साथी, जो हिन्दुस्तान से आकर कुछ दिनों के लिए मेरे पास ठहरा हुआ था और जिसे मैं रात की सैर करा रहा था, उस कोरी काली करारी लडकी के सीने के उभार पर बुरी तरह रीझ गया था और बार बार उसे छूने रिझाने की कोशिश कर रहा था और नाकाम हो रहा था। आखिर निराश हो कर उसने मुंह बना कर मदहोश होने के लिए जम कर पीना शुरू कर दिया था। मन हुआ किसी तरह किसी जादू से अपने उस पुराने पराए हो चुके दोस्त को वहीं बुला लूं और कहूं देखो सामने वही मान्ट्रियाल वाली लड़की लेटी हुई है। फिर मैं उस पतली पारदर्शी चादर को उठा कर उस तरफ चला गया। उस तरफ़ से मुझे इस तरफ वाली माया नज़र आयी, उसके सीने के उभार में मुझे बरसों पुरानी उस काली लड़की के सीने का उभार नज़र आया। मैं उस तरफ वाली के साथ सट कर लेट गया।

अब उसके सीने पर रेतीली झिल्ली नहीं थी। अब हम दोनों दूसरी को देख रहे थे और वह काया से माया में बदल गयी थी। मेरा मन हुआ किसी तरह बीच की चादर तार तार हो जाए और काया और माया का भेद मिट जाए। फिर उस भेद के मिट जाने की कल्पना मे मेरा मन मर गया—अगर मैं खुद इसी क्षण उस भेद की तरह मिट जाऊं तो काया और माया को कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा—ये एक दूसरी में एक दूसरी को देखती रहेंगी।

तारीफ उन अंगूरों की हो रही थी जो काया माया के लिए लायी थी लेकिन इशारा उसके उन अगूरों की तरफ भी था जिन्हें मैंने कभी देखा या महसूस तो नहीं किया था लेकिन जिनकी कल्पना मैंने कई बार की थी, उस समय भी कर रहा था। काया और माया को मालूम था कि काया के अंगूरों की तारीफ सुनते सुनते मैं उसके दूसरे अगूरों की कल्पना मे खो गया था, और खोया खोया उन्हें पपोल रहा था। माया की मुस्कराहट और काया की झेंप में उनके इस इल्म का शरारती आलोक शामिल था। अंगूरों का ज़िक्र माया ने ही छेड़ा था। मुझे तो मालूम भी नहीं था कि जो अंगूर सामने पड़े थे काया लायी थी। मुझे तो खैर यह भी मालूम नहीं था कि काया उस रात आने वाली थी, उस मुक़ाम पर उस से मिलना तै था। तै शायद कुछ था भी नहीं। तै आजकल कुछ भी नहीं होता, सिवाय इस ढीले से समझौते के कि माया और मुझे घर की तलाश और उस घर तक पहुंचने के सही रास्तों की तलाश को जारी रखना है, जब तक घर हमें मिलता नहीं, मतलब आखिर तक, जैसे तैसे, दूसरी सब तलाशों और तकलीफ़ों के साथ, उनके बीचोंबीच, यह न भूलते हुए कि उस तलाश के अलावा बाक़ी सब कुछ बकवास है, बेकार है, यह भी न भूलते हुए कि वह तलाश भी शायद बकवास ही हो, बेकार ही हो। उस रात शायद दिन के दौरान हम दोनों ने उस मुकाम पर मिलने का फैसला किया हो, मुझे याद नहीं था, मुझे अब कुछ याद नहीं रहता, माया को भी, भले ही हम मान के नहीं देते कि हमें अब कुछ याद नहीं रहता, कुछ याद न रहने के कारण जो उलझनें और असुविधाएं पैदा होती रहती हैं उनका दोष हम एक दूसरे को देते रहते हैं, कभी प्यार में कभी गुस्से में। हो सकता है माया ने काया को खबर कर दी हो कि वह हमें उस मुक़ाम पर मिले। या शायद काया वैसे ही वहां आ पहुंची हो, इस उम्मीद पर कि हम वहां होंगे। काया को हमारे सब मुक़ामों के बारे मे मालूम है और यह भी कि आजकल एक ही खब्त हम पर सवार है और यह भी कि उसके अचानक आ जाने से हमें उस खब्त से कुछ देर के लिए रिहाई मिल जाती है और उस रिहाई से हमें राहत मिलती है।

काया और माया का सम्बन्ध बहुत पुराना है, इतना पुराना कि कभी कभी किसी किसी रात की रौशनी में मुझे उनमें कोई अन्तर नज़र नहीं आता, वे एक दूसरे का रूप नजर आने लगती हैं, लेकिन ऐसे अवसर कम ही आते हैं क्योंकि काया की अपनी ज़िन्दगी है, अपनी दुनिया है, हमारी से अलग, इसीलिए जब कभी वह आ मिलती है, अचानक या माया के बुलावे पर, तो माया मौज में आ जाती है, अपनी उम्र भूल जाती है, खिल उठती है, और मैं सोचने लगता हूं काश काया हमारे साथ ही रहती, काश काया और माया एक होतीं, काश

घर का खब्त हम पर सवार न हो गया होता, काश....। बस यही एक दोष है काया में—उसके आ जाने से मैं काशाकाश में उड़ने लगता हू, शायद माया भी। ये उड़ानें हमे तो अच्छी ही लगती हैं, हमारे खब्त को नहीं। हमारे खब्त की अब अपनी हस्ती बन गयी है।

—कमाल के अंगूर है तुम्हारे, काया, मान गये।

—पसंद आए ?

—पसद ! क्या बात करती हो। यह तो देख देख कर ही पागल हुआ जा रहा है।

—और तुम ?

—मै खा खा कर। एक साथ नर्म और सख्त और रस भरे। जी चाहता है इनकी एक माला पिरो लूं ! कितने अकड़े हुए, कितने कोमल, कितने अकड़े हुए ! ऐसे सुडौल अगूर मैंने शायद ही पहले कही देखे हों।

—यह भाई साब खा तो रहे नहीं।

—पहले जी भर के देख तो लूं।

—अब काफी देख लिया, अब मुह में डाल कर मजे लो।

—बात यह है कि मुह में जा कर सब अंगूर एक से हो जाते हैं।

—कोई मर्द ही यह बात कह सकता है।

कुछ देर मै काया के ताने को तोलता रहा, फिर बोला—अंगूरों के असली क़द्रदान मर्द ही होते हैं।

इस पर वे दोनों ऐसे हसी जैसे मुझे न अंगूरों के बारे मे कुछ मालूम हो न औरतों के बारे में न मर्दों के बारे मे न उन दोनों के बारे में।

फिर माया ने कहा—सब मर्दों का तो मुझे मालूम नहीं लेकिन यह जनाब तो अंगूरो के माहिर है, देखे बगैर ही चख लेते है, चखे बगैर ही जान जाते है किन अगूरों का क्या जायका होगा।

—तुम खुशकिस्मत हो माया !

—क्या तुम नहीं ?

माया और काया का बुनियादी अन्तर उभरता हुआ महसूस हुआ, बात बिगड़ती हुई, उन दोनों के चेहरे बुझते हुए।

—कोई खुशकिस्मत नही, कोई बदकिस्मत नहीं, हम सब अपना अपना जीवन जी रहे हैं, जैसे तैसे, हम सब कमोबेश अनजान है, कमोबेश दयनीय हैं, कमोबेश अपूर्ण हैं, कोई किसी से अच्छा है न बुरा।

अपने मुंह से कबीराना बात फूटते सुन मैं सुर्ख तो हो गया लेकिन मैने देखा कि काया और माया सहज भाव से मुस्करा रही थीं, शायद मैं बिगड़ती बात को बदल देने में सफल हो गया था। अब फिर अंगूरों की ओर लौटना आसान था न खतरे से खाली।

—अगूरों की महिमा अब और नही, आओ आज ऊंट की सवारी करने हैं।

मैंने तो यूंही बेपर की उड़ा दी थी। लेकिन वे दोनों तय्यार हो गयीं। अब इस वक़्त ऊंट कहां मिलेगा, मैं सोच ही रहा था कि एक सजा धजा ऊंट अपने मालिक समेत सामने खड़ा दिखायी दिया। हैरानी तो हुई लेकिन मैंने सोचा टूरिस्टों की करामात होगी, उन दोनो ने भी ऊंट को देख तो लिया था लेकिन मैंने बाक़ायदा एलान करना जरूरी समझते हुए फ़िल्मी अन्दाज़ में कहा—ऊंट हाज़िर है!

—मेरे अंगूरों का क्या होगा?

—हमारे साथ जाएंगे।

माया ने अंगूरों की टोकरी उठा ली तो मैंने कहा—अंगूरों के बग़ैर ऊंट की सवारी का कोई मतलब नहीं।

—मतलब तो भाई साब अंगूरों का भी नहीं।

—मतलब के झंझट में मत पड़ो, काया, नहीं तो ऊंट उड़ जाएगा।

एक क्षण के लिए लगा जैसे ऊंट शुतुरमुर्ग़ में बदलने वाला हो।

—यह ऊंट कहीं शुतुरमुर्ग़ तो नहीं?

ऊंट ज़ोर से बिलबिलाया।

—कह रहा है गाली मत दो।

—काया, मैं तुम्हारा भाई नहीं।

—आजकल कोई किसी का भाई नहीं।

कुछ देर तक हम तीनों माया की इस उक्ति की गहराई में डूबे रहे। फिर ऊंट की बिलबिलाहट सुन उबरे तो अंगूरों की टोकरी माया के हाथों से लेकर मैंने उसे कहा—पहले तुम।

इस बीच ऊंट बैठ चुका था। माया उछल कर यों सवार हो गयी जैसे हर रोज़ कई बार वैसा करती हो। मैंने अंगूरों की टोकरी फिर उसके हाथों में थमा दी।

काया बोली मुझे बिठाना पड़ेगा।

मैंने घुटने टेक दिये।

उसे हिचकिचाते देख माया बोली—अब तो बेचारे ने घुटने भी टेक दिये, और क्या करवाओगी उस से।

मुझे माया की शोखी पर हैरानी हो आयी।

काया ने चप्पलें उतार कर ऊंट वाले को दे दीं और एक पैर मेरे कन्धे पर रख लड़खड़ाती हुई ऊंट की पीठ पर जा बैठी। उसके पैर का तला ठंडा था। उसने माया और अपने बीच मेरे लिए जगह छोड़ दी थी।

—मुझे तुम दोनों के बीच बैठना होगा ?

—अगर अंगूरों का मज़ा लेना है तो।

माया हंस रही थी।

मैं उन के बीच अभी ठीक तरह से बैठ भी नहीं पाया था कि ऊंट ने उठना शुरू कर दिया। अगूरों की टोकरी गिरते गिरते बची। मेरी पीठ पर दूसरे अंगूरों की रगड़ मेरी जान निकाल रही थी। माया को मालूम होगा, यह सोच कर मैं और मस्त हो रहा था। मैंने टोकरी से एक गुच्छा उठा कर माया को पेश किया। उसने होंठों से ही दो तीन दाने तोड़ लिए तो मैने गुच्छा काया को पेश कर दिया।

—मेरे अंगूर मेरे ही मुंह में ?

माया की हंसी छूट गयी।

—माया, सब अंगूर गिर जाएंगे।

—सब नहीं गिरेंगे।

इस पर काया की हंसी भी छूट गयी और उन्हें देख मेरी भी।

जब मैंने होठों से दो दाने तोड़ लिए तो काया बोली—ऊंट को भी पेश करो।

मैंने गुच्छा ऊंट को पेश किया तो उसने सारा का सारा मुह में ले लिया।

—मुझे नहीं मालूम था अंगूर ऊंटों को भी अच्छे लगते है।

—अंगूर तो काया गधों को भी अच्छे लगते होंगे, खास तौर पर काले अंगूर।

—काया के अंगूर काले नहीं भूरे हैं।

—भूरे नहीं जामुनी, काया बोली।

—भूरा और जामुनी रंग इसके लिए एक है।

—मैं इस वक्त रंगभेद से ऊपर उड रहा हूं, मैंने कहा।

उसी वक़्त ऊट को भी न जाने कैसे पर लग गये, उसने भी उड़ना शुरू कर दिया।

मैंने माया को कस कर पकड़ लिया, काया ने मुझे, माया ने ऊंट की गर्दन को।

ऊंट की थुथनी से झाग छूट रही थी और वह गर्दन घुमा घुमा कर हम से दाद मांग रहा था।

मुझे महसूस हो रहा था वह हमें सीधा स्वर्ग ले जाएगा।

एक कच्ची सी कराह मेरी नींद को यों कौंच रही थी जैसे कोई कुत्ता या बिल्ली या बच्चा किसी ढीले बन्द दरवाजे को। कुछ देर मै सोया सोया उस कराह को सुना अनसुना करता रहा, सोचता रहा शायद वह कराह मेरी अपनी ही हो, शायद मैं ही सोया सोया किसी कुत्ते या बिल्ली या बच्चे में बदल गया था और अपना असली रूप वापस लेने के लिए किसी से इल्तिजा कर रहा था। नींद मे अक्सर मेरे साथ कई क़िस्म के मजाक होते रहते हैं, ऐसे जो उन मज़ाक़ों मे ज्यादा जालिम और ज्यादा उलझे हुए होते है जो मेरे साथ वैसे होते रहते है, उस वक़्त जब मैं जाग रहा होता हूं या समझता हूं जाग रहा होता हूं, क्योंकि कड़वा सच तो यह है कि जब सोया हुआ होता हू तो पूरी तरह सोया हुआ नहीं होता, जब जागा हुआ होता हूं तो पूरी तरह जागा हुआ नहीं होता। यह सच कड़वा सिर्फ़ मेरे लिए ही है, सच भी शायद सिर्फ़ मेरे लिए ही है, दूसरे या तो इसे एक बेमतलब मज़ाक़ समझेंगे या सफेद झूठ। मुझे दूसरों की परवाह नहीं, यानी कि है, इतनी है कि......खैर।

नींद खुल जाने के बाद भी मैं आंखें बन्द किये पड़ा रहा, इस उम्मीद में कि नींद शायद फिर आ जाए, वह कच्ची कराह बन्द हो जाए या कहीं और चली जाए, लेकिन अब वह और करीब से आने लगी थी, और ऐसा लग रहा था जैसे मेरा ही कोई अंग कराह रहा हो। मेरी नींद शायद पूरी तरह नहीं खुली थी। हिम्मत बाँध कर जब मैंने आखें खोलीं तो मेरी निगाह गोगो पर पड़ी जो मेरे पलग के पाए से सटा बैठा कराह रहा था, मेरी कराहों की नकल उतारता हुआ नहीं बल्कि बड़ी गम्भीरता से, लगभग मेरी ही आवाज में। मैं हड़बड़ा कर उठा। माया को आवाज़ दी। फिर याद आया वह शायद मुझे सोया छोड़ घर ढूँढ़ने निकल गयी हो। आजकल हम कई प्रयोग कर रहे हैं, घर की तलाश मे, क्योंकि हमने देखा है कि घर ढूँढ़ने के प्रचलित तरीक़े कारगर नही हो रहे, उन तरीक़ों से हमें जो घर मिलता है कुछ देर बाद या तो घेरे मे बदल जाता है या इतना पराया नजर आने लगता है कि हम उसमे रह नहीं पाते, सोचने लगते हैं कि अगर पराए घर में ही रहना है तो क्यों न ऐसे में रहें जिसे अपना घर कहने की ज़रूरत न पडे। घर की तलाश ने असल में एक खब्त की हैसियत ले ली है और खब्त ने हम से अजीबोगरीब हरकते करवानी शुरू कर दी है, जिन्हें हम अपने प्रयोगों की उपाधि दे कर उनकी विलक्षणता को कुछ कम करने की कोशिश करते है, अपनी ही नजरो में, कि दूसरों की नजरों में तो वे सब हरकतें हिमाक़तें ही हैं।

माया कहीं और भटक रही थी और गोगो कराह रहा था। उसकी काया दर्द के कारण सिकुड़ गयी थी। वह मेरी तरफ यों देख रहा था जैसे कह रहा हो, देख रहे हो मेरी हालत। उसकी

हालत सचमुच खराब थी। मैंने उसे उठाया तो लगा जैसे किसी बीमार बच्चे या बूढ़े को उठा लिया हो। उसका जिस्म थरथरा रहा था और वज़न इतना कम हो गया था कि लगे वह महीनों से कराह रहा हो। मुझे लगा उसकी आगे की दोनों टांगे टूट गयी थीं। कुछ समझ न आया वह हादसा रात के वक्त कैसे हुआ होगा शायद माया को बाहर जाते सुन वह उसके पीछे भागा हो और सीढ़ियां उतरते फिसल गया है। आजकल उसे सीढ़िया चढ़ने उतरने मे उतनी ही तकलीफ होती है जितनी हम दोनों को, लेकिन वह जल्दबाजी से बाज नहीं आता, जबकि हम अब एक एक सीढ़ी फूंक-फूंक कर चढ़ते उतरते हैं। माया की अनुपस्थिति पर फिर झुंझलाहट हुई। आधी रात को उठ कर चल देने में मुझे कोई तुक नज़र नहीं आयी। इतना भी क्या खब्त। उधर गोगो मुझे देखे जा रहा था। उसकी आंखों की तरल कातरता देख मेरा गला भर आया था। मुझे समझ नही आ रही थी कि वह इतना सिकुड़ सूख कैसे गया, कि मैं इतनी रात गये उसे कहां ले जाऊं।

बग़ैर कुछ समझे ही सोचता सोचता मैं उसे उठाए उठाए पास के एक बड़े अस्पताल के एमरजेन्सी वार्ड में जा पहुंचा। अब मैंने एक अनपढ़ बूढ़े देहाती की तरह हर चपरासी जमादार नर्स डाक्टर के पीछे भागना और गिड़गिड़ाना शुरू कर दिया। हाथ तो मै जोड़ नहीं सकता था लेकिन ज़ुबान मेरी ऐसे चल रही थी जैसे मुझे भीख मांगने और गिड़गिड़ाने में महारत हो—भाई साब, मेम साब, बेटा, डाक्टर साब, मेरे गोगो को बचा लो, मेरा गोगा मर रहा है, कई घन्टों से कराह रहा, अगर इसे कुछ हो गया तो मैं क्या करूंगा, हमारा इस दुनिया मे और कोई नही, मेम साब....।

किसी पर मेरी पुकार का कोई असर नहीं हो रहा था। सब बुरी तरह व्यस्त होने का बहाना कर रहे थे। कई और लोग भी मेरी तरह गिड़गिडा रहे थे, कुछ बेचारे तो एड़ियां भी रगड़ रहे थे, और कुछ ऐसे भी थे जो चुपचाप बैठे लेटे इन्तजार कर रहे थे, शायद उन्हे ज्ञान हो चुका था कि वहां सिफ़ारिश और रिश्वत के सिवा कुछ नहीं चलता, इसलिए वे खामोश थ, सोच रहे थे कि कभी तो किसी को उनकी हालत पर रहम आएगा ही। गोगो सब देख सुन रहा था। उसकी आखों स लगता था उसको मुझ पर तरस भी आ रहा था, ग़ुस्सा भी। उसने कराहना बन्द कर दिया था। मुझे लगा जैसे वह मुझे सुझा रहा हो कि मैं गिडगिड़ाना बन्द कर दूं, कि इस उम्र में यह स्वांग मुझे शोभा नहीं देता। मैं स्वाग तो नहीं कर रहा था लेकिन लगता यही होगा कि मै किसी अनपढ़ बूढ़े देहाती या भिखमगे की नकल उतार रहा था। आखिर एक जवान डाक्टर ने मुझे डपटते हुए कहा—क्या तमाशा कर रहे है आप? आपको शर्म भी नहीं आती? यह अस्पताल है, रगमंडल नही! हटिये एक तरफ!

मैं हट तो गया लेकिन मेरा गिडगिडाना बन्द नही हुआ। उस डाक्टर की आखों में मेरे लिए घोर घृणा थी लेकिन गोगो के लिए कुछ भी नहीं था, उसे शायद उसने देखा ही नही था, उसने शायद सोचा हो एक मैले तौलिए में लिपटा हुआ गोगो मेरा गूंगा पोता होगा। उसके पीछे भागते हुए मैंने कहा----डाकदर साब, आप इस मासूम को बचा लें, मुझे बेशक और बुरा भला कह लें, गालिया दे ले, जूते मार लें, यह मर रहा है डाकदर साब, मैं हाथ जोडता हू, आपके पांव पड़ता हू, परमात्मा आपको बड़ा डाकदर बना दे, यह मर गया तो मैं क्या करूंगा!

उस डाक्टर ने तो मुड़ कर मेरी तरफ़ नहीं देखा लेकिन मुझे सहसा अपनी नयी भूमिका में मज़ा आने लगा था। अकेले में हाय हाय करने की आदत तो मुझे है लेकिन किसी के सामने इस तरह गिड़गिड़ाने का अनुभव मेरे लिए नया था। मुझे मज़ा आने लगा था—अपने आपको मिट्टी में मिला देने का मज़ा, शर्मोहया को मिटा देने का मज़ा, रिरिया कर भीख मांगने का मज़ा, अपने आपको ज़लील होते देखने का मज़ा, अपने अहम् की आहुति देकर दूसरों के अहम् को भभकते देखने का मज़ा, दुनिया को दीन दृष्टि से देखने का मज़ा। मैंने उस डाक्टर के सफ़ेद कोट का एक सिरा पकड़ लिया तो वह झुंझला उठा—यह क्या कर रहे हैं आप? अव्वल तो आपको यहां आना ही नहीं चाहिए क्योंकि यह हॉस्पिटल कुत्तों के लिए नहीं, इन्सानों के लिए है, और अगर आप ग़लती से यहां आ ही गये हैं तो शोर क्यों मचा रहे हैं, चुपचाप एक तरफ़ बैठ क्यों नहीं जाते, इस तरह रिरियाते हुए आपको शर्म नहीं आती, आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे देश में इन्सान कुत्ते की मौत मरता है, कुत्ता इन्सान की नहीं, समझे आप?

मैं समझ तो सब गया था, कोई और मौका होता तो मैंने उस डाक्टर के व्यंग्य की प्रशंसा भी की होती, लेकिन उस वक़्त एक तो मुझे गोगो की चिन्ता थी, दूसरे अपने उस नये अनुभव में और अच्छी तरह पैठने की, सो मैंने कहा—डाकदर साब, मैं बेचारा आपकी बात कैसे समझ सकता हूं, मैं तो यह जानता हूं कि गोगो कुत्ते के भेस में एक बहुत बड़ा इन्सान है, इसकी जान बचा लेना एक बहुत बड़े इन्सान की जान बचा लेने के बराबर होगा।

डाक्टर को मेरी बात पसन्द आयी हो या न, गोगो को ज़रूर आ गयी थी। वह मुस्करा रहा था। डाक्टर के कोट का सिरा मैंने छोड़ दिया था लेकिन मैंने देखा कि डाक्टर चकित सा गोगो की तरफ़ देख रहा था। शायद उसने भी गोगो को मुस्कराते देख लिया था। मैं आश्वस्त हो गया, ख़ुश हो गया कि मेरा न सही, गोगो का जादू उस पर चल गया था, और अब उसे गोगो का इलाज करना ही पड़ेगा।

उधर गोगो ने फैलना फूलना शुरू कर दिया था। कुछ ही क्षणों में उसका वज़न इतना ज़्यादा हो गया कि मुझे उसे फ़र्श पर उतार देना पड़ा। मैंने देखा कि उसकी टांगें बिलकुल ठीक थीं। नीचे उतरते ही उसने अपनी करारी आवाज़ में भोंकना शुरू कर दिया तो मुझे डर लगा डाक्टर मुझ पर बरसना शुरू कर देगा, कहेगा, आपको शर्म नहीं आती आप एक हट्टे कट्टे कुत्ते को इलाज के लिए ले आए और हमारा क़ीमती वक़्त वग़ैरह वग़ैरह। लेकिन डाक्टर किसी और ही चक्कर में पड़ गया था, हक्का-बक्का गोगो को और मुझे घूर रहा था, मानो हम दोनों से पूछ रहा हो हम कौन थे। इस बीच कुछ नर्सें हमारे इर्दगिर्द आ खड़ी हुई थीं। उनमें से एक खूब काली और करारी थी। वह डाक्टर की बगल में यूं जा खड़ी हुई थी जैसे उसकी बीवी हो। डाक्टर सकपका उठा तो बाक़ी नर्सों ने तालियां पीटनी शुरू कर दीं, गोगो ने अपनी काली करारी आवाज़ में भोंकना। वह डाक्टर अब सर झुका कर यों खड़ा हो गया था जैसे कह रहा हो, गोगो तू सचमुच कुत्ते के भैस में बहुत बड़ा इन्सान है।

मैं वहां गया तो नहाने के लिए था लेकिन गन्दगी इतनी थी कि मैं ग़ुसलख़ाने की सफ़ाई करने लगा। अपने हाथों से ही झाड़ू पोंचे का काम लेना पड़ा तो मेरा मुंह बिगड़ गया, लेकिन साथ ही परायी गन्दगी में हाथ डालते हुए मुझे परायी ज़िन्दगी में हाथ डालने का ग़लत सा मज़ेदार एहसास भी हो रहा था; मितिली भी आ रही थी, मज़ा भी। एक कोने में जल्दी जल्दी उतार फेंके हुए कपड़ों को उठाते समय उन से परायी गन्ध भी आ रही थी, जिस देह से वे कपड़े उतरे थे, उसके बारे में अनुमान लगाने की ख़्वाहिश भी हो रही थी। कोई तौलिया मुझे साफ़ नज़र नहीं आया तो मैंने तीनों को बारी बारी सूंघा। तीनों में से साबुन और पराए जिस्म की गन्ध के मिश्रण से बनी बू मुझे बुरी भी लगी, अच्छी भी। टब में रुके हुए पानी को अपने हाथों से उलीचते समय मुझे जो उबकाइयां आई उनमें भी मजे की छटा थी। टायलेट वग़ैरा को जैसे तैसे हाथों से ही साफ़ किया। फिर हाथ धोने के लिए साबुन उठाया तो उससे लिपटे हुए बालों को अलग करने के लिए नाखुनों से काम लेना पड़ा। उन बालों को खिड़की से बाहर फेंकने में काफ़ी दिक़्क़त हुई। कपड़े सब ज़नाना और पश्चिमी तर्ज़ के थे। उनका बिखराव स्वदेशी था, गन्ध विदेशी। उनकी छंटाई करने की कोई ज़रूरत नहीं थी लेकिन मैंने की, और साथ साथ यह अनुमान लगाता रहा कि उस घर में रहने वालियो के डीलडौल क्या होंगे, उम्रें क्या होंगी, पेशे क्या होंगे। आदतें सबकी एक सी खराब लगीं। बच्चों के कपड़े नहीं थे, जिस से मैंने अनुमान लगा लिया कि वे औरतें बेऔलाद थीं। कोई मर्दाना कपड़ा भी नहीं था, जिस से यह अनुमान अनिवार्य था वे औरतें अकेली वहां रहती थीं। उनकी उम्रों और पेशों के अनुमान मुझे अटपटे लगे, इतना साफ़ था कि वे सब कमोबेश जवान थीं और कोई न कोई काम ज़रूर करती थीं। गन्दगी इस तरह की थी कि उस से यह नहीं लगता था कि वे औरतें ग़रीब होंगी, बल्कि यही कि वे लापरवाह होंगी जैसे कि अकेली बेऔलाद नौकरीपेशा औरतें ही हो सकती हैं।

उस घर में मेरे अनुमानानुसार तीन औरतें रहती थीं—एक लम्बी और लहीम शहीम, दूसरी दोनों दरमियाने क़द और छरहरे बदन की; तीनों की उम्र तीस पैंतीस के आसपास थी; तीनों काम करती थीं, ग़रीब तो नहीं लेकिन अमीर भी नहीं थीं; तीनों हर समय जल्दी में रहती थीं, लम्बी और लहीम को भड़कीले रंग पसंद थे और पसीना बहुत आता था; दूसरी दोनों में से एक अगिया नहीं पहनती थी, दूसरी अन्डी, दोनों को सफेद और सादे कपड़े ज़्यादा पसंद थे। उनकी सुन्दरता आकर्षकता वग़ैरह का अनुमान उस ग़ुसलख़ाने की गन्दगी और बिखराव से मुझे असम्भव नज़र आया, इसलिए मैंने तै कर लिया कि तीनों कमोबेश आकर्षक तो थीं, सुन्दर हों न हों।

सारी सफाई कर चुकने के बाद मुझे एक तौलिये के नीचे छिपी टंगी एक कमीज़ नज़र आयी जो मेरी थी। मै हैरान हुआ, कुछ घबराया भी। कमीज से मुझे अपनी गन्ध आयी तो खयाल आया कि उस गुसलखाने की गन्दगी में मेरा योगदान भी था। अब मेरे मन में यह सवाल उठा कि मैं वहां नहाने के लिए पहुंचा कैसे? वह क़मीज इस बात का प्रमाण थी कि मैं वहा पहले भी नहा चुका था। तो क्या मैं उन तीनों में से किसी एक का या उन तीनों का दोस्त था? मुझे कुछ याद नही आ रहा था। अब वहा रुके रहना मुझे निहायत गलत और खतरनाक महसूस होने लगा था। अब नहाने की ख्वाहिश खत्म हो गयी थी। वह ग़ुसलखाना साफ़ करते करते मैं खुद गन्दा हो गया था लेकिन अपनी सफ़ाई करने का वक़्त अब मेरे पास नहीं था। अब बेहतरी वहां से चम्पत हो जाने मे ही थी। लेकिन भागने से पहले एक कोशिश कर लेनी जरूरी जान पड़ी। कमीज़ को घूरते हुए याद पर दबाव डाला तो एक धुन्धली सी तसवीर उभरती हुई महसूस हुई। फिर वह तसवीर यकायक साकार हो गयी।

अब मेरे सामने एक अदम्य अवस्त्रा खड़ी थी। शायद उसे ही एक रात मैंने एक मंच पर नाचते देख सोचा था कि हम मौत को तब तक नहीं पहचानते जब तक वह सुन्दरी बन हमारे सामने मंच पर नाचे नहीं। अब वह मेरे सामने खडी थी। शायद वह कहना चाहती थी, तुम जाओ अब मैं नहाऊंगी।

—बता सकती हो मेरी क़मीज़ यहां कैसे आयी?

—पहले तुम बताओ कि तुम यहां कैसे आए?

मैं इस सवाल के लिए तय्यार नहीं था। मैं कभी किसी सवाल के लिए तय्यार नहीं होता। मैंने सोचा था वह मेरे सवालों का जवाब देने के लिए ही नमूदार हुई थी, मुझ से सवाल पूछने के लिए नहीं।

—मैं आया तो नहाने के लिए था लेकिन गन्दगी देख सफाई करने लगा। सफ़ाई कर चुका तो अपनी क़मीज देख चकरा गया। अभी चक्कर थमे ही नहीं थे कि तुम नजर आ गयीं। तुम्हें मैंने पहले भी एक बार देखा है। या तुम जैसी ही किसी को। एक मंच पर नाच करते हुए। तब सोचा था मौत सामने नाच रही है।

—और अब?

—अब सोच रहा हूं मौत सामने खड़ी है।

वह मुस्करायी तो उसका सारा शरीर मुस्कराता हुआ महसूस हुआ। मैं थरथरा गया। कुछ देर वह ऐसे खड़ी रही जैसे मुझे अपने मुस्कराते हुए शरीर का दीदार और मेरी थरथराहट को थमने का अवसर दे रही हो। मैंने आंख और जी भर कर उसके जवा जिस्म का दीदार किया।

—तुम पहले कभी यहां आए हो?

—जहां तक मैं जानता हूं नहीं।

—आज क्यो आए?

—नहीं जानता।

—और न ही शायद जानना चाहते हो ?

मैं खामोश रहा।

—अपनी कमीज के बारे में क्या जानना चाहते हो ?

—यही कि वह यहां कैसे आयी ?

—अगर तुम यहां नहाने के लिए आ सकते हो तो तुम्हारी क़मीज क्यों यहा धुलने के लिए नही आ सकती ?

—यहां धुलाई नहीं होती वर्ना गन्दे कपड़ों का ढेर क्यों लगा होता।

—लेकिन तुम्हारी क़मीज़ को क्या पता था, उसी तरह जैसे तुम्हें क्या पता था कि यह गुसलखाना इतना गन्दा होगा ?

मैं लाजवाब सा हो गया तो वह बोली—तुम असल में यहां नहाने नहीं अनुमान लगाने आये थे कि यहां कौन कौन रहती हैं, कैसी हैं, कितनी हैं, क्या करती हैं.....ठीक ?

मैं खामोश रहा।

—और तुम मुझे निहारने आए थे, ठीक।

मैं खामोश रहा।

फिर न जाने कितनी देर बाद मैंने पूछा—तुम हो कौन ?

जवाब देने के बजाए उसने ओझल होना शुरू कर दिया और मैंने बुझना।

कुछ पता नहीं चल रहा था कि मै वहां क्यो था, क्या कर रहा था, जो कर रहा था किसी के आदेश पर कर रहा था या अपनी मर्जी मे। इतना पता था कि उस तरह की कैफ़ियत पहले भी कई बार हो चुकी थी, उस तरह के प्रश्न पहले भी कई बार परेशान कर चुके थे। किसी से यह सब पूछने का खयाल आता और रद्द हो कर चला जाता। सारी अनिश्चितताओं के बावजूद मैं अन्दर घुसने वालों की मदद भी कर रहा था, बाहर निकलने वालों की भी। अन्दर घुसने वालों की भीड़ उतनी ही थी जितनी बाहर निकलने वालों की, दोनों भीड़ों की हालत एक सी बुरी थी, अन्दर घुसने वालों को उतनी ही तकलीफ़ थी जितनी बाहर निकलने वालों को। दरवाज़ा बहुत तंग था। नहीं, वह दरवाज़ा था ही नहीं, किसी गुफ़ा का दहाना सा था और कई तरह की बेकार चीज़ों मे अटा हुआ था। वे बेकार चीज़ें कुछ अन्दर घुसने वाले अपनी जेबों से निकाल निकाल कर वहां फेंकते जा रहे थे, और कोई इन्हें इधर उधर करने वाला नहीं था। मैं ही बीच बीच में अपने पैरों से उस कूड़े को इधर उधर कर देता था।

मुझे हैरानी हो रही थी कि अन्दर आख़िर हो क्या रहा था कि इतने लोग अन्दर जाने के लिए इतनी कोशिश कर रहे थे, इतनी तकलीफ़ उठा रहे थे, और इतने लोग बाहर आने के लिए। बाहर आने वाले लोग भी उतने ही उलझे और उजड़े हुए नज़र आ रहे थे जितने अन्दर जाने वाले। दोनों भीड़ों में औरतें भी थीं, मर्द भी, बूढ़े भी थे, जवान और बच्चे भी। हडबड़ी तो बहुत थी लेकिन शोर बिलकुल नहीं था, मानो सब भूत प्रेत ही हों।

मेरे अलावा वहां दो लड़के भी थे। एक अन्दर घुसने वालों के हाथों में टोकन थमा रहा था, दूसरा बाहर निकलने वालों के हाथों से टोकन छीन रहा था। दोनों के कन्धों से एक एक झोला लटका हुआ था। दोनों टोकन थमाते छीनते वक़्त मौका और सूरत देख कर स्पर्शानन्द लेने की कोशिश भी कर लेते थे, उस कोशिश में कामयाब भी हो जाते थे। मैं उन्हें मना भी करना चाहता था, उनका सा आनन्द भी लेना चाहता था, लेकिन मुझे अपनी उम्र का खयाल भी था, उन लड़कों का डर भी था। शायद मै उनके मातहत था, और उनके आदेश पर ही अन्दर जाने वालों को धकेल रहा था, बाहर आने वालों को खींच रहा था। मैं यह महसूस करने की कोशिश में नाकाम हो रहा था कि मेरे हाथों कोई परोपकार हो रहा था, हालांकि अन्दर घुसने वालों के चेहरों पर एक घिनावने से सन्देह की स्याही थी, बाहर आने वालों के चेहरे पर एक घिनावने से असन्तोष की। मुझे डर था कि अगर उन लोगों में से किसीने मेरे हाथ झटक दिये तो मैं उस से बहसने लग जाऊँगा। वैसे मैं आजकल बहसों से परहेज़ करता

हूं, खास तौर पर रात को, क्योंकि इधर मुझे यक़ीन हो गया है कि हर बहस में मेरी हार ही होगी, कि मेरा पक्ष खुद मुझे हमेशा पिलपिला नजर आता रहेगा, मेरी दलीलें हमेशा दुबली, मेरा दृष्टिकोण हमेशा दूषित। इस यकीन के बावजूद मैं कभी कभी बेकार की बहसों में उलझ जाता हूं और मार खाता रहता हूं। शायद मुझे मार खाने की आदत हो गयी है, मार खाने मे मजा आने लगा है, शायद मैं वहा मार खाने के लिए ही जा खड़ा हुआ था।

टोकन लेने देने वाले उन लड़कों के चेहरों पर अब मुझे साज़िशी मुस्कराहटो के कांटे उगते हुए नज़र आने लगे थे। वे आपस में कुछ इशारे कर रहे थे। मुझे लग रहा था वे मेरे ही बारे में एक दूसरे को कुछ सुझा बुझा रहे थे। मेरी मौजूदगी शायद उन्हें नागवार गुज़रने लगी थी। मुझे खुद अपनी हरकतें किसी ऐसे नीमपागल की सी लग रही थी जो अचानक किसी चौराहे में खड़ा हो हाथ उठा गिरा कर गलत सलत तरीके से ट्रैफ़िक का नियन्त्रण शुरू कर दे। मैं शायद आवारागर्दी करते करते ही वहां पहुंच गया था, और अब वक़्त काटने के लिए वह सब कर रहा था। माया होती तो मुझे मना कर देती, समझा बुझा कर कहीं और ले जाती, वक़्त काटने का कोई और तरीक़ा सुझा देती। लेकिन ज़रूरी नहीं। आजकल उस से भी अक्सर वैसी ही अटपटी और अप्रत्याशित हरकतें हो जाती हैं जैसी मुझ से, आजकल हमारा आपसी अन्तर उड़ सा गया है, आजकल हम एक सी बेहूदा बेचारगी और मस्ती में मुब्तिला रहते हैं, खास तौर पर रात को। मै सोच रहा था अगर माया होती तो शायद हम भी टोकन ले कर अन्दर घुस जाते और देखते अन्दर है क्या, हो क्या रहा है।

टोकन वाले लड़कों ने मेरा चेहरा और मन पढ़ लिया होगा, इसलिए हाथों और आखो से उन दोनों ने मुझे अन्दर घुस जाने के इशारे करने शुरू कर दिये। कुछ देर मैं उन्हें नज़रअन्दाज़ करता रहा, फिर खयाल आया पूछूं अन्दर क्या था, हो क्या रहा था, फिर सोचा वे बताएंगे नहीं, कहेंगे खुद जा कर देख क्यों नहीं लेते। इसी उधेड़बुन में मेरे हाथ ढीले पड़ गये। अब मैं उन लोगों को सरसरी तौर पर छू रहा था जैसे नेतागण या गुरुगण अपने अनुयाइयों या भक्तों को छूते हैं। उस भीड़ के साथ अन्दर घुस जाने के खयाल के साथ चिपके हुए कौतहल और भय से निबटने के लिए मुझे और समय दरकार था लेकिन टोकन वाले लड़को के इशारे अश्लील होते जा रहे थे। अब उनकी देखा देखी अन्दर जाने को आतुर लोगों में से कुछ ने भी वैसे ही अश्लील इशारे करने शुरू कर दिये थे। आखिर शायद उन इशारो से तंग आ कर ही मैं भी अन्दर घुसने वाला की भीड के साथ सट गया। अन्दर घुसने वाले बाहर आने वालों को अन्दर धकेल रहे थे, बाहर आने वाले अन्दर घुसने वालों को बाहर। कुछ क्षण तो मैं ढीला ढाला ही रहा, फिर धीरे धीरे मेरे जबड़े कसते चले गये और मैं भी दूसरों की तरह धकापेल मे जुट गया। जब टोकन देने वाले लड़के ने टोकन मेरे हाथ में थमाया तो मैं एक भड़के हुए बैल की तरह उस गुफ़ा मे घुसने की कोशिश कर रहा, इस आशंका के बावजूद कि अन्दर शायद कुछ भी न हो, कुछ भी न हो रहा हो, और कुछ ही देर बाद शायद मै अपना सा और इतना सा मुंह ले कर बाहर निकलने की कोशिश में बाहर आने वालों की भीड़ में शामिल नज़र आऊंगा।

माया की आवाज़ उस बुझे हुए अन्धेरे मे अचानक सुलग उठी तो मेरी बेहोशी उचाट हो गयी।

—तुम नीचे जा कर एक बार उसे देख तो लो वह बेचारा कितनी देर से कराह रहा है। वह सोच रहा होगा हम उसे भूल गये हैं। मुझ से उसकी पीड़ा सही नहीं जाती। तुम न जाने क्यों इतने निर्मोही हो गये हो?

उसकी कराहें बेहोशी में भी मुझे सुनायी तो दे रही थीं लेकिन मैं नीचे जाने से कतरा रहा था। मुझे खतरा था नीचे का अन्धेरा मुझे निगल जाएगा और माया को खबर तक नहीं होगी। मैं बेहोशी की गोद में ही दुबका पड़ा रहना चाहता था। क़ायदे से गोगो को वहां होना ही नहीं चाहिए था, कि हम उसे अपने एक पड़ोसी के हवाले कर आए थे, कह आए थे हम कुछ दिनों के लिए कहीं गुम होने जा रहे हैं। उस पड़ोसी ने पहले तो हमारी तरफ़ यूं देखा था जैसे हम पागल हो गये हों, फिर शायद उसे हम पर या हमारे उस बूढ़े कुत्ते पर रहम आ गया था और उसने अपने दोनों हाथ उठा कर कहा था, जाओ तुम्हें जो करना है करो, मैं इस बेचारे को कोई तकलीफ़ नहीं होने दूंगा। तब हम दोनों ने उसकी तरफ यूं देखा था जैसे वह पागल हो।

शायद गोगो की कराहें हमारी अपराधी आत्मा या कल्पना की ही पुकार हों, मैंने सोचा लेकिन माया से नहीं कहा, यह सोच कर कि वह कहेगी मैं नीचे न जाने का बहाना तराश रहा हूं। उसकी आवाज़ में किसी सन्देह का स्वर नहीं था। वह शायद भूल गयी थी गोगो हमारे साथ वहां नहीं आया था। अगर मैं उसे याद दिलाऊंगा तो भी शायद उसे याद न आए। अन्धेरे में हम दोनों की याद धुँधला जाती है और कभी कभी तो हम आजकल अचानक स्मृतिमुक्त से हो जाते हैं, कुछ देर के लिए, लेकिन ग़नीमत है अक्सर एक साथ नहीं। जब वह स्मृतिमुक्त हो जाती है तो मुझे बहुत कष्ट होता है, महसूस होता है जैसे वह मुझे किसी बीहड़ में भटकता छोड़ खुद आकाश में उड़ी जा रही हो। उसे आज़ाद देख मैं अपने आपको स्मृति की दी हुई दलदल में फँसा देखता हूं। जब मैं आजाद होता हूं तो उसे भी यही महसूस होता होगा।

माया की आवाज़ फिर आयी।

—कितनी देर और उस बेचारे की कराहों को टालोगे, अगर नीचे नहीं जा सकते तो उसे यहीं से आवाज़ ही दे दो, मैं दे देती लेकिन मेरी आवाज़ से उसे इत्मीनान नहीं होगा और

शायद मेरी आवाज उस तक पहुंचेगी भी नहीं, वैसे भी तुम जानते हो इस वक़्त उसे मेरी नहीं तुम्हारी जरूरत है।

मैं समझ गया माया भूल गयी है हम कहां है, नीचे के अन्धेरे में जाना मेरे लिए कितना कठिन है।

गोगो की कराहें अब मैं भी साफ सुन रहा हूं लेकिन वे असली नहीं हो सकतीं, जरूर हम दोनों उन्हें स्वप्न में ही सुन रहे हैं, लेकिन ऐसा हो तो भी उसकी कराहों की पीड़ा से इनकार किया जा सकता है न उस पीडा से जो उन्हें सुनते हुए हमें हो रही है, अगर किया भी जा सकता हो तो हम नहीं कर पा रहे।

मैं दार्शनिक अन्धेरे में डूब गया, कुछ देर के लिए, और ज्यूंही उसमें से उभरा तो मुझे याद आया किसी ने कभी बताया था कि एक बार एक कुत्ते ने अकारण अपने मालिक पर हमला कर दिया था और उसे लगभग पूरा खा चबा जाने के बाद वह खुद भी वहीं अपने मालिक के कंकाल के ऊपर गिर मर गया था। इस याद का सन्दर्भ मुझे याद नहीं आ रहा था। मेरी कंपकपी छूट गयी।

—अब तुमने कांपना शुरू कर दिया! तो मैं जा कर देखूं? भले ही मैं गिर मरूं, तुम्हें अपना आराम प्यारा है।

अब मैं खामोश न रह सका। मैं चिल्लाया।

—तुम शायद भूल गयी हो हम इस वक़्त हैं कहां, गोगो यहां नहीं, हो ही नहीं सकता, उसे हम अपने एक पड़ोसी के हवाले कर आए हैं। गोगो नीचे नहीं, हमारे ही मन में कहीं बैठा कराह रहा है, हम उसे कोई आराम नहीं पहुंचा सकते, तुम शायद फिर स्मृतिमुक्त हो गयी हो, थोड़ी देर के लिए, काश कि मैं भी हो सकता. ..।

मैं पता नहीं कितनी देर तक चिल्लाता रहा। माया यूं चुप रही जैसे अचेत हो गयी हो। जब मैंने चिल्लाना बन्द किया तो गोगो की कराहें भी बन्द हो गयीं।

वह चल नहीं मचल रही थी, अठकेलिया करती हुई, मेरे आगे आगे, मुझ से मुनासिब फ़ासले पर, मुझे अपनी आंखों से बाँधे हुए। जब उसका रुख मेरी तरफ़ होता तो वह किसी नर्तकी की तरह क़दम कदम पीछे हटती हुई नज़र आती, नटखटनी सी, हसती हुई सी, चुटकियाँ बजाती हुई सी, मुझे उकसाती हुई सी, कहती हुई अगर दम है तो दौड़ कर आओ और दबोच लो मुझे, यहीं, इसी वक़्त। जब उसकी पीठ मेरी तरफ़ होती तो भी वह किसी नर्तकी की ही तरह क़दम क़दम दूर जाती हुई नज़र आती, इतराती हुई, अपने हाथ नितंबों पर बाँधे हुए, मुझे अपनी तरफ़ खींचती हुई सी, ललकारती हुई, कहती हुई अगर हिम्मत है तो भाग जाओ, बच जाओ, मैं तुम्हें मौका दे रही हूं, फिर न कहना। मैं उसे दबोचना चाहता था न उस से बचना चाहता था। मैं उसे देखने में ही गुम था, जैसे कभी कभी मैं किसी परिन्दे या बादल को देखने में गुम हो जाता हूं और तब तक गुम रहता हू जब तक वह परिन्दा बादल में या वह बादल परिन्दे में नहीं बदल जाता, या जैसे आजकल अक्सर हर रात मैं घर की तलाश में गुम हो जाता हूं, कभी माया के साथ, कभी अकेले, और उस वक़्त तक गुम रहता हूं जब तक भूल नहीं जाता कि मैं क्यों मारा मारा भटक रहा हूं, सदियों से, जब से शुरू हुआ हूं।

मैं उसे देखने में गुम उसे देख रहा था और जानता था जब तक गुम रहूंगा कुछ और नहीं कर सकूंगा, नहीं करना चाहूंगा। वह भी जानती थी और उसका यह ज्ञान उसकी हर हरकत और अदा को आग सी लगाए हुए था, और वह इस तरह जगमगा रही थी जैसे औरत न हो, इस दुनिया की न हो, जैसे उसकी अठकेलियां पहेलियां हों, जैसे वह कोई जादू कर या दिखा रही हो, जादू करने का या दिखाने के लिए ही कहीं से उतर या उड़ आयी हो। वह अवस्त्रा नहीं थी लेकिन मुझे अवस्त्रा ही नज़र आ रही थी, वह जवान नहीं थी लेकिन मुझे जवान ही नज़र आ रही थी, वह खूबसूरत नहीं थी लेकिन मुझे खूबसूरत ही नज़र आ रही थी, वह अजनबी नहीं थी लेकिन मुझे अजनबी ही नजर आ रही थी—शायद अपने जादू के ही कमाल से। मै उसे देखने में गुम उसके पीछे पीछे चल रहा था, उस से इतनी दूरी पर कि उसकी तपिश मुझे महसूस तो हो रही थी तिलमिला नहीं रही थी। मैं उसे देखने में इतना गुम था कि उसे भोगने या उस से दूर भाग जाने की ख्वाहिश ने सुलगना शुरू किया था न उसे समझने की कोशिश ने। गुमशुदगी की कैफ़ियत के बावजूद तन के किसी न किसी तहखाने में यह आशंका ज़रूर धड़क रही थी कि वह कोई गुल खिलाने के लिए मुझे मेरे रास्तों से परे कहीं ले जा रही थी। मैं उसे देखने में गुम था इसीलिए यह देख सकता था कि वह गुम नहीं थी, न कोई गुल

खिलाने के खयाल में न मेरे देखने मे न अपनी देह में, वह पूरी तरह से मचेत थी, इसीलिए उसकी चाल मे लोच था, उद्देश्य था, जबकि मेरी चाल में सिर्फ़ गुमशुदगी थी, तन के किसी तहखाने में धड़कती हुई आशंका की हल्की सी कंपकंपी थी।

अब यह याद नहीं कि वह कैफियत कितनी देर रही। शायद ऐसी कैफ़ियतों की अवधि की पैमाइश नहीं की जा सकती।

एक मुकाम पर—कह नही सकता किस मुक़ाम पर—पहुच कर वह ग़ायब हो गयी थी और मैंने खुद को एक लंबी तग साफ़ सुन्दर गली के मुहाने पर खड़े पाया था। वह गली कहीं खत्म होती दिखायी नहीं दी थी। मेरी निगाहें उसमें गुम हो गयी थीं, मेरा मुंह यूं खुल गया था जैसे वह मेरी तीसरी आंख हो। गली में कोई नहीं था। मेरा गला भर आया था। वह गायब थी लेकिन उसका खिलाया हुआ गुल मेरे सामने था। अब मैं उस सुरंगनुमा गली को देखने मे गुम था और सोच रहा था शायद वह औरत ही उस गली में बदल गयी हो, मुझे यह दिखाने के लिए कि वहीं कहीं मेरा घर है। नहीं, उस वक़्त मैंने ऐसा कुछ नहीं सोचा होगा। उस वक्त मैं सोचने की अवस्था मे परे जा पहुंचा था। शायद उस औरत का कमाल यही था कि उसने मुझे इतना गुम कर दिया था कि मै सोचने की बीमारी से आज़ाद हो गया था। कुछ क्षणों के लिए ही सही। शायद उसने यही गुल खिलाया था। अब उस गुल ने मुरझाना शुरू कर दिया है।

जब मैं उस बार में दाखिल हुआ तो माया मेरे साथ नहीं थी। मैं उसे कमरे में छोड़ आया था, कुछ देर अकेला उस बार में बैठ पीने और उदास होने के लिए, उदासी में डूब अपनी हालत का गलत सलत जायज़ा लेने के लिए, उस हालत को सुधारने के कच्चे इरादे बांधने के लिए, और आखिर वहां से उठ फिर माया के साथ जा लेटने के लिए। बार तक पहुंचने से पहले मैं कुछ देर इधर उधर घूमता रहा था। अगर उस गश्त से चैन मिल जाता तो शायद मैं बार में बैठने का खयाल बदल देता। माया ने बाहर जाने से मना किया था। उसे मेरी बेचैनी की खबर मेरी हरकतों से मिल गयी होगी। उसने मेरा मूड बदलने की कोशिश की थी, शाम गुजारने के लिए कुछ सुझाव दिये थे, लेकिन मैं नहीं माना था, ज़िद कर के बाहर निकल आया था, बाहर आते ही मैंने पछताना शुरू कर दिया था, पछताने से बेचैनी और भड़क उठी थी, उसे बुझाने के लिए उस बार में जाना अनिवार्य हो गया था, क्योंकि मुझे मालूम था कुछ पी लेने के बाद बेचैनी उदासी में बदल जाएगी। बेचैन होता हूं तो एक जगह बैठ नहीं पाता, उदास होता हूं तो जिस जगह पर बैठ जाऊं वहां से उठना मुश्किल हो जाता है। मैं उस बार में बार के बंद होने तक वही बैठे रहने के इरादे से दाखिल हुआ था।

दाखिल होते ही एक स्टूल पर माया बैठी दिखायी दी। उसकी पीठ मेरी तरफ़ थी लेकिन उसने मुझे बार के शीशे में देख लिया था। उसकी मुस्कराहट में शरारत की चिनगारी मुझे अच्छी लगी। मैं उसके पास जा बैठा तो वह बोली—मुझे मालूम था तुम कुछ देर इधर उधर घूम लेने के बाद यहीं आओगे।

मैंने यह पूछना ज़रूरी नहीं समझा कि उसे कैसे मालूम था न ही यह कि उसने मेरा पीछा क्यों किया। इतने बरसों के आपसी लगाव उलझाव के बाद हम दोनों को इतना तो मालूम हो ही गया था कि हम एक दूसरे की हरकतों के हेरफेर के बारे में सही अनुमान लगा सकते हैं। माया को वहां देखते ही मेरी बेचैनी छोटी सी ख़ुशी में बदल गयी थी, महसूस हुआ था जैसे उस शाम की शामत टल गयी हो। ऐसा नहीं कि शामत शाम को ही आती है, या जो शामत शाम को आती है उसे टालना ज़्यादा कठिन होता है, या उसके सामने दूसरी शामतें कम कठिन नजर आती हैं। शामत मुझ पर ही आती है, माया पर नहीं, ऐसा भी नहीं। लेकिन उस शाम मुझ पर ही आयी थी और माया ने ठीक समय पर ठीक स्थान पर पहुंच मुझे संभाल लिया था। जब शामत उसपर आती है तो मैं भी अक्सर जैसे तैसे उसे संभाल लेने के लिए ठीक समय पर ठीक स्थान पर जा पहुंचता हूं। हमारी शामतें हमेशा एक दूसरे की मदद

से टल जाती हों, ऐसा भी नहीं। हमारा साथ अटूट है, ऐसा भी नहीं। ऐसा होता तो हम एक दूसरे के बारे में इतने चिंतित न रहते। इस आपसी चिंता से हमारे सम्बन्धों में कुछ उलझनें न पैदा हुई हों, ऐसा भी नहीं। तो फिर कैसा है, मैं कहना क्या चाहता हूं? काश मैं बता सकता!

मन हुआ किसी को पकड़ कर पूछूं मैं क्यों हर दूसरी तीसरी रात यहां चला आता हूं, क्या करने, किस से मिलने, क्या लेने या देने, किस खोयी हुई चीज़ या याद या सूई की तलाश में, क्या खोने या पाने, किस आशा या अरमान का पीछा करता हुआ, किस मुसीबत या हक़ीक़त से भाग कर, अपनी मर्ज़ी से या किसी के आदेश के अंकुश से, और क्यों यहां आते ही परेशान होना शुरू कर देता हूं, कहीं और जा पड़ने के लिए तड़पना शुरू कर देता हूं, क्यो किसी एक नुक़्ते पर मेरी नज़र नहीं टिकती, क्यों पछताना शुरू कर देता हूं क्यों आया, क्या लेने, क्या करने। मन हुआ किसी से यह सब और और बहुत कुछ पूछूं लेकिन फिर देखा वहां और कोई नहीं था, याद आया वहां कभी और कोई नहीं होता, खयाल आया वहां और कोई नहीं होता, इसीलिए मैं हर दूसरी तीसरी रात वहां पहुंच जाता हूं, इसीलिए मन होता है किसी को पकड़ कर यह सब और और बहुत कुछ पूछूं, अगर वहां कोई होता, किसी के वहां होने का अन्देशा होता, आशा होती, तो मैं वहां कभी न जाता, किसी ऐसी जगह की तलाश में तड़पता रहता जहां किसी और के होने की आशा न होती, अन्देशा न होता, ताकि हर दूसरी तीसरी रात वहां जा पहुंच यह चाहूं कि किसी को पकड़ कर पूछूं मैं क्यों.....

अंधेरे में माया यूं गुम होती जा रही थी जैसे चाय मे चीनी। मै उसके पीछे भाग रहा था और चिल्ला रहा था—रुक जाओ! रुक जाओ! एक बच्चा मेरे सीने से सटा हुआ था। मुझे डर था वह उछल कर नीचे गिर जाएगा या मैं उसे इतना ज़्यादा भीच लूगा कि उसका दम घुट जाएगा या मैं उस सडक पर पडे किसी पत्थर से ठोकर खा कर बच्चे समेत गिर पडूंगा और माया को ख़बर तक न होगी। मुझे ठीक ठीक यह मालूम नहीं था कि माया तक मेरी आवाज़ पहुंच भी रही थी या नहीं, कि मैं एक बच्चे को अपने सीने से सटाए उसके पीछे पीछे भाग रहा था और डर रहा था कि बच्चा मेरे हाथों से छूट जाएगा या उसका दम घुट जाएगा या मैं कोई ठोकर खा कर बच्चे समेत गिर पडूगा। सडक सुनसान थी, अंधेरा घना था, सन्नाटा अकाट्य था, बच्चे की देह ठंडी थी, माया की आकृति हर क्षण और क्षीण होती जा रही थी, मेरी आवाज़ अंधेरे और सन्नाटे से टकरा चूर चूर हो रही थी। यह कैफ़ियत न जाने कितनी देर रही। फिर अचानक सामने से एक जगमगाती कार आती हुई दिखायी दी। मेरी आंखें चुन्धिया गयीं। मैं माया और बच्चे को भूल गया। कार एक धमाके के बाद गुम हो गयी। अब माया मेरे पास खड़ी पूछ रही थी—क्या हुआ? मेरे सीने से सटे बच्चे ने रोना शुरू कर दिया था, मैंने सबकना।

हम फिर एक तांगे में बैठे बिसुरी हुई भूलभुलैयों में खोये हुए थे। माया मेरी बग़ल में बैठी हुई थी, बुढ़िया बच्ची सी बनी मेरी पीठ से चिपकी हुई थी। उसकी रूखी सूखी बांहों ने मेरी गर्दन को ऐसे कस रखा था कि मुझे सांस लेने में तकलीफ़ हो रही थी। माया अगर देख रही थी तो ज़रूर सोच रही होगी कि बुढ़िया मेरा गला घोंट रही थी और मैं उसे मना करने के बजाय मस्त हुआ जा रहा था। तांगा उड़ रहा था। जब माया और मैं तांगे पर सवार हुए थे तो बुढ़िया वहां कहीं नहीं थी। जब तांगा बिसुरी हुई भूलभुलैयों में उड़ने लगा तो वह भी कहीं से उड़ आ मेरी पीठ से चिपक गयी थी। उसके रूखे सूखे बाल मेरे चेहरे को बुहार रहे थे। उनसे उसके जले हुए जीवन की गन्ध आ रही थी। माया का मुंह शायद इसी वजह से कसा हुआ था। माया ने उसे देखा हो या न देखा हो, उसे महसूस ज़रूर कर लिया होगा, इसीलिए वह कुछ परे हट कर बैठ गयी थी। मैं माया से उसके जले हुए जीवन की गन्ध के बारे में बात करना चाहता था, कहना चाहता था, देखो वह किस तरह एक बूढ़ी बच्ची सी बनी मेरी पीठ से चिपकी हुई है, पूछना चाहता था क्या उसकी मां भी कभी उसी तरह उसकी पीठ से आ चिपकती है। लेकिन माया ने मुझ से मुंह यूं मोड़ लिया था जैसे कह दिया हो, जब तक वह तुम पर सवार रहेगी मैं इस तांगे की सवारी का लुत्फ़ नहीं उठाऊंगी। तांगे में बैठ सैर करने का सुझाव माया का ही था, लेकिन मेरी पीठ पर वह आ बैठी थी और मैं माया के साथ सैर करने के बजाय उसके बालों से आ रही गन्ध में खोया हुआ था, अपनी गर्दन से लिपटी उसकी रूखी सूखी बांहों के कसाव से मस्त हुआ जा रहा था, और माया ने यह सब देखा हो या न देखा हो महसूस ज़रूर कर लिया था। माया मुझ से किसी सफ़ाई या मुआफ़ी की मांग के कारण कसी हुई थी। मैं उसे गुदगुदा कर हंसा देना चाहता था। कहना चाहता था, अब इस इन्तहा पर हमें मामूली जलनो से मुक्त हो जाना चाहिए, एक दूसरे की भूलों को मुआफ़ कर देना चाहिए, एक दूसरे के भूतों को स्वीकार कर लेना चाहिए। मैं हवा और आकाश और अंधेरे और सितारों और अन्त की दुहाई दे कर उसे खोल देना चाहता, खुद खुल जाना चाहता था। मैं अपनी पीठ से चिपकी उस बूढ़ी बच्ची के रूखे सूखे बालों से आ रही गन्ध को अपने भीतर रचा लेना चाहता था, माया से कहना चाहता था वह बुरा न माने।

उधर मेरी पीठ से चिपकी हुई बुढ़िया ऊपर सरकती सरकती अब मेरे कन्धों पर सवार हो गयी थी। उसके नंगे खुरदरे पैर मेरे पेट के ऊपर झूल रहे थे, उन्हें मेरे हाथों ने पकड़ लिया था, उन से भी उसके जले हुए जीवन की गन्ध आ रही थी। उसके बाल अब मेरे सर के ऊपर

अंधेरे में उड़ रहे थे, उसके जले हुए जीवन की गन्ध मेरे भीतर रच बस रही थी, मेरा मन हो रहा था उसके पैरो को चूमना शुरू कर दूं। मुझे याद आ रहा था बचपन में जब कभी वह मुझे चूमती थी तो मेरा मुंह बिगड जाया करता था और वह शिकायत किया करती थी कि मै दूसरों के बच्चों की तरह कभी उसकी गोद मे नहीं बैठता, उस से प्यार नहीं करवाता, उस से दूर भागता रहता हूं। उसके जलते हुए जीवन की गन्ध मुझ से सही नहीं जाती थी क्योंकि उसमे असंख्य अभावों और अरमानों की बदबू हुआ करती थी। उन अभावों का दोष उन दिनों मैं किसी को नहीं दे पाता था, अब जब वह नहीं रही तो अपने आपको देने लगा हूं। उन्हें दूर करने की कोशिश तो मैंने कई बार की लेकिन कामयाब नहीं हुआ, शायद मेरी कोशिश में ही कोई कमी रही होगी।

कल रात तांगे में बैठा मैं सोच रहा था कि मेरी कोशिश सच्ची नहीं थी, इसीलिए वह मुझ पर सवार थी, किसी बूढ़ी बच्ची की तरह, और मुझे प्रायश्चित्त का अवसर दे रही थी।

मैंने आंखें मूंद लीं और उसके पैरों को चूमना शुरू कर दिया।

मैं उसके जले हुए जीवन की गन्ध को चूम रहा था।

जो मुझ से हक़ीकत में नहीं हो सका, वह अब ख्वाब में हो रहा था।

कुछ देर बाद मुझे लगा वह मेरे कन्धों पर नहीं थी, उसकी याद के फूल वहां थे, जिनकी खुश्बू मे मैं बेहोश हुआ जा रहा था, और माया मुझ से पूछ रही थी, तुम्हें आज हो क्या रहा है।

मैं अन्दर खड़ा दरवाज़ा बन्द कर रहा था, वह बाहर खड़ी उसे धकेल खोल रही थी। मैं ज़िन्दा था, वह मुर्दा। मुझे डर तो लग ही रहा था, ग़ुस्सा भी बहुत आ रहा था, और उस ग़ुस्से की बेहूदगी का एहसास भी हो रहा था। दरवाज़ा बन्द कर लेने में मैं सफल हो गया तो उसकी दयनीय सूरत मेरी आंखों के सामने लटक गयी। कुन्डी चढ़ाते हुए मैं उस धूमिल घर में जा पहुंचा जिसमें मेरा बचपन बीता था। मैंने कुन्डी ढीली छोड़ दरवाज़ा खोल दिया। वह अन्दर आ गयी। मैंने उसके पांव छुए न उसे गले लगाया। ख़्वाहिश हुई लेकिन मैं जानता था वह ज़िन्दा नहीं थी। उसने मुझे गले लगाने की कोशिश की तो मेरे गले में अटका गोला नीचे को फिसल गया और मेरी आंखें आंसुओं से अट गयीं। मैंने उसे परे हटाते हुए भर्राई हुई आवाज़ में कहा—मैं मुजरिम हूं, शर्मिंदा हूं, लेकिन अब कुछ हो नहीं सकता। उसकी उठी हुई बांहें गिर गयीं लेकिन उसके मुंह से वही रिरियाहट फूट निकली जिसे सुन मैं पागल हो जाया करता था। मेरे आंसू छलक गये। मैंने आंखें बंद कर लीं, सोचा खोलूंगा तो वह गायब हो चुकी होगी। लेकिन आंखें खुलीं तो वह वहीं खड़ी रिरिया रही थी। मैंने अपना सर दोनों हाथों से जकड़ कर मुंह फेरा तो सामने वह खड़े नज़र आए। वह रिरिया तो नहीं रहे थे लेकिन उनके चेहरे पर याचना का लेप था। पीछे वह खड़ी रिरिया रही थी, आगे वह खड़े याचना कर रहे थे, बीच में मैं आंखें बन्द किये खड़ा बिलबिला रहा था। न जाने कितनी देर बाद जब मेरी आंखें खुलीं तो मैंने देखा मेरा काला कुत्ता कुछ फ़ासले पर खड़ा मुंह उठाए एकटक मुझे निहार रहा था। उसकी आंखें तरल थीं, उसका हाव भाव करुणायुक्त।

भीड़ बाढ़ में बदल गयी थी, भीड़ का शोर डूबते हुए जानवरों की बिलबिलाहट में। जब हम वहां पहुंचे थे तो हमारे ही जैसे हारे हुए कई और लोग तो वहां थे लेकिन उन्हें भीड़ का दर्जा दिया जा सकता था न उनकी दबी डूबी आवाज़ों को शोर का। मैं इस अन्देशे से छिला जा रहा था कि कोई हमें पहचान कर पूछताछ करना शुरू कर देगा कि हम कहां रहते थे, वहां किस काम से आए थे, किस काम से वक़्त को काटते थे, अभी तक मर खप क्यों नहीं गये। माया का मुझे मालूम नहीं, मैंने पछताना शुरू कर दिया था कि हम आराम करने के लिए उसी मैले मैदान में क्यों जा रुके, हमें मालूम होना चाहिए था कि वहां हमारे जैसे कई और जिज्ञासु गिरे पड़े आराम कर रहे होंगे, कुछ देर के लिए, अपनी खोजबीन फिर शुरू करने से पहले, हम ने कोई एकांत कोना क्यों नहीं चुना, ज़रूर हम अपने जैसे पराजितों से नाता जोड़ उन से हमदर्दी की भीख मांगना चाहते होंगे, उन्हे हमदर्दी की भीख देना चाहते होंगे, जरूर हमारी जिद में कोई कमजोरी आ गयी होगी, हमें किसी मोह ने वर्गला लिया होगा। मैं अपने पछतावे में कुछ और दूर जाता लेकिन मैंने देखा कि गिरे पड़े लोग भीड़ में बदलने लगे थे, उनकी दबी डूबी आवाज़ें भीड़ के शोर में। मैं घबराया भी, हैरान भी हुआ, लेकिन पश्चात्ताप का शिकंजा ढीला होने लगा। जब मेरे देखते ही देखते भीड़ बाढ़ में बदल गयी, उसका शोर डूबते हुए जानवरों की बिलबिलाहट में तो माया का हाथ मेरे हाथ से छूट गया। एक दो बार चिल्ला कर उसे आवाज दे लेने के बाद मैंने सोचना शुरू कर दिया कि हम अलग अलग उस भीड़ में कुचल दिये जाएंगे। मेरे इस खतरे में कुचल दिये जाने की ख्वाहिश भी शामिल थी, क्योंकि मैं अपनी तलाश से तंग आ चुका था। तंग शायद माया भी आ चुकी थी लेकिन मानने से इनकार कर रही थी, क्योकि उसे मालूम था अगर उसने मान लिया तो मैं तलाश को वहीं तोड दूंगा, कहूंगा, अब और नहीं, अब जहा पनाह मिल जाएगी, जितनी भी देर के लिए, वही हमारा घर होगा, उतनी देर के लिए, चाहे वह पनाह खाक में ही क्यों न मिले, भीड के पैरों में ही क्यों न मिले। माया का मैं कह नहीं सकता, मेरी तलाश की ताक़त किसी तिनके की सी थी जो दिन में कई बार टूटता था। मैं कभी एड़ियां उठा कर, कभी कमर दुहरी कर, माया को उस भीड़ में ढूंढ रहा था। उसका नाम ले कर उसे पुकारने का खयाल बार बार आता और मैं उसे रद्द कर देता, यह सोच कर कि उस भीड़ में न जाने कितनी औरतों का नाम माया होगा, और यह सोच कर भी कि लोग समझेंगे मैं किसी औरत को नहीं किसी रूपक का ही पुकार रहा था या किसी दार्शनिक सिद्धांत को। फिर न जाने क्या हुआ, मेरे भीतर ही कुछ हुआ या बाहर भी, शोर शान्ति में बदल गया, भीड़ भक्तों के

झूमते हुए हुजूम में। मेरा सर झुक गया, मेरी आंखें बन्द हो गयीं, मैंने भी झूमना शुरू कर दिया, इस अन्देशे के बावजूद कि यह स्थिति अस्थायी ही साबित होगी। माया भी वहीं कहीं खड़ी झूम रही होगी, इस आशा से मुझे अथाह सन्तोष मिल रहा था।

हम दोनो एक खचाखच तांगे मे ठुसे बैठे हैं और तांगा तेज तेज दौड़ रहा है। मै हैरान हो रहा हू क्योंकि घोड़ा मरियल सा है और कोचवान सोया हुआ। हमारे अलावा न जाने कितनी सवारियां हैं, कितना सामान है, फिर भी तांगा उड़ा जा रहा है। मैं अपनी हैरानी म माया को शरीक करना चाहता हूं लेकिन वह किसी और ही रौ में खोयी हुई है, इसलिए मैं अपनी हैरानी अपने तक ही रखता हूं। हैरानी के साथ मुझे घबराहट भी कम महसूस नहीं हो रही। शायद कोई हमारा पीछा कर रहा है। अगर हम पकड़ लिये गये तो मार डाले जाएंगे। मैं माया से पूछना चाहता हूं कि हम कहां से भाग कर कहा जा रहे है, हमारे साथ दूसरे कौन हैं, हो क्या रहा है, लेकिन मैं चुप रहता हू, यह सोच कर कि माया को भी कुछ मालूम नहीं होगा, होता तो मुझे भी होता या वह मुझे बता देती। मुझे लगता है तांगा किसी रेलवे स्टेशन के करीब पहुंच रहा है। शायद हमें कोई गाड़ी पकड़नी है, मैं सोचता हूं, इसीलिए हम घबराए हुए हैं, गाड़ी पकड़ने वाले लोग हमेशा घबराए हुए होते हैं, उन्हे डर लगा रहता है गाड़ी छूट जाएगी, मैं इस डर को जानता हूं। अब तांगा भीड़ की वजह से सुस्त पड़ गया है, कोचवान अभी भी सोया हुआ है, मै उसे जगाते जगाते रुक जाता हू, यह सोच कर कि शायद उसने अपने घोड़े को सधा सिखा रखा हो कि मुसाफिरों को कैसे कहां पहुंचाना है। हमारे तांगे के आस पास भीड़ बढ़ती जा रही है। लम्बी काली दाढ़ी वाला एक सिपाही उस भीड़ में किसी दुर्लभ फूल की तरह खिला खड़ा दिखायी देता है। उसी की मदद से हमारा तांगा भीड़ में से रास्ता तराशता हुआ ऐसी जगह पर जा रुकता है जहां से एक दीवार को फांद कर हमें दूसरी तरफ़ पहुंचना है जहां से शायद हमें प्लेटफ़ार्म दिखायी देगा। यह सब कोई मुझे बताता नहीं लेकिन मुझे लगता यही है जैसे कोई बता रहा हो, मेरे अन्दर बैठा कोई। सब से पहले मुझे उस दीवार पर चढ़ना होगा, फिर बारी बारी दूसरों का हाथ पकड़ कर उन्हें ऊपर खींचना होगा, और दूसरी तरफ़ कूदने में उनकी मदद करनी होगी। ज्यादा सोचने सकुचाने का समय नहीं, भीड़ भड़क रही है, वह फूल सा सिपाही उन्हे ज्यादा देर तक काबू में नहीं रख सकेगा। मैं तांगे में खड़ा हो दीवार की तरफ हाथ बढ़ा ही रहा होता हूं कि कोई मेरा हाथ पकड़ लेती है। मै झुंझला कर कहता हूं, माया पहले मुझे दीवार पर चढ़ तो लेने दो। जवाब आता है, मैं माया नहीं। मैं झटके से अपना हाथ छुड़ा लेता हू। जहां पहले माया बैठी थी, वहां अब कोई और बैठी सजल नेत्रों से मेरी ओर देख रही है। माया तांगे में नहीं। कोई और भी नहीं। कोचवान और घोड़ा भी गायब हैं। भीड़ ने उन्हें हड़प लिया होगा, मैं सोचता हूं, लेकिन फिर दूसरे ही क्षण मैं दोनों हाथों से उस दीवार को टटोलना शुरू कर देता हूं।

हम दोनों दीवार से पीठ सटाए दरी पर बैठे सामने की दीवार पर बिखरी कोई इबारत पढ़ रहे हैं। दरवाज़ा खुला है। मेहमान दहलीज़ पार करते ही उछल कर पाँच छः फुट ऊँची कुरसियों पर बैठ जाते हैं। घर हमारा है लेकिन मैंने इन कुरसियो को पहले कभी नहीं देखा, माया का मुझे मालूम नहीं। मन होता है उस से पूछ लूं ये कुरसियां कहा से आयीं, ये इतनी ऊँची क्यों हैं, हम दोनों दरी पर क्यों बैठे हैं, मेहमान किस अवसर पर आ रहे हैं, कौन हैं, जब सब आ जाएंगे तो होगा क्या। लेकिन इतना कुछ पूछने का अवकाश नहीं। महसूस होता है मेहमान हमारे सिरों पर सवार हों और हमें बात करने की मनाही हो। वे सब हम से ऊपर ऊपर एक दूसरे से जो बातें कर रहे हैं वे मेरी समझ में नहीं आ रहीं, माया का मुझे मालूम नहीं। जब कोई नया मेहमान अन्दर आता है तो सब उसके स्वागत में अपनी अपनी कुरसी पर खड़े हो जाते हैं और मैं हैरान होता हूं उनके सिर छत से क्यों नहीं टकराते, फिर सोच लेता हूं मुझे बेकार बारीकियों में नहीं उलझना चाहिए, जो हो रहा है उसे तमाशे के तौर पर लेना चाहिए, अगर उसका कोई सार होगा तो अपने आप मेरी समझ में आ जाएगा, अगर आना हुआ तो, मेरे सोचने से नहीं आएगा।

जब कोई नया मेहमान अन्दर आता है तो माया और मैं भी खड़े तो हो जाते हैं लेकिन आने वाले से कुछ कहने के बजाय हम उसे उड़ उछल कर किसी ऊँची कुरसी पर बैठते देखते रह जाते हैं। ऊपर बैठे लोगों में से कोई हमारी तरफ़ नहीं देखता तो मेरा जी चाहता है उन पर बरस पड़ूं, कहूं—आप लोग अजीब हैं, हमारे ही घर में बैठे हैं और हमारी तरफ़ देख तक नहीं रहे, नीचे उतरिये और क़ायदे से हमारे साथ इस दरी पर बैठिये, हम से बात कीजिये, पूछिये हम कैसे हैं, हमारे घर की तारीफ़ कीजिये, हमारे बच्चों के बारे में पूछिये, कहिये आपको हम से मिल कर खुशी हुई, क्योंकि आप मेहमान हैं, हम मेज़बान, खाना आपको हम खिलाएंगे....।

खाने का खयाल आते ही मैं सोचने लगता हूं कि इतने लोगों को खाना कैसे खिलाएंगे, कौन बनाएगा, कौन परोसेगा, हम दोनों तो ऐसे दरी पर बैठे हैं जैसे कोई मातम कर रहे हैं, ये सब कुरसियों पर ऐसे जैसे हमारे मेहमान नहीं, मालिक हों, हमारी क़िस्मत का फ़ैसला करने वाले। उधर ऊपर खूब चहल पहल है। अब कोई कुरसी ख़ाली नहीं। अब कोई आ गया तो उसे नीचे हमारे साथ बैठना पड़ेगा। लेकिन मुझे लगता है अब और कोई नहीं आएगा। मैं उन की गिनती करने के लिए सर उठाता हूं तो खयाल आता है वे भांप जाएंगे कि *मैं गिनती कर रहा हूं। गिनती का खयाल छोड़ देता हूं। सोचता हूं यही देख लूं कि औरतें*

कितनी है और मर्द कितने, फिर खयाल आता है कि ऐसा करूंगा तो भी वे भाप जाएंगे कि मैं गिनती ही कर रहा हूं। वैसे भी उनकी तरफ सिर उठा कर देखना मुझे ग़लत लगता है, सोचता हूं इस से उनकी अकड़ और बढ़ जाएगी, उनके और हमारे बीच का अन्तर और बढ़ जाएगा, लेकिन मेजबान होने के नाते इतना हक तो मुझे है ही कि मैं देख लूं कौन आया है कौन नहीं। सो हिम्मत बांध कर मेहमानों पर नजर दौड़ाता हूं तो देखता हूं मैंने उन्हें पहले कभी कहीं देखा तक नहीं, उन्हें जानने की बात तो दूर रही। मै घबरा जाता हूं, माया को बताना चाहता हूं कि ये लोग हमारे मेहमान नहीं, ये तो यूंही घुस आए हैं, जब असली मेहमान आएंगे तो क्या होगा, वे नाराज़ हो जाएंगे, नाराज़ न भी हों, इतना तो पूछेंगे ही ये कौन हैं, इन्हें हमने क्यों बुला लिया, इन्हें इतनी ऊंची कुरसियों पर क्यों बिठाया, इतनी ऊंची कुरसियां हम लाए कहां से, यह सब माया को मैं इन सब के सामने नहीं बता सकता। उसे दूसरे कमरे में ले जा कर सब कुछ सोचना चाहिए लेकिन हम उठेंगे तो शायद सब एक साथ आवाज़ दें, कहां जा रहे हो? मेरा सर फटना शुरू हो गया है। मुझे अपनी सारी जिन्दगी एक बेमानी अजाब नज़र आने लगी है। मुझे रोना आ रहा है। और हंसी भी। मैं सर झुका लेता हूं। उनकी कोई बात मेरी समझ मे नहीं आती। बतियाने के साथ साथ वे पचाके भी मार रहे हैं जैसे मज़े ले ले कर कई चटपटी चीज़ें खा रहे हो। खाने पीने का सामान शायद वे अपने साथ लाए हैं। अब मुझे यह चिन्ता लग रही है कि थोड़ी ही देर में वे ऊपर से अल्लम ग़ल्लम फेंकना शुरू कर देंगे, कुल्ले करने शुरू कर देंगे, थूकना शुरू कर देंगे. शायद पेशाब भी कर दें। मैं हड़बड़ा कर उठ खड़ा होता हूं। माया पूछती है, कहा चल दिये? उसे जवाब देने के बजाय मैं उन से मुखातिब होता हूं: आप सब नीचे उतर कर हमारे साथ बैठिये नहीं तो अभी किसी तरखान को बुलवा कर आपकी कुरसियों की टांगें कटवा दूंगा। इस पर वे सब इतना हंसते हैं कि मैं पॉव पटखता हुआ कमरे से बाहर निकल आता हूं। माया मेरे पीछे नहीं आयी। वह शायद उनसे मेरी बदतमीजी की मुआफी मांग रही हो।

बुढ़िया दुआएं दे रही थी : तेरे बच्चे सदा सुखी रहें, तेरे बच्चों के बच्चे सदा सुखी रहें, तू खुद सदा सुखी रहे, तेरा इकबाल बुलन्द हो, तेरी बुढ़िया फले फूले, उसे कभी किसी चीज की कमी न पड़े, उसे अच्छा घर मिले, तू सीधा स्वर्ग में जाए।

उसकी आखिरी दो दुआओं पर मुझे मुस्कराहट आ गयी और मेरे कदम तेज हो गये। उस वक्त मैं नरक में से गुजर रहा था। वह बुढ़िया जिस गन्दे नाले के किनारे बैठी मुझे दुआएं दे रही थी उसमें कई सूअर और कुछ बच्चे मुंह मार रहे थे। बुढ़िया के मुंह से दुआएं फूट रही थीं, उसकी देह से दुख का धुआं। उसके पास ही गिरा पड़ा एक कोढ़ी अपना ठूंठ हर आने जाने वाले को यों दिखा रहा था जैसे कह रहा हो इसे खा लो। एक सूखी हुई गाय दूसरी सूखी हुई गाय को अपने सींगों से कोंच रही थी। बदबू मक्खियों की तरह हर चीज को ढांपे हुए थी। माया पता नहीं कहां खो गयी थी। मैं शायद उसी की तलाश में उस नरक में जा फंसा था और बुढ़िया माया को अच्छा घर दिलवा रही थी, मुझे सीधा स्वर्ग भेज रही थी। मेरी मुस्कराहट एक मैली हंसी में बदल गयी।

हमारे बच्चे अपने बच्चों के साथ हम से दूर विदेश में बस गये हैं। उन से दूरी का एहसास हमारी आंखों की वीरानी में रमा रहता है। उनकी याद की टीस दिन में कई बार महसूस होती है। उनके लिए हम अपने अपने तरीके से तड़प लेते हैं, उनकी याद को हम अपने अपने तरीक़े से टालते रहते हैं लेकिन वह मन के किसी न किसी कोने में बैठी रहती है, मौक़ा पाते ही फिर झपट पड़ती है, दूसरी सब पीड़ाओं पर हावी हो जाती है। बच्चों से दूरी सिर्फ समय और स्थान की ही नहीं, यह एहसास भी सालता रहता है, मुझे माया से ज्यादा। हम एक दूसरे की दिलजोई तो करते हैं लेकिन उसका असर उल्टा होता है। बुढ़िया की दुआओं ने मेरे दर्द को छेड़ दिया है। दुआ भी शायद हर दर्द की दवा नहीं, दर्द से जो दुआ फूटती है, वह भी नहीं। मैं अपने दर्द को भूलने के लिए ही शायद इस नरक में से गुजर रहा हूं, ताकि दूसरों के ठोस कष्ट-कृष्ट देख सुन कर अपने अठोस दर्द को ठुकरा सकूं। रात को अकसर नरक में से गुजरता हूं, दुःस्वप्नों की धूल फांकता हूं। शायद इस वक्त भी किसी दुःस्वप्न को ही भोग रहा हूं। रात गुज़र जाने पर यह अनुभव कहीं अन्दर जा छिपेगा। माया आज कहीं और अकेली किसी और नरक में से गुजर रही होगी। बुढ़िया की दुआएं धीमी होती होती खामोश हो जाती है, मैं धुंधला होता होता ओझल हो जाता हूं।

रोशनी ऐसी थी कि चांदनी रात की भी हो सकती थी सुबह की भी।

मैं पीली चिन्ताओं में जकड़ा खड़ा था। इधर उधर कुछ और लोग भी इस तरह अलग अलग खड़े थे कि कुछ पता नहीं चल रहा था कि वे अपनी अपनी चिन्ताओं में जकड़े हुए थे या मेरी जकड़न का तमाशा देख रहे थे।

वे सब वहा न होते तो मैं न जाने क्या करता, कितनी देर और वहीं खड़ा रहता या उखड़ कर इधर उधर भटकना शुरू कर देता, लेकिन उनकी मौजूदगी मुझे नागवार गुज़र रही थी, इसलिए मैंने एक अंगड़ाई से जिस्म की जड़ता को तोड़ा और एक तरफ चलना शुरू कर दिया, इस खतरे के बावजूद कि वे सब मेरे पीछे चलना शुरू कर देंगे। कुछ दूर जाने पर एक दीवार नजर आयी, फिर उसमें एक खुला दरवाजा जड़ा नजर आया। मैं उसमें दाखिल हो गया।

अब जिस्म खुलता हुआ महसूस हुआ, जकड़न टूटती हुई।

अब मैं एक रैम्प से पर चढ़ चल रहा था और महसूस कर रहा था सब कुछ नीचे छूटा जा रहा हो।

फिर मैंने अपने आपको एक बुर्ज पर खड़े देखा। सामने एक तालाब तैर रहा था। उसके तट पर कुछ औरतें कपड़े धो रही थीं। मुझे खयाल आया मैं यूनान में कहीं हूं, इसीलिए इतनी साफ रोशनी है। यूनान में बिताए तीन चार उदास दिन याद आए। एक्रापोलिस पर मिली वह खामोश उदास लड़की याद आयी जो शाम होते होते इतनी खूबसूरत हो गयी थी कि उसे देख देख मेरी आंखें डबडबा जाती रही थी—बार बार। दूसरी सुबह सवेरे मुझे हवाई जहाज पकड़ना था। आधी रात से उधर तक मैं उसके साथ एक बार में बैठा यूनानी शराब पीता और यूनानी संगीत सुनता रहा था। उसके बाद अपने कमरे में तड़पता रहा था।

इस याद से मुझे बहुत चैन मिला। आंखें डबडबा गयीं। सामने तैरते तालाब के तट पर कपड़े धोती सुखाती औरतें खुद सफेद सूखते लहराते कपड़ों में बदल गयीं। गौर से देखा तो तालाब के ऊपर यूनानी अप्सराएं उड़ रही थीं। मैंने उन की उड़ान में अपना घर ढूंढना शुरू कर दिया।

आतशबाज़ी हो रही थी। तमाशबीन इधर उधर बिखरे बिछे पड़े थे। माया और मै एक दूसरे से कुछ दूरी पर लेटे हुए थे। मै आतशबाज़ी के बजाय आतशबाज़ी से बचे हुए आकाश में खोया हुआ था, माया का मुझे मालूम नहीं कहां खोयी हुई थी। हमारे बीच की घास पर एक अजनबी लेटा हुआ था। वह कनखियों से हम दोनों को देख भी सकता था, हाथ बढ़ा कर हमें छू भी सकता था। उसका चेहरा अंधेरे में था, नाम न जाने कैसे मुझे नजर आ रहा था, शायद उसके शरीर के ऊपर किसी तख़्ती सी पर लिखा लटक रहा था। उसका हमारे बीच की जगह पर लेटे होना मुझे अखर रहा था। इस अखरन को दूर करने के लिए ही शायद मैंने यह मान लिया था कि वह हमारा ही कोई दोस्त होगा जो उस आतशबाज़ी के कारण अजनबी जान पड़ रहा था। मेरी अखरन कुछ कम तो हुई लेकिन दूर नहीं हुई। कुछ देर बाद उसने हाथ बढ़ा कर मेरे कन्धे को दबाना शुरू कर दिया तो मुझे बुरा नहीं लगा बल्कि मै कुछ आश्वस्त ही हुआ कि उसने संकेत दिया था कि वह अजनबी नहीं अपना ही कोई था। शायद दूसरे हाथ से वह माया का कन्धा दबा रहा था।

आतशबाज़ी न जाने किस अवसर के उपलक्ष में हो रही थी लेकिन उस शख़्स के स्पर्श का असर था या किसी और बात का, मुझे सहसा याद आ गया था कि हम किसी हिल स्टेशन पर गर्मियां बिता रहे थे। उसका नाम मुझे याद नहीं आ रहा था। रात को नाम अक्सर मुझे भूल जाते हैं, नामों और स्थानों और व्यक्तियों के रिश्ते ग़लत हो जाते हैं, किसी स्थान का नाम किसी दूसरे स्थान से और किसी व्यक्ति का नाम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ जा चिपकता है। कल रात भी शायद यही हो रहा था। माया तो माया ही थी, मैं भी मैं ही था, लेकिन बाक़ी सब कुछ के नाम गलत सलत से हो गये थे।

हमारे बीच लेटे हुए उस आदमी के ऊपर लटका हुआ नाम उसका नहीं लगता था।

बाक़ी लोग आतशबाज़ी का तमाशा देख रहे थे, मैं अपनी उलझनों का।

मेरे दूसरे कन्धे पर जब एक कोमल हाथ का दबाव शुरू हुआ तो पहले मुझे लगा माया ही *अपनी जगह से उठ कर मेरे साथ आ लेटी होगी, फिर मैंने देखा वह कोई और थी।* वह मेरे पास बैठी आतशबाज़ी देख रही थी और शायद अनजाने में ही मेरे कन्धे को दबाए जा रही थी, हो सकता है आतशबाज़ी के शगूफ़ों से पैदा हुए उल्लास के कारण। उसका स्पर्श मुझे उस आतशबाज़ी का ही कोई शगूफ़ा सा महसूस हो रहा था।

हम एक तहखाने से में खड़े हैं, उखड़े उजड़े से, शायद किसी ऐसी बस या गाड़ी के इन्तज़ार में जो हमें मालूम है वहां नहीं आएगी, अगर आ भी गयी तो हमें किसी ऐसी मंज़िल पर नहीं पहुंचाएगी जिसके बाद हमारे इन्तजार का अन्त हो जाए। और कोई आस पास कहीं नजर नहीं आता, कोई आवाज़ सुनायी नहीं देती। पिलपिला सा अंधेरा हमें अपनी ढीली लपेट में लिए साएं साएं कर रहा है। हम एक दूसरे से नज़रें नहीं मिला रहे। मुझे खतरा है कि नज़र मिलते ही वह कहेगी मैं आज रात फिर रास्ता भूल गया हूं, उसे शायद खतरा हो मैं कहूंगा, सारा क़सूर उसी का है। मैं क़सूर के बारे में नहीं सोच रहा। मैं सोच नहीं रहा, सिर्फ सहम रहा हूं, क्योंकि सहसा मुझे मालूम हो जाता है हम किसी बस या गाड़ी का नहीं, मौत का इन्तजार कर रहे हैं। मैं उसे अपने इस इलहाम के बारे में बताना चाहता हूं। मुंह खोलता हूं तो अनायास चिल्लाना शुरू कर देता हूं—माया! माया! माया! चिल्लाते चिल्लाते मेरी आखें बन्द हो जाती हैं। जब खुलती हैं तो मैं खुद को एक गाड़ी में बैठा हुआ पाता हूं। गाड़ी बेआवाज़ है। और कोई कहीं नज़र नहीं आता। माया ग़ायब है। अंधेरा मुझे अपनी ढीली लपेट में लिये साएं साएं कर रहा है। यह गाड़ी शायद मुझे मेरी मौत के पास ले जा रही हो, जहां पहुंच कर शायद मेरे इन्तज़ार का अन्त हो जाए। मेरी आंखें बन्द हो जाती हैं।

जब मेरी निगाह उस पर पड़ी तो वह एक खूंख्वार बच्चे को दूध पिला रही थी। उसका सर बच्चे पर झुका हुआ था, आंखें उसे दुलार रही थीं, और उसका एक हाथ स्तन को नीचे से थामे हुए था ताकि बच्चे को दूध चूसने में कोई तकलीफ न हो। दूध पिलाती औरत ममता की मूर्ति होती है, उसके चेहरे पर रूहानी चमक होती है, उसकी सुन्दरता बेदाग़ होती है, उसे देख दानव भी नर्म पड़ जाता है, यह सब तो मैंने महसूस किया लेकिन मैं एक और चीज को नजरअन्दाज़ नहीं कर सका—वह बच्चा मुझे बच्चा नज़र नहीं आ रहा था, नहीं, नज़र तो वह बच्चा ही आ रहा था लेकिन था नहीं, अगर था तो खूंख्वार था।

ख्वाहिश हुई थी कि किसी इशारे से उस औरत को खबरदार कर दूं। कोई इशारा नहीं सूझा था।

उन दोनों को देखते ही मैं आगे बढ़ने के बजाय रुक गया था। आगे बढ़ने से मेरा मतलब उन दोनों की तरफ बढ़ने से नहीं था। उनकी तरफ बढ़ने की उमंग होती तो भी शायद मैंने उसे मसल दिया होता। दूध पिलाती किसी औरत से मैं शायद ही कोई उचित बातचीत कर पाता। उस बच्चे के बारे में मेरे मन में जो सन्देह सा उठ खड़ा हुआ था उसके रहते मैं उसकी मां से कुछ भी कह सकने की स्थिति में नहीं था।

उस पहाड़ी पगडण्डी पर चलते चलते अचानक मेरी निगाह उस औरत पर जा पड़ी थी। वह एक चट्टान पर बैठी एक खुशबूदार झाड़ी सी नज़र आयी थी। मैं ठिठक गया था। उसने मेरा ठिठकना देखा भले ही न हो, महसूस ज़रूर किया था। फिर उसने मेरी टकटकी को भी ऐन उस जगह महसूस किया होगा जहां बच्चे का मुंह उसके स्तन से लिपटा हुआ था। अंधेरे के बावजूद वह जगह आलोकित थी। मैं देख रहा था कि बच्चा चूसने के साथ साथ स्तन को चबा भी रहा था। सभी बच्चे ऐसा करते हैं, सभी बच्चे पैदा होते ही चबाने की कोशिश या मश्क शुरू कर देते हैं, सभी बच्चे भूखे प्यासे होते हैं, सभी बच्चों को मां को तंग करने में मज़ा आता है, सभी बच्चे माखनचोर होते हैं—यह सब मुझे मालूम है। लेकिन वह बच्चा मुझे मुहावरे के सभी बच्चों जैसा नज़र नहीं आया था, क्यों नजर नहीं आया था, मैं उस वक़्त नहीं जानता था।

अब मैं उन दोनों से कुछ ही दूर उस पगडण्डी पर यूं खड़ा था जैसे मेरे पांव में कांटा चुभ गया हो और मेरी कामना हो वह अजनबी औरत आंख उठा कर मुझे देखे, मेरी समस्या को बूझ ले, कहे, इधर मेरे पास आइए, मैं निकाल देती हूं आपका कांटा।

उस औरत ने आंख तभी उठायी जब बच्चे ने उसका स्तन छोड़ दिया। उसका स्तन सुडौल था। उस में कुछ नीली धारियां खिंची हुई थीं। औरत उसे ढांपना शायद भूल गयी थी। वह मुझे देख रही थी, मैं उसके स्तन को। मैं बच्चे को शायद भूल गया था। कुछ क्षण बाद जब मेरा ध्यान उसकी तरफ गया तो वह मुझे अपने पैरों पर खड़ा नजर आया—जैसे एक बौना आदमी हो। अब मुझे उस से डर लगना शुरू हो गया। मुझे लगा वह कोई पत्थर उठा कर मुझे दे मारेगा और साथ एक गन्दी गाली भी दाग देगा, जिसे सुन उसकी मा को हंसी आ जाएगी, मुझे ग़ुस्सा। मैं बदज़बान बच्चों को बरदाश्त नहीं कर सकता।

मेरा खयाल ग़लत निकला, खतरा बेबुनियाद। बच्चा मुझे अपने दांत दिखा रहा था, उसकी मां अपने स्तन पर उसके दांतों के निशान। दोनों खूब खुश नजर आ रहे थे। मुझे अब यह याद नहीं कि मैं कब कुछ क़दम चल कर उनके पास जा खड़ा हुआ। मैंने औरत से कहा, यह आपको काटता है तो इसे दूध पिलाना बन्द कर दीजिए, इतने दांतों वाले बच्चे को मां का दूध नहीं चाहिए, इसे तो अब मछली मास देना चाहिए।

मेरी आवाज में बच्चों का कोई माहिर डाक्टर बोल रहा था।

औरत भी इस बीच खड़ी हो गयी थी। उसका स्तन अब उसकी कमीज के पीछे जा छिपा था।

मै बच्चे के ऊपर झुका हुआ उसके दांतों का मुआइना कर रहा था। उसके दात दूध के नहीं थे। इसीलिए शायद वह मुझे खूंख्वार नजर आया था।

औरत की आवाज़ आयी, यह इन दांतों के साथ ही पैदा हुआ था।

औरत की आवाज़ में गर्व के सिवा कुछ नहीं था, मेरी आंखो मे दहशत के सिवा कुछ नहीं था, बच्चे के मुंह में दांतों के सिवा कुछ नहीं था।

हम सबके सामने एक दूसरे को चूम रहे थे—बार बार, रुक रुक कर, कभी हिन्दुस्तानी कबूतरों की तरह, कभी पश्चिमी प्रेमियों की तरह, मानो सब को दिखा सिखा रहे हों कि सब के सामने चूमा कैसे जाता है, चूमने को एक खेल में बदलते हुए से, यह जतलाते हुए कि यह वैसा चूमना नहीं जिस पर शर्म आए, जिसपर किसी को कोई एतराज हो, जिसे किसी से छिपाना पडे, जिस से किसी को कोई कष्ट पहुंचता हो। उसका मै कह नहीं सकता लेकिन मेरे मन में इस तरह के कई खयाल उसी चपलता से कूद फुदक रहे थे जिस से हम एक दूसरे को चूम रहे थे, एक दूसरे के होंठों को कभी काटते, कभी चाटते हुए, एक दूसरे की नाक से नाक रगडते हुए, एक दूसरे की ज़बान को अपनी ज़बान से उकसाते हुए, एक दूसरे की ज़बान को क्षणाश के लिए होंठों से जकड़ कर छोड़ देते हुए, एक दूसरे के दांतों को जबान से सहलाते हुए, एक दूसरे की आंखों पर बोसे बरसाते हुए। उसका मैं कह नहीं सकता मुझे असाधारण आनन्द आ रहा था, शायद कुछ कुछ वैसा ही जैसा किसी किशोर को अपने पहले चुंबनों से आता हो, शायद कुछ कुछ वैसा ही जैसे मुझे अपनी किशोरावस्था मे कभी नहीं आया था—ऐसा आनन्द जिसे भुलाया भी नहीं जा सकता, दुहराया भी नहीं, जो ज़िन्दगी भर की खुफिया खुशियों का खुफिया आधार बना रहता है।

और फिर, अब साफ़ नहीं कैसे, समां बदल गया, वह न जाने कहा गुम हो गयी, मैं न जाने कहां कहां खोया रहा। यह भी याद नहीं कि सब के सामने खेले गये उस खेल के दौरान हमारे बीच कोई बात भी हुई थी या नहीं, कोई क़ौल क़रार भी हुआ था या नहीं। बस इतना साफ़ है कि अगले दृश्य में मैं एक गाव के आस पास भटक रहा था। कुछ बच्चे धूल में खेल रहे थे, कुछ भैंसें एक जोहड़ में पसरी पडी थीं, कुछ कव्वे काएं काएं कर रहे थे, कुछ आवाजें हवा में उड़ रही थीं, गोबर की गन्ध फ़ज़ा में रची हुई थी, कुछ दूरी पर दो बज़ूके खडे झूल रहे थे, मैं उन से डर रहा था।

—डरो मत, बाबा!

एक बच्चे की इस हिदायत पर बाक़ी बच्चो ने हंसना शुरू कर दिया तो मुझे बहुत झेंप महसूस हुई!

—झेंपो मत, बाबा!

इन बच्चों की नजर में मैं भी एक बज़ूका ही हूं, मैने सोचा। मन हुआ, उन से कहू, तुम्हारी हंसी मुझे अच्छी लग रही है। मन हुआ उन से पूछू, वह क्या यहीं कहीं रहती है? उसका

नाम मुझे भूला हुआ था, उसके नखशिख भी मुझे याद नहीं थे, उसके वहां होने की कोई संभावना मुझे नजर नहीं आ रही थी। मैं इन बच्चों से क्या कहूंगा? कि मैंने कभी उसके साथ सबके सामने चूमने का खेल खेला था? कि उसके मुंह की महक मुझे याद है? कि उसकी आंखों पर अपने होंठ रखते हुए मुझे महसूस हुआ था मैंने शून्यता को छू लिया हो? कि मुझे उसका नाम भी भूल गया है? कि मुझे इतना भी मालूम नहीं कि वह जिन्दा है या नहीं, कि मैं ज़िन्दा हूं या नहीं, कि मैं इस वक्त यहां किसी ख्वाब में हूं या हक़ीकत में? मैं इन मासूम बच्चों से पूछूंगा क्या? लेकिन वे बच्चे मुझे मासूम नज़र नहीं आए। उनकी आंखों और हंसी में कुछ ऐसा था जिस से पता चलता था कि उन्हें सब कुछ मालूम है। अब मैंने उन बच्चों से डरना शुरू कर दिया।

—डरो मत, बाबा!

वही आवाज़ आयी। जो पहले आयी थी, वही हंसी सुनायी दी जो पहले सुनायी दी थी।

—वह यहीं रहती है!

सब बच्चों ने एक आवाज में यह सूचना मुझे दी।

अब मैं उस गांव की तरफ़ बढ़ रहा था। बच्चे मेरे पीछे पीछे चले आ रहे थे। मुझे महसूस हो रहा था वे सब मुझे हिदायत दे रहे थे—डरो मत, बाबा!

मैं कार पर गीला कपड़ा घिस रहा था और सोच रहा था इतनी रात गये आज मुझ पर कार की सफ़ाई करने का दौरा कैसे आन पड़ा। मुझ पर दौरे *तो अक्सर पड़ते हैं लेकिन सफाई के* नहीं। शायद कहीं जाना हो लेकिन इस वक़्त कहां और क्यों? शायद माया को मालूम हो। उसी ने कहा होगा इतने दिनों से इसे झाड़ा पोंछा नहीं, बहुत गन्दी हो रही है, इतनी गन्दी कार में मैं नहीं बैठूंगी, पहले इसे साफ करो। माया पर अक्सर अचानक सफाई के दौरे पड़ जाते हैं। दूसरे कई दौरों की तरह। कार की सफाई करते करते मैं अपनी सफाई भी कर रहा था, माया की भी। कार तो कुछ साफ हो रही थी, माया भी, लेकिन मैं नहीं, मैं बल्कि और मैला होता जा रहा था। मुझे माया पर भी ग़ुस्सा आ रहा था, अपने आप पर भी, कार पर भी। हम अपनी मिट्टी पलीद कर रहे हैं। हमें घर की तलाश छोड़ देनी चाहिए। हमें घर की ज़रूरत ही नहीं होनी चाहिए। हमारे बच्चों ने अपना अपना घर बना लिया है, हमें इस ठिकाने को, किसी भी ठिकाने को, अपना घर मान लेना चाहिए। हम मृगतृष्णा के शिकार हो गये हैं। या शायद एक रूपक के। हम इस तलाश के माध्यम से अपने बाक़ी बचे दिनों को सार्थकता देने की कोशिश में उन्हे बरबाद कर रहे है, अपनी खाक उड़ा रहे है। हमें खाक में मिल जाना चाहिए, खाक हो जाना चाहिए।

मैं उबल रहा था और माया गायब थी। खयाल आया उसने कार की सफ़ाई करने के लिए नहीं कहा होगा। याद आया वह तो कई दिनों से कहीं गयी हुई है क्योंकि कई दिन पहले फ़ैसला यह हुआ था कि कुछ दिन अलग रह कर भी घर की तलाश करनी चाहिए, उस रास्ते की तलाश करनी चाहिए जो हमें हमारे घर ले जाए, हमारे असली घर। खयाल आया मुझे माया के बगैर नींद नहीं आ रही होगी, इसीलिए मैंने कार की सफ़ाई करनी शुरू कर दी होगी। खयाल और भी कई आए। और कुछ आए न आए, और कोई मेहमान आए न आए, खयाल हमेशा आते रहते है, अनुमानों की वर्दी पहने, और हर अनुमान पर शायद का शिकंजा कसा रहता है। तो उस वक़्त का केन्द्रीय खयाल यही था कि कार की सफाई मैं अपना मन बहलाने के लिए ही कर रहा था, कहीं जाने के लिए नहीं, क्योंकि तलाश के सिलसिले में अक्सर जिन इलाकों और आलमों मे भटकना पड़ता है वहा कार नहीं जाती, वहा तो पैदल ही जाना पड़ता है। और फिर कार चलाने की हिम्मत यूं भी आजकल कम ही होती है। कहीं भी जाने के खयाल के साथ कई खौफ चिपके रहते है . टायर बैठ गया था, इंजन या दिल फ़ेल हो गया तो, किसी बस या मारुती वाले ने टक्कर मार दी तो, किसी

छोकरे ने पत्थर मार दिया तो, कोई बच्ची या बुर्क़ापोश नीचे आ गया तो, रास्ता भूल गया तो, किसी सिपाही ने चालान कर दिया तो, किसी चौराहे पर किसी कोढ़ी ने घेर लिया तो....

कुछ देर बाद मेरा उबलना भी बन्द हो गया, मेरे अनुमान भी सब उड़ गये, मेरे ख़याल भी खाक हो गये, और मेरी कार की सफ़ाई भी खत्म हो गयी। तभी अंधेरे में से एक अजनबी औरताना आवाज़ आयी और मैं खबरदार हो गया। अड़ोस पड़ोस की औरतों को अपने ठिकाने की खिड़कियों में से मैं देखता रहता हूं, आते जाते उनकी आवाज़ें भी सुनता रहता हूं, लेकिन इस इलाके में किसी बुर्क़ापोश को कभी मैंने नहीं देखा, और वह आवाज़ अंधेरे में खड़ी एक बुर्क़ापोश की थी। मैं उखड़ गया। पीला झाड़न जो मैंने एक पीली भिखारिन से खरीदा था मेरे हाथ से छूट गया, और मेरी आंखें, जिन्हें रात की रौशनी रास नहीं आती, उस बुर्क़ापोश को टटोलने लगीं। आवाज़ फिर आयी। अब की बार आवाज़ के साथ लफ़्ज़ भी आए। आए तो वे पहली बार भी होंगे ही लेकिन मैंने उन्हें पकड़ा नहीं था। मुझे महसूस हुआ आवाज़ उस बुर्क़ापोश के सारे जिस्म से आयी थी, लफ़्ज़ भले ही सिर्फ़ उसके मुंह से फूटे हों।

—भाई जान, अगर आप उस तरफ़ जा रहे हों तो मुझे भी बिठा लीजिए, बहुत मेहरबानी होगी।

'उस तरफ़' के साथ शायद बुर्क़े के पीछे उसकी आंख या अंगुली उस तरफ़ उठी हो 'भाई जान' के साथ शायद उसके मन में इस सम्बोधन के औचित्य के बारे में कोई आशंका भी उठी हो, मेरे साथ बैठ 'उस तरफ़' जाने के ख़याल के साथ शायद कोई अन्देशा भी उसके मन में उठा हो।

उसकी आवाज़ में रात का रहस्य था, आंसुओं की ख़ामोशी थी, अनिश्चय की आंच थी।

मैं उसे देख नहीं सकता था, इसलिए उसकी आवाज़ में उसे देखने की कोशिश कर रहा था।

वह मुझे देख सकती थी, देख रही थी, उसने देख लिया होगा मैं बड़ी उम्र का हूं, उसने मेरी आवाज़ नहीं सुनी थी, वह शायद मेरी सूरत में मेरी आवाज़ सुन रही थी, मेरी ख़ामोशी से खौफ़ खा रही थी।

आस पास उस वक़्त और कोई नहीं था, डंडा और सीटी बजाने वाला कोई चौकीदार भी नहीं, अचानक कुरला उठने वाला कोई आवारा कुत्ता भी नहीं।

और कोई वक्त होता, और कोई कैफ़ियत होती, और कोई औरत होती तो मैंने मुआफ़ी मांग ली होती, कह दिया होता मैं कहीं जाने के लिए नहीं वैसे ही कार साफ़ कर रहा था, लेकिन अगर आप किसी मुसीबत में हों और यहीं कहीं पास किसी डाक्टर या रिश्तेदार के घर जाना हो तो मैं आपको छोड़ आता हूं मगर पहले आपको अपना नाम पता ज़रूर बताना होगा और अपनी मुसीबत के बारे में भी कुछ, बेशक आप तफ़सील में मत जाएं, बेशक आप बुर्क़ा मत उठाएं, क्योंकि मैं कोई ताकझांक नहीं करना चाहता लेकिन यह ज़रूरी समझता हूं कि आपको अपनी कार में बिठाने से पहले....।

लेकिन रात के रहस्य की सी आवाज वाली उस बुर्क़ापोश पर शक करने या उसे टाल देने का कमीना खयाल मेरे मन मे नहीं आया।

मैंने कार का पिछला दरवाजा खोल कर उसे हाथ के इशारे से बैठने की दावत दी तो वह बोली—नहीं, भाई जान, मै आप के साथ आगे वाली सीट पर ही बैठूंगी।

चाबी घुमाने से पहले मैंने उसकी आंखों के सामने तनी जाली की तरफ देखा, यह जानने के लिए कि किस तरफ चलूं, लेकिन जब उसने कुछ नहीं कहा तो मैंने चाबी घुमा दी, सोचा अगर मैंने गलत दिशा चुन ली तो वह अपने आप बोल उठेगी।

मैंने दिशा का चुनाव आंख मूँद कर लिया, जैसाकि मैं अक्सर उस वक़्त करता हू जब सब दिशाएँ मुझे एक सी नजर आती हैं और चुनाव का कोई आधार मेरे पास नहीं होता।

मेरी रफ़्तार जल्द ही बहुत तेज़ हो गयी। मेरी आखों को ज़्यादा तकलीफ़ नहीं हो रही थी क्योंकि सड़क खाली थी।

मैंने अभी तक एक लफ़्ज़ नहीं बोला था। मैंने फ़ैसला सा कर लिया था कि कुछ कहूंगा न पूछूंगा, जहां वह रोकेगी रुक जाऊँगा, नहीं रोकेगी तो चलता चला जाऊँगा। उसकी तरफ देखने की ख्वाहिश बार बार हो रही थी लेकिन मैं उसे सख्ती से दबाए हुए था, क्योंकि जब तक उसका चेहरा पर्दे के पीछे था, उसकी तरफ़ देखने का मतलब होता कि मैं उसे पर्दा हटाने के लिए कह रहा था या उसे अपना चेहरा एक बार फिर दिखा रहा था, और मैं उसे ये मतलब निकालने का अवसर नहीं देना चाहता था। उसकी आवाज़ सुनने की ख्वाहिश भी हो रही थी लेकिन उसने भी शायद फ़ैसला कर लिया था कि वह अब कुछ कहे या पूछेगी नहीं, कि वह मुझ से ही कुछ कहलवा या पुछवा कर रहेगी। मैं मन ही मन उसके साहस की दाद दे रहा था। इतनी रात गये बहुत कम औरतें, खास तौर पर बुर्कापोश औरतें, किसी निपट पराए आदमी से बिला झिझक लिफ़्ट के लिए कह सकती हैं। मुझे भी खयाल आना चाहिए था कि कहीं बुर्के के अन्दर एक शरीफ़ साहसी औरत के बजाय कोई और बला न छिपी बैठी हो, लेकिन नहीं आया, अगर आता तो भी मैंने लिफ़्ट देने से इनकार न किया होता। मैं भी कुछ मुआमलों में बहुत साहसी हू। वैसे मुझे और ही खयाल आ रहे थे जिनमें से एक यह भी था कि शायद वह औरत गैब से आयी हो, मुझ से मदद मांगने के बहाने मेरी मदद करने के लिए, मुझे वह रास्ता दिखाने के लिए जिस पर चलता गिरता मैं अपने घर जा पहुंचूंगा, अपने असली घर, मुझे मेरा असली घर दिखाने-दिलाने के लिए ही शायद वह कोई बहाना बना कर मेरी कार में बैठ गयी थी और अब अपनी संकल्पशक्ति से मुझे मेरी कार चलवा रही थी, मुझ से सही मोड़ मुड़वा रही थी, शायद मुझ से यह सब सुचवा भी वही रही थी। इस खयाल से मुझे घबराहट होनी चाहिए थी लेकिन शायद उसी के प्रभाव से मुझे चैन मिल रहा था, अजीब अप्रत्याशित चैन।

हम आबादी से दूर निकल गये थे। मैंने फिर उसकी तरफ़ देखा। अब मैंने खुल कर चाहना शुरू कर दिया था कि वह अपना चेहरा मुझे दिखा दे। अब उसकी खामोशी और पर्दे को

बरदाश्त किये जाना मुझे बेहूदा लग रहा था, उसे तोड़ने और हटाने के लिए कुछ कहना या करना अशिष्ट। उधर वह यूं बैठी थी जैसे हर रात इसी तरह मेरे साथ बैठ मेरी कार में सैर करना उसका मामूल हो, जैसे हम हमेशा सैर के दौरान खामोश रहते हों, जैसे मुझे मालूम हो मुझे कहा तक जाना था, कब लौटना था। उसकी खामोशी ने अब मुझे खफा करना शुरू कर दिया था, खफगी को छिपाना मुश्किल हुआ जा रहा था, अगर वह गैब से ही आयी थी और मेरी मदद करने के लिए ही आयी थी तो अब उसे कोई संकेत देना चाहिए था, कोई चमत्कार दिखाना चाहिए था, लेकिन वह तो बुत बनी बैठी थी, शायद यही उसका संकेत हो, चमत्कार हो। मैं उलझता जा रहा था। मेरी आंखे सामने के अंधेरे पर थीं, उसकी शायद मेरे मन के अंधेरे पर। मैं अधीरता से उसकी आवाज का इन्तज़ार कर रहा था, वह शायद सुधीरता से मेरी आवाज का। क़ायदे से पहल उसे ही करनी चाहिए थी, लेकिन वह शायद सोच रही थी क़ायदे से अब बोलने की बारी मेरी थी। वैसे भी कार का मालिक होने के नाते मेरा फर्ज बनता था मै उसे आश्वासन दूं कि मुझे कोई असुविधा नही हो रही थी बल्कि खुशी हो रही थी कि उसने मुझे अपने घेरे से बाहर निकलने का बहाना दिया वर्ना मैं रात यूंही सो कर बरबाद कर देता, और फिर कार की सफाई भी बेकार ही चली जाती। मुझे अंधेरे की खूबसूरती की तारीफ करनी चाहिए थी, अपना नाम बता देना चाहिए था, उस से उसका नाम पूछ लेना चाहिए था, उसे साफ माफ़ कह देना चाहिए था यह खामोशी ग़लत है, आप बताती क्यों नहीं आपको कहां जाना है। यह आखिरी सवाल मैं अब नही पूछ सकता था। वह कह सकती थी, पहले क्यों नहीं पूछा, अब बनिए मत, भाई जान!

मैने सामने के अंधेरे से नज़र हटा कर फिर उसपर डाली तो लगा बग़ल में साक्षात् अंधेरा आ बैठा हो।

उसने मुझे 'भाई जान' कहा था, मैं अगर उसे 'बहन' या 'आपा जान' कह कर बुला लेता तो कोई गलती न होती लेकिन मेरे लिए ऐसा करना असंभव था। उसके मुंह से तो 'भाई जान' ऐसी सहजता से निकला था मानो वह हर अजनबी मर्द को 'भाई जान' कह कर ही बुलाती हो। मेरे लिए वैसी सहजता असहज थी। इस खयाल से खलिश हुई।

पता नहीं कितनी देर और मैं अंधेरे मे ही तीर चलाता रहता लेकिन उसकी आवाज ने मुझे चौंका दिया और कार बेकाबू होते-होते बची।

—मै आपको बहुत दूर खींच लायी, मुझे मालूम था आपको कहीं जाना नहीं था, आप यूंही वक़्त काटने के लिए कार साफ कर रहे थे, मैंने चालाकी की, लेकिन मैं मजबूर थी, मैं टेक्सी पर पैसे बरबाद नहीं करना चाहती थी, मुझे हवाई अड्डे पर पहुंचना है, वैसे मुझे जल्दी नहीं, प्लेन लेट है, इसीलिए मैंने आपको रोका टोका नहीं, सोचा भाई जान अन्धेरे की सैर करा रहे हैं, उसका लुत्फ भी क्यों न ले लूं, लेकिन अब हमें सही रास्ते पर चलना चाहिए नहीं तो प्लेन छूट जाएगा, कल मुझे बम्बई से हज के लिए जहाज पकड़ना है।

हज के लफ्ज से मैं फिर चौंका लेकिन इस बार गाड़ी को मैने बेक़ाबू नहीं होने दिया, धीमा कर लिया।

उधर उसने पर्दा उठा दिया था। अंधेरे में उसका चेहरा चमक रहा था। और वह वही चेहरा था जिसे मैंने न जाने कब किस रात पहले किसी पलग के नीचे देखा था, फिर किसी जाबर आदमी के घर। मुझे उसके कसे हुए चिकने पेट की याद हो आयी और उस मेबनुमा पत्थर की भी जो मेरी पीठ पर पड़ा था। मै उस मे उसके बच्चे के बारे मे पूछना चाहता था लेकिन उसकी आंखों मे उस मुलाकात का कोई निशान मुझे नजर नहीं आया। मैं उस से साफ़ पूछ सकता था, आप ने मुझे पहचाना नहीं? लेकिन मै उसके मुह से 'नहीं' सुनने के लिए तय्यार नहीं था।

देख रहा हूं और अदृश्य हूं। ऐसे दृश्य आजकल सिर्फ फिल्मों में ही दिखायी देते हैं। ऐसे दृश्यो पर हम हंसते तो हैं, उन से आतंकित नहीं होते। अदृश्य का प्रयोग उनमें हंसाने के लिए ही किया जाता है। मुझे भी इस समय कोई आतंक तो महसूस नहीं हो रहा लेकिन हंसी भी नहीं आ रही। हैरानी जरूर हो रही है क्योंकि अदृश्य हो कर देखने की कामना कल्पना तो कई बार की है लेकिन यह कभी नहीं सोचा कि किसी स्वप्न में भी ऐसा अनुभव कभी नसीब होगा। अदृश्य हो कर देखने की, सब कुछ देखने की कामना कल्पना के पीछे परमात्मा हो जाने की असम्भव कामना कल्पना ही काम करती होगी। परमात्मा हो जाने की असम्भव कामना कल्पना हर प्राणी को होती होगी। इस असम्भव को सम्भव बना देने के लिए ही शायद अद्वैत का उदय हुआ, यह कहा गया कि हर प्राणी में परमात्मा है, हर प्राणी परमात्मा है, कण कण में प्राण है। इस अद्वैत से मैं आतंकित तो हूं लेकिन इस पर अटूट विश्वास मुझे अभी तक नहीं हुआ। अटूट विश्वास मेरे लिए असम्भव है, इसलिए भी शायद मै अदृश्य हो कर देखने की कामना कल्पना का शिकार तो अक्सर हो जाता हूं लेकिन कभी यह मान के नही देता कि ऐसा अनुभव कभी किसी स्वप्न में भी नसीब होगा।

अदृश्य हो कर और ओट मे खड़े हो कर देखने में अन्तर है, ओट में खड़े हो कर कई दृश्य कई बार देख चुका हूं। उस अनुभव का आनन्द उड़ाता नहीं गिराता है, मुक्त नहीं करता, सिर्फ मारता है, अबाध की ओर नहीं ले जाता, बाधाओं में बांधता है। फिर भी ओट में खड़े हो कर देखने की कशिश से इनकार नहीं।

इस समय ओट मे नही हूं अदृश्य हूं, और देख रहा हूं, हो सकता है हक़ीक़त मे नहीं, ख्वाब में ही। इस ख़याल का पीछा इस वक्त नहीं करना चाहता। खतरा है ख्वाब टूट जाएगा, हक़ीक़त ख़ौफ़नाक हो उठेगी।

तो इस समय उसकी काया को देख रहा हूं। इन नजरों से पहले कभी उसे नहीं देखा। वह कपड़े उतार रही है। इस तरह इतनी उतावली में उसे कपड़े उतारते कभी नहीं देखा। दरवाज़ा भी खुला है, खिड़कियां भी। कोई पर्दा भी नहीं। कमरा जगमगा रहा है। कोई और भी कहीं से सब देख रहा होगा। शायद कई और। मैंने उसे कपड़ों के बगैर तो देखा है लेकिन इस तरह कपड़े उतारते नहीं देखा। कपड़ों में वह अपनी नजर आती है, कपड़ों के बग़ैर बेगानी, कपड़े उतारती हुई कोरी लेकिन इस वक़्त अदृश्य हो कर उसे देख रहा हूं तो वह किसी ऐसी वेश्या सी नजर आ रही जो अपने किसी खास मेहमान के लिए तैयार हो रही हो।

ऐसा लग रहा है जैसे वह कपड़े अपनी देह से नहीं किसी और की देह से उतार रही हो। अब वह आईने के सामने अवस्त्रा खड़ी है। मैं उसे भी देख सकता हूं, आईने में उसके अक्स को भी। वह आईने से बेखबर खड़ी है, आईने की तरफ़ पीठ किये। उसकी देह निर्दोष नहीं लेकिन इस समय दोष मुझे नजर नहीं आ रहे। इस समय मैं उन्हें देखना नहीं चाहता, इसीलिए शायद वे मुझे नजर नहीं आ रहे। मै उसकी देह में उसे देखना चाहता हूं, और उन्हें जो उसकी देह को देख चुके हैं, उसमे दाखिल हो चुके हैं, लेकिन मेरी आखे उसकी देह मे ही खोयी हुई हैं। अगर उसे मालूम होता मै उसे देख रहा हूं, कोई उसे देख रहा है, तो उसकी देह इतनी अकेली और अनासक्त नज़र न आती। अगर उसे सन्देह होता तो भी नही।

अचानक एक कुलांच मार कर वह एक अल्मारी के पास जा खड़ी होती है। उसे कुलांच मारते मैंने पहले कभी नही देखा। अल्मारी खोल कर वह एक लम्बा राजस्थानी रंगीला लिबास निकाल लेती है। लिबास के नीचे वह शायद कुछ नहीं पहनेगी। उसके अगों की आजादी में उसका यह लिबास कोई बाधा नही डालेगा। उसके पैर भी शायद नगे रहेंगे। उसकी पिण्डलियां लश्कारे मारती रहेंगी। वह कहीं जाने के लिए किसी के आने के लिए तैयार हो रही है। अब वह फिर आईने के सामने खड़ी है, लिबास के ऊपर वाले सिरे को अपनी ठोड़ी से दबाए, अपनी बाँहों को लिबास की बांहो के साथ फैलाए, उसे अपनी देह पर लटकते देखती हुई। मैं आईने में उसे उस लिबास मे ढका हुआ देख रहा हूं, आईने के बाहर नगा। उसकी पीठ किसी अच्छी पुरानी कहानी की तरह गठी हुई है, उस के नितम्ब कसे हुए और सुडौल हैं, उसकी जांघों के बीचोबीच रौशनी की एक फाँक कांप रही है, उसकी एड़ियाँ थोड़ी सी ऊपर उठी हुई हैं, उसके बाल एक ढीले से जूड़े मे बँधे उसकी पीठ पर लटक रहे है, उसके बाएँ कन्धे पर एक बड़ा सा तिल है। अब वह लिबास पहनने से पहले अपनी देह को प्यार से देख रही है। हर सुन्दर औरत आईने के सामने खड़े होने से कतराती भी है, खडे हो जाने के बाद इतराती भी है। वह इस समय इतरा रही है। कोण बदल बदल कर देख रही है। उसका मुंह बिचका हुआ है। शायद सोच रही हो लिबास एक लबादा है। फिर शायद उसे कोई आहट सुनायी दे जाती है और वह जल्दी से लिबास पहन लेती है, बाल खोल देती है, सर को झटकती है, चेहरे पर हाथ फेरती है, मुसकराना शुरू कर देती है। अकेले में उसका इस तरह मुसकराना मुझे अजीब लगता है। शायद उसने मुझे देख लिया हो लेकिन नहीं, वह शायद अपने मेहमान के लिए ही मुसकरा रही है, मुसकराने का पूर्वाभ्यास कर रही है, मुसकरा कर अपने चेहरे को चौका-चमका रही है, मुसकराहट से मेक-अप का काम ले रही है।

तीन आदमी अन्दर आते हैं। एक नगा है, दो ने अरबों जैसे चोगे पहने हुए हैं। चोग़ों के नीचे वे भी नंगे होंगे। नंगा आदमी सहज भाव से उसके पास जा कर उसे माथे पर चूम लेता है। उसका माथा अचानक बहुत चौडा हो गया है। शायद उस आदमी ने उसकी बिन्दी को चाट लिया है। उस आदमी के होंठों पर कोई लाली मुझे नजर नहीं आती। उसकी जाँघों के बीच लटकता छोटा सा गुच्छा मुझे किसी पुराने इतालवी बुत की याद दिलाता है। दूसरे दोनों आदमियों ने अभी तक कुछ कहा है न किया है। जब नंगा आदमी ग़ुसलखाने मे चला जाता

है तो वे दोनों नाचना शुरू कर देते है। उनके नाच मे कोई लय-लोच नहीं। वह मुसकरा रही है। मुसकराना मै भी चाहता हूं लेकिन मुसकरा नहीं सकता। अगर देख सकता हूं तो मुसकरा क्यों नही सकता! हैरानी होती है। अगर हैरान हो सकता हूं तो मुसकरा क्यों नहीं सकता! कोई जवाब नहीं सूझता। अब वह ताली बजा रही है और वे उसकी ताल पर भालूई नाच नाच रहे हैं। फिर वे भालुओ में बदल जाते हैं। मुझे हैरानी नहीं होनी। अदृश्य हो जाने पर शायद हैरानी कम हो जाती हो। जब वह कपडे उतार रही थी और बाद में आईने के सामने अवस्त्रा खड़ी हो इतरा रही थी तो मुझे कोई जोश नहीं आया था। अदृश्य हो जाने के बाद शायद जोश का अन्त हो जाता हो। लेकिन उत्सुकता का नही, क्यो नहीं? तर्क का क्यों नहीं? तृष्णा का क्यो नहीं। अदृश्यता के भी कई दर्जे होंगे। मेरी अदृश्यता अभी अव्वल दर्जे की नही। सबसे ऊँचे दर्जे की अदृश्यता उसकी जिसके बारे में कोई कुछ नहीं जानता लेकिन अनुमान सब लगाते रहते है, मै भी, हालांकि मुझे यह भरोसा नहीं कि वह है, सिर्फ यह कामना है कि वह हो।

अब वह ताली भी बजा रही है, नाच भी रही है। उसके लिबास के नीचे उसके उरोज छलक रहे है। उसके पैर और पिन्डलिया लश्कारे मार रहे हैं। रौशनी धीमी हो गयी है, वे भालू कुछ कम काले, कुछ कम बेडौल, उनका नाच कुछ कम भद्दा। नंगे आदमी ने नहाना शुरू कर दिया होगा। शायद वह यहा आया ही नहाने के लिए हो। शायद वह अक्सर यहां आता हो और नगा ही आता हो। मै देखना चाहता हूं वह नहा कर नंगा ही बाहर निकल आएगा या कोई तौलिया वगैरह लपेट कर। शायद उसी का कोई लंबा लिबास पहन ले। शायद उसने अपने कुछ कपडे यहा रख छोड़े हो। अदृश्य हो जाने के बाद भी क्या दूसरों से और दूसरों के बारे मे बेकार अनुमान लगाने की इल्लत से छुटकारा न मिलता हो। मेरी अदृश्यता दूसरे तीसरे दर्जे की होगी। वे भालू नंगे आदमी के बाहर आते ही शायद फिर आदमियों में बदल जाएं। वह नंगा आदमी तो मेरी समझ में आता है, उसके साथी नहीं। लेकिन वह उनके साथ नाच रही है। अचानक मुझे नींद आने लगी है। अदृश्य हो जाने के बाद भी नींद और मौत से मुक्ति शायद नहीं मिलती। अपने से किसी ऊंचे अदृश्य से पूछना चाहिए। नींद गलत वक्त पर आ रही है। उसे रोकते रोकते मैं सो जाता हूं।

जब नींद खुलती है तो समा बदला हुआ नजर आता है। अब मैं अदृश्य नहीं। यह घर मुझे मेरा नजर आता है, वह औरत माया, वे भालू सूअर, वह नंगा आदमी अपना एक पुराना दोस्त जो अब नंगा नही। माया अब भी उसी लम्बे लिबास मे है जिसके नीचे वह नंगी है। मुझे हैरानी होती है कि उसके बाए कन्धे पर वह बड़ा सा तिल देख कर और उन भालुओं के साथ उसको नाचने और ताली बजाने देख कर भी मैने उसे पहचाना नहीं। उस तिल को मै कई बार चूम चुका हू, उस नाच और तालीं पर मैं कई बार हंस चुका हू। शायद अदृश्य होकर देखो तो जानी पहचानी चीजे भी बेगानी नजर आती हों। अब उसकी हालत खराब नज़र आती है। और मेरे घर की भी। सब कुछ उखडा-उजड़ा हुआ नजर आता है। कोई चीज ठीक जगह पर है न ठीक हालत में। तसवीरें सब टूटी-फूटी और इधर उधर बिखरी हुई हैं, फ़र्श पर काच की किरचों का छिडकाव है, दीवारों पर पान की पीक का। जहां मैं खड़ा हूं वहां से

न जाने कैसे मुझे घर का हर हिस्सा और गोशा नजर आ रहा है। शायद आंखों के अलावा मैं कल्पना से भी देख रहा हू। इसीलिए माया के लिबास के नीचे उसकी नुचीखुची जांघें और छातियां भी उसी सफ़ाई से नज़र आ रही हैं जिस से उसके चेहरे की एक खरौंच और उसकी आंखों में अटकी हुई मस्ती। उसने मेरी आंखों से आखें मिलाई है न पास खड़े मेरे उस पुराने दोस्त ने। शायद उनके लिए मैं अभी भी अदृश्य हूं। इस खयाल से सख्त घबराहट होती है। मैं चिल्ला कर उसे पुकारता हू तो वह चौंकती नहीं। अलसायी हुई आखों से मेरी तरफ देखती है और मुसकरा देती है। मेरा दोस्त भी अब आंखें तरेर कर मुझे देख रहा है और मुसकरा रहा है। वे सूअर उसके पैरों में पालतू कुत्तों की तरह पसरे हुए हैं। बचाव का एक ही रास्ता मुझे सूझता है—उन दोनों से उन सूअरों के बारे में सवाल करना शुरू कर दूं और जतलाऊं कि मुझे गुस्सा उन पर आ रहा है या उनकी उपस्थिति का कारण न समझ सकने की वजह से अपने आप पर। फिर यह रास्ता भी गलत नज़र आता है। सही रास्ते की तलाश में ही मैं फिर नींद में डूब अदृश्य हो जाता हूं और देखता हूं कि मुझे कुछ भी दिखायी नहीं दे रहा।

ਮਿ.ਟਠਕ ਮਿ.ਟਠਕ ਮਿ.ਟਠਕ

मुझे किसी कचहरी मे पेश होने का आदेश मिला है, मेरे ही किसी पत्र के जवाब मे, जो मैंने एक सफर के दौरान कहीं से लिख दिया था। सफर के दौरान कभी कभी मुझ से ऐसी गलत हरकतें हो जाती हैं जिनकी सजा मुझे हमेशा भुगतनी पड़ती है, देर सवेर, किसी न किसी तरीके से। वैसे सजा मुझे कई बार किसी ग़लती या पाप के बगैर भी भुगतनी पड़ जाती है। तब मुझे अपने ऊपर बहुत तरस आता है। उस तरस से मुक्त होने के लिए मुझे मान लेना पड़ता है कि जाने अनजाने कभी कहीं मुझ से जरूर कोई जुर्म या पाप हो गया होगा, अगर इस जन्म मे नहीं तो पिछले किसी जन्म में। मैने आवागमन और कर्म के बारे मे क़ायदे से कभी सोचा विचारा तो नहीं लेकिन जब अपने साथ हो रहे सब कुछ का कोई और कारण मुझे नजर नहीं आता तो मैं पिछले जन्म और कर्म वगैरह का सहारा लें लेता हूं। इस से मेरी स्थिति मे तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता, थोड़ी देर के लिए थोड़ा सा क़रार आ जाता है, थोड़ी देर के लिए यह भ्रम मन में बैठ जाता है कि मेरे साथ जो हो रहा है ठीक ही हो रहा है, मेरे ही किन्हीं कर्मों के कारण हो रहा है, किसी न्याय और नियति के तहत हो रहा है। कई बार मन हुआ है कि किसी पंडित से आवागमन और कर्म वगैरह के बारे में पूछूं लेकिन फिर न जाने क्यों संकोच मे कस जाता हूं, शर्म-गले सकोच में।

सफर के दौरान ही मुझ से गलतियां या पाप होते हों, ऐसी बात नहीं, लेकिन सफर के दौरान उनकी संभावना बढ़ जरूर जाती है। सफ़र मै अब सिर्फ रात को ही करता हूं। मेरे सफर ज्यादा लंबे तो नहीं होते लेकिन उलझे हुए जरूर होते हैं। अक्सर दूसरे दिन उन उलझावों के कुछ अवशेष मेरी याद में बचे रह जाते हैं। उन्ही के आधार पर मैं पिछली रात के सफर को दोबारा अनुभव करने की कोशिश करता हूं और महसूस करता हूं मानो मैं नहीं कोई और अपने किसी पिछले जन्म की घटनाओं को किसी सिलसिले में बाँध रहा हो। पिछले जन्मो का खब्त इधर मुझे कुछ ज्यादा ही हो चला है।

तो उस पत्र में मैंने उस कचहरी को यह सूचना दी थी कि मेरे पास एक कत्ल के बारे में कोई ऐसी जानकारी थी जिसकी मदद से मुजरिम को पकड़ा भी जा सकता था और शायद समझा भी। पत्र मैंने लिख तो दिया था लेकिन मुझे कतई उम्मीद नहीं थी कि उसे गम्भीरता से लिया जाएगा, उसका कोई जवाब आएगा। मैं पहले भी कई बार आवेश में आकर इस तरह के हस्तक्षेप कर चुका हू और मुझे कभी कोई जवाब नहीं मिला। मुझे बस इतना ही संतोष था कि मैंने अपना फ़र्ज पूरा कर दिया था। और आज जब वह संतोष भी सूख गया है तो अचानक मुझे उस कचहरी में पेश होने का आदेश मिल गया है। इस बीच उस क़त्ल के बारे

मे मेरी जानकारी भी धुंधला गयी है। क़ायदे मे मुझे खुश होना चाहिए कि मेरे पत्र का कुछ असर तो हुआ, कि शायद मेरी मदद से उस कातिल को पकड़ा और समझा जा सके, कि मुझे एक सजग शहरी की भूमिका अदा करने का अवसर मिल रहा है, लेकिन सच तो यह है कि मै पछता रहा हूं, चिंतित हू, डर रहा हू।

पछतावे, चिंता और डर की एक पोटली मन मे बाँधे मैं उस कचहरी के सामने जा खड़ा होता हू। मेरी सूरत किसी अनाड़ी मुजरिम की सी है, मेरी पोशाक किसी ऐसे शख्स की सी जो अपने जुर्म पर सफेदपोशी का पर्दा डाले हुए हो। कचहरी के बाहर जहां मै खड़ा खांस रहा हू, कचरे का एक घिनावना ढेर है, जिसमें दो सूखी गाएँ और तीन खुजली-मारे कुत्ते और एक मैला बूढ़ा आस पास से बेखबर हाथ-पांव-मुह मार रहे है। मै एक दरवाजे को धकेल अंदर घुस जाता हूं।

अंदर कुछ लोग खड़े है। उनमें से एक मुझे हुक्म देता है—बताओ, उन तीनों में से मुजरिम कौन है?

मेरा खयाल था कचहरी बाक़ायदा होगी, कोई बारोब जज वहां बैठा होगा, मुझे शपथ लेने के लिए कहा जाएगा, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मेरे मन में कई एतराज़ उठते है, फिर बैठ जाते हैं। मेरा मन सुझाता है, बहस मत करना, बहस करोगे तो मारे जाओगे।

मैं अक्सर अपने मन की बात नहीं मानता लेकिन कभी कभी उसका तेवर ऐसा होता है कि मुझे उसकी बात मान लेनी पड़ती है।

हुक्म देने वाले ने जिस दीवार की तरफ़ इशारा किया था उसके सहारे तीन पुतले से खड़े दिखायी देते हैं—तारों से बँधे हुए, कुछ कटे-फटे से, मसखरों के से सफेद चेहरे पहने, आंखों पर काली पट्टियाँ बांधे।

मैं उन में से एक की तरफ एक कांपती हुई अंगुली उठा देता हू और महसूस करता हूं जैसे अपनी जान बचाने के लिए मैंने किसी मसखरे की जान को खतरे में डाल दिया हो।

डर में लिपटा हुआ मैं सोच रहा हू इस पाप की सज़ा मुझे जरूर मिलेगी, अगर इस जन्म में न मिली तो किसी और जन्म मे मिलेगी।

मै यह कहना भूल गया हू कि कभी कभी मुझे यह वहम भी हो जाता है कि सजा मुझे पहले मिल जाती है, ग़लती या पाप मुझ से बाद मे होता है।

किसी पंडित से अपने इस वहम के बारे मे भी कभी शायद पूछ सकू। एक पण्डित मेरे दोस्त हैं लेकिन उनसे नही पूछूंगा।

कचहरी के कारकुन—वे सब दूसरे या तीसरे दर्जे के ही दिखाई देते है—भाप जाते हैं कि मैं डरा हुआ हू और मैंने यू ही अपनी जान छुड़ाने के लिए अगुली उठा दी है। इसीलिए मुझे हुक्म मिलता है कि मैं कमरा नबर 302 में अपनी हाज़िरी लगवा दू और घर जा कर अगली पेशी के आदेश का इतज़ार करू।

मैं कमरा नंबर 302 की तलाश में उस कचहरी मे घंटो भटक लेने के बाद टूट फूट कर वहीं कहीं गिर जाता हू।

मैं जिस इमारत मे था उसकी चकाचौंध किसी विदेशी हवाई अड्डे की सी थी। मै लोगो के एक रेले में बह सा रहा था और सोच रहा था वे सब भी उस इमारत से निकलने की कोशिश में बाहर जाने वाले दरवाजो की तरफ बढ़ रहे होंगे। मेरे हाथ खाली थे, लिबास मामूली था, ऐसा जैसा मैं उस वक्त पहने हुए होता हू जब मुझे किसी वाकिफ से टकरा जाने का कोई अंदेशा नहीं होता, ऐसा जिसे पहन कर मै किसी भी भीड़ का एक गुमनाम घटक बन जाता हू, पहचान या पकड लिए जाने के डर से आजाद हो जाता हू। मेरी सूरत में शायद ही कोई ऐसी सिलवट उस वक्त हो जिस पर किसी की नज़र टिक सकती। लेकिन में निश्चिंत नहीं था। एक तो मेरे मन से यह एहसास चिपका हुआ था कि कोई और उस वक्त मेरे साथ चल रहा था, कोई ऐसा और जिसे मैं देख तो नहीं सकता था लेकिन महसूस कर रहा था, कोई ऐसा जो मुझे देख भी रहा था, महसूस भी कर रहा था, और मुझ पर मुस्करा भी रहा था, मेरी सिलवटहीन सूरत पर, मेरी चिंताओं पर, मेरी उलझन पर। मेरी परेशानी का दूसरा कारण मेरा कुत्ता था, जिसकी जजीर मेरे हाथ मे नहीं थी, जो मेरे साथ साथ यूं चल रहा था जैसे मुझे रास्ता दिखा रहा हो, जिस से कुछ लोग डर रहे थे और कुछ खुश हो रहे थे, जिसे वहां हरगिज़ नहीं होना चाहिए था, जो चलता चलता थूथनी उठा कर मेरी तरफ यूं देख लेता था जैसे आश्वासन दे रहा हो, घबराओ नहीं, तुम्हें बाहर पहुंचा कर मैं गायब हो जाऊंगा। मेरी परेशानी का तीसरा कारण यह होना चाहिए था कि मुझे यह मालूम नहीं था कि मै खुद उस वक्त उस इमारत में क्यो था, कहा से आया था, और अब कहा जा रहा था, लेकिन इन सवालों से परेशान होना मैंने बंद सा कर दिया था क्योंकि एक अर्से से रात को अक्सर मुझे इस तरह के अनुभवों से निबटना पड रहा है, इस तरह के सवालो का सामना करना पड़ रहा है। शुरू शुरू मे मैं परेशान हुआ करता था, अब शायद अभ्यस्त हो गया हूं। अब भी किसी किसी रात अचानक बिलबिला तो उठता हू लेकिन फिर जल्द ही शांत न सही उदासीन तो हो ही जाता हूं, सोचता हूं जो होता है होता रहे, मुझे क्या।

उस इमारत से बाहर निकलते ही मेरा कुत्ता अपने मूक आश्वासन के अनुसार अचानक ग़ायब हो गया। इमारत के बाहर चकाचौंध के बजाय पीला अंधेरा था जिसमें कुत्ते के अलावा मेरा वह एहसास भी ग़ायब हो गया था कि मेरे साथ कोई और भी था, कोई अदृश्य और। तो अब मैं अकेला था, एक अजनबी शहर मे था, घर से दूर था, महसूस कर रहा था मेरा कोई घर नही, इस एहसास में कोई चुभन नहीं थी, लेकिन पहचान या पकड लिए जाने के डर ने मुझे दबोचना शुरू कर दिया था। उजाले में यह डर मुझे महसूस नहीं होता, अंधेरे में यह अक्सर

मुझे दबोचना शुरू कर देता है। उस डर के बनने में हर डर की तरह जो कशिश बैठी रहती है उसकी खींच भी मुझे महसूस हो रही थी, और शायद उसी से बंधा मैं एक बलदार गली में जा पहुंचा था। वैसी गलियों में आजकल मैं अक्सर पहुंच जाता हूं और महसूस करता हूं जैसे वे मुझे किसी रात कहीं पहुंचा देंगी, किसी ऐसी जगह जिसे मैंने कभी किसी स्वप्न में भी न देखा होगा।

उस गली के मकान पुराने जमाने की छोटी छोटी ईंटों के बने हुए थे। वे ईंटें पुराने जमाने के किसी भीमकाय जानवर के दांतों सी नज़र आती थीं। गली के अंधेरे में कोई ख़ुफ़िया सा उजाला किसी गूंगे गाइड की तरह उन ईंटों को मेरे लिए उजागर करता जा रहा था, और मैं उन्हें यूं पढ़ रहा था जैसे वहां मेरे लिए तरह तरह के पैग़ाम खुदे हुए हों। चलते चलते मैंने गली के एक मोड़ पर खड़े एक मकान का दरवाज़ा खुला देखा तो मुझे लगा उस मकान में कोई नहीं रहता होगा, इसीलिए उसका दरवाज़ा चौपाट खुला था। मैं रुक गया। कुछ क्षण यूं रुका रहा जैसे मुझे किसी आवाज़ या इशारे का इंतज़ार हो, फिर मैं उस मकान में दाख़िल हो गया। ड्योढ़ी में मुझे एक जगमगाती बुढ़िया एक दीवार से पीठ सटाए बैठी सोयी दिखायी दी तो मैं दहल गया। मैं दरवाज़े की तरफ़ मुड़ ही रहा था कि बुढ़िया ने हड़बड़ा कर शोर मचाया—चोर! चोर! मैं दरवाजे की तरफ़ दौड़ा तो वह बुढ़िया मेरे पीछे 'चोर चोर' चिल्लाती हुई दौड़ी। बाहर गली में एक आदमी ने मुझे अपनी बांहों में बांध लिया। बुढ़िया अब मेरे सामने खड़ी पोपली आवाज में यूं चिल्ला रही थी जैसे अपनी बहादुरी पर हैरान भी हो रही हो, इतरा भी। उधर वह आदमी मुझे यूं दबोचे जा रहा था जैसे मेरा रस निचोड़ रहा हो। मैं उन दोनों को समझाने की कोशिश कर रहा था कि मैं चोर नहीं था, सिर्फ़ खोया हुआ था, घर से इतना दूर था कि बेघर महसूस कर रहा था, दरवाज़ा खुला देख रात गुज़ारने के लिए उस मकान में दाखिल हो गया था, अगर मुझे मालूम होता अन्दर वह बुढ़िया बैठी सोयी थी तो मैं कभी अन्दर घुसने की ग़लती न करता। अपनी तरफ़ से तो मैं इस क़िस्म का कोई बयान देने की कोशिश कर रहा था लेकिन उस आदमी की कड़ी जकड़ और अपनी बदहवासी के कारण मेरे मुंह से मेरी सूखी आवाज के फफोले से ही निकल रहे थे जिन्हें मैं खुद समझ नहीं पा रहा था, कोई और उन्हें कैसे समझ सकता था। इस बीच कई और लोग हमारे इर्दगिर्द जमा हो गये थे। सब की आंखों से शत्रुता और हिंसा फूट रही थी, सबकी आवाजों में बेरहमी भरी हुई थी। वह बुढ़िया अब खामोश और गुम हो गयी थी मानो उसकी भूमिका पूरी हो चुकी हो या शायद उसे अपने किये पर शर्म आ रही हो, या शायद वह मुझे उस भीड़ के हवाले कर आश्वस्त हो फिर अपनी ड्योढ़ी में जा बैठी सोयी हो। मैं भीड़ में उस बुढ़िया की पोपली सूरत और भीड़ के शोर में उसकी पोपली आवाज़ खोज रहा था। शायद मुझे इस भ्रम का भरोसा था कि अगर उस बुढ़िया की आंखों से मेरी आंखें मिल जाएंगी तो वह अपना आरोप वापस ले लेगी, सब से कह देगी उस से भूल हुई, मैं चोर नहीं, उसका बेटा था।

लेकिन वह बुढ़िया मुझे दिखायी सुनायी नहीं दी तो मुझे उसकी असलियत पर संदेह होना शुरू हो गया—शायद 'चोर चोर' की आवाज़ खुद मेरे अंदर से ही उठ फूटी हो, शायद मैंने अपने आपको पकड़वा देने के लिए ही उस बुढ़िया को घड़ लिया हो। इस संदेह की बेहूदगी

मुझे पसंद आयी, इस से मेरा खौफ और बढ़ गया। भीड़ अब पूरी तरह भड़क कर चीख चिल्ला रही थी। कभी बहुत से लोग एक साथ मुझे कोसने और गालियाँ देने, कभी कोई एक आवाज अचानक किसी गोली की तरह मुझे दाग देती। भीड़ में कुछ बाकी औरतें भी थीं। पहले तो मुझे लगा कि वे सब सीधे मुझ से मुखातिब हो मुझे धमका रहे थे, फिर पता चला कि वे जोर शोर से यह फैसला करने की कोशिश भी कर रहे थे कि मेरे साथ किया क्या जाए—मुझे वहीं खत्म कर दिया जाए, उसी वक़्त पुलिस के हवाले कर दिया जाए, सुबह होने तक किसी कोठरी मे बंद कर दिया जाए, मुझे सफाई पेश करने का मौका दिया जाए, मेरे कागज़ात की जाँच पड़ताल की जाए, या मुझे पागल परदेसी समझ कर शहर की हदों से बाहर धकेल दिया जाए। उनके सुझावों के उलझावों के बीचोबीच मैं भी बराबर बोले जा रहा था। मेरी आवाज के फफोलों ने अब फूटना शुरू कर दिया था, और मुझे सुनायी दे रहा था कि मैं उन से यह इल्तिजा कर रहा था कि वह मुझे एक फ़ोन करने की इजाज़त और अपने लिए कोई वकील बुलाने का वक्त तो दें, लेकिन मेरी यह बात शायद ही किसी दूसरे ने सुनी हो।

अब वह भीड़ मुझे यूं धकेल रही थी जैसे किसी बहुत भारी चट्टान को। वह गली एक चढ़ाई सी मे बदलती जा रही थी। इस छीना झपटी में न जाने कैसे मेरी पतलून और जूते ग़ायब हो गये थे। मैं कोशिश कर रहा था कि किसी को मेरी स्थिति मालूम न हो। मेरे काग़ज़ात और पैसे पतलून की जेब मे थे। अब मुझे अपना नाम पता वगैरह भी याद नहीं था। मैं सोच रहा था अगर अब ये लोग मुझे छोड़ दें तो भी मै कहीं जा सकने के काबिल नहीं रहा था। वह जगह और वे सब इतने अजाने अपहचाने लग रहे थे कि मै समझ नहीं पा रहा था मै वहां कर क्या रहा था? अचानक मन हुआ कि कमीज उठा या उतार दूं और कह दूं, लो कर लो जो करना चाहते हो! मैं इस ख्वाहिश को दबाने की कोशिश कर ही रहा था कि मुझे उस भीड़ मे एक लड़का नजर आया। वह चिल्ला नहीं रहा था और मुझे यूँ देख रहा था जैसे मेरी मदद करना चाहता हो। पता नहीं क्यों मुझे ख्याल आया वह मेरे किसी पुराने दोस्त का बेटा होगा। दो तीन पुराने दोस्तो की सूरतें याद में कौंध गयीं। मैंने चिल्लाना शुरू कर दिया कि मेरे घर वालों को न सही, मेरे दोस्तो को तो इत्तला दे दी जाए ताकि वे मेरी जमानत का प्रबन्ध कर सकें। मैं उम्मीद कर रहा था कि वह लड़का मेरा इशारा समझ अपने पिता को बुला लाएगा लेकिन उस लड़के ने मेरा इशारा नहीं समझा। मैं समझ गया कि वह मेरे किसी दोस्त का बेटा नहीं था, यूंही उसे मुझ पर तरस आ रहा था। अब मैंने सीधा उस लडके से मुखातिब हो चिल्लाना शुरू कर दिया था कि वह मेरी तरफ़ बिटर-बिटर देखने के बजाए कुछ करे, किसी वकील को ही बुला लाए, मेरी पतलून का पता चलाए, उन लोगों को समझाए, मेरे हक में कुछ कहे। मै पीछे हट रहा था और चिल्लाए जा रहा था, उस लड़के की टकटकी नहीं टूटी तो मुझे ख्याल आया कि मेरे मुह से आवाज के बजाए हवा ही निकल रही होगी—मेरे साथ संकट के समय अक्सर यही होता है। इस ख्याल के आते ही मैंने चिल्लाना बंद कर दिया, मानो मान लिया हो कि मेरी किसी भी कोशिश से कुछ नहीं होगा।

इस बीच वे लोग मुझे धकेल उस गली के छोर पर खड़ी एक बरजी सी तक ले गये थे जहा से मुझे एक अजीब सी डरावनी इमारत नजर आ रही थी। वह शायद वही इमारत थी जिसमें से निकलते ही मैं अनिश्चय और उस बलदार गली में मुब्तिला हो गया था। वैसे मुझे यह खयाल भी आया कि उस पोपली बुढ़िया ने ही मुझे ठगने के लिए उस डरावनी इमारत का रूप ले लिया होगा। जो हो इधर मै उन लोगो से डर रहा था, उधर उस इमारत से। अब मैंने उस लड़के या किसी और से किसी मदद की उम्मीद छोड दी थी, इसीलिए शायद वह लड़का मुझे मेरी मदद पर उतारू नजर आ रहा था। मैने देखा कि उसकी दृष्टि का कोरापन क्रोध मे बदल गया था और वह एक और लड़के से मिल कर मुझे बचाने की कोशिश कर रहा था। अब वे दोनों मेरे आगे आ खड़े हुए थे और उस भीड़ को पीछे हटाने के लिए हाथो और लातो का इस्तेमाल भी कर रहे थे और धमकियों का भी—खबरदार! खबरदार! मुझे हसी भी आ रही थी, रुलाई भी, लेकिन अदर से मैं अब तटस्थ हो गया था और अपनी स्थिति को किसी तमाशबीन की तरह देख रहा था। मेरी हंसी और रुलाई भी तमाशबीन की सी थी, मेरा डर भी। बरजी के उस तरफ न जाने क्या था। भीड़ में से आवाजें फूट रही थीं—तीनों को उठा कर उधर फेंक दो! वे लड़के हाथ-पांव चला रहे थे और चिल्ला रहे थे—खबरदार! खबरदार! अगर मैं अनायास अंदर से तटस्थ न हो गया होता तो टूट जाता। लेकिन नहीं, असलियत शायद यह थी कि मैं टूट गया था, इसीलिए तटस्थ हो गया था, अदर से—बाहर से तो मैं अब भी पहले ही की तरह भयभीत था।

उस उलझी हुई उलझाऊ इमारत में मैं किसी मामूली उम्मीदवार की तरह इधर उधर भटक रहा था कि एक खम्बे की ओट मे खड़ी मुझे वह दिखायी दी। वह भी मुझे वहा अपनी ही तरह मामूली नजर आयी। मुझे वैसी ही खुशी महसूस हुई जैसी किसी विदेशी एअरपोर्ट की बेगानी चकाचौंध में किसी अपने को अचानक देख लेने पर होती है। उसे मैं अपनी तो नहीं कह सकता लेकिन वह मेरे लिए एकदम बेगानी भी नहीं, क्योंकि मैं उसे कई बार कई आलमों और कैफ़ियतों में देख दुलार चुका हूं, अक्सर चोरी छिपे और मन ही मन, मानो उस से जब कभी जैसा-तैसा मिलन हुआ हो, स्वप्न में ही हुआ हो। उसने अभी मुझे नहीं देखा था, इसलिए मै उसे ध्यान से देख सकता था। उसे देख कर मुझे जो खुशी हुई थी, उसे मैंने दबा दिया था, क्योंकि मुझे यह भरोसा नहीं था कि वह भी मुझे वहां देख कर खुश होगी। जिस मुद्रा में वह वहा खड़ी थी उस से मुझे यही लगा था कि वह दिखना चाहती थी न देखना, कि वह वहा खड़ी अपने अगले क़दम के बारे में सोच रही थी, कि वह उस इमारत मे किसी काम के लिए नहीं आयी थी, कि उसे भी मेरी तरह यह मालूम नहीं था कि वह उस इमारत में क्यों आयी थी, कि वह भी वहां मेरी तरह गुम और घबरायी हुई थी।

उस पर निगाह पड़ते ही मुझे महसूस हुआ था जैसे मुझे वहा होने का कोई बहाना मिल गया हो। मैंने मान लिया था कि मैं यह बहाना कर सकूंगा कि मैं उसी की तलाश में वहां आया था। लेकिन यह मान लेने से मेरा डर कम हो जाने के बजाय ज़्यादा हो गया था, डर के कारण साफ़ और सीमित हो जाने के बजाय धुन्धले और असीम हो गये थे। डर के बावजूद मैं उस से कुछ कहना चाहता था, कुछ नर्म और नाज़ुक, कुछ ऐसा जिस से मेरा डर कुछ देर के लिए मुझे भूल जाए, उसकी घबराहट कुछ कम हो जाए, हम दोनों पर उस उलझी हुई अजनबी इमारत का आतंक कुछ कम हो जाए। मै जानना चाहता था कि उसके मन में वैसी कोई कामना उस समय थी या नहीं। मैं उसके कसे हुए चेहरे को टटोल तो रहा था लेकिन खुल कर नहीं, क्योंकि अभी मै खुद खुलने के लिए तय्यार नहीं हुआ था। माया मेरे साथ होती तो बात और होती। तब मैंने माया की ओट में खड़े हो उसको खुल कर देख लिया होता, उसे देखने का सुख खुफ़िया तौर पर भोग लिया होता, उन दोनों को एक दूसरी मे प्रतिबिम्बित होते देख लिया होता। जब माया साथ नहीं होती तो उसका खयाल सर पर सवार रहता है, इसीलिए उसकी अनुपस्थिति का फायदा उठाने के बजाय मैं उसकी उपस्थिति के फायदों के बारे में सोचता रहता हूं।

मैं अपने जाला को झटकने की कोशिश कर ही रहा था कि उसकी निगाह मेरी निगाह से टकरायी और उसने मुह मोड कर तेज तेज चलना शुरू कर दिया, यूं जैसे मुझे यह संकेत भी दे रही हो कि मै उसका पीछा करूं और यह भी कि वह मुझ से पीछा छुड़ाना चाहती है। मैंने तेज तेज उसके पीछे चलना शुरू कर दिया। तभी मुझे यूं लगा जैसे वह इमारत इमारत कम हो और बरामदों और गलियारों से बनी हुई एक घुमावदार सैरगाह ज्यादा हो। अब मुझे यह भी महसूस होने लगा कि वहां और लोग भी थे, काफी संख्या में थे, सब के सब खामोश थे, खामोशी खौफनाक नहीं थी, खूबसूरत थी।

उसने मुड़ कर मुझे देखा तो नहीं था लेकिन उसे मालूम था कि मैं उसका पीछा कर रहा था।

कह नहीं सकता कितनी देर तक वह तेज़ तेज चलती रही और मैं उसके पीछे भागता सा रहा। उसकी रफ़्तार मेरी से ज़्यादा थी, इसलिए मुझे यह खतरा था कि मे उसे खो दूंगा। मै उसे खोना नहीं चाहता था, इसलिए मैं बीच बीच में भागना शुरू कर देता था। कुछ एक बार मैंने उसे आवाज़ देने की कोशिश की लेकिन उसके नाम के बजाय खामोश हवा ही मेरे मुंह से निकल पाई।

उस तक पहुंचने की एक ही सूरत मुझे नजर आ रही थी और वह यह कि कोई न कोई घुमाव ऐसा आएगा कि हम एक दूसरे से टकरा जाएंगे।

और आखिरकार यही हुआ। उसके साथ टकराते ही मेरा शरीर शरारत में बदल गया और मैंने आंखें मूंद कर उसे अपनी बाँहो में भींच लिया और महसूस किया कि उसका शरीर भी शरारत मे बदल चुका था। कुछ देर तक हम एक दूसरे में गुम हो जाने की कोशिश में गुम रहे, हमारी आंखें बन्द रहीं, हमारे अन्य अंग एक दूसरे से उलझे रहे, फिर एक उत्कर्ष के बाद, हमारी आखें खुलनी शुरू हो गयीं, हमारे शरीर शान्त होने शुरू हो गये, हम एक दूसरे से अलग होने शुरू हो गये, मेरे सारे अन्देशे लौट आने शुरू हो गये।

उस से अलग होने से पहले मैने कहा—पता नहीं उस से या अपने आप से या उस से भी और अपने से भी—मैंने कहा, मैंने अपने आपको यह कहते सुना मैं तो आज रात यूंही यहां चला आया था, मुझे यह उम्मीद नहीं थी कि कुछ होगा, कुछ ऐसा होगा, अब कहां जाऊं, अब कहां जा सकता हूं ?

वह मुस्करा रही थी, सिर्फ मुस्करा रही थी, और मुझे देखे जा रही थी।

कई गलत रास्तों पर काफी देर भटक लेने के बाद आखिर मै उस भद्दी इमारत के सामने जा खड़ा हुआ जिसमें और कई दफ्तरों के अलावा उस अखबार का दफ़्तर भी था जिसके संपादक से मुझे कोई जरूरी काम था। शायद था नहीं, सिर्फ मुझे महसूस हो रहा था कि था—शायद रात के कारण। मुझे खुश होना चाहिए था कि मैं अपनी मंजिल पर पहुंच गया था लेकिन मैं वहां यू खड़ा था जैसे वह मेरी मंज़िल न हो। मेरे साथ हमेशा यही होता है—कोई मज़िल कभी मुझे अपनी असली मंजिल नजर नहीं आती, महसूस होता है मुझ से फिर धोखा हो गया हो। कुछ देर के लिए मैं उस धोखेबाज के बारे में सोचता रहता हूं, जिस के झांसे मे आ कर मैंने उस गलत मंजिल तक पहुंचने के लिए इतने जतन किये। वह धोखेबाज़ मेरे ही भीतर के किसी अंधेरे मे बैठा मुस्कराता हुआ महसूस होता है लेकिन उसे पकड़ कर कुछ पूछने की हिम्मत मैं नहीं जुटा पाता। डरता हू वह कोई ऐसा सच बोल देगा कि मैं फ़ना हो जाऊंगा। फना हो जाने के स्वप्न तो मुझे सुख देते हैं लेकिन उसकी संभावना दहशत पैदा करती है। खुशकिस्मती से यह कैफियत भी जल्द ही बदल जाती है और मैं उसी नकली मजिल को अपनी असली मजिल मान लेने की बेहूदगी में जुट जाता हूं, किसी बेवक़ूफ बूढ़े बैल की तरह।

खैर तो जब मै उस इमारत में दाखिल हुआ तो मेरा बदन थकावट के कारण टूट रहा था, मन सारी दौड़ धूप की तात्विक व्यर्थता के एहसास के कारण। बदन और मन के अलावा और कई चीजें भी जरूर टूट रही होंगी। उस क्षण मुझे उस सपादक का नाम भी भूला हुआ था और वह जरूरी काम भी, जिसके लिए मै उसे मिलना चाहता था। इसीलिए कुछ देर एक लिफ्ट के सामने पड़े एक टेढ़े से स्टूल पर बैठ लेने के बाद मैं अगला कदम उठाने के लिए उठ ही रहा था कि एक मुच्छल आदमी मेरी तरफ़ आता हुआ दिखायी दिया। मुच्छल आदमी मुझे हमेशा मुस्कराते हुए महसूस होते हैं, उनकी मुस्कराहटें उनकी मूछों की छलनियों से छन कर आती हुई मुच्छलहीनों की त्योरियों से ज़्यादा हौलनाक। मुच्छल आदमियों से मै उतना ही डरता हूं जितना मुच्छल औरतों से।

पास पहुच कर उसने पूछा—तुम यहां बैठे सोच क्या रहे थे?

उसका सवाल मुझे असाधारण लगा, सहजता असह्य। मै अपने जवाब को तोल-पपोल ही रहा था कि वह बोला—शायद तुम सोच रहे थे मैं मर गया हू और मेरे स्टूल पर तुम्हारा कब्जा हो जाएगा, और मेरी मूंछे तुम्हें मिल जाएंगी?

मैंने वैसा कोई ख्वाब नहीं देखा था लेकिन उसका आरोप मुझे इतना दिलचस्प लगा कि मैंने सोचा काश मैंने यही सोचा होता।

जो लोग लाग-लपेट को छोड़ सीधे किसी के मर्म या अपने मतलब तक जा पहुंचते हैं, मुझे प्रभावित करते है। मै उसके आरोप के जवाब मे खामोश तो रहा लेकिन मन ही मन मैंने उसकी प्रशंसा शुरू कर दी। वह मच्छल तो था लेकिन मूर्ख नहीं था।

—खैर, तुम पहले आदमी नहीं जिसने मेरे स्टूल पर बुरी नज़र डाली हो लेकिन मै तुम जैसे न जाने कितनो को मार कर मरूगा!

मैं अनुमान लगा रहा था कि वह उस इमारत के किसी बड़े दफ्तर के बड़े अफ़सर का चपरासी होगा या शायद उस इमारत का चीफ चौकीदार या शायद उस लिफ़्ट को चलाने वाला जिसके सामने वह स्टूल पड़ा था या शायद मेरी ही तरह कोई सरफिरा बेघर। मुझे डर था कि वह मेरे अनुमान पढ़ लेगा और डांटेगा, तुम बिलकुल गलत हो! लेकिन जब मैंने देखा कि वह सर हिलाता हुआ सीढ़ियां चढ़ने लगा था तो मै भी सर झुका कर उसके पीछे पीछे हो लिया, यह सोच कर कि लिफ्ट खराब होगी, मेरे नसीब की ही तरह। शुक्र है उसने मुड़ कर मेरी तरफ नहीं देखा वर्ना न मालूम वह क्या करता—सिर्फ़ झिड़क-झाड़ देता, इल्ज़ाम लगा देता कि मैं उसकी पीठ में छुरा घोंप देने के लिए ही उसका पीछा कर रहा था, या लात मार देता। दफ्तरों के चपरासियों, क्लर्कों, अफसरो को न जाने क्यो न मेरी सूरत भाती है, न कोई बात। मैं उनकी नफरत का निशाना कई बार बन चुका हू, इसीलिए मैं हर दफ्तर को अपने दुश्मनो का एक दुर्ग मानता हूं और यथासंभव उस से दूर रहता हू, और इस दुर्ग के नुकसान चुपचाप बरदाश्त करता रहता हूं। इसीलिए मैंने कभी कोई जायदाद खरीदी या बेची नहीं, कभी कहीं कोई दरख्वास्त नही दी, कभी किसी काम के लिए किसी को एप्रोच नहीं किया, कभी किसी रिफ़ंड को वसूलने की कोई कोशिश नहीं की। मैं तो डाकखानों और बैंको से भी डरता और परहेज़ करता हू। इसी डर के कारण मेरा सर हमेशा झुका झुका सा रहता है, मेरी सूरत चुकी चुकी सी, और मेरी आखें बुज़दिल चोरो की सी। यह मै पहले कई बार कह चुका हूं।

सीढ़ियां चढ़ते हुए मैं अपने आप मे पूछ रहा था कि मैं क्यों उस संपादक के मुंह में जाने की हिमाकत कर रहा था। शायद मैंने संपादकों को दूसरे दफ्तरी इन्सानों से अलग और ऊपर कहीं रखा हुआ था, शायद उन्हें मैं अपने ही कबीले का समझता था। फिर भी यह खयाल बार बार आ रहा था कि मुझे उस सम्पादक से मिलने का खयाल छोड अपने डेरे लौट जाना चाहिए जहा माया मेरा इंतजार कर रही होगी, बशर्ते कि वह घर ढूंढने की अपनी मुहिम पर न निकल गयी हो तो। माया का खयाल आते ही मैं उसके बारे में चिंतित हो उठा—अपनी दुविधाओं से बचने के लिए मैं अक्सर माया के बारे में चिंतित हो उठता हूं, उसी तरह जैसे दात के दर्द को भूलने के लिए कोई मूर्ख दिल के दर्द का ध्यान करने लगे। लेकिन दुविधा-चिता के बावजूद मैं हौले हौले सीढ़ियां चढ़ता रहा, क्योंकि न जाने क्यों मुझे लग रहा था कि उस मुच्छल आदमी के पीछे पीछे चलता मैं उस सपादक के दफ्तर तक पहुंच जाऊंगा। उस वक्त और कोई वहा मुझे नजर नहीं आ रहा था। इमारत नकली रौशनी और सन्नाटे में

कसी हुई किसी बेढब बला की तरह लग रही थी। उस मुच्छल की पीठ पर आखें टिकाए मैं इस सोच से कुछ सान्त्वना बटोर रहा था कि अपने सारे सशयो के बावजूद मै अक्सर अपनी जिदो या बेवकूफियो पर जैसे तैसे डगमगाता हुआ अडिग रहता हू, ऐसा करने मे मुझे कभी कोई फायदा भले ही न हुआ हो।

वह मुच्छल दूसरी मजिल पर पहुंच एक कमरे में घुस गया तो मैने फिर इधर उधर झाकना शुरू कर दिया, किसी होशियार लेकिन अकुशल चोर की तरह। कोई कहीं नज़र नहीं आया। दरवाज़े सब बन्द थे। किसी दरवाजे को धकेलने की हिम्मत मुझे नही हुई तो मैं फिर सीढ़ियां चढ़ने लगा, यह सोच कर कि शायद तीसरी मंजिल पर कोई दिख जाए जिससे कुछ पूछ सकूं। वैसे भी सीढ़िया चढ़ते रहो तो यह भ्रम बना रहता है कि आप ऊपर उठ रहे हैं। ऊपर उठने के भ्रम का अपना नशा होता है। मुझे इस नशे का अनुभव कभी कभी ही होता है, अक्सर स्वप्नों या स्वप्निल स्थितियों में ही, अक्सर थोड़ी देर के लिए ही, अक्सर नशे की हालत में ही।

तीसरी मजिल पर एक औरत गलियारे में यूं टहलती नजर आयी जैसे अपने घर के लान में सैर कर रही हो। एक क्षण के लिए उस पर माया का गुमान हुआ। इस गुमान से जान निकलती हुई महसूस हुई। माया को मैं डेरे पर छोड़ कर आया था। उस इमारत में उसकी मौजूदगी किसी जादू के बग़ैर नामुमकिन थी। दो तीन बार ज़ाविये बदल बदल कर देखने पर वह माया से मिलती जुलती एक अजनबी औरत निकली। मुझे अपनी तरफ घूर घूर कर देखते हुए देख वह मुस्कराती हुई मेरे पास आ कर बोली—मै आपकी कोई मदद कर सकती हू?

मदद की पेशकश हमेशा मुझे मोम कर देती है लेकिन ऐसी पेशकशों का अनुभव मुझे कभी कभार ही होता है। अक्सर लोग तो मदद करने के बजाय मुझे मार डालने की ही कोशिश करते है। मै मानता हू कि किसी को मार डालना भी शायद उसकी मदद करने का ही एक रूप हो। उस औरत की आवाज में कोई स्वर ऐसा ज़रूर रहा होगा कि उसकी पेश की हुई मदद ने मुझे पिघला कर रख दिया। मुझे उसका मुक़ाबला उस मुच्छल से नहीं करना चाहिए था लेकिन मै कर रहा था। वह जितना जाबर था, वह उतनी ही कोमल थी।

—मै संपादक जी से मिलने आया हू।

मेरा जवाब खुद मुझे अजीब लगा। उस से अनुमान लगाया जा सकता था कि मैने उस औरत को सपादक की बीबी या सेक्रेटरी या कुछ और समझ लिया था लेकिन असलियत यह थी कि मेरे मुह से घबराहट मे ही वह वाक्य निकल गया था। कायदे से मुझे पूछना यह चाहिए था कि उस अखबार का दफ्तर कहां है। मैने उस औरत से मुआफी मागने के लिए तैयार होना शुरू कर दिया।

—आपको वक्त दिया गया था?

—जी नहीं।

—इतनी रात गये आप बगैर वक्त लिये आ गये?

उसके सवाल में सख्ती नहीं थी, सिर्फ़ हैरानी थी, इसलिए मैं सहमने के बजाय आश्वस्त ही हुआ, लेकिन कोई सफाई मुझे नहीं सूझी।

—बहुत ज़रूरी काम है?

—जी कह नहीं सकता क्योंकि मुमकिन है उन्हें या किसी और को वह बहुत जरूरी न लगे।

मैंने सच बोला था। कुछ और सच बोला होता तो यह भी मान लिया होता कि वह काम खुद मेरी नज़र में बहुत ज़रूरी नहीं था, क्योंकि बहुत जरूरी का दर्जा मैं बहुत कम कामों को ही दे पाता हूं। और अगर कुछ और सच बोला होता तो तो यह भी मान लिया होता कि उस वक़्त वह काम मेरी याद से उडा हुआ था, इसलिए वह जरूरी शायद नहीं था सिर्फ काम ही था।

उस औरत ने अब मुझे यूं देखा जैसे देखने के साथ परख भी रही हो। मैं उम्मीद कर रहा था वह अब कह देगी कि इतनी रात गये संपादक जी किसी ऐसे आदमी से नहीं मिल सकते जो पूरे आत्मविश्वास से इतना भी न कह सकता हो कि उसका काम बहुत जरूरी था।

—आप यहीं रुकिये, मैं पूछ कर बताती हूं। आपका नाम?

—सिफ़िर सिफ़र सिफ़र।

मेरा खयाल था वह खफ़ा हो जाएगी, या कम-से-कम एतराज उठाएगी, आप नंबर बता रहे है या नाम? लेकिन उसने मेरा नाम सुन आंख तक नहीं झपकाई मानो इस नाम के कई आदमियों को वह जानती हो। जब वह एक दरवाजा धकेल अंदर चली गयी तो मैं संपादक के साथ उसके संबंध के बारे में अनुमान लगाने लगा। मैंने फैसला कर लिया वह उसकी पत्नी ही होगी, प्रेमिका या सेक्रिटरी नहीं। प्रेमिका या सेक्रिटरी होती तो उसका बरताव भिन्न होता, शायद नितांत अनुदार भी होता। अगर मुझ में अक़्ल होती तो मैंने अपनी याद पर दबाव डाल यह पता चलाने की कोशिश की होती कि उस संपादक से मुझे काम क्या था। अगर और अक़्ल होती तो मैं जल्दी जल्दी सीढ़ियां उतर उस इमारत से बाहर निकल गया होता। अगर कुछ और अक़्ल होती तो मैं वहां गया ही न होता।

कुछ देर बाद एक घंटी यूं बजी जैसे कोई जानवर ज़िबह होते होते चिचला रहा हो। मैं समझ गया मुझे अंदर बुलाया जा रहा था। अब भी मौक़ा था मैं अंदर जाने के बजाय नीचे उतर जाऊँ। वह औरत शायद मुझे यह मौका देने के लिए ही बाहर नहीं आयी थी। मौक़ों का फायदा उठाने के लिए भी अक़्ल ज़रूरी होती है। मैं दरवाज़ा धकेल अंदर गया तो मुझे एक मुच्छल आदमी मेज़ पर झुका दिखायी दिया। उसने सर उठा कर मेरी तरफ़ देखा न सर हिला कर मुझे बैठने के लिए कहा। वह खुद बैठा हुआ था लेकिन ऐसी कुरसी पर कि मुझे वह न सिर्फ़ खड़ा दिखायी दिया बल्कि अपने सर पर खड़ा महसूस हुआ। हर मुच्छल आदमी हर दूसरे मुच्छल आदमी का ही एक रूप होता है इसलिए पहली निगाह में मुझे शक हुआ नीचे वाला मुच्छल आदमी ही किसी खुफ़िया रास्ते से ऊपर आ उस मेज़ पर क़ाबिज़ हो गया था, लेकिन फिर ग़ौर से देखने पर मेरा शक दूर हो गया।

अब मैं इंतज़ार कर रहा था वह मुझ से पूछेगा वह मेरे लिए क्या कर सकता है। मैं सोच रहा था अगर अचानक मुझे अपना काम न याद आ गया और कुछ और न सूझा तो हाथ जोड़ कर

कह दूगा, मै उनके दर्शनार्थ ही चला आया था, क्योंकि मैं उनके अनन्य प्रशमकों मे से एक हूं और एक अर्से से साहस बटोर रहा हू, आज सहसा हिम्मत उछली तो मै बिस्तर से उठ सीधा चला आया। मैं उनके सामने किसी मुजरिम की तरह खडा अपनी इस बात को बना संवार रहा था और उधर वे किसी गहरी सोच में डूबे हुए होने का अभिनय कर रहे थे और शायद यह प्रतीक्षा भी कि मैं कोई हरकत करू और वे मुझ पर पिल पड़े। मैं कोई हरकत न करने की कोशिश कर रहा था और शायद यह प्रतीक्षा भी कि वह औरत आ जाए क्योंकि मुझे उम्मीद थी कि वह औरत मेरी मदद करेगी, मुझे संपादक के क़हर से बचा लेगी, किसी सूक्ष्म या परोक्ष सहारे से। औरतों ने अक्सर मुझे सहारा दिया है, मर्दों ने अक्सर मुझे धोखा।

—आप इतनी रात गये किस काम से आए हैं?

उसकी आवाज़ सुन मैं चौंका। मुझे लगा वही आवाज़ कुछ ही देर पहले दूसरे मुच्छल आदमी के मुंह से निकली थी। मैंने सोचा शायद हर मुच्छल आदमी की आवाज हर दूसरे मुच्छल आदमी की आवाज जैसी ही होती हो और मैंने पहले कभी इस बात पर ध्यान न दिया हो।

—जी, यूंही आपके दर्शन करने चला आया था।

उसकी खूंख्वार हसी सुन मैं सहम गया। मैंने इधर उधर यू देखना शुरू कर दिया जैसे किसी कमरे में आ फंसा कोई कबूतर बाहर उड़ जाने के लिए कोई खुली खिड़की ढूंढ़ रहा हो। तभी मुझे वह औरत एक सोफे पर बिछी पड़ी दिखायी दी। वह मुस्करा रही थी। मुझे उसकी मुस्कराहट मे मदद नज़र आयी।

मैं उसकी मुस्कराहट को दुलारता हुआ दरवाज़े की तरफ़ बढ़ गया। मुझे महसूस हो रहा था जैसे मेरा काम हो गया हो।

उस मेले में मैं किसी खोए हुए बच्चे की तरह खड़ा इधर उधर देख रहा था। मुझे जब कुछ सूझता नहीं तो मैं इधर उधर देखना शुरू कर देता हूं। मुझे अक्सर कुछ सूझता नहीं। इधर उधर आने जाते लोगो मे से कुछ की निगाहें मेरी निगाहों मे टकरातीं और कोरी हो जातीं। इस तरह नकार दिया जाना मुझे बुरा भी लग रहा था, अच्छा भी। मुझे अक्सर हर चीज अच्छी भी लगती है बुरी भी, हर चीज़ न सही बहुत सी चीजें। मुझे उस मेले में नहीं होना चाहिए था, इसीलिए शायद मैं वहां था। धूमधाम और भीड़ भड़क्के के बावजूद मुकम्मल सन्नाटे की साएं साएं के कारण सारा वातावरण भूतैला सा प्रतीत हो रहा था। वैसे मुझे यह खयाल भी आया कि शायद मैं ही बिलकुल बहरा हो गया था। चिल्ला कर देखने की ख्वाहिश हुई कि मुझे अपनी आवाज़ सुनायी देती है या नहीं लेकिन चिल्लाने की हिम्मत नहीं हुई। क्योंकि डर था शायद गूंगा भी हो गया होऊं। सन्नाटे की साएं साएं से घबरा कर मैंने इधर उधर घूमना शुरू कर दिया, यह देखने के लिए कि वहां हो क्या रहा था। बहुत कुछ हो रहा था। कहीं किताबें बिक रही थीं, कहीं खिलौने, कहीं खाने पीने की चीजे, कहीं कपड़े, कहीं ज़ेवर जवाहरात, कहीं कुछ, कही कुछ। लोगों के गुच्छे उन चीज़ो पर मच्छरो और मक्खियों की तरह मंडरा रहे थे। औरतों की संख्या मर्दों की से मुझे कम नजर आयी। मर्दों से मुझे डर महसूस हो रहा था, औरतों से झेंप। माया उस वक़्त मेरे साथ नहीं थी। मै इस शक मे अशांति निचोड़ रहा था कि वह किसी और के साथ होगी।

मेले का फैलाव बहुत ज़्यादा था। कही कोई हद मुझे नजर नहीं आ रही थी। कई बड़े बडे ख़ैमे थे, कई ऊँची ऊँची अस्थायी इमारतें थीं, कई तरह के रंग-रूप चारों तरफ़ इतरा रहे थे, लेकिन मुकम्मल सन्नाटे के कारण माहौल मातमी ही था। बीच बीच में मैं भूल जाता था कि मुझे वहां नहीं होना चाहिए था। जब जब याद आता तो वहा से चल देने की धीमी सी कोशिश शुरू कर देता, लेकिन फिर कहीं न कहीं रुक कर किसी न किसी बेकार चीज पर रीझना शुरू कर देता।

अब अचानक मुझे भूख ने सताना शुरू कर दिया—खाने की भूख ने भी और किसी बेगानी देह में खो जाने की भूख ने भी। जब और कोई भाव या अभाव मुझे न सता रहा हो तो ये दोनो आदिम भूखें मुझे सताना शुरू कर देती हैं। खाने के सामान की कोई कमी नहीं थी। लोग मज़े से खा रहे थे। जानलेवा जिस्मों की भी वहां कोई कमी नहीं थी। कई जिस्म आपस में उलझे हुए थे, कई उलझने को लालायित नजर आते थे। मैं बेखुद सा हुआ जा रहा था। हर जिस्म में और खाने-पीने की हर चीज में मुझे माया का रचाव नज़र आने लगा था। मन

हो रहा था, एक हाथ से खाना शुरू कर दूं, दूसरे मे किसी जिस्म को टटोलना। लेकिन किसी दूसरे की नजर अब मुझ पर टिक नहीं रही थी, मानो सहसा मै अदृश्य हो गया था। तभी मुझे मेरा एक पुराना (और एक जमाने में अभिन्न) दोस्त मेरी तरफ़ आता नजर आया। उसके हाथो में खुराक से अटी एक प्लेट थी, उसके पीछे पीछे जेवरों से लदी-फदी एक औरत उसकी पूंछ सी दिखती चली आ रही थी। जब वह मेरे पास पहुंच कर रुक गया तो मेरा एक हाथ उसकी प्लेट की तरफ बढ़ा, दूसरा उसकी पूंछ की तरफ। जब मैंने उसकी प्लेट में से एक रसगुल्ला उठा कर अपने मुंह में डाल लिया, और उसकी पूंछ के गालों पर हाथ फेरते हुए कहा, क्या बात है, तो वह यूं हंसा जैसे कोई बड़ा किसी भोले बच्चे पर। उसकी पूंछ ने मेरा हाथ पकड़ कर उसके हाथ में देते हुए उसकी तरफ़ यूं देखा जैसे कह रही हो, यह हाथ मुझे मंजूर नहीं। मेरे दोस्त का हाथ इतना ठण्डा था कि मेरे मुंह से निकल गया, तुम तो लगता है अभी अभी कब्र में से निकले हो। इस पर वह हंसा लेकिन अब की बार उसकी हंसी किसी फिल्म में हंसते किसी कंकाल की सी थी। उसकी पूंछ ग़ायब हो गयी थी, मेला मर-मिट सा गया था, मुझे याद हो आया कि मेरे उस दोस्त को गये बीस बरस होने वाले थे। एक जमाने में मैं उसकी पत्नी से इकतरफ़ा प्यार किया करता था।

वह एक मसनद पर बैठे मुस्करा रहे हैं। उन्हें मालूम नज़र आता है मैं क्या सवाल ले कर उनके पास आया हूं। मुझे याद नहीं मैं उन से क्या पूछने आया हूं। उन्हें मालूम नज़र आता है मुझे याद नहीं मैं उन से क्या पूछने आया हूं। वह मुस्करा रहे हैं और मुझे याद करने का मौक़ा दे रहे हैं। जब उनके चरण छू रहा था, तभी पूछ लेना चाहिए था कि मैं उन से क्या पूछने आया था। वह शायद मुझे बताते नहीं, कह देते जब याद आए तब पूछ लेना। यह भी मुमकिन है मैं अपने सवाल भूला नहीं, उनकी मुस्कराहट के आलोक में वे मुझे अनावश्यक नज़र आने लगे हों। लेकिन अगर ऐसा होता तो मुझे परेशानी न होती, यह महसूस न होता कि वह मुझे अक्षम ठहरा रहे हैं, यह महसूस करवा रहे हैं कि मैं अभी तक अपनी अक्षमताओं से ऊपर नहीं उठ सका।

अब मैं उनके पास नंगे फर्श पर बैठा हुआ हूं। मैंने मौन रहने का फैसला कर लिया है। उन्हें इस फ़ैसले की खबर मिल गयी है। उनकी मुस्कराहट में एक रंग और आ गया है। अब वह मेरे सवालों के इन्तज़ार में नहीं, किसी और सवाली के इन्तजार में हैं। मैं भी अब उसी सवाली के इन्तज़ार में हूं। शायद वही उन से वे सवाल पूछ ले जो मैं पूछना चाहता था, लेकिन जो मुझे भूल चुके हैं, जिन्हें उन्होंने बूझ तो लिया है लेकिन जिनके जवाब वह देना नहीं चाहते। मुझे कोई भरोसा नहीं कि वह सवाली आएगा, उन्हें कोई चाह नहीं कि वह सवाली आए, फिर भी हम दोनों उसके इन्तजार में चुप बैठे हैं—वह मसनद पर, मैं उनके पास नंगे फ़र्श पर।

वह हाल मुझे पहले तो मेरे दिमाग की तरह एकदम खाली नज़र आया, फिर कुर्सिया नजर आयीं, पर्दे नज़र आए, मच पर मेज़ और दो कुर्सिया नजर आयीं, मेज़ पर फूल नजर आए, एक बोतल नजर आयी, उसकी बग़ल में पड़े दो गिलास नज़र आए, लेकिन कोई इनसान नज़र नहीं आया। मुझे शक हुआ शायद मैं वक्त से बहुत पहले पहुंच गया था। घड़ी देखी तो पता चला कि तैशुदा वक्त गुज़र चुका था। मैने सोचा सब लोग इंतज़ार करने के बाद नाराज़ हो कर चले गये होंगे, लेकिन उस सूरत में वह बोतल गिलास फूल भी वहां न होते, बत्तियां गुल होतीं, हाल बंद होता, और दरवाजे पर मेरे नाम कोई फटकार चिपकी होती। मुझे खयाल आया अपने यहां सब देर से पहुंचने के आदी हैं, इसलिए शायद अभी कोई आया ही न हो, सब ने यही सोचा हो मैं भी देर से पहुंचूंगा। इस खयाल के बाद मुझे पश्चात्ताप होना शुरू हो गया कि मैं और देर से क्यों नहीं पहुंचा था कि मुझे हमेशा यह खतरा क्यों रहता है कि अगर मैं ज्यादा देर से पहुंचूंगा तो लोग नाराज हो कर चले जाएंगे। इस पश्चात्ताप से पीछा छुड़ाने के लिए ही शायद मैं उस बोतल की तरफ बढ़ गया। बोतल में शरबत भी हो सकता था, शराब भी, लेकिन शराब की संभावना बहुत कम थी, फिर भी मैंने यह कल्पना कर ली कि वह शराब ही थी और एक बड़ा पेग डाल कर उसे दो तीन क्षण शिद्दत से घूरा। फिर उसे मुंह से लगाने ही वाला था कि एक करारी औरत दूसरा गिलास हाथ में लिए मेरी बगल में खड़ी दिखायी दी। मुझे हैरानी तो हुई, यह भी महसूस हुआ जैसे किसी ने मुझे कोई चोरी करते पकड़ लिया हो, यह आभास भी हुआ कि उस औरत को मैं पहले भी कहीं देख चुका था, यह मन भी हुआ कि उससे पूछूं वह कौन थी, कहां छिपी हुई थी, दूसरे लोग कहां थे, उस बोतल में शरबत था या शराब, लेकिन मैंने कुछ और करने कहने के बजाय एक बड़ा पेग उसके गिलास में डाल दिया—उसके गिलास में डालते समय कड़वी महक का एक झौंका सा मेरी तरफ आया और मुझे यक़ीन हो गया वह शराब ही थी। इस यक़ीन की रोशनी में वह औरत मुझे और करारी नज़र आयी।

औरत ने कहा चीअर्ज़। मैं उस क्षण उसी शिद्दत से उसे घूर रहा था जिस से कुछ देर पहले मैंने अपने गिलास को घूरा था, इसलिए जवाबी चीअर्ज़ कहने में मुझे कुछ देर लगी। उस औरत की सजधज और सूरत और आवाज में आत्म-मुग्धता की छटा देख मैं उसके खिलाफ़ सा हो गया था, लेकिन उसे अपने खिलाफ़ नहीं होने देना चाहता था, इसलिए फर्जअदायगी के तौर पर आखिर मैंने भी कह दिया, चीअर्ज, और फिर आंखें मूंद कर ग़टागट पेग पी गया। पी लेने के बाद भी कुछ देर तक मेरी आंखें मुंदी रहीं, बल्कि अब ज़ोर से मिच सी

गयी, मेरे मुंह की ही तरह, क्योंकि शुद्ध शराब की कड़वाहट को सहने के लिए आंखों और मुंह का कसाव-मिचाव जरूरी था, जिसके बीचोबीच मुझे यह खयाल आ रहा था कि अगर उस औरत की आंखें उस वक्त खुली होंगी तो उसने मेरी मिची-मुचड़ी सूरत देख ली होगी। मैं उस औरत के खिलाफ तो हो गया था लेकिन उससे आज़ाद नहीं हुआ था, मेरे बारे में उसकी राय की चिंता मुझे थी। जब आंखें आखिर खुलीं तो पांच मर्द उसे घेरे से खड़े उसे घूरते हुए दिखायी दिये। उसका गिलास भी खाली था। उन मर्दों की नज़रों में मुझे नुक्ताचीनी दिखायी दी, मेरी हरकत पर नहीं जितनी उस औरत की हरकत पर। उन्होंने शायद हम दोनों को ग़टागट पीते हुए देख लिया था। उस औरत को उनकी प्रताड़ना से बचाने के लिए मैंने धीमे से कह दिया, यह मेरे साथ हैं। इस पर वह औरत यूं मुस्करायी जैसे मैंने कहा हो, यह मेरी साथिन है। मुझे उसकी मुस्कराहट पर फीका सा गुस्सा आया, उस गुस्से में लिपटी हुई माया नज़र आयी, याद आया माया मेरे साथ नहीं थी, मेरी मदद नहीं कर सकेगी, मन हुआ उस औरत को एक तरफ़ ले जा कर कह दूं कि उसे मेरी मदद करनी होगी, खयाल आया उस तरह की औरते मेरी मदद नहीं कर सकतीं, मेरा तिरस्कार ही कर सकती हैं, क्योंकि मैं उनके वर्ग का नहीं, कभी नहीं हो सकता।

उन पाचों मर्दों में से एक नामर्द ने मुझ से कहा—आप यहां पीने के लिए आए हैं या भाषण देने के लिए?

उसके 'आप' में वह औरत भी शामिल थी। बाक़ी के चारों मर्द अब मुझे यूं देख रहे थे जैसे कह रहे हों—अब बोल बच्चू!

मैंने उस औरत की तरफ़ देखा। वह खाली गिलास हाथ में लिये मुस्करा रही थी, तटस्थ मुद्रा में, जैसे वह मेरे साथ भी हो, उनके साथ भी हो।

—जब मैं यहां पहुंचा तो यहाँ और कोई नहीं था, मैं प्यासा था, मैंने समझा बोतल में शरबत होगा, मैंने दो घूंट खुद ले लिये, दो इन्हें दे दिये, मुझे मालूम होता शराब है तो शायद....

—तो शायद आप बोतल को ही मुंह लगा लेते!

अब की बार दूसरा मर्द बोला था—उसकी सूरत से लगता था जैसे वह कोई पेशेवर पहलवान हो। मैं खामोश रहा।

—बोतल में था तो शरबत ही, आपने ही उसे शराब में बदल दिया होगा।

वह नामर्द बोला था। मैं चक्कर में पड़ गया। फ़ैसला न कर सका कि उसके इस आरोप को मज़ाक़ में टाल दूं या कोई कड़वा सा जवाब दूं। मेरे मुंह में शराब का कड़वा करारा जायक़ा अभी तक रुका हुआ था, हलक से उतर कर शराब ने अन्दर जो एक तेज सी लकीर खींच दी थी वह अभी तक मिटी नहीं थी। उस औरत का मुखमंडल भी तमतमाया हुआ था। उसके अंदर भी वैसी ही लकीर खिंची हुई होगी। वह मुझे अब यूं देख रही थी जैसे कोई बच्ची किसी जादूगर को। उधर वह नामर्द अभी भी मुझ से सफाई तलब करने की मुद्रा में खड़ा मुझे घूर रहा था।

मैंने हलीम आवाज़ में कहा—अर्ज़ी साहिब, क्यों शर्मिंदा करते है, इस नाचीज़ में शरबत को शराब मे बदल देने का मसीहाई कमाल कहां!

मुझे अपने लहजे के तकल्लुफ पर गर्व भी हुआ, आश्चर्य भी। साथ ही सारी स्थिति के वैचित्र्य पर अपार विस्मय भी। उधर वह मर्देनामर्द फैसला नहीं कर पाया था कि मैं उसका मज़ाक उड़ा रहा था या अपना या उसका भी और अपना भी या यूंही गत्र बोलने मे कतरा रहा था। इस बीच कुछ और लोग, मर्द और औरतें, आ चुके थे। इन लोगों में से कुछ से मेरा पीला सा परिचय था लेकिन उनके नाम उस वक्त मुझे भूले हुए थे। मैं खाली गिलास उठा उठा कर नये आने वालो का अभिवादन कर रहा था, वह औरत अपना खाली गिलास लहरा लहरा कर उन्हें बैठने का संकेत दे रही थी। उसकी अदाओं और हरकतों ने मुझे कुछ नरमा तो दिया था लेकिन अब भी चेतना मे कहीं माया की अनुपस्थिति चुभ रही थी। जब उन पहले पांच मर्दों समेत सब लोग बैठ गये तो हम दोनो ने खाली गिलास मंच पर पड़ी मेज पर रख दिये और उस औरत ने मेरा हाथ यूं पकड़ लिया जैसे सबको जतला देना चाहती हो कि वह मेरे साथ ही नहीं, मेरी साथिन भी थी। मैं अपना हाथ झटके से छुड़ा लेता लेकिन सब मेरी तरफ देख रहे थे, जिस से मेरा हाथ छुड़ा लेना उतना ही ग़लत होता जितना उसका मेरा हाथ पकड़ लेना ग़लत था। फिर एक शख्स ने झट से हमारी तसवीर खींच ली और फ़्लैश के बुझते ही वह औरत मेरा हाथ-साथ छोड़ दूसरों के बीच जा बैठी।

अब मैं उनके सामने मंच पर यूं अकेला खड़ा था जैसे कोई मन्सूर किसी हुजूम के सामने। मुझे लगा कि उन सबके झोलो-जेबों वगैरह में पत्थर भरे हुए थे, उस औरत के थैले में भी, और किसी भी क्षण वे सब मुझ पर पथराव शुरू कर देंगे। इस अंदेशे को दूर करने और सामने बैठे लोगों का ध्यान बदलने के लिए मैंने एक जेब से एक मुचड़ा हुआ काग़ज़ निकाल लिया। कांपते हाथों से उसे खोलते हुए मुझे वह कोरी आवाज सुनायी नहीं दी जो हर किस्म के काग़ज से अनायास आ जाती है। मेरा वह कागज मुचड़ा हुआ ही नहीं था, मुर्दा भी था। मुझे खयाल आया वह मेरी जेब में पड़ा पड़ा मर गया था और उसकी मौत की ज़िम्मेवारी मुझ पर आती थी। उस शरबतनुमा शराब का ही असर था या किसी और कमजोरी का भी, मैं कह नहीं सकता लेकिन मुझे काग़ज़ की मौत पर रोना आ गया। अब मैं सब के सामने खड़ा यूं रो रहा था जैसे मुझे रोने के लिए ही वहां बुलाया गया हो। रोते रोते भी मैं पथराव की ही प्रतीक्षा कर रहा था क्योंकि सामने बैठे लोगों के चेहरे और सख्त हो गये थे और मुझे यक़ीन हो गया था कि उनकी जेबें-झोले-थैले मुहावरे के नहीं असली पत्थरों से भरे हुए थे। मन हुआ हाथ जोड कर उन से क्षमा मांग लूं, कहूं—मेरा कागज मर गया है, मैं उसके मातम में एक महीने का मौन व्रत शुरू कर देना चाहता हूं, अभी से, इसलिए आज मैं कोई भाषण नहीं दे सकूंगा। फिर खयाल आया यह सुन कर वह और बिफर उठेंगे, इसलिए मैंने जैसा-तैसा भाषण देने का फ़ैसला कर लिया।

उस मुर्दा कागज़ को मैंने अपनी आखों के सामने एक पुराने झीने पर्दे की तरह तान लिया और कहा—दोस्तो, यह मेरे पिता का मेरे नाम आखिरी खत है, इसमें उनकी आखिरी हिदायतें दर्ज हैं, मेरे लिए, लेकिन मैं समझता हूं वे आप सबके लिए भी हैं, इसलिए इन

हिदायतों को ही मैंने अपने भाषण में बाधने का प्रयास किया है जिसको मैंने शीर्षक दिया है एक नाकाम पिता का अंतिम उपदेश। अपने भाषण को भी मैंने इस कागज़ के साथ नत्थी किया था लेकिन जैसा कि आप देख रहे हैं इस काग़ज के साथ कुछ भी नत्थी नहीं है, और मैं शर्म और परेशानी के मारे पानी पानी हुआ जा रहा हू, इसीलिए आपको लग रहा होगा मैं रो रहा हूं। मैं नहीं चाहता आप यहां से खाली और खफ़ा लौटें। मैं मुंह ज़बानी वह भाषण देने की कोशिश करूंगा।

इतना कह कर मैंने आंखें मूंद लीं, कुछ कुछ उसी तरह जिस तरह कुछ बड़े गायक आलाप शुरू करने से पहले मूंद लेते हैं। पहले पत्थर और अपने पहले वाक्य की प्रतीक्षा में मैं कुछ देर मुह खोल खड़ा रहा। न पत्थर आया न वाक्य निकला। मैंने आंखें खोल दीं, मुंह बंद कर लिया और जल्दी जल्दी अपनी जेबें टटोलनी और उलटनी शुरू कर दीं। उस मुर्दा काग़ज़ को मैंने होंठों में दबा लिया ताकि दोनों हाथों से अपनी जेबों की तलाशी ले सकूं। औरों का मुझे पता नहीं, खुद मुझे यही महसूस हो रहा था कि मैं किसी मसखरे की कच्ची सी नक़ल ही उतार रहा था। मुझे मालूम था कि मेरा भाषण मेरी किसी जेब में नहीं था। उस भाषण की कहानी मैंने वहीं खड़े खड़े घड़ ली थी। कई किस्म की छोटी छोटी पर्चियां मेरी जेबों से बरामद हो रही थीं। अपनी जेबों और उन पर्चियों की संख्या पर मुझे हैरानी हो रही थी। यक़ीन नहीं हो रहा था कि मेरी इतनी जेबें हैं और उनमें इतनी कुचली मसली पर्चियां ठुसी पड़ी हैं। घबराहट में मैं शायद कुछ गिनीचुनी पर्चियों को ही बार बार अपनी गिनीचुनी जेबों से निकाल निकाल कर उन्हीं में फिर फिर ठूंस रहा था। मुझे झुंझलाहट हो रही थी कि उन कमबख्तों को मेरी हरकतों पर हंसी क्यों नहीं आ रही थी, उनमें से कोई उठ कर मेरी मदद क्यों नहीं कर रहा था, वह औरत कहां उड़ गयी थी, वह बोतल कौन उड़ा ले गया था। मेरे होठों में दबा वह मुर्दा काग़ज़ बदबू छोड़ रहा था और मुझे खतरा था घबराहट में मैं उसे निगल जाऊँगा और फिर उल्टियां करना शुरू कर दूंगा। सोचते, झुंझलाते और जेबों की तलाशी लेते लेते आखिर मैं इतना थक गया कि मेरे हाथ सुस्त पड़ने लगे, मेरे होंठों की पकड़ ढीली होने लगी, सामने बैठे लोगों के आकार धुंधलाने लगे, और उस औरत की सूरत और आवाज़ की याद भी और उस बोतल में बची शराब भी और पथराव का अंदेशा भी।

मैं जूंही उस हाल में दाखिल हुआ मुझे इलहाम हो गया कि मै कुछ भी बोल नही सकूगा, कि मेरे पास कहने के लिए कुछ भी नहीं था। मैं अपने ठिकाने से तो भाषण की तैयारी कर के ही निकला था लेकिन उस इलहाम पर अविश्वास मैं नहीं कर सकता था। ऐसा मेरे साथ पहले भी अनेक बार हो चुका है, इसलिए मुझे हैरानी नहीं हुई, रंज जरूर हुआ कि ऐसा मेरे साथ ही क्यों होता है। पहले पहल जब सारी तैयारियों के बावजूद ऐन मौके पर अपने सोते सूख जाते हुए महसूस होते थे तो मैं बहुत घबराया करता था, लेकिन अब मुझे अभ्यास हो गया है, अब मैने ऐसी स्थितियों से निबटना सीख लिया है। निबट तो ख़ैर जैसे-तैसे पहले भी लिया करता था लेकिन अब आसानी से निबट लेता हूं---हकीकत में भी, ख्वाब में भी। शुरू शुरू में हक़ीकत के मुकाबले में ख्वाब में ऐसे अवसरों पर कहीं ज़्यादा खिफ़्फ़त हुआ करती थी, कहीं ज़्यादा शर्म आती थी, अब नहीं। कल रात की घटना एक कटे-फटे ख़्वाब में ही घटी होगी, इसीलिए साफ नहीं कि वह कोई क्लास थी या सभा। अपने भाषण का विषय उस वक्त याद था न अब याद है। अगर मैंने कोशिश की होती तो शायद विषय भी याद आ जाता, उसपर जो तैयारी कर के ले गया था, वह भी। कोशिश करने के बजाय मैं काइयां हो गया था। हाल में दाखिल होते ही जब मुझे मालूम हो गया कि मैं एकदम खाली और खुश्क हो गया हू तो पहले तो मैंने इधर उधर देखना और मुस्कराना शुरू कर दिया, फिर इधर उधर बैठी उन बनी-ठनी औरतों के पास जा जा कर हाथ जोड़ना, जो अपनी सज-धज के कारण बारसूख़ नज़र आ रही थीं। वे औरतें मेरे अभिवादन पर खुश नज़र आयीं। मन ही मन मैं अपनी मुसीबत को टालने की कोई तरकीब भी सोचता जा रहा था। और फिर अचानक वह तरकीब मुझे सूझ गयी। उस क्षण मै एक मोटी मीठी महिला के सामने खड़ा हाथ जोड़ रहा था और वह मेरी विनम्रता पर गद्‌गद् हो रही थी। जूंही वह तरकीब मेरे मन में कौंधी मैंने उस महिला से इजाजत ले ली और लपक कर मच पर जा चढ़ा। माइक के साथ मुंह लगा कर मैंने कहा : दोस्तो, आज भाषण देने के बजाय एक प्रयोग करना चाहता हू, उसके बाद अगर देना पड़ा तो भाषण भी दे दूंगा, हालांकि सच तो यह है कि मुझे अपने भाषण का विषय भी भूल गया है, वस्तु भी, ऐसा मेरे साथ पहले भी कई बार हो चुका है और हर बार यह सोच कर मुझे दुख होता है कि दूसरों के साथ ऐसा क्यों नहीं होता। शायद होता भी हो और वे किसी को पता न चलने देते हों। ख़ैर तो आज मैं आपके सामने अपने भाषण का एक अनूठा विकल्प रखना चाहता हू। मै पूछना चाहता हू कि अगर मैं यह पेशकश करूं कि आप मेरा भाषण सुनने के बजाय मेरे साथ चले और एक बढ़िया रेस्तोरां में

कुछ खाए, कुछ पिये। मैं देख रहा हूं कि आप में से कुछ लोग सोच रहे हैं कि मैं मजाक कर रहा हूं। मैं मजाक तो कर रहा हूं लेकिन आप से नहीं, यकीन कीजिए, मैं सिर्फ यह देखना चाहता हूं कि आप में से कितने लोग सच बोलने की हिम्मत कर सकते हैं। मैं देख रहा हूं कि आप में से कुछ लोग सोच रहे हैं मैं आपका इम्तहान ले रहा हूं। मैं इम्तहान तो ले रहा हूं लेकिन आपका नहीं, यकीन मानिए। तो अब वोटिंग का वक्त आ गया है। मेरा प्रस्ताव एक बार फिर सुन लीजिए। मैं देख रहा हूं कि प्रस्ताव एक बार फिर सुनने में आप अपना वक्त बरबाद नहीं करना चाहते। न सही। तो जो लोग भाषण सुनना चाहते हैं हाथ ऊपर उठाएं। मैं देख रहा हूं कि तीन हाथ उठे हैं और वे तीनों मेरे उन तीन दोस्तों के हैं जो दरअसल मेरे दुश्मन हैं और मुझे हंसता देखने के किसी अवसर से नहीं चूकते। खैर तो अब बाकी लोगों को हाथ उठाने की जरूरत नहीं। आप लोग मेरे साथ चलें!

उन तीन दोस्तों को छोड़ सब मेरे साथ हो लिये।

मैं खुश था कि सब कुछ ख्वाब में ही हो रहा था, हकीकत में नहीं, वर्ना मैं उन सबकी खातिर करते करते खुद तबाह हो गया होता——

सेमिनार अभी शुरू भी नहीं हुआ था लेकिन लग यूं रहा था जैसे अभी अभी खत्म हुआ हो। एक अध्यक्षनुमा शख्स एक टीले पर बैठा चारों तरफ देख रहा था, ऐसी अदा से कि लगे जैसे कोई सेनापति अपनी बिखरी या बिफरी हुई सेना को। उसकी मुस्कान उसकी चांद की ही तरह चमक रही थी, उसकी चांद किसी चांद की तरह। उसके होंठों के कोनों से दो सुर्ख लारें किसी मसखरे की मूछों की तरह लटक रही थीं। जिस टीले पर वह विराजमान था वह इतना ऊंचा था कि कायदे से उसकी सूरत मुझे इतनी सफ़ाई से नहीं दिखनी चाहिए थी, लेकिन उसकी आत्ममुग्धता का आलोक उसकी सूरत को ऐसी आब दे रहा था कि मुझे लगा जैसे उसके चेहरे की त्वचा के पीछे कोई बड़ा बल्ब जल रहा हो। उसकी बग़ल में उसका एक मुसाहिब बैठा हुआ था जिसकी शक्ल चांदी के एक बड़े चमचे से मिलती थी। वह भी प्रदीप्त तो था लेकिन साफ़ पता चलता था कि उसका प्रकाश उसका अपना नहीं था। वह भी चारों तरफ देख तो रहा था लेकिन साफ़ पता चलता था कि वह सेनापति नहीं था, वह सेनापति का अंग-रक्षक ही था।

कुछ विशेष अतिथि एक दूसरे टीले पर बैठे हुए थे। उनमें से एक ने एक बांके बौने को अपने कंधे पर बिठा रखा था, इस तरीके से कि वह बौना एक बड़े बंदर सा भी दिखायी देता था और किसी लेखक के आधे बुत सा भी। उसे देख मुझे हैरानी भी हुई, हंसी भी आयी, लेकिन दोनों को दबा मैं उसे यूं देखता रहा जैसे वह कुदरत का कोई ऐसा करिश्मा हो जिसे ध्यान से देखते रहने से मेरा उद्धार हो जाएगा। उद्धार तो नहीं हुआ लेकिन कुछ देर बाद मुझे अनायास याद आ गया कि उस बौने को मरे ग्यारह बरस हो गये थे लेकिन उसके अनुयायी अभी तक खास खास अवसरों पर उसे अपने कंधों पर बिठा लाते हैं—उसकी महिमा का बखान करने के लिए, अपनी उपासना का प्रदर्शन करने के लिए, उस बौने की आत्मा को प्रसन्न रखने के लिए, अवसर की शोभा को और ऊपर उठा देने के लिए। जिस शख्स ने उसे उस रोज़ अपने कन्धे पर बिठा उठा रखा था, उसकी सूरत गर्व और शायद बोझ के कारण सुर्ख हुई जा रही थी। वह बीच बीच में बड़ी मुश्किल से अपनी गरदन टेढ़ी कर के उस बौने की सूरत को यूं देख लेता था जैसे अपने आपको भी आश्वस्त कर रहा हो, उस बौने को भी, और हर बार वह बौना झुक कर उसका सर चूम लेता था। ग्यारह साल पुराने मुर्दे आम तौर पर ऐसे करतब नहीं दिखा पाते, लेकिन हमारे यहां के मुर्दों की करामात का कोई ठिकाना नहीं, वे जो चाहें कर और करवा सकते हैं।

मैं उस बौने को देख रहा था और सोच रहा था हमारा देश कितना महान है, हमारे लेखक कितने महान हैं कि मर जाने के बाद स्वर्ग या नरक चले जाने के बजाय अपने अनुयाइयों के कंधों पर बैठे यहीं इस ताक में घूमते रहते हैं कि कोई संगोष्ठी वगैरह हो तो वहां पहुंच कर चमकना शुरू कर दें। मैं सोच रहा था कि अगर कोई शख्स उठकर चिल्लाना शुरू कर दे कि मृत लेखकों को संगोष्ठियों में नहीं लाना चाहिए कि उस से कई साहित्यिक बीमारियां फैल सकती हैं तो मरे हुए लेखकों के अनुयायी उसका मुंह नोच डालेंगे। इसी डर के मारे मैंने अपना रूमाल अपने मुंह में ठूंस रखा था। संगोष्ठियों में मुझे अक्सर अपना मुंह इसी तरह बंद रखना पड़ता है, फिर भी मुंह में कुछ अनापशनाप फूट निकलने का अन्देशा बना रहता है।

वहां एक टीला और भी था। वह दूसरे दोनों टीलों से कुछ कम ऊंचा था। उस पर बैठे तीन भीमकाय भाट भद्दी आवाज में उस अध्यक्ष नुमा शख्स का, उसके मुसाहिब-चमचे का, विशिष्ट अतिथियों का, कंधे पर सवार मुर्दा लेखक का, उसके अनुयाइयों का, साहित्य की राजनीति का, और राजनेताओं के साहित्य का गुणगान कर रहे थे।

जहां मैं जमीन पर बैठा हुआ सब देख सुन रहा था, मेरे जैसे कई और भी थे। जमीन साफ़ नहीं थी। अचानक हम में से कोई न कोई यूं उठ खड़ा होता जैसे उसे किसी बिच्छू या बिच्छू-बूटी ने काट खाया हो, और वह अपनी पतलून या धोती यूं झाड़ने लगता जैसे नंगा हो जाने की धमकी दे रहा हो। जब कोई ऐसा करता तो बाकी के हम सब धूल के कारण खांसना और छींकना शुरू कर देते और अध्यक्षीय टीले से आवाज आती—भरी सभा में पतलून या धोती झाड़ना हमारी परंपरा के प्रतिकूल है, हमारी मर्यादा का मज़ाक है; इसलिए मैं अपने भाई से विनती करूंगा कि अगर उसे खुजली हो रही है या दुर्भाग्य से किसी बिच्छू वगैरह ने काट लिया है तो वह कहीं और जा कर अपनी पतलून या धोती झाड़े, भरी सभा में अपनी अशालीनता का प्रदर्शन न करें।

अध्यक्षीय आदेश पर हमें हंसी तो आ जाती, उसका और कोई असर हम पर न होता। हंसी का दौरा काफी लंबा होता। ऐसे ही एक दौरे के दौरान हम में से एक शख्स खड़ा हो कर अपनी पतलून को अन्धाधुन्ध झाड़ने लगा, लेकिन जिस कीड़े या बिच्छू ने उसे काटा था वह झड़ के नहीं गिरा तो उसने पतलून उतार कर उसे अपने सर के ऊपर यूं घुमाना शुरू कर दिया जैसे किसी नाईट क्लब की कोई नर्तकी अपनी स्कर्ट या चोली उतार कर उसे दर्शकों की तरफ फेंकने से पहले अपने सर पर घुमाती है—कूल्हे मटकाती और छातियां उछालती हुई। हमारे बीच बैठी महिलाओं के सर तो लज्जा से उनके घुटनों पर झुक गये लेकिन उनकी हंसी को उनकी लज्जा भी न रोक सकी। पतलून घुमाने वाले ने कच्छा तो पहना हुआ था लेकिन वह आगे पीछे से फटा हुआ था और उसकी कमीज छोटी थी और ऊपर उठ उठ जाती थी। उधर अध्यक्षीय टीले से आदेश दिया जा रहा था कि पतलून घुमाने वाला भाई फौरन पतलून पहन ले नहीं तो उसे जबरदस्ती से पतलून पहना दी जाएगी। हमारी हंसी के हिचकोले इस धमकी से बढ़ गये थे लेकिन मैंने देखा कि उस आदमी ने पतलून पहन ली थी।

अब सेमिनार शुरू हो गया था। उस मरे हुए लेखक ने ऊंची आवाज में बोलना शुरू कर दिया था, उसे शायद किसी और सेमिनार में शामिल होने की उतावली थी। अध्यक्ष को अचानक

खासी का दौरा पड़ गया था। उसका मुसाहिब चमचा एक हाथ से उसकी पीठ को सहला रहा था दूसरे से उसकी छाती को और उसके कान में यूं मुंह लगाए हुए था कि हम फर्शनशीनों को लग रहा था जैसे वह उसे चूम रहा हो। जिस शख्स ने उस मरे हुए बौने को अपने कंधे पर उठा बिठा रखा था वह नाच रहा था, इसलिए उस बौने का भाषण भी मुझे नाचता हुआ सुनायी दे रहा था। अगर मैंने अपने मुंह में रूमाल न ठूंस रखा होता तो मेरी हंसी फूट निकली होती। मुंह में घुटी हंसी के कारण मुझे बहुत तकलीफ़ हो रही थी, लग रहा था कि मेरा गला फट जाएगा। मेरी बगल में बैठी एक औरत ने मेरी बुरी हालत देख ली होगी। उसने मेरे रूमाल का एक सिरा किसी तरह ढूंढ निकाला और उसे पकड़ खींचना शुरू कर दिया। रूमाल के साथ ही मेरी हंसी का एक रेला मेरे मुंह से छूट निकला। अध्यक्ष के मुसाहिब चमचे ने दहाड़ा, खामोश! मैं खामोश हो गया। उस औरत ने मेरा गीला रूमाल मुझे लौटाते हुए हौले से कहा, कहो थैंक यू! मैंने अपने पांव से उसका पांव दबा दिया तो उसके मुंह से एक महीन सी 'ऊई' निकली और मैंने कहा, सॉरी! अध्यक्ष के मुसाहिब चमचे ने फिर दहाड़ा, खामोश! हम दोनों की हंसी एक साथ छूट निकलने वाली ही थी कि मेरे हाथ ने लपक कर उसका और उसके हाथ ने लपक कर मेरा मुंह बंद कर दिया! उधर वह मरा हुआ बौना बोले जा रहा था, इधर मैं अपनी जबान से उस औरत की हथेली पर कुछ लिखने की कोशिश कर रहा था और वह औरत अपनी जबान से मेरी हथेली पर कुछ लिखने की।

मैं कुछ कहने की कोशिश में हकला रहा था और वे सब पट्टियां उठा उठा कर मेरी नकल उतार रहे थे। पट्टियां उठाए बगैर भी वे मेरी नकल उतार सकते थे लेकिन उन्हें शायद मालूम था कि पट्टियां उठा कर नकल उतारने से वे मुझे ज्यादा चिढ़ा सकेंगे। मैं कभी मुट्ठियां भींच कर उन्हें धमकाता, कभी दांत पीस कर। वे जवाब में मुट्ठियां भींच लेते या दांत कस लेते और फिर इस तरह से हंसते जैसे दुनिया का सब से बड़ा मसखरा उनके सामने खड़ा अपने कमाल दिखा रहा हो। मुझे कुछ होश नहीं था कि मैं क्या कहने की कोशिश कर रहा था। मेरे अन्दर कहीं यह कामना भी मचल रही थी कि वे सब मुझ पर पिल पड़ें, मुझे मार डालें। अन्दर ही अन्दर मैं स्वीकार कर चुका था कि मेरे पास कहने को कुछ नहीं था, अगर था भी तो मैं उसे कह नहीं सकूंगा, कि मेरा आक्रोश व्यर्थ था, उनका परिहास वाजिब था, कि मुझे मान लेना और कह देना चाहिए कि मैं कुछ भी कह सकने के काबिल कभी था न अब हूं, कि मुझे अपने होने पर शर्म आ रही है, कि वे सब खुल कर मेरी खिल्ली उड़ाएं, मुझे खाक में मिला दें। जब कभी मुझे इस तरह का अनुभव होता है तो मैं सिफर हो जाता हूं। इस तरह का अनुभव मुझे सिर्फ रात को होता है, दिन के दौरान सिर्फ उसकी आहटें सुनायी देती रहती हैं। दिन में मुझे अपने हक में तरह तरह के तर्क सूझते रहते हैं, अपने लिए तरह तरह कि रिआयतें सूझती रहती हैं, इस ख्याल से सहारा मिलता रहता है कि अगर मैं कुछ कह नहीं पा रहा तो दूसरे कौन से बड़े तीर चला रहे हैं, इस सोच से शक्ति मिलती रहती है कि मैं असमर्थ उतना नहीं जितना ईमानदार और ईमानदारी के कारण ही मैं अपनी असमर्थता को छिपाने की वैसी सफल कोशिशें नहीं कर पाता जैसी कि दूसरे करते हैं, क्योंकि मुझ में आत्मविश्वास नहीं, आत्माशंका है, आत्माशंका ही है। दिन के दौरान ये सारी तिफ़ल-तसल्लियां मुझे संभाले रहती हैं लेकिन रात को ये सब रेत में बदल जाती हैं। रात को भी ऊपर से तो मैं अपने अहम की रक्षा करने की हिमाकतों से बाज नहीं आता लेकिन अन्दर से मैं अपने हरीफ़ों के साथ मिल कर अपनी धज्जियां उड़ाता हूं। कल रात भी यही हुआ था। कुछ कहने की कोशिश को छोड़े कई बरस हो गये हैं लेकिन आत्मप्रताड़ना का अन्त अभी तक नहीं हुआ।

वे तीनो एक फ़हरिस्त पर झुके उसे अंतिम रूप दे रहे थे, मै उसे पढ़ने की कोशिश कर रहा था, खुफिया तौर पर, यह जानते हुए भी कि उन्हे मेरी कोशिश की खबर हो गयी होगी। मैं उन से पूछ सकता था कि उस फहरिस्त मे कितने नाम थे, किस किस के नाम थे लेकिन मै उन पर यह जाहिर नहीं होने देना चाहता था कि मुझे उस फहरिस्त के बारे में कुछ मालूम नहीं था, या यह कि मै जानना चाहता था कि उस फहरिस्त मे मेरा नाम क्यो नहीं। मै यह बहाना किये हुए था कि उस फ़हरिस्त की तय्यारी में मेरा हाथ भी रहा था, कि मैं नहीं चाहता था उस फ़हरिस्त में मेरा नाम हो। वे तीनों मुझे नजरअंदाज कर रहे थे और उस फहरिस्त पर झुके हुए उसे यू घूर रहे थे जैसे वह कोई ऐसी अबूझ इबारत हो जो मुझ जैसों के बस की नहीं थी। मुझे उनका रवैय्या बुरा लग रहा था, उसमे मेरे प्रति अवहेलना का रुख मुझे आहत कर रहा था। जी चाह रहा था फहरिस्त पर झपट्टा मार कर उसे मरोड़ता हुआ कमरे मे बाहर भाग जाऊं। वे तीनो पहले भी कई बार मेरा अपमान कर चुके थे और हर बार मैं यही सोच चुप मार गया था कि अगर उन तीनों से भी बिगाड़ लूंगा तो एकदम अकेला हो जाऊंगा। हर बार मुझे दास्तायवस्की का नामहीन 'अंडरग्राउंड मैन' याद आया था, उस रात भी आ रहा था, और महसूस हो रहा था मैं उस बदबख्त की ही तरह अपमानित होते रहने के लिए अभिशप्त हू, कि मुझे भी आखिरकार अपने ही किसी तहखाने मे पनाह लेनी पड़ेगी, अपनी नियति पर कुछ कड़वे कसैले 'नोटस' लिखने पड़ेंगे। वे तीनो शायद इसी इंतजार मे थे कि मैं उठ कर चुपचाप कहीं चला जाऊ ताकि वह मेरी उपस्थिति से आजाद हो खुल कर उस फ़हरिस्त के बारे मे बात बहस कर सकें। वे उस फहरिस्त पर झुके हुए उसे घूर नहीं रहे थे, उसमें कुछ कमी बेशी करना चाहते थे, लेकिन मेरी वजह से खामोश रहने पर मजबूर थे, क्योंकि मुझे वह उस फहरिस्त मे शामिल करना चाहते थे न उसके बारे में किसी बहस में। मैं वहा अपनी मौजूदगी की मूर्खता के लिए अपने आपको कोस भी रहा था और अपनी मौजूदगी मे पैदा हुई उनकी दुविधा पर खुश भी हो रहा था। कोसने की मार खुशी के दुलार मे कहीं ज़्यादा थी। उसे कुछ कम करने के लिए ही शायद मैंने अचानक ऊंची आवाज़ मे एक नाम बोल दिया। उन तीनो मे से एक ने सर उठाए बगैर कहा—यह नाम तो यहां है। मुझे कुछ राहत मिली, इस बात मे नहीं कि वह नाम उस फहरिस्त में था बल्कि इस बात से कि मेरा अनुमान सही था—वह फहरिस्त नामो की ही थी। थोड़ी सी राहत इस खयाल से भी मिली कि उनमे से एक ने मेरी बात का जवाब दे दिया था। मन हुआ एक और नाम उछाल दू लेकिन यह सोच कर चुप रहा कि वे समझ जाएंगे मैं

उनकी फ़हरिस्त का मजाक उड़ा रहा था। मैंने अपने मुंह को कम कर उन तीनों जैसी ही गम्भीर मुद्रा बना ली, इस डर के बावजूद कि वे समझ जाएंगे मैं उनकी नकल उतार रहा था। कुछ ही देर में मैं खामोशी और गम्भीरता से ऊब गया और मैंने एक और नाम उन्हें सुझा दिया। अब की बार एक और शख्स ने सर उठाए बगैर कहा— यह नाम भी यहां है। मैं समझ गया कि वे उस फ़हरिस्त में कुछ और नाम जोड़ना चाहते थे। मैंने कहा—मैं जानता हूं यह नाम आपकी फ़हरिस्त में है, लेकिन मैं कहना यह चाहता था कि इसे वहां नहीं होना चाहिए। अब तीसरा ताव में आकर बोला—तो इसके बजाय किसका नाम यहां होना चाहिए, तुम्हारा! मैं तिलमिलाया तो बहुत लेकिन तत्काल बोला नहीं। कई उबाल आए—उठ कर चल दूं, जाने से पहले उन सबको झिड़क दूं, नर्मी तल्ली नाराज आवाज में उन से पूछूं कि मेरा नाम उस फ़हरिस्त में न शामिल करने का आखिर कारण क्या है, जिस शख्स ने मुझ पर चोट की थी उसे एक चांटा मार दूं, दूसरे दोनों से पूछूं कि क्या वे भी वैसा ही सोचते हैं। इन उबालों के बैठ जाने के बाद मैंने सुधीर धीमी आवाज में कहा—हां मेरा!

आश्चर्य और आक्रोश में कसी हुई उन तीनों की सूरतें मुझे मकरूह नजर आयीं। एक फीकी सी राहत मुझे अब भी मिल रही थी—अपने अहम् की कुरबानी से मैंने अपने अहम् की रक्षा कर ली थी। मैं उठ कर बाहर आ गया। बाहर अंधेरे की आग़ोश मेरा इन्तजार कर रही थी।

वे तीनों उस मंच पर यूं तने से बैठे थे जैसे एक दूसरे को जानते तक न हो। एक तिकोन सी बना कर बैठे वे एक दूसरे को आसानी से देख सकते थे लेकिन लगता था जैसे तीनो की आखों पर झिल्ली सी खिंची हुई हो। उनके बैठने का ढग शास्त्रीय गायकों का सा था। कुछ श्रोता शान्त बैठे उन्हे यूं देख रहे थे जैसे उन्हे देखने के लिए ही आए हों, सुनने के लिए नहीं, और कुछ मानो उन तीनो के ही किसी सांकेतिक आदेश पर सिर झुकाए अपने भीतर भटक रहे हो। मेरी आखें उन तीनों को टटोल रही थीं। पहले उन तीनों को एक साथ किसी मंच पर इस तरह मुंह बाधे बैठे नहीं देखा था, लेकिन इतना मुझे मालूम था कि उन तीनों के जीवन और दर्शन कितने ही तारों-तागों से एक दूसरे के साथ गुथे-उलझे हुए हैं। बरसों से वे एक दूसरे के बलबूते पर बढ़ते चढ़ते चले आ रहे थे। इसीलिए जब मैंने उनमें से एक के मुंह को अचानक बिगड़ते देखा और दूसरे दोनों पर गालियां बरसाते सुना तो मै सकते मे आ गया। शायद मेरी अनुपस्थिति मे उसमें और उन दोनों में कोई झडप हो चुकी थी, फिर भी वैसे अभद्र सार्वजनिक उबाल की अपेक्षा उससे मुझे नहीं थी। वह उन तीनों में सब से ज्यादा सौम्य और शालीन था। उसके क्रोध मे वैसी क्रूर कड़वाहट कैसे ? दूसरे दोनों उसकी फटकार सुन रहे थे और खामोश बैठे थे। जब वह थक गया और उन दोनों की तरफ आखिरी गाली थूक देने के बाद खामोश हुआ तो उन दोनो में से एक पर कोई दौरा सा पड़ा और उसका चेहरा नीला हो गया, आंखें बाहर निकल आयीं, जबान चलने की कोशिश में तुतलाने लगी, मुट्ठियां भिंच गयीं, और पैर तड़पने लगे। सब श्रोतागण यूं बैठे थे जैसे यही सब देखने-सुनने आए हों, जैसे उन्हें पहले से ही मालूम था यही सब होगा, जैसे वह आयोजन ही इसी प्रदर्शन के लिए किया गया था। मुझे लगा जैसे सदमा सिर्फ मुझे हो रहा था। मैंने इधर उधर गर्दन घुमा कर देखा तो किसी के चेहरे पर मुझे शोक या विक्षोभ का भाव नहीं दिखा। सब यूं बैठे थे जैसे मंच पर कुछ भी अशोभनीय न हो रहा हो, या जो हो रहा हो वह उनके लिए अतिसाधारण हो, उनकी प्रत्याशानुसार ही हो। इस बीच मच पर बैठे तीसरे ने भी तिलमिलाना शुरू कर दिया था लेकिन उसका नजला पहले पर नहीं, उस दूसरे पर ही गिर रहा था जो अभी भी दौरे की जकड से आजाद नहीं हुआ था। पहला आदमी अब शान्त हो चुका था और दूसरे दोनों को तटस्थ भाव से देख रहा था। दौरे का शिकार दूसरा बहुत दयनीय दिखायी दे रहा था, तिलमिलाता हुआ तीसरा बहुत खतरनाक, शान्त हो चुका पहला बहुत खुश।

मुझ से रहा नहीं गया। मैं लपक कर मंच पर पहुंच गया। दौरे के शिकार दूसरे का सिर अपनी गोद में ले मैंने दोनों हाथों से उसकी कनपटियो को मलना और साथ ही अंग्रेजी में

मदद के लिए शोर मचाना शुरू कर दिया। उस घबराहट के आलम में भी मैं सचेत था कि अगर शोर अंग्रेज़ी मे नहीं मचाऊंगा तो उसका किसी पर कोई असर नहीं होगा। उसका चेहरा मेरी आंखों के नीचे किसी आहत जानवर के चेहरे सा और उसका खुला मुंह किसी सुर्ख घाव सा नज़र आ रहा था। कोई मदद के लिए अपनी जगह से नहीं हिला। मै बेतहाशा उसकी कनपटियो की मालिश कर रहा था और उसके जबडों को बन्द करने की कोशिश। मुझे लोगों पर बहुत गुस्सा आ रहा था, अपने पर गर्व हो रहा था। जिस शख्स को देखने-सुनने के लिए वे सब वहा आए थे वह उनके सामने पड़ा तड़प रहा था और वे यू बैठे थे जैसे कोई नाच देख रहे हों। इस बीच उस पहले शख्स ने उठ कर मच पर किसी विजयी पहलवान या हनुमान की तरह टहलना शुरू कर दिया था। सारी परेशानी के बावजूद मुझे विद्रूप सी हंसी आ गयी, लेकिन तभी मेरी निगाह तीसरे पर जा पडी, जो अब दौरे के शिकार दूसरे की नकल उतार रहा था—मच पर गिरा पड़ा वह तड़प तो रहा था लेकिन दयनीय नजर आने के बजाय निर्दयी नज़र आ रहा था।

अब मुझे यकीन हो गया था कि मेरे वहां पहुंचने से पहले उन तीनों के बीच मच पर ही कोई तकरार हुई होगी और इसीलिए उनके भीतर छिपे बैठे आपसी भेद भड़क उठे होंगे और अब वे तीनों सभासदों की सहानुभूति लूटने के लिए अपना अपना तमाशा दिखा रहे थे। मन हुआ कि मंच से नीचे कूद मैं भी दूर से ही सारा तमाशा देखूं, लेकिन मच से कूद कर अपनी भूल को स्वीकार कर लेने की हिम्मत मुझ मे नहीं थी, और न ही मैं यह मान लेने के लिए तैयार था कि वे तीनों सरासर बेईमान थे। मैं खुद को सरासर बेईमान नहीं समझता, इसीलिए दूसरो को भी रिआयत देता रहता हूं। लेकिन दौरे के शिकार दूसरे की मालिश करते करते और करीब से उसके मुह का सुर्ख घाव देखते देखते मैं ऊबने लगा था। सो मैंने उसके सिर को अपनी गोद से सरका दिया और खुद उठ कर उसकी नकल उतारने वाले निर्दयी के पास जा बैठा। क़रीब से उसकी सूरत भी मकरूह नजर आयी। उसके सिर को गोद मे लिये बग़ैर ही मैंने कदरे सख्ती से उसके गालों को थपथपाया तो उसके दांत उछल कर उसके पेट पर जा पड़े और वह एक बदसूरत बुढ़िया में बदल गया। मुझे फिर विद्रूप सी हंसी आ गयी। याद आ गया कि मैंने हमेशा उसके चेहरे में एक निर्दयी बुढ़िया के चेहरे को देखा है। फिर खयाल आया मंच पर बैठ हंसना नहीं चाहिए, कि मंच पर बैठते ही मुंह कस लिया जाना चाहिए। मैने अपनी हंसी को पीस डाला। फिर उस तीसरे के पेट पर पडे दांतों को उठा कर एक तरफ रख दिया, और खुद उठ खड़ा हुआ। उस क्षण मुझे कुछ मालूम नहीं था मैं क्या बोलने जा रहा था। दौरे का शिकार दूसरा अब शान्त हो गया था, उसकी नक़ल उतारने वाला तीसरा अपने दात अपने मुह मे ठूंस रहा था, विजयी हनुमान मेरी तरफ यूं देख रहा था जैसे मुझे धमका रहा हो। मैं सभासदो की तरफ रुख किये एक बुत की तरह खड़ा था। कोई शब्द मेरे मुंह से नहीं निकला, कोई विचार मेरे मन में नहीं खिला मेरी आंखें खुली थीं। सामने बैठी भुतैली भीड़ धीरे धीरे अधेरे मे गुम हो रही थी, और तीनो दिशाओं से वे तीनों कदम कदम मेरी तरफ बढ़ रहे थे।

एक बन्द दरवाजे को घूर रहा हूं, उसे खोलने के लिए नहीं, बन्द रखने के लिए ही, इस तरह से जैसे कोई अपना पूरा जोर लगा रहा हो, क्योंकि उसे खतरा है कि दरवाजे के उस तरफ खड़ा कोई दरवाजा तोड़ने पर तुला हुआ है।

मुझे खतरा ही नहीं, यकीन भी है कि किसी भी क्षण दरवाजा खटाक से खुल जाएगा और मेरा वह पुराना साथी सरसराता हुआ अन्दर आ जाएगा। उसके चेहरे पर आत्ममुग्ध मुस्कराहट का चिकना लेप होगा, उसकी आंखों में सजग स्वार्थ की धार होगी। वह मेरी तरफ देखेगा न किसी और की तरफ लेकिन हम सब महसूस यही करेंगे कि उसने हम सब को देख लिया है।

किसी जमाने में वह और मैं मिलकर मुहावरे की मलहार गाया करते थे, निरन्तर बेचैनी और आवारागर्दी के दौरान, अर्थ की तलाश में मारे हारे, बुनियादी सवालों की सलीब कन्धों पर रखे हुए, अपनी पस्ती में भी कमोबेश मस्त। तब उसके चेहरे पर चिकना लेप नहीं होता था, बेकरारी की चमक होती थी। तब उसकी आखों में स्वार्थ की धार नहीं होती थी, आदर्शों का धीमा आलोक होता था। उस जमाने में मैंने कभी कल्पना तक न की होगी कि मेरा वह खरा खुरदरा साथी किसी दिन इतना चिकना हो जाएगा कि उसके चेहरे पर मेरी निजर नहीं टिक सकेगी।

बन्द दरवाजे को घूरता हुआ मैं उसका इन्तजार तो नहीं कर रहा लेकिन मुझे मालूम है वह आएगा और आते ही इस छोटी सी लेकिन केन्द्रीय महत्त्व की आर्टगैलरी पर छा जाएगा। मैं दरवाजे के सामने खड़ा हूं। देखना चाहता हूं अचानक मुझे यहां देख कर उसके चेहरे का लेप तिड़कता है या नहीं। कुछ और लोग भी हैं। सब मेरे लिए अजनबी हैं। दरवाजा खुलता है तो एक मुस्कराता हुआ अजनबी अन्दर आता है। मैंने उसकी चिकनाहट और मुस्कराहट की कल्पना तो कर ली थी लेकिन उसकी अजनबियत की नहीं। उसके दाए बाए दो दिलकश दुबली औरतें हैं। उसके अन्दर आते ही उस पर और उसकी साथिनों पर दो तीन सूरज एक साथ केन्द्रित हो जाते हैं। उसकी चांद की चमक देख मैं दहल जाता हूं।

उसने उद्घाटनकर्ताओं की सी करारी वर्दी तान रखी है, जिसमें वह किसी कलाप्रेमी राजनेता सा दिखाई देता है। अब कुछ लोग, जिनमें कुछ मोटी महिलाएं भी हैं, उसके साथ चिपकने के लिए हुमक रहे हैं। उसकी साथिनों के सीने सुते हुए हैं, उनकी आंखे उखड़ी उखड़ी सी। उसे गाली दे कर बुलाने की ख्वाहिश होती है, फिर हवा हो जाती है। अब वह

दूसरे दरवाजे की तरफ बढ़ रहा है जो एक छोटे से हाल मे खुलता है जहा उसने किसी कला-पुस्तक का विमोचन करना है। जब वह मेरे पास मे गुज़र रहा होता है तो मेरे गले में एक बैठी बैठी सी आवाज निकल जाती है जो नकली खांसी की भी हो सकती है, असली हंसी की भी। वह रुक जाता है। शायद उसने उस आवाज को पहचान लिया है और साथ ही मेरी सूरत को भी। वह हाथ बढ़ा देता है। उसका ढीला गीला हाथ अपने हाथ में लेते ही मुझे लगता है जैसे गू को छू लिया हो। वह आगे बढ़ जाता है तो मेरे साथ खड़ी औरत मुझ से पूछती है---यह है कौन?

मैं जवाब देता हू---किसी जमाने मे मेरे साथ मुहावरे की मलहार गाया करता था और पथ और अर्थ की खोज किया करता था।

वह पूछती है---और अब?

मै जवाब देता हू---अब विमोचन करता है, मुस्कराता है, और टीवी पर दिखायी देता रहता है।

वह मुस्कराती है। उसकी मुस्कराहट मुझे खरी और खुरदरी दिखायी देती है। उसके आलोक में उसका चेहरा खरा और खूबसूरत।

फिर वह पूछती है---और आप?

मैं जवाब देता हूं---मै? मै कुछ भी नहीं।

यह कहते कहते मै उसका हाथ छू लेता हूं। महसूस होता है जैसे कोई खुरदरा फूल छू लिया हो।

मैं अपनी हथेली जितने उस मुरझाए हुए लान मे एक लंगड़ी कुरसी पर बैठा शाम के शून्य पर अबूर पाने की कोशिश कर रहा था कि कुछ दूर खड़े आवारा लड़को के झुण्ड मे से आवाज़ आयी, लो वह हरामी बूढ़ा फिर आ बैठा अपनी कुरसी पर!

गाली ने मुझे गोली की तरह दाग़ा लेकिन मैं ने कुछ कहा नही, न ही सिर उठा कर उन लड़कों की तरफ देखा, क्योंकि मैं जानता था मेरे किसी भी जवाब से वे और भड़क उठेंगे। मुझ उनके हमले पर हैरानी ज़रूरी हुई—जहा तक मुझे मालूम था मै उस कुरसी पर उस लान मे उस शाम से पहले कभी नहीं बैठा था और न ही मैंने उन लड़को को पहले कभी देखा था। शायद कोई और बूढ़ा हर शाम यहा आ बैठता हो, कोई ऐसा बूढ़ा जिसकी मौजूदगी उन लड़को को नागवार गुजरती हो,जिसकी वजह से उन्हें महसूस होता हो कि कोई उनकी बातो और हरकतो पर कड़ी बूढ़ी नजर रखे हो और जिसकी सूरत मुझ से मिलती हो। जवान लड़को को वैसे भी सब बूढ़े एक से नज़र आते है ? एक दूसरे के भाई-बहन नज़र आते है। शायद वह दूसरा बूढ़ा सचमुच हरामी हो। जवान लड़कों को सब बूढ़े एक से हरामी नजर आते है, उसी तरह जैसे बूढ़ों को सब जवान लड़के एक से नालायक और बदतमीज़ और खतरनाक नजर आते हैं। मै इन खयालो से अपनी चोट को सहला ही रहा था कि ख़याल आया अगर वह दूसरा बूढ़ा, जो शायद उस लान का असली मालिक था, आ धमका तो मुझे अपनी कुरसी पर बैठा देख बिगड़ उठेगा, शायद बिगड़ने के बजाय खुश हो जाए, यह सोच कर कि उसका कोई हमउम्र हमसाया उसका दर्द बंटाने के लिए उसके लान मे आ बैठा है, लेकिन तब उन लड़कों में मे कोई पुकार उठेगा, लो आज उस हरामी बूढ़े का भाई भी आ गया!

मेरी इस कल्पना का असर मुझ पर यह हुआ कि मै बैठा न रह सका, उठ कर उस संकरे लान मे टहलने लगा—सिर झुकाए, हाथ पीछे बांधे, छोटे छोटे कदमो से, जैसे उन लड़कों को यह दिखाने की कोशिश कर रहा होऊं कि मैं बूढ़ा तो हू लेकिन हरामी हरगिज़ नहीं, तुम खुद देख लो, हरामी बूढ़े मेरी तरह दयनीय नही होते। तभी एक गेंद मेरी गर्दन के घाव पर आ लगा और मै मुह के बल गिरते गिरते बचा। लड़को की सामूहिक हसी सुनायी दी लेकिन उस हसी से ज्यादा उस समय मुझे उस चक्कर की चिन्ता थी जो मेरे सिर मे उस गेंद की चोट के कारण आ गया था। मैं अनायास कुरसी पर जा गिरा। गर्दन को सहलाया तो पता चला थोड़ा सा खून फूट आया था। गेंद कुरसी से कुछ फ़ासले पर पड़ा था। मैंने उसे उठाने के लिए

बैठे बैठे ही हाथ बढ़ाया तो लगड़ी कुरसी का सन्तुलन खराब हो गया और मै कुरसी समेत लुढ़क गया। लडको की हंसी का दूसरा रेला मुझ तक आया तो मेरी आंखों में आँसू आ गये, जिन्हें रोक कर मैंने गेंद उठा लिया और खुद भी जैसे तैसे खडा हो गया। औंधी पडी कुरसी को मैंने सीधा नहीं किया। सिर उठा कर मैंने लड़कों के झुण्ड की तरफ़ देखा तो मुझे कई जोड़ी दांत नजर आए। महसूस हुआ जैसे मसनूई दांतों की दुकान सामने खुल गयी हो।

मैंने गेंद उनकी तरफ फेकने के लिए हाथ उठाया तो उनमे से एक लड़का भाग निकला। गाली शायद उसी ने दी थी। गेंद भी शायद उसी ने मारा था। मैंने गेंद उनकी तरफ नहीं फेका। उस लड़के को भागते देख शायद मेरी हिम्मत बँध गयी थी। मैं लड़कों के झुण्ड की तरफ बढ़ गया। मेरी आखो में आए आंसू पानी में बदल आंखों में गुम हो गये थे। मुझे अपनी तरफ आते देख वे लडके इधर उधर बिखरने मे लगे तो मुझे अच्छा लगा। मेरे मन में कुछ साफ नहीं था कि मै उनके पास पहुच क्या कहूगा, क्या करूंगा। मै अन्दर से अब भी काप रहा था। गेद की चोट का दिया हुआ दर्द गर्दन के घाव में जागना शुरू हो गया था। मुझे महसूस हो रहा था मै चल नहीं, उड़ सा रहा था, लेकिन उन लडकों तक पहुंचने मे मुझे बहुत समय लग रहा था, मानो वे लडके भी परे उड़े जा रहे हों, मुझ से कहीं ज्यादा तेज रफ़्तार से। आखिर जब मैं उस जगह पहुंचा जहा पहले लडकों का झुण्ड खड़ा था तो मैंने देखा अब वहां चार पाँच खुशपोश आदमी खड़े थे। मैंने उन से उन लड़कों की शिकायत करनी शुरू कर दी—उन लडको ने मुझे गाली दी, गेंद मारा, मेरे लिए वह गेंद किसी पत्थर से कम नहीं था, मेरी गर्दन से खून फूट रहा है, मेरे सिर में चक्कर आ रहे हैं, अब आप ही बताइए मैंने उनका क्या बिगाडा था, मैं समझ नहीं पा रहा कि यह कैसा जमाना आ गया है. लडके अब बेसहारा बूढ़ों पर भी हाथ उठाने लगे, मेरी आंखे फूट जातीं तो मै क्या करता, अब यह घाव न जाने कब ठीक होगा, बूढ़ों के घाव आसानी से नहीं भरते, बेशक यह घाव बडा नहीं, लेकिन बड़े घाव में बदल सकता है, बरसात का मौसम है, आप सोचिये आप मेरी जगह होते तो क्या करते, यह देखिये गेंद, अगर यह आपकी गर्दन पर लगता तो आप मारे ग़ुस्से के पागल हो जाते, गेद का जवाब पत्थर से देते, लेकिन मै बेचारा....

मैंने देखा उन आदमियो के चेहरे कोरे थे, उनकी आंखे खाली थीं, उन्होने मेरी फरियाद सुनी तक नहीं थी। मुझे शक हुआ कि वे लडके ही उन आदमियों में बदल गये थे और उन्हें कुछ याद नहीं था कि उन्होंने कभी मुझे कोई गाली दी थी, कोई गेंद मारा था। वह गेंद मेरे हाथ से गिर गया। मैंने मुड़ कर देखा तो मेरी हथेली जितना वह मुरझाया हुआ लान गायब हो चुका था और एक टूटी हुई कुरसी एक घूरे पर पड़ी थी और उस पर एक कव्वा बैठा काए-काए कर रहा था।

जब उस शोर का पहला काला रेला मुझ तक आया मैंने समझा कुछ लड़के यूंही शरारतन या किसी अनावश्यक आवेश मे आकर चीख-चिल्ला उठे होंगे, इसलिए मैंने सिर उठा कर उस तरफ देखा तक नहीं। मैं उस वक्त सिर झुकाए और आंखे मूंदे अपने उस हुजरे में खड़ा हुआ था जिसकी दीवारें पारदर्शी हैं लेकिन जो मुझे एक पिंजरे जैसा महसूस होता है। दरअसल वह हुजरा या पिंजरा न हो कर मेरी एक कैफ़ियत ही है, इसीलिए ठोस पिंजरों या हुजरों से कहीं ज्यादा असली महसूस होती है। मैंने सिर तो नहीं उठाया था लेकिन मेरी आंखे खुल और मेरी तन्मयता टूट गयी थी। शोर बढ़ता और करीब आता महसूस हुआ, आवाजें हिंसक और फटी हुई। अब उस शोर में मुझे कुत्तो की आवाजें भी शामिल सुनायी दीं तो मुझे लगा वे लड़के शिकारी कुत्तों को लिए मेरी तरफ़ बढ़ते आ रहे थे —मुझे पकड़ने के लिए, मेरा शिकार करने के लिए। कुत्तो ने मुझे सूंघ लिया होगा, लड़कों को मे जल्द ही दिखायी दे जाऊंगा। अन्धेरा घना तो था लेकिन इतना नहीं कि मेरा वह पिंजरानुमा हुजरा उन्हें दिखायी न दे। मैं हड़बड़ा कर उठ खड़ा हुआ। कुत्ते और लड़के मेरी तरफ़ भागे चले आ रहे थे। मैंने उनकी संख्या का अनुमान लगाना चाहा लेकिन यह कोशिश मुझे बेहूदा जान पड़ी। वे जितने भी हों मुझे पकड़ लेने और शायद मार डालने के लिए काफी थे। मेरे डर ने मुझे सुझाया कि मुझे पिंजरे से निकल अपने आपको उनके हवाले कर देना चाहिए, नहीं तो वे और हिंसक हो जाएंगे। इस सुझाव मे मीनमेख ढूढ़ने का वक्त मेरे पास नहीं था। उधर वह शोर मचाता झुण्ड मेरी तरफ बढ़ रहा था, इधर मै हैरान हो रहा था कि उन्हें मुझ तक पहुंचने में इतनी देर क्यो लग रही थी। मन हुआ कि मैं भी शोर मचाता हुआ उनकी तरफ दौड़ना शुरू कर दूं तो शायद वे मेरी निडरता से डर जाएँ, समझें मेरे पास कोई खुफिया शस्त्र होगा, या मुझे किसी दैवी या दानवी शक्ति का सहारा होगा, या सोचें यह तो कोई बहुत ही सीधा शख्स है, इसे तो मारने के बजाय गले लगा लेना चाहिए। जाहिर है कि मै भयभीत तो था ही, उलझा हुआ भी बहुत था। सच तो यह है कि मुझे मालूम नहीं था कि मै चाहता क्या था—कि वे मुझे मार डालें या गले लगा लें। दोनों संभावनाएँ एक सी दहशतनाक जान पड़ रही थीं। सब से ज्यादा परेशानी मुझे अपने असमंजस से हो रही थी। बीच बीच में मै सब कुछ भूल कर उस असमंजस में गुम हो जाता और सुरक्षित महसूस करता था। वे बराबर मेरी तरफ बढ़ते चले आ रहे थे लेकिन मुझ तक पहुंच नहीं रहे थे, जिस से मैंने यह अनुमान लगाया कि वे मेरा अज़ाब बढ़ाने के लिए जान बूझकर मुझ तक पहुंचने में देर लगा रहे थे। तभी न जाने मुझे क्या हुआ कि मै जहां खड़ा था, वहीं ढेर हो गया, ऐसे जैसे मेरी हवा निकल गयी हो। शायद मेरे जिस्म ने सोच लिया हो कि मेरा बचाव मेरे बेजान हो जाने मे ही है।

अब मेरे लिए यह बताना मुमकिन नहीं कि वह कितनी देर तक मुझ तक पहुंचे। इतना मुझे साफ याद है कि आखिर मैंने देखा कि उनके सरदार का एक भारी पैर मेरे सर पर रखा हुआ था और एक काला कुत्ता—कुत्ता एक ही था, यह देख मुझे निराशा हुई थी—उसके आदेश की प्रतीक्षा करता हुआ जीभ बाहर निकाले एक टक मुझे घूर रहा था। सरदार मुझ से कुछ कहलवाना चाहता था। उसके पीछे खड़े उसके पैरोकार खामोश थे। वे ज़्यादा नहीं थे लेकिन ज्यादा नजर आते थे। उनमें से कुछ की निगाहें मुझ पर टिकी हुई थीं, कुछ की सरदार पर, बाकियों की कुत्ते पर। मुझे यह भी अजीब लग रहा था— मेरा खयाल था वे सब मुझे ही अपनी निगाहों का निशाना बनाएंगे। जिसे मैंने उनका सरदार मान लिया था उसमें मुझे सरदारों वाली कोई खास खूबी दिखायी नहीं दी थी, सिवाय इसके कि कुत्ते की जंजीर उसके हाथ में थी, और उसकी सूरत कुत्ते की सूरत से मिलती जुलती थी।

पता नहीं वह मुझ से क्या कहलवाना चाहता था।

मैं वहां गिरा पड़ा बड़बड़ाए जा रहा था, इस उम्मीद पर कि शायद बड़बड़ाते बड़बड़ाते मेरे मुंह से वह बात निकल जाए जो वह मुझ से कहलवाना चाहता था लेकिन मुझे यकीन था ऐसा होगा नहीं।

पता नहीं कि अगर मुझे मालूम होता कि वह मुझ से क्या कहलवाना चाहता था तो मैंने वह कह दिया होता या नहीं। मैं यह जानना नहीं चाहता। अब भी नहीं। अब जबकि मैंने सिफरीय स्थिति को पा लिया है।

मैं उन लड़कों मे घिरा हुआ महसूस कर रहा हू कि मै पहले भी उनकी हसी और हिंसा का शिकार हो चुका हू लेकिन मुझे याद नहीं आ रहा कब और किस दुःस्वाप्निल अवस्था मे। उनकी आंखों में झाकता हू तो वे फिर हसना शुरू कर देते है। हसते हुए वे एक साथ खूबसूरत और खौफनाक नजर आते है। जी चाहता है उन्हे बारी बारी चूम लू और कहू मैं उनका दुश्मन नही, वे क्यो मुझे अपनी हसी मे धमका रहे हैं। उनमें से एक लड़के का मुह मेरी आंखों के इतना करीब है कि मुझे उसके दातों मे फंसे मास के रेशे साफ नजर आ रहे है। मन होता है अपने नाखूनों से उन रेशों को निकाल कर उसे दिखाऊं और कहू, तुम दांतो की सफाई ठीक तरह से क्यों नहीं करते। एक और लड़के का हाथ मेरे हाथ को छू रहा है। मन होता है उसका हाथ अपने हाथ में ले लूं और कहूं, तुम यह हाथ मुझ पर क्यो उठाना चाहते हो। तीसरे लड़के का एक पाव मेरे पाव को पीस रहा है। दर्द से मेरी जान निकल रही है लेकिन मारे डर के मै 'सी' तक नहीं कर रहा। मन होता है उससे कहूं, मेरा पांव पीसने में तुम्हे मिलेगा क्या ? मेरे डर के भीतर कहीं कुछ और भी है, कुछ ऐसा और जिसे मैं कोई नाम देने मे कतरा रहा हू। चौथे लड़के ने मेरा दूसरा हाथ कस के पकड़ा हुआ है। उसके जबड़े भी कसे हुए हैं, जिसकी वजह से उसकी हंसी मुझे दूसरों की के अपेक्षा ज्यादा हिंसक नजर आती है। पाचवा लड़का उन सब मे ऊंचा और शायद इसीलिए कुछ अलग है। इसे देखने के लिए मुझे खास कोशिश करनी पड़ती है, गर्दन मे खम डालना पड़ता है, इसीलिए मै उसे देख नहीं रहा, क्योंकि मेरी गर्दन मे छोटा सा घाव है।

उन लड़को से घिरा हुआ मै यह याद करने की कोशिश में नाकाम हो रहा हू कि मेरी गर्दन मे वह घाव कैसे हुआ था, कितना पुराना है। मुझे खतरा है उन लड़को मे से कोई अजाने मे या जानबूझ कर उस घाव पर थप्पड मार देगा। इस खतरे के कारण मेरी आंखे बीच बीच मे यूं बन्द हो जाती है जैसे कोई बूढ़ा भगवान को सहायता के लिए बुला रहा हो।

मुझे मालूम है ये लड़के मेरी जान ले सकते हैं। नहीं, मुझे यह खतरा है। मुझे यह मालूम नहीं मैने इनका बिगाड़ा क्या है। मुझे शक है इन्हें मेरा बुढ़ापा ही मेरी उम्र मे बड़ी और अक्षम्य खता नजर आती है। मैं उनसे अपने बुढ़ापे की मुआफी मांग लेना चाहता हूं, कह देना चाहता हू मैं उनके पैरो मे गिर गिड़गिड़ाने के लिए तैयार हू, कि अगर वे चाहे तो मुझे किसी जगल मे छोड़ आएं, उन आदिवासियो की तरह जो अपने मरणासन्न बुजुर्गों को मरने के लिए कहीं छोड़ आते हैं। यह बात मुझे रह रह कर याद आ रही है लेकिन यह याद नहीं आ रहा मैने इसे कहा पढ़ा था। मुझे खतरा है ये लड़के मेरा मन पढ़ लेंगे, किसी भी क्षण, और

फिर मुझ पर पिल पड़ेंगे। जिसके दांतों में मांस के रेशे फंसे हुए हैं, वह अब जीभ ऊपर वाले दांतों पर फेर रहा है। उसकी उल्टी जीभ मुझे अमरूद की फांक सी नजर आती है। मैं उसे बताना चाहता हूं मांस के रेशे उसके निचले दांतों में फंसे हुए हैं। जिसका हाथ मेरे हाथ को छू रहा है, उसकी अंगुलियों का स्पर्श मुझे पतली ककड़ियों के स्पर्श की याद दिलाता है। जिसका पांव मेरे पांव को पीस रहा है, उसके दबाव में मुझे कई और दबाव छिपे महसूस होते है। जिसने मेरा दूसरा हाथ कस कर पकड़ रखा है और जिसके जबड़े कसे हुए हैं, उसे पुचकार देने की ख्वाहिश को मैं बड़ी मुश्किल से दबा पाता हूं। जो लड़का सब से ऊंचा और अलग है, उसकी निगाहें मुझे मेरी गर्दन के घाव को नोंचती हुई महसूस होती हैं।

अब मुझ से रहा नहीं जाता, कुछ करना कहना अब मुझे अनिवार्य लग रहा है, सो मैं बिलबिला उठता हूं : तो क्या तुम सचमुच मुझे मार डालने पर तुले हुए हो—मुझे, जिसने तुम्हें पाला-पोसा, पढ़ाया-लिखाया, इस काबिल बनाया कि तुम, कि तुम, कि तुम....वे पांचों एक-आवाज़ हो जवाब देते हैं : हां! वे लड़के मेरे बेटे नहीं, मैं जानता हूं, लेकिन मुझे महसूस यही हो रहा है जैसे मेरे बेटों ने ही मुझे मार डालने का अपना फ़ैसला उस 'हां' में सुना दिया हो। इस फैसले को सुनते ही मुझे महसूस होता है जैसे किसी ने मेरे सिर में एक मेख ठोकनी शुरू कर दी हो।

तीन तने हुए लडके एक कतार में मेरे आगे आगे चल रहे है, मै एक तार सी से उन तीनों के साथ बंधा हुआ उनके पीछे पीछे घिसिट रहा हू। लगता है हम किसी खेत की सकरी मेंड़ पर चल रहे है, इसीलिए एक के पीछे एक क़तार में चलना जरूरी है। शायद मै उन सब मे पीछे इसलिए चल रहा हू क्योंकि मैं बूढ़ा हू, सुस्त रफ्तार हूं, और शायद इसीलिए उस तार के साथ उन तीनों के साथ बंधा हुआ हू। मैं अपनी स्थिति को समझने की कोशिश में अनुमान लगा रहा हूं—उनके बारे मे, अपने बारे में, उनके साथ अपने सम्बन्ध के बारे में, उनके इरादों के बारे में, अपनी स्थिति के बारे में। मुझे खुश होना चाहिए कि मैं उन सब के पीछे हू, उन सब के आगे होता या दूसरे या तीसरे नम्बर पर होता तो मुझे उनकी फटकार सुननी पडती, ठोकरें खानी पडतीं, तन कर तेज़ तेज चलने की नामुमकिन कोशिश करनी पड़ती। लेकिन मै खुश नहीं क्योंकि मैं उनके साथ उस तार सी से बंधा हुआ हू और जब कभी मेरी रफ्तार कम हो जाती है या मुझे ऊंघ आ जाती है तो मुझे एक झटका सा दे दिया जाता है। उस झटके से मेरी जान निकल जाती है, नहीं, निकलती नहीं लेकिन निकल सकती है, महसूस होता है निकल गयी या रही हो, डर लगता है कि अगले झटके से जरूर निकल जाएगी।

तार मेरी कमर को लपेटती हुई मेरी खोपडी में ठुकी एक मेख के साथ बंधी हुई है, इसलिए झटके से मेरी कमर तो कस ही जाती है, साथ ही मेरा सारा सर कुछ इस तरह से झनझना उठता है कि कई क्षणों के लिए मुझे कुछ होश नहीं रहता कि मै कहां और क्यो हू, और जब होश आता है तो मैं उन तीनों के पीछे किसी पहाडी कुली की तरह चल रहा होता हूं—अगले झटके के अन्देशे में कसा हुआ, उन लड़को के बारे में और उनके साथ अपने सम्बन्ध के बारे मे सोचता हुआ, उस रास्ते को अपनी याद में सुरक्षित रखने की कोशिश करता हुआ, यह याद करने की कोशिश करता हुआ कि मै कब से उनके साथ बन्धा हुआ उनके पीछे पीछे घिसिट रहा हू, उन से अलग और आजाद हो जाने के मन्सूबे बाधता हुआ, उन मन्सूबों को रद्द करता हुआ, माया को याद करता हुआ, सोचता हुआ कि उसे इस अनुभव के बारे में कैसे बताऊगा, बताऊगा या नहीं, बताना चाहिए या नहीं, सोचता हुआ कि ये लडके जा कहां रहे थे, मुझे ले जा कहां रहे थे।

कभी खयाल आता है मै उनका मज्दूर हूं, कभी कि मै उनका बाप हूं, कभी कि मैं उनका क़ैदी हू, कभी कि मैं उनका मज़्दूर भी हू, बाप भी हू, कैदी भी हू। जो भी हूं, यू झुका झुका सा चल रहा हूं जैसे मेरी पीठ पर उनका मनों सामान बंधा हुआ हो। जब कभी किसी

तरह वह तार तोड़ कर उल्टी दिशा में भाग जाने का विचार उठता है तो अन्दर से यह अन्देशा भी उठ खड़ा होता है कि वे तीनों मुझ पर झपट पड़ेंगे। इस अन्देशे से यह अनुमान लगाता हूं कि उनका कैदी होने का खयाल मेरे दिमाग़ में कहीं बैठा हुआ है, शायद उस मेख से बंधा हुआ जो मेरी खोपड़ी में ठुकी हुई है। उनका मज्दूर होने के खयाल से सिर्फ झुंझलाहट होती है, कैदी होने के खयाल से हौल उठता है। जब अपने खयालों में गुम हो उन में बेखबर हो जाता हूं तो लड़कों को तार के कसाव से मालूम हो जाता है और उनके झटकों या सामूहिक झटके से मैं फिर एक साथ सजग भी हो जाता हूं, बेहोश भी, कुछ देर के लिए। झटका वे सब एक साथ देते हैं या सब से पहले सब से आगे वाला और फिर बाकी के दोनों, बारी बारी या एक साथ, मुझे कुछ मालूम नहीं चलता। सोचता हूं अगर यह सफ़र या सिलसिला या यह जो कुछ भी है कुछ दिनों तक चला तो मुझे मालूम हो जाएगा, शायद। मुझे ऐसी बेकार बारीकियों की चिन्ता नहीं होनी चाहिए लेकिन है। कभी लगता है कि झटकों की सख्ती एक सी नहीं, तब सोचता हूं शायद तीनों बारी बारी झटका देते होंगे। कभी लगता है पहले एक बड़ा झटका दिया जाता है और उसके साथ ही दो छोटे, तब सोचता हूं शायद पहले उन में से कोई एक बड़ा झटका देता है, फिर बाक़ी के दोनों दो छोटे, बड़े झटके की पुष्टि सी करते हुए। जो हो तीनों में एक सी ताक़त शायद नहीं। और फिर मेरी अपनी बेखबरी की मात्रा और गम्भीरता भी बदलती रहती है, इसीलिए शायद सब झटके एक सी झनझनाहट और बेहोशी पैदा नहीं करते।

कई झटकों के बाद अब मेरे सर में ठुकी हुई मेख मुझे कुछ ढीली होती हुई महसूस होने लगी है और यह खतरा भी कि किसी झटके से वह मेख उखड़ जाएगी और मेरे सर से खून का फव्वारा फूट निकलेगा। इस खतरे के साथ यह खतरा भी जुड़ा हुआ है कि मेख उखड़ जाने पर वे लड़के उसी मेख को फिर मेरी खोपड़ी में ठोंकना चाहेंगे। इस संभावना से मेरा खून खुश्क हो जाता है, मेरी रफ्तार सुस्त हो जाती है, और मैं एक भरपूर झटके से एक साथ सजग और बेहोश हो जाता हूं। सभलने के बाद मुझे सूझता है कि चलते चलते चुपके से मुझे अपनी खोपड़ी में ठुकी उस मेख से बंधी उस तार को खोल या तोड़ डालना चाहिए ताकि झटका लगने पर सिर्फ कमर में तकलीफ हो। यह खयाल मुझे एकाग्र कर देता है। जिस मेड़ पर हम चल रहे हैं वह टेढ़ी मेढ़ी है, इसलिए एहतियात की जरूरत है कि कोई लड़का मुझे तार खोलते या तोड़ते देख न ले। चलते चलते यह काम करना आसान नहीं होगा, मैं जानता हूं। इस पर कुछ और सोचने से यह मुझ पर साफ़ हो गया है कि तार को तोड़ना मेरे लिए असंभव होगा, खोलने की ही कोशिश करनी होगी। सो सर खजलाने के बहाने मैं भाप लेता हूं कि वह मेख बहुत ढीली हो चुकी है, सोचता हूं शायद तार की गाठ भी ढीली हो चुकी हो। कुछ देर बाद दोनों हाथों से सर खजलाने के बहाने तार की गांठ खोलने में सफल हो जाता हूं। तार का सिरा अब मेरे हाथ में है और दोनों हाथ खून से लथपथ हैं। मैं डर रहा हूं कि सारी सतर्कता के बावजूद मेरी चोरी पकड़ी जाएगी। अगले झटके पर महसूस होता है जैसे कमर से लिपटी हुई वह तार मास में धंस गयी हो।

अभी पूरी तरह सभल भी नहीं पाता कि उन तीनों लड़कों को अपने इर्दगिर्द घेरा डाले खड़ा देखता हूं। उनके चेहरे कोरे कागज की तरह पराए नजर आते हैं, उनकी आंखें कहर

बरसाती हुई महसूस होती है। जब उन मे से एक, जो शायद सब मे छोटा है, एक कदम बढ़ाता है तो मेरे हाथ अनायास जुड़ जाते हैं और मै गिड़गिड़ाना शुरू कर देता हू।

सड़कों बाजारों दफ्तरों मन्दिरों फिल्मों किताबों कहावतों मे मैंने बेशुमार लोगो को गिड़गिड़ाते देखा-सुना है। मुझे महसूस होता है मैं उन सबकी नकल सी उतार रहा हू। जब उस लड़के पर मेरी गिड़गिड़ाहट का कोई असर दिखायी नही देता तो मै दूसरे दोनो की तरफ देखता हू। जब वे कोई जवाब नही देते तो मेरे मुह से निकल जाता है—तो क्या एक छोटी सी भूल के लिए तुम मुझे पीटोगे, मेरी उम्र का लिहाज भी नहीं करोगे, तुम्हे शर्म नही आएगी, आखिर...।

मैं बोलता जा रहा हू और कदम कदम पीछे हटता जा रहा हूं। वह लड़का मेरी तरफ बढ़ता चला आ रहा है। आखिर जब मुझे बचाव की कोई और सूरत नजर नहीं आती तो मैं सर खुजलाने के बहाने उस मेख को एक झटके से उखाड़ लेता हूं और अपने सर को यू घुमाना शुरू कर देता हूं जैसे वह कोई शस्त्र हो। खून के फव्वारे के कारण वे तीनों अन्धे हुए जा रहे है, मै धीरे धीरे बेहोश।

जब मेरी बारी आयी तो वह दोनों मुझे भूल अपनी ही बातों में डूब गये। मेरे साथ अक्सर यही होता है। किसी कतार में खड़ा मैं इंच-इंच आगे बढ़ता आखिर किसी बाबू या बीबी की खिड़की या किसी साहिब या मैडम की मेज़ तक पहुंचता हूं तो मेरी फरियाद सुनने, मेरी अर्ज़ी पर नज़र डालने, मेरे लायसेंस या राशन कार्ड को बहाल करने, किसी बिल में हुई भूल को सुधारने, मेरी किसी अर्ज़ी पर 'हां' या 'न' करने, मेरी किसी फ़ाइल को आगे सरकाने के बजाय वे लोग अपने किसी सहयोगी या मुलाकाती के साथ हसना-खेलना शुरू कर देते हैं। उनके हंसी-मज़ाक का मुझ से या मेरे केस से दूर का भी कोई वास्ता नहीं होता लेकिन या शायद इसीलिए मुझे लगता रहता है कि वे मेरा और मेरे केस का ही मजाक उडा रहे हैं। कुछ देर के लिए मानो मैं उनके लिए मर जाता हूं। मुझे समझ नहीं आती क्या करूं-कहूं सोचूं जिस से उनका ध्यान फिर मेरी तरफ लौट आए। मैं मुंह बाए खड़ा रहता हूं, बीच-बीच में सर हिला या मुस्करा देता हूं ताकि वे देख लें तो समझें मैं उनको दाद दे रहा हूं, लेकिन जल्द ही मुझे गुस्सा आना शुरू हो जाता है—उन पर, अपने आप पर, अपनी स्थिति पर, अपनी असहायता पर। मैं अपने गुस्से को पी जाने की पूरी कोशिश करता हूं, अपने आपको समझाता हूं कि गुस्से से काम बिलकुल बिगड जाएगा, उनकी उदासीनता अदावत में बदल जाएगी, सब समझदार लोगों की तरह मुझे भी मिसकीन बना रहना चाहिए या फिर सिफ़ारिश और रिश्वत और रिरियाहट का सहारा लेना चाहिए, लेकिन किसी भी तर्क से मेरा गुस्सा दबता-बैठता नही। इस उलझे हुए गुस्से ने मेरे कई काम बिगाड़े हैं। इसे कितना ही छिपाऊं यह मेरी आवाज या नजर या खामोशी से अनायास फूट पड़ता है और वह बाबू-बीबी-साहिब-मैडम मेरे खिलाफ हो जाते है, कह देते है कल आना, तुम्हारे काग़जात ठीक नहीं, तुम समझते क्यों नहीं, तुम समझते क्या हो अपने आपको, कह दिया ना आज हम कोई और केस नही सुनेंगे वग़ैरह-वग़ैरह।

हर बार जब कोई काम बिगड़ जाता है तो मैं इरादा बांधता हूं कि अगली बार अपने लहजे में पर्याप्त लिजलिजी याचना का स्वर साधूंगा, बेसब्री नहीं दिखाऊंगा, अपने असूल को सूली पर चढ़ा दूंगा, अपने अधिकारों की दुहाई नही दूंगा, अपनी निगाहों से उन लोगों तक यह पैग़ाम बार बार पहुंचाऊंगा कि वे मेरे माई-बाप हैं, लेकिन अगली बार फिर मुझ से वही हो जाता है जो पिछली बार हो गया था, मेरा काम फिर बिगड़ जाता है, और मैं मुंह लटका कर सोचने लगता हूं सारी दुनिया क्यो मेरी दुश्मन हो गयी है। मुझे उन लोगो से ईर्ष्या होती है जो अपने सब जायज-नाजायज़ काम करवा लेते हैं, मुनासिब तरीके से

मिमिया-हिनहिना कर, चढ़ावे चढ़ा कर, चुप रह कर, या रौब डाल कर, हर जायज-नाजायज तरीके से, और फिर इतराते फिरते हैं, फूले नहीं समाते, दूसरों से कहते रहते है, उस दफ़्तर में कोई काम हो तो हमें बताइए, हमारी वहां जान-पहचान है।

कल रात भी जब मेरी बारी आयी और वे दोनों मुझे भुगताने के बजाय अपनी बातों मे डूब गये तो मैं कस गया। मैं सफ़र का मारा हुआ तो था ही, उनकी बेरुखी देख मेरा मूड फौरन खराब हो गया। उमड़ती हुई अधीरता को दबाकर मैने अपने आपको चेतावनी दी कि अगर मैंने अपने स्वर या तेवर से उन्हें नाराज कर दिया तो वे मुझे रोक लेंगे, तरह तरह के सवाल पूछेंगे, शक्की निगाहों से नोचेगे, तलाशी लेंगे, और अगर ज्यादा तैश में आ गये तो शायद बाकी रात के लिए वहीं कहीं बिठा या बन्द करवा दें। खुशक़िस्मती से मेरे पास कोई सामान नहीं था। यही बात मेरी बदक़िस्मती मे बदल जाएगी, मैने सोचा तक नही था। लेकिन फ़िलहाल तो वे दोनों आपस मे अनावश्यक बातें कर रहे थे और मैं यह कोशिश कि उन्हें मेरे आक्रोश का पता न चले। मेरा खयाल है मैं अपने मन की मलिनता को छिपाए रखने का गुर नही जानता। शायद मेरे मन के मैल से किरणे सी फूटती रहती है जिन का असर सब लोगों पर पड़ता है खास तौर से उन पर जिनके पास मेरा कोई काम फंसा हुआ हो या जो मुझे किसी जाल में फंसा सकते हों। अब मैं मन ही मन उन दोनों को कोस रहा था कि वे जान बूझ कर मुझे और दूसरे थके टूटे मुसाफिरों को तंग करने के लिए अपना काम करने के बजाए गप्पें मार रहे थे, कि उन्हें हम सबको तंग करने में मज़ा आ रहा था, कि उन जैसे लोगों की वजह से ही हम हिन्दुस्तानी दुनिया भर में अपनी सुस्ती और बेईमानी के लिए बदनाम हैं। अपनी पूरी कोशिश के बावजूद मैं अपने मन में उठ रहे इन आरोपों को बिठा नहीं पा रहा था, इसलिए डर रहा था कि वे दोनों किसी भी क्षण मुझ से मुखातिब हो कहेंगे, आप क़तार से बाहर आ जाइए, आपका पास्पोर्ट हमें जाली नज़र आता है, आपके सामान की हम आराम से तलाशी लेना चाहेंगे। इस डर को छिपाने के लिए ही शायद मैंने मुड़ कर देखा तो पाया मेरे पीछे और कोई नहीं था। मैं और घबराया। अब मैं उनके रहम पर था। अब मुझे और एहतियात बरतनी होगी। अब वहां कोई मेरी हिमायत करने वाला नहीं था। अब वे मुझे खूब तंग करेंगे, मज़े ले ले कर, किसी शर्म-सकोच के बग़ैर, अब मेरा अपमान हो कर रहेगा।

मैंने सर झुका लिया और दुआ मांगी कि मेरे अन्दर का ऊधम उन्हें मेरे हाव-भाव मे दिखायी न दे लेकिन मैं जानता था जाने-अनजाने मुझ से कुछ न कुछ ऐसा हो जाएगा जिस पर वे भड़क उठेंगे, जिसे वे मुझे यातना देने का बहाना बना लेंगे। मैंने एहतियात के तौर पर आंखे बन्द कर ली थीं। बन्द आंखो वाला आदमी अक्सर या तो दीन नज़र आता है या अन्धा। मैं उन्हें दीन नजर आना चाहता था। मैं कोशिश कर रहा था मेरे कान भी बन्द हो जाएं ताकि उनकी बकबक मुझे सुनायी न दे। आंखें और कान बन्द हो तो वक़्त की रफ्तार का अन्दाज़ा भी नहीं रहता। कान बेशक पूरी तरह बन्द नहीं हुए थे, नहीं हो सकते थे, फिर भी मै कोशिश कर रहा था कि उनकी बातो को अनसुना करता रहूं क्योंकि वे बातें निहायत वाहियात थीं—ऐसी जो दो ज़िम्मेवार आदमियो को उस वक़्त नहीं करनी चाहिए जब वे

ड्यूटी पर हो और एक थका मान्दा मुसाफिर उनके पास खड़ा हो। आखिर काफी देर बाद उनमें से एक ने—जो दूसरे का बाप या बहुत बड़ा भाई दिखता था—कहा, आपका सामान कहां है? मैंने चौंक कर उसकी तरफ़ देखा और जेब से एक मुचड़ा हुआ रूमाल निकाल कर उसे दिखा दिया। मै नहीं जानता मैंने यह हिमाकत क्यों की लेकिन मैं यह जानता हू कि अपना सब से बड़ा दुश्मन मैं खुद हूं, कि जो मै नहीं करना चाहता वही अक्सर मुझ से हो जाता है, कि मै अक्सर अपने किये पर पश्चात्ताप करता हू, कि इस पश्चात्ताप का असर सिफ़र से भी कम होता है, और अगली बार फिर मुझ से वही हो जाता है जो मैं नहीं करना चाहता। अब अगर उनकी जगह पर मैं होता और कोई मुसाफ़िर सामान के बारे में पूछे जाने पर जेब से एक मुचड़ा हुआ रूमाल निकाल कर मेरे सामने रख देता तो मैं भी समझता वह मेरा मजाक़ उड़ा रहा है और मैं उसे सबक सिखाने पर तुल जाता। सो वे दोनों एक साथ एक सी आवाज में कड़क उठे यह क्या मजाक है? अगर उस कड़क को सुनते ही मैंने रूमाल जेब में ठूंस लिया होता और हाथ जोड़ कर कह दिया होता, हुज़ूर मेरे पास कोई सामान नहीं, मैं बिलकुल खाली हाथ वहां गया था और खाली हाथ लौट आया हू तो शायद उन्हें तरस आ गया होता, वे सोचते बेचारे के साथ कोई बुरा हादसा हो गया होगा, लेकिन मेरा अनुमान है तब भी उन्हें गुस्सा ही आता, दूसरी किस्म का गुस्सा जो हमे मिस्कीनों पर आता है या उन पर जिन पर हमें शक हो जाए कि वे हलीमी को एक हथियार बना रहे हैं, व्यग्य कर रहे हैं।

सच तो शायद यही है कि विदेश से कोई सामान के बग़ैर नहीं लौटता, लेकिन यह भी सत्य है कि मैं विदेश से सामान के बग़ैर लौटा था, और अगर मैंने अक्ल से काम लिया होता तो शायद मेरी बेसरोसामानी पर वे हैरान तो होते, नाराज नहीं, ऐन मुमकिन है वे उसकी प्रशंसा भी करते। वह मुचड़ा हुआ रूमाल उन्हें दिखा कर मैंने उनका ही नहीं, उनके सारे सिस्टम का निरादर कर दिया था, और कोई शख्स अपने और अपने सारे सिस्टम का निरादर बरदाश्त नहीं कर सकता, मैं भी नहीं, मैं जो सिफर हूं, और जानता हूं कि मैं सिफ़र हू। मैंने रूमाल जेब में नहीं ठूंसा, हाथ नहीं जोड़े, कमजोर और नाकाम आदमी की आत्मघाती जिद्द के जोर पर कहा, यही मेरा सामान है, अगर आप ने तलाशी लेनी है तो इसी की लेनी होगी। अब उन दोनों ने आंखों ही आंखो में आपस में परामर्श किया, मेरी तरफ़ मैली मारू नजर से देखा, और मेरे खिलाफ़ कोई कड़ा फैसला कर लिया। उनमे से जो दूसरे का बाप या बहुत बड़ा भाई नजर आता था उसने आदेश दिया, अपने गन्दे रूमाल को जेब में डाल लीजिए, हम आपकी तलाशी लेंगे। मैंने फिर उसी गलत जिद्द के ज़ोर पर कहा, शौक से। इस पर छोटी उम्र वाले ने माहिराना क्रूरता से मेरी सारी जेबों को थपकिया दीं, उन्हें टटोला, उनमें हाथ डाल कर भी वैसे भी, मेरी जांघो में हाथ डाल कर टटोला, और कहा, अब जूते उतारिये और पतलून ढीली कर दीजिए। मुझे चुपचाप उसके हुक्म की तामील करनी चाहिए थी, लेकिन मैंने फिर वही किया जो मैं जानता था मेरे खिलाफ जाएगा। मैंने कहा, तो क्या आप मेरा डाक्टरी मुआइना भी करेंगे? इस पर बड़ी उम्र वाले ने मेरे कन्धे पकड़ कर मुझे झझोड़ा और कहा, बकवास बन्द कीजिए, वर्ना आपका केस इतना खराब हो जाएगा कि कोई भी आपकी मदद नहीं कर सकेगा। मुझे लगा जैसे कोई कड़वा मुनि मुझे शाप दे रहा

हो। इस बीच दूसरे ने मेरी पेटी खोल कर खींच ली थी और मेरा जिपर खोल दिया था। अब वह अन्दर हाथ डाल कर उस सारे इलाके की तलाशी ले रहा था। दूसरे ने मेरे चेहरे से अनुमान लगा लिया होगा कि मैं अब और बकवास नही कर सकूगा। उसने पता नहीं कहा से टार्च निकाली और उसकी रौशनी में मेरी पतलून के अन्दर झांकना शुरू कर दिया। हम से कुछ ही दूर कुछ लोग एक गुच्छा सा बनाए खड़े थे और तमाशा देख रहे थे। मेरा गला मेरी आखों की ही तरह भरा हुआ था और मैं फैसला नही कर पा रहा था कि जेब से वह मुचड़ा हुआ रूमाल निकालू या नहीं।

वह दौड़ता हुआ सीढ़िया चढ़ रहा था। मुझे लगा जैसे कोई बच्चा किसी बुज़ुर्ग को अपनी फुरती के जौहर दिखा रहा हो, या कोई अभिनेता फुरती की किसी दवा का कमर्शल बना रहा हो। मैं उसके करतब देख दंग भी हो रहा था, जल भुन भी रहा था। अपने आश्चर्य में व्याप्त ईर्ष्या के विष को मारने के लिए ही शायद मैं चाह रहा था कि चिल्ला कर उसे उन सीढ़ियों से फिसल जाने के खतरे से खबरदार करूं—रुक जाओ, या कम अज़ कम इतनी जल्दी मत मचाओ, फिसल जाओगे, बेहोश हो जाओगे, इस उम्र में बच्चों की तरह सीढ़ियों पर कूदना फांदना खतरनाक तो है ही, अशोभनीय भी है, रुक जाओ, मुझे देखो, कैसे चैन से सब से निचली सीढ़ी पर बैठा हूं, बरसों से, क्या मेरा दिल नहीं करता कि मैं ऊपर चढ़ूं, चोटी तक पहुंचूं, लेकिन मैं जानता हूं कि चोटी पर पहुंचने के लिए दूसरों को नीचे धकेलना पड़ता है, जानते तुम भी हो, मगर ऊपर चढ़ते चले जाने का सुरूर तुम्हें चैन नहीं लेने देता, लेकिन यह मत भूलो कि जो ऊपर चढ़ता है वही नीचे भी आता है...।

मैं यह सब चिल्लाया नहीं। अगर चिल्ला भी देता तो शायद ही मेरी आवाज़ उस तक पहुंच पाती, पहुंच जाती तो भी वह यही समझता कि मैं नहीं, मेरी ईर्ष्या चिल्ला रही थी। और फिर मेरी आवाज़ भी तो आजकल बैठी बैठी सी रहती है, मेरी ही तरह, सब से निचली सीढ़ी पर बैठे बुझे किसी बेदम की आवाज की तरह। और फिर वैसे भी सीढ़िया चढ़ता हुआ शख्स नशे में होता है, नीचे का शोर वह नहीं सुनता, या न सुनने का बहाना करता है। और फिर रात को तो वैसे भी मेरी बैठी बैठी आवाज अक्सर बिलकुल बंद हो जाती है, खास तौर पर तब जब मुझे उसकी बहुत ज़रूरत होती है, किसी भूत को भगाने या ललकारने के लिए।

खैर तो मैं अपने मन के मैल को दबाने धोने की कोशिशों से बेहाल हो ही रहा था कि मैंने देखा कि सीढ़ियां चढ़ते चढ़ते उसने लीद करनी शुरू कर दी थी। मुझे क्रूर संतोष मिला। मैंने हमेशा इस कल्पना से तसल्ली बटोरी है कि सीढ़िया चढ़ता हुआ शख्स देर सवेर एक हद से गुज़र जाने के बाद लीद से भर जाता है। मैं सोच रहा था—अब साले को अपनी लीद साफ करनी पड़ेगी। अभी कोई आ जाएगा और कड़क कर आदेश देगा—साले, नीचे आ कर पहले अपनी लीद उठाओ, बाकी की सीढ़ियां फिर चढ़ना! मन हुआ मैं ही मुंह पर हाथों का भांपू बना कर उसे यह आदेश सुना दूं। लेकिन फिर मेरी बैठी बैठी आवाज़ मुझे याद आ गयी और मैं मन मार कर रह गया। वैसे अगर किसी तरह मैंने ज़ोर लगा कर अपनी आवाज को ऊंचा कर उसे रुक जाने और नीचे उतर कर अपनी लीद साफ करने के लिए कह भी दिया

होता तो वह रुकता नहीं। मैं यूही यह सब सोच रहा हू। मुझे अपनी आवाज़ पर कोई भरोसा नहीं, कि वह ऐन मौके पर गुम हो जाती है और मेरा गला किरिको की किसी सुनसान बेआवाज़ गली मे बदल जाता है।

अगर उसने खुली सी खाकी नीकर न पहनी होती या नीकर के नीचे कसा हुआ कच्छा पहना हुआ होता तो उसकी लीद नीचे न गिरती। मुझे अंदर ही अंदर हसी तो आयी लेकिन मैंने उसे बाहर आने नहीं दिया, क्योंकि मै उसे पता नही चलने देता था कि उसकी लीद निकल रही थी। उसे मालूम तो शायद था ही लेकिन वह अब भी यू उछल उछल कर सीढ़ियां चढ़ रहा था जैसे उसकी नीकर मे लीद नहीं फूल झड रहे हो। मैं देखना चाहता था वह कितनी देर तक अपनी लीद से बेखबर रहने का ढोग रचता है।

इस अदेशे के बावजूद कि उसकी लीद मेरे सर पर गिर सकती थी, मैं पहले तो नीचे वाली सीढ़ी पर बैठा रहा, फिर मैंने अपने घुटनों पर हाथ रख मुश्किल से ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया। बीच के फ़ासले के बावजूद अब उसकी लीद की कच्ची सी महक मुझे आनी शुरू हो गयी थी। उस से उठती हुई भाप की धारियां देख मुझे धूफ़ के धुएं की धारियाँ याद आ रही थीं। मेरी हंसी मेरे होंठों में रची हुई थी, मेरी ईर्ष्या मेरी हंसी मे।

उसके बदसूरत बड़े दफ़्तर के एक कोने में पड़ी एक बेचारी सी कुरसी में गिरा पड़ा मैं गिलगिली नज़रों से उसे देख रहा था और वह मुझ से बेखबर काम में डूबे हुए होने का अभिनय कर रहा था। उसका काम कई क़िस्म के काग़ज़ात की सूरत में उसकी मेज़ पर बिखरा हुआ था। न जाने कितने लोग हर रोज़ उसके दफ़्तर में तरह तरह की दरख्वास्तें ले कर आते होंगे और गिलगिली नज़रों से उसकी तरफ़ देखते रहते होंगे, इस इन्तज़ार में कि वह सर उठा कर उनकी तरफ़ देखे और वह अपनी दरख्वास्त उसके सामने रखें! मुझे डर था कि उसने सर उठा कर मुझे देख भी लिया तो पहचानेगा नहीं, पहचान भी लिया तो न पहचानने का बहाना करेगा। मैं बहुत बेचारा महसूस कर रहा था, उस बेचारी कुरसी से भी ज़्यादा जिसमें मैं उस वक़्त गिरा पड़ा था। वह कुरसी उस कोने में मुझ जैसे बेचारों के लिए ही रखवा दी गयी होगी। मुझे उस कुरसी पर उतना ही तरस आ रहा था जितना अपने आप पर। जब से मैंने घर के लिए भटकना शुरू किया है मुझे गिरी पड़ी बेचारी चीजों में भी अपनी बेचारगी का प्रतिबिम्ब दिखायी देता रहता है। जब से यह स्थिति शुरू हुई है, मैं दूसरों से और ज़्यादा दूर होता जा रहा हूं, उन दूसरों से भी जिन्हें किसी जमाने में मैं दूसरों के जुमरे में नहीं रखा करता था।

अब वह उन काग़ज़ों पर दस्तखत मार रहा था, कुछ इस अदा से कि मुझे लगा जैसे वह तीर पर तीर चला रहा हो। एक औरत न जाने कब कहा से टपक पड़ी थी और उसकी कुरसी के साथ अपना एक कूल्हा टिकाए थोड़ी सी उस पर झुकी हुई दस्तख़त किये जा चुके काग़ज़ों को उठा उठा कर एक तरफ रखती जा रही थी, कुछ इस अदा से कि मुझे लगा जैसे वह भी तीर ही मार रही हो। उसके चेहरे पर भी गम्भीरता का वैसा ही लेप था जैसा उसके बॉस के चेहरे पर, लेकिन उस लेप के नीचे से उसका नखरा बराबर आंख मार रहा था। मैं चाह रहा था कि वही मुझे देख ले ताकि मैं देख सकूं कि मुझे देख लेने के बाद वह अपने बॉस को बताती है कि नहीं कि मैं अपने कोने में बैठा सब देख रहा था।

मेरे मन में तरह तरह की शंकाएँ उठ रही थीं। उन्हें बिठाने की कोशिश में मैं खुद कुछ और बैठता जा रहा था। मुझे कोफ्त हो रही थी कि मैं वहा क्यो जा बैठा था, कुछ याद नहीं आ रहा था कि मैं वहां कैसे जा पहुंचा था, कब से बैठा हुआ था। बीच बीच में पता नहीं क्या होता कि एक कंपकंपाते क्षण के लिए वह औरत, वह आदमी, वह दफ़्तर एक साथ नंगे हो जाते और मैं खुद एक निर्मम आंख में बदल जाता। होता शायद कुछ और ही रहा होगा, मैं अब उसे ठीक तरह से बयान नहीं कर पा रहा। शायद होना भी कुछ न रहा हो, असल में,

और मैं खुद ही आखे मूद कर औरत को, उसको और उसके दफ्तर को नगा कर लेता था, एक कपकंपाते क्षण के लिए, उन तीनो की असलियत को समझने के लिए। जो हो मैंने अब मन ही मन खुल कर पछताना शुरू कर दिया था। न जाने मैं किस मकसद या मजबूरी के तहत वहां जा बैठा था। मुझे उस मकसद या मजबूरी को जैसे तैसे टाल देना चाहिए था। अब भी अगर उठ कर चुपचाप उस दफ्तर से बाहर निकल जाऊ तो कोई मुझे रोकेगा नही, मैं जानता था, लेकिन पछतावे की मार के बावजूद मुझे बीमार सा मजा भी आ रहा था और यह भी महसूस हो रहा था कि मुझे कुछ ऐसा देखने का अवसर मिल रहा था जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नही की थी। बीमार मजे और कल्पनातीत दृश्यो का शिकंजा बहुत सख्त होता है, कम-अज-कम मेरे लिए, उस से आजाद होना मुझे असंभव नजर आता है, और सच तो यह है उस से आजाद हो जाने की कोशिश करने की ख्वाहिश ही नहीं होती।

सो अब मैने मन ही मन यह दुआ मागनी शुरू कर दी थी कि वे दोनों मुझ से बेखबर रहें, या बेखबर होने का बहाना करते रहें, ताकि मैं उन्हें और अच्छी तरह से देख सकूं। दुआ मागते मांगते मै अपने मन की तलाशी भी ले रहा था, यह जानने के लिए कि कौन सा मकसद या मजबूरी मुझे उस दफ्तर में ले गयी थी। आम तौर पर मै दफ्तरो और अफसरो से नफरत भी करता हूं, डरता भी हूं, इसलिए यथासंभव उन से दूर रहता हूं। इसीलिए शायद स्वप्नों में कभी कभी दफ्तरो में भटकता रहता हू, अफसरों से सहमता रहता हू। इस डर और नफरत के नीचे दबी ईर्ष्या से इनकार है न दफ्तरों और अफसरों की दुनिया को नजदीक से देखने की ख्वाहिश से। जिस बीमार मजे का मैने जिक्र किया है उसकी जडे भी इसी ईर्ष्या और ख्वाहिश में होंगी, यह मै मानता हू, लेकिन यह मान लेने से भी मुझे इस ईर्ष्या और ख्वाहिश से मुक्ति नही मिलती। मन की तलाशी लेते लेते आखिर मैं इस नतीजे पर पहुचा कि किसी बीमार मजे के शिकजे में जकड लिये जाने की सभावना या उम्मीद ही मुझे उस दफ्तर में घसीट ले गयी होगी जिसका बॉस किसी जमाने में मेरा हमदम हुआ करता था। औरों का मैं कह नही सकता मेरे लिए हर बीमार मजे का एक अनिवार्य अग मेरा अपमान होता है। अपने अपमान की सभावना के बगैर मुझे कोई मजा पर्याप्त मात्रा मे बीमार नजर नही होता।

अब मुझे यकीन हो गया था कि मेरा अपमान ही हो रहा था, क्योंकि मुझे देखा न भी गया हो, महसूस तो किया ही गया होगा, और शायद सूघ भी लिया गया हो—मै पसीने से तर-ब-तर था, ए-सी के बावजूद, और मेरे जिस्म से मेरे डर की महक भी जरूर उठ रही होगी। पसीना मुझे वैसे भी ज्यादा आता है, और जब मुझे महसूस हो रहा हो कि मेरा अपमान हो रहा है तो वह और ज्यादा हो जाता है।

पसीना पोंछते हुए मैने इधर उधर देखा तो मुझे लगा जैसे वह दफ्तर इस बीच कुछ और बड़ा, कुछ और बदसूरत, हो गया हो, वह औरत कुछ और बेहया, उसका बॉस कुछ और गम्भीर, उसकी मेज कुछ और विशाल, उस पर कागजों का बिखराव कुछ और बारोब। बॉस अब अपनी कलम को तीर के बजाय तलवार की तरह चला रहा था। इस परिवर्तन पर मै हैरान हो ही रहा था कि दफ्तर के बीचोबीच लश-लश करती एक लाल कार एक लाडली बिल्ली की तरह बैठी नजर आयी। कार मे एक बावर्दी शौफर बैठा हुआ था और बॉस की

तरफ़ यूं देख रहा था जैसे उसके किसी भी इशारे या आदेश पर नाचने या मेरा मुंह नोच लेने के लिए तैयार हो। पहले तो मैंने सोचा वह कार असल में कोई सजावटी खिलौना ही होगा और उसमें बैठा वह शौफ़र भी उसी खिलौने का हिस्सा। मैंने आंखों को मसला, सर को झटका दिया, लेकिन उस कार का कद वग़ैरह कम हुआ न उस शौफ़र का। अब मैंने उस शौफ़र को भी देखना शुरू कर दिया, यह देखने के लिए कि वह मुझे देखता है या नहीं, देख कर दुत्कारता है या नहीं। डर मुझे बावर्दी शौफ़रों से भी बहुत लगता है क्योंकि वे भी मुझे अफ़सरों से ही नज़र आते हैं। फिर भी वह शौफर उस वक़्त मुझे अपने ही वर्ग का महसूस हुआ और मैंने चाहना शुरू कर दिया कि वह मेरे पास आ खड़ा हो या मुझे अपने पास बुला ले और मुझे उन दोनों के बारे में कुछ बताना शुरू कर दे। मैंने फ़ैसला कर लिया था कि अगली बार जब वे दोनों और वह दफ़्तर मुझे नंगे नज़र आएँगे तो मैं देखूंगा कि वह शौफ़र भी नंगा होता है या नहीं। कार तो खैर मुझे बराबर नंगी ही नज़र आ रही थी। अगली कौंध की प्रतीक्षा में मैं न जाने कितनी देर कसा बैठा रहा। शौफर ने भी मुझे अभी तक देखा नहीं था। मेरे मन में यह अन्देशा उठना चाहिए था कि कहीं मैं अदृश्य तो नहीं हो गया था। मेरी अनेक असभव ख्वाहिशों में से एक यह भी है कि कुछ देर के लिए अदृश्य हो कर सारे दृश्य देखूं।

उस दफ्तर के उस कोने में कसा दुबका बैठा मै अब इस अन्देशे से डर रहा था कि बॉस की कुरसी में बैठा मेरा वह पुराना हमदम किसी भी क्षण कड़क उठेगा—तुम कौन हो? यहां क्या कर रहे हो? कब से यहां बैठे हुए हो? क्या चाहते हो? तुम्हें अन्दर किसने आने दिया? फिर वह उस औरत से पूछेगा—कौन है यह कमबख्त? औरत कन्धे मुकेड़ देगी, शायद कुल्हे भी, तो वह शौफ़र को हुक्म देगा—इसे उठा कर बाहर फेंक दो! शौफ़र मेरी तरफ़ लपक ही रहा होगा कि मेरी जान निकल जाएगी।

इस अन्देशे का आलोक था या अगली कौंध का, मैं कह नहीं सकता लेकिन अब की बार वे तीनो उस दफ्तर समेत मुझे इतने नंगे नज़र आए कि मेरी आखे बद हो गयीं।

मैं उसकी बड़ी बदसूरत मेज के सामने खड़ा था। वह अपनी मेज पर पडे काग़ज़ों पर झुका हुआ था। काम में गर्क होने का उसका अभिनय इतना विश्वसनीय था कि मैने अपने अविश्वास को स्थगित कर यह मान लिया था कि उसने मुझे न देखा था, न महसूस किया था।

अफ़्सर और बाबू अक्सर मुझे नही देखते, नहीं सुनते। मुझे लगता है मानो उनके सामने होते ही उनके डर से मेरा जिस्म हवा हो जाता है, मेरी आवाज गुम।

मैंने खांस कर उसका ध्यान अपनी तरफ खींचने की कोशिश की तो उसने मेज पर झुके झुके ही ऐसा मुंह बनाया जैसे किसी परिन्दे ने उस पर बींट कर दी हो। उसे एक चपत जड देने की ख्वाहिश हुई लेकिन ख्वाहिशों को मेरी समझ-बूझ आसानी से खत्म कर देती है!

मैं उसी के आदेश पर, उसी के दिये वक्त पर, उसके सामने पेश हुआ था। मेरी बग़ल में एक बदसूरत फ़ाइल दबी हुई थी। वैसे तो पेशी के लिए मैं अपनी तरफ से मुनासिब पोशाक पहन कर वहां पहुंचा था। लेकिन अब खुद मुझे वह पोशाक मेरी फाइल की ही तरह बदसूरत दिखायी दे रही थी। मुझे महसूस हो रहा था जैसे वहां मैं नहीं बल्कि कोई बेचारा सा बूढ़ा चपरासी खड़ा हो।

इस एहसास को दबाने के लिए ही मैं धम से एक कुरसी में गिर सा पड़ा, यह सोच कर कि जब वह मुझ पर बरसेगा तो मैं उसे याद दिलाऊँगा कि मैं उसी के बुलावे पर वहां हाजिर हुआ था, कि मै उसका या किसी और का चपरासी नहीं, एक बाइज्ज़त शहरी हू, बाकायदा टैक्स देता हूं, साहिबे जायदाद हूं, हरामखोर या रिश्वतखोर नहीं, पेन्शनयाफ्ता हू...।

लेकिन वह मुझ पर बरसा नहीं। न ही उसने सर उठा कर मुझे देखा। अब मेरे गुस्से में मद्धिम सी हंसी भी आ मिली थी। दोनों को दबा कर मैंने कहा .

—सर, आपने मुझे बुलाया था।

'सर' मेरे मुंह से सस्कारवश ही निकल गया था। उसे किसी तरह वापस ले लेने की ख्वाहिश हो रही थी।

—बुलाया होगा, मुझे याद नहीं।

मै खुश हुआ कि आखिर उसने कुछ कहा तो। लेकिन गेंद अब मेरे हवाले था और मुझे समझ नहीं आ रहा था उसका क्या करूं।

मैंने इधर उधर देखा। कई मेजें थीं, हर मेज पर एक अफ्सर बैठा काम में गर्क होने का बहाना या अभिनय कर रहा था और उसके सामने मेरे ही जैसा एक उलझा हुआ आदमी बैठा या खड़ा था। मुझे अपनी आंखों पर यकीन नहीं हुआ। हर स्थिति में अपनी स्थिति और हर सूरत में अपनी सूरत देखने की मुझे बीमारी सी हो गयी है।

—अगर आपको याद नहीं तो और किसे होगा?

—ज़ाहिर है तुम्हें है।

उसका 'तुम्हें' मुझे बुरा लगा।

—वैसे आपको याद क्या नहीं? यह कि आपने मुझे बुलाया था या यह कि आपने मुझे क्यों बुलाया था?

—जिरह मत करो!

अब उसकी आंखें मेरे सर से ऊपर और परे किसी काल्पनिक नुक्ते पर टिकी हुई थीं। खयाल आया यह कहीं अन्धा तो नहीं। फिर सोचा हर हाकिम कमोबेश अन्धा होता है। फिर सोचा, यह अन्धा हो न हो, इसके सामने पेश हो कर मैंने गलती की, अब भी उठ जाऊं तो शायद मेरा आत्मसम्मान बच जाए, लेकिन तब यह हमेशा के लिए मेरा दुश्मन बन जाएगा, अफ्सरों से दुश्मनी अच्छी नहीं होती, दुश्मनी किसी से भी अच्छी नहीं होती, मेरे लबोलहजे और नखशिख में आखिर कौन सा ऐसा दोष है कि सब बाबू और अफ्सर और बावर्दी चौकीदार मुझे देखते-सुनते ही मेरे खिलाफ़ हो जाते हैं, शायद उन्हें मालूम हो जाता है कि मेरे दिल में उन से भय के सिवा उनके लिए कुछ भी नहीं, घृणामिश्रित भय के सिवा, मुझे मान लेना चाहिए कि किसी दफ्तर में मेरा कोई काम कभी नहीं होगा, कि सब दरवाजे मुझ पर हमेशा बन्द रहेंगे, कि मुझे किसी बहिश्त में दाखिला नहीं मिलेगा, कि मेरा अपमान अनिवार्य है, कि अपमान ही मेरी नियति है कि...

मैंने सर को झटका दे इस सोच के सिलसिले को तोड़ना चाहा तो उसने कड़क कर कहा—तमीज से बैठो।

—देखिए, तमीज से बोलिए!

—तमीज तुम्हारे लिए जरूरी है, मेरे लिए नहीं।

—वह कैसे?

—जिरह मत करो!

—तो मैं जाऊं?

—शौक़ से।

—तो मेरा वक्त जाया करने के लिए ही मुझे यहां बुलाया था?

वह खामोश रहा तो मैं खुश हुआ कि आखिर उसे अपनी ज्यादती का एहसास तो हुआ।

—अच्छा तो मैं जा रहा हूं।

मैं खड़ा हो गया। बगल में दबी बदसूरत फाइल को मैंने मेज पर रख दिया।

—ये कागज़ात भी यहीं छोड़े जा रहा हूं।

वह खामोश रहा। मेरी खुशी मुरझानी शुरू हो गयी। मुझे यह महसूस होना शुरू हो गया कि मैं जो कदम उठाऊंगा गलत होगा, जो बात कहूंगा बेकार होगी, जो सोचूंगा अप्रासंगिक होगा। मैं फिर कुरसी पर गिर गया। उसके होठों पर एक विजयी मुस्कराहट आ बैठी थी।

मै उस काली लम्बी कार के पास पहुचा ही था कि एक सख्त-सूरत सफेदपोश औरत ने कार के एक खुले दरवाजे की तरफ इशारा करते हुए कहा—आपकी सीट उधर है।

औरत सख्त तो थी, सुन्दर भी थी, इसीलिए शायद मेरे मुंह से अनायास निकल गया—आपकी किधर है?

सख्त दिखने वाली सुन्दर औरतों की मुस्कराहट अक्सर इतनी कोमल होती है कि उस पर खुद उन्हे आश्चर्य होता है जो उनकी आखो से उजाले के रूप मे फूटता रहता है।

मुझे उसकी मुस्कराहट तो कोमल लगी ही, उसका आश्चर्य भी कोमल लगा। मै उसे बताना चाहता था कि मुझे मालूम था उसे मुस्कराहट मेरी गुस्ताखी पर आयी थी, आश्चर्य अपनी मुस्कराहट पर।

मैं कोई विशेषज्ञ तो नही लेकिन मैंने बहुत सी सख्त और सुन्दर औरतों को दूर से सराहा है, कुछ एक के पास पहुंचने की कोशिश भी की है, कुछ एक बार इस कोशिश में कामयाब भी हुआ हू।

उसे मुस्कराते देख अनायास यह उम्मीद बंधती महसूस हुई थी कि मै उस काली लम्बी कार में उसकी बग़ल मे बैठ सकूगा।

उधर उसने मुस्कराहट और आश्चर्य पर तुरत अपनी सख्ती का साया डाल दिया और कहा—आप मेरी सीट की चिन्ता मत कीजिए, मै सबको बिठा कर कहीं भी बैठ जाऊंगी। मैं कहना चाहता था मै चिन्ता असल में अपनी ही सीट के बारे मे कर रहा था लेकिन मैंने कहा नहीं।

सबको बिठा लेने के बाद शायद उसके लिए कोई जगह ही न बचे और उसे किसी के घुटनो पर बैठना पडे, यह सोचते हुए मैने अपने घुटनो को सिहरते हुए महसूस किया और अपने सर को झुकते हुए। अगर वह किसी और के घुटनो पर बैठ गयी तो मै उन घुटनो को तोड दूगा। इस हिंसक विचार पर मुझे हैरानी और शर्म महसूस हुई। मेरी निगाहे उसके पैरों की अंगुलियो पर जा टिकी थी। वे मुझे बहुत भोली भाली नजर आयी। मन कर रहा है कह दू सख्त और सुन्दर औरतों के पैरो की अंगुलिया अक्सर भोली भाली होती हैं।

वह इस बीच किसी और को उसकी सीट दिखाने लगी थी।

वह कार इतनी लम्बी थी कि मुझे लग रहा था जैसे गाडी हो, और इतनी काली कि मुझे ख्याल आ रहा था जैसे वह कोई मातमी गाडी हो। अगर उस सख्त सुन्दर सफेदपोश औरत ने मेरा सारा ध्यान सोख न लिया होता तो जरूर मुझे उस कार की काली लंबाई पर और आश्चर्य हुआ होता, मैंने उसी वक्त उसके बारे में कुछ और अनुमान लगाए होते।

जब मैंने'सर उठाया तो वह औरत एक जोडे को कार की तरफ ले जा रही थी। मै उसकी अंगूरी एड़ियों को सहला रहा था और सोच रहा था कि वह कार उस औरत की थी या किसी और की, वह कार ही थी या कोई और बला, उसमे सबको बिठाने का काम उस औरत को किसने सौंपा था, सब कौन थे, मैं उन में कैसे शामिल हो या कर लिया गया था, हम सब जा या ले जाए कहां रहे थे, उस औरत ने सफेद साडी क्यों पहन रखी थी, कार का रंग काला क्यों था, वक्त उस वक्त क्या था, मेरी घड़ी कहा थी, मैं खुद कहां था, वह औरत कहा बैठेगी, अगर वह मेरी बगल मे या मेरे घुटनो पर न बैठी तो मैं क्या करूंगा, अगर बैठ गयी तो क्या, कार का ड्राइवर कहा था, वह वक्त पर न आया तो हम सब का क्या होगा, वह औरत क्या करेगी, कार चलाने का काम उसने मुझे सौंप दिया तो मैं उस अंधेरे में वह काली लंबी कार चला सकूगा या नही अगर...

उस औरत की अगूरी एड़िया मेरी आंखो से ओझल हो गयीं तो मैंने सर को एक सख्त असुन्दर झटका दिया और इधर उधर देखा। उस झटके की करामात थी या किसी और हरकत की, मैं कह नहीं सकता लेकिन अब मुझे आकाश मे एक अजीब पराया अंधेरा अपने चारो तरफ उतरता हुआ दिखायी दिया, मानो दूर ऊपर बैठा कोई उसे उंडेल रहा हो। उस सख्त सुन्दर औरत की सफेद साडी उस अधेरे को और अजीब और पराया बना रही थी। वह अब भी लोगो को उनकी सीटें बता-दिखा रही थी, इधर उधर आ जा रही थी। ऐसा महसूस हो रहा था जैसे कोई परी या फरिश्ता उस अंधेरे में इधर उधर उड रहा हो।

लोग कार में बैठने जा रहे थे। पता नहीं वे कहां कहां से आ रहे थे। खयाल आया वह औरत शायद टूरिस्ट गाइड हो। टूरिस्ट कारें अक्सर लंबी तो होती हैं लेकिन काली नहीं। ख्याल आया शायद वह कार न हो, बस हो, नई क़िस्म की बस, आजकल नयी नयी कारें और बसे सडकों पर दिखायी देती रहती हैं, देश दौड रहा है, लोगों के पास काले पैसे की भरमार है, बाजार खचाखच भरे हुए हैं, यहां भी अब अमीर देशों की तरह लोग सैर-सपाटे के शौकीन होते जा रहे हैं, एक जगह आराम से बैठे रहना उनके लिए भी कठिन होता जा रहा है, औरतें मर्दों से आगे निकलती जा रही हैं, कुछ औरतें, इस औरत ने भी कोई टूरिस्ट एजेंसी खोल रखी होगी, मैंने इसका इश्तहार कहीं देखा होगा, उसमे इस औरत की मुस्कराहट देखी होगी, उस मुस्कराहट ने मुझे मार डाला होगा, उस वक़्त कोई और नशा भी मुझ पर सवार होगा, आजकल सब लोग किसी न किसी नशे के गुलाम हैं, अमीर भी ग़रीब भी, शराब की बिक्री तो बढ़ ही रही है दूसरी नशीली चीजों की भी बहुत मांग है, मैंने नशे की हालत में ही किसी इश्तहार में इस सख्त सुन्दर औरत की मुस्कराहट पर मस्त हो कोई टिकट खरीद लिया होगा, याददाश्त कमज़ोर होती जा रही है, दूसरी कई चीजों की तरह, इसीलिए याद की जगह अनुमान लेते जा रहे हैं। खयाल आया चुप मार कर खड़े रहना चाहिए, सर नहीं

झटकना चाहिए, यह औरत कोई भी हो, मुझे क्या, अगर उसकी बगल में बैठने या उसे अपने घुटनों पर बिठा लेने का अवसर मिल जाए तो मजा आ जाएगा, ऐसा मज़ा जो अभी तक नहीं आया, इस औरत को भी मेरी इस ख्वाहिश की खबर हो गयी होगी, औरत को मर्द की ख्वाहिश की खबर हो ही जाती है, इस अजीब पराए अंधेरे में सब कुछ सभव है, जिस्म की अपनी बेतार बर्क़ी होती है, मुझे चुप मार कर यहीं खड़े रहना चाहिए, इस औरत ने देख ही लिया होगा कि मैं उसकी बनायी हुई सीट पर नहीं बैठा, वह सब समझ गयी होगी, अंधेरे मे मुस्करा रही होगी, अवसर मिलने ही उस से पूछूगा वह इतनी सख्त और सुन्दर क्यों है, सख्त है इसलिए सुन्दर है या सुन्दर है इसलिए सख्त है, हम सबको कहां की सैर कराने ले जा रही है, किसी जन्नत की या जहन्नुम की, क्या क्या दिखाएगी, यह धन्धा उसने कब शुरू किया, क्यों शुरू किया, यह उसका धन्धा है या धर्म, इतने सारे लोग उसने कहां कहा से ढूंढ निकाले, नहीं मैं ऐसा कोई फ़ालतू सवाल उस से नहीं पूछूंगा, जो बताएगी सुन लूंगा, वह शायद कुछ भी नही बताएगी, न ही बताए तो अच्छा है, बस मुस्कराती रहे, आखिर तक, ताकि आखिर तक कोई तकलीफ न हो, हर तकलीफ को उसकी मुस्कराहट की मरहम मिलती रहे, तकलीफें शायद खत्म हो चुकी हों, इस काली लंबी कार का सफ़र शायद उन्ही को नसीब होता हो जो सब तकलीफ़ो में से गुज़र चुके हो, लेकिन माया क्यों इस सफर या सैर में मेरे साथ नहीं, शायद वह आने ही वाली हो, कहीं यह औरत भी माया का ही कोई रूप तो नहीं, कहीं...

उस औरत का हाथ मेरे कन्धे पर एक पत्ते की तरह गिरा तो मेरे सारे खयाल सो गये और मै उसके साथ अपनी सीट की तरफ़ बढ़ने लगा, यह आशा करते हुए कि उस पर कोई और बैठ चुका होगा।

मै उस क़तार मे दो कड़वी बूढ़ी औरतों के बीच दबा दुबका सा खड़ा था और सोच रहा था ये बूढ़ी औरतें सोच रही होगी यह कड़वा बूढ़ा हम दोनो के बीच कैसे घुस आया। अगर वे एक दूसरे को जानती नजर आतीं तो शायद मैने अपनी जगह अपने से पीछे वाली बुढ़िया को पेश कर दी होती, इस अन्देशे के बावजूद कि वह मेरी पेशकश को शक की निगाह से देखेगी।

कतार मे मेरा कोई वाक़िफ नही था। होता तो मै कुछ और झेप और झुंझला रहा होता। कतार ज्यादा लम्बी नहीं थी लेकिन लोगों की अधीरता से लग यही रहा था कि वह बहुत लम्बी थी। मेरे आगे वाली बुढ़िया भी बेकल थी, पीछे वाली भी। दोनों उचक सी रही थीं। मुझे खतरा था कि मै तग आकर उन्हे उचकने से मना कर दूंगा और वे दोनों मुझ पर बरस पड़ेगी।

कतार एक मेज की तरफ सरक रही थी। वहा दो औरते बैठी थीं। एक लोगों से कपड़ो की पोटलिया लेती जा रही थी, दूसरी उन्हे उन पोटलियों की रसीदें देती जा रही थी। पोटलियां लेने वाली औरत लम्बी, काली और करारी थी। उसकी आखे चमक रही थीं, होंठ खिले हुए थे, दात दमक रहे थे। बैठी हुई भी वह खड़ी दिखायी देती थी। कपड़े लेते और गिनते समय वह यू मुस्कराती जैसे किसी शरारत या साजिश का मजा ले रही हो। मैंने उसकी आवाज़ अभी नहीं सुनी थी लेकिन मैंने मान लिया था वह भी काली और करारी होगी। रसीद देने वाली की सूरत मे सिर्फ एक खूबी थी—उस पर किसी विकार का साया नहीं था। इस खूबी के बगैर शायद वह बेसूरत नजर आती। मुझे वह एक अच्छी औरत नज़र आयी, ऐसी जो कभी किसी को कोई धोखा देती होगी न कोई कष्ट पहुंचाती होगी। मै अपनी निगाहें उन दोनो के बीच बाट रहा था और सोच रहा था, काश कि सभी औरते उन जैसी होतीं; सभी मर्द भी।

इस बीच मेरी बारी आ गयी थी। मैने देखा कि मेरे हाथ खाली थे। मुझे उन दो औरतों में डूबा देख किसी ने मेरी पोटली मेरी ढीली गरिफ़्त से खिसका ली होगी। मेरे आगे वाली बुढ़िया जा चुकी थी, पीछे वाली अधीर हो रही थी। उन पर शक करते हुए मुझे शर्म आयी। वैसे भी पीछे वाली के हाथ मे एक ही पोटली थी। अगर कतार के आस पास कुछ छोकरे नजर आ जाते तो मै समझता उनमें से कोई पोटली उड़ा कर चम्पत हो गया था। फिर यह खयाल आया कि शायद मैं यूंही, खाली हाथ, उस क़तार में खड़ा हो गया था, वक़्त काटने के

लिए या तमाशा देखने के लिए, उसी तरह जैसे कुछ बूढ़े पार्कों मे पड़े बेंचो पर बैठे रहते हैं। रसीद देने वाली औरत दूसरी से कुछ कह रही थी, दूसरी मुस्करा रही थी। शायद उन दोनों को मेरी स्थिति का इल्म हो गया था, शायद वे मेरी सहायता करने के लिए आपस में परामर्श कर रही थीं। इधर मेरे पीछे वाली बुढ़िया कुछ बुड़बुडा रही थी और कुछ दूसरे लोगों ने भी आवाजे कसनी शुरू कर दी थीं। मन हुआ कमीज उतार कर उस काली करारी औरत के हवाले कर दू और धीरे से कह दूं—आज और कोई कपड़ा नही। सबके सामने क़मीज़ उतारने की हिम्मत नहीं हुई। अपनी हड्डियों और लोगों की हसी के खयाल ने रोक लिया। फिर सोचा जेब से मुचड़ा हुआ रूमाल निकाल कर उसे दे दूं, लेकिन इस पर शायद वे औरतें भी मेरे खिलाफ़ हो जातीं। उसी तरह जैसे एक रात दो कस्टम अफ्सर हो गये थे। मेरे मुचड़े हुए रूमालों से पता नही क्यों कुछ लोग इतनी नफ़रत करते है। अगर उन से कहता हूं कि कोई मेरी पोटली चुरा ले गया है तो वे मानेंगी न कोई और। मुझे खुद अब यकीन सा होने लगा था कि मैं कोई पोटली वोटली साथ लाया ही नहीं था और यूंही बग़ैर कुछ जाने बूझे उस कतार में खड़ा हो गया था, शायद यह देखने के लिए कि वहा हो क्या रहा था। मुझे आजकल यही चिन्ता लगी रहती है कि आखिर हो क्या रहा है। अक्सर हो कुछ भी नहीं रहा होता, लेकिन मै चिन्ता करने से बाज़ नहीं आता। तभी काली करारी औरत की चमकदार आंखों ने मुझे सहलाया, उसके खिले हुए होंठों ने एक पुचकार सी छोड़ी, और उसके मुंह से काली करारी आवाज निकली—आप परेशान क्यों हो रहे है, आपके कपड़े यह रहे, आपको किसी खयाल में डूबा देख मैंने आपकी पोटली आपके हाथ से ले ली थी। उसकी मुस्कराहट में साज़िशी शरारत थी। जिन कपड़ो की तरफ़ उसने इशारा किया था वे मेरे या माया के नहीं थे। मैंने दूसरी औरत के हाथ से जाली रसीद लेते हुए देखा वह निर्विकार तरीक़े से मुस्करा रही थी।

ऊपर नीचे बला की तड़क भड़क थी, खाने पीने का सामान था. खुब्वार खुशपोश लोग थे, वे सब उस सामान को भी खा पी रहे थे, एक दूसरे को भी, एक दूसरे के साथ नाच भी रहे थे, एक दूसरे को नोच भी रहे थे। और मै उस भेड़िया भीड़ मे किसी खोये हुए बूढ़े या बच्चे की तरह महसूस कर रहा था। कोई मुझे जानता पहचानता था न मै किसी को, लेकिन उस वक्त मुझे इस बात मे सन्ताप के बजाय सुरक्षा का ही अनुभव हो रहा था कि मै तटस्थ हो उन सब की हरकतो और हसरतों का तमाशा देख रहा था। उनकी हसरतें उनकी आखो से रिस रही थीं, हरकते हर अग से। अगर मेरी तरह के कुछ और भी वहां थे तो मुझे दिखायी नहीं दिये थे, इसलिए भी मै और आजाद महसूस कर रहा था, इतना कि कभी कभी लगता मैं अदृश्य था, न होता तो वे खुब्वार खुशपोश लोग मुझे भी खा पी रहे होते। मै खुद कुछ खा तो नहीं रहा था लेकिन पी सब कुछ रहा था।

आखिर जब मै झूमता हुआ वहा से बाहर आया तो रात नीली हो चुकी थी। मेरे गले मे एक फांस सी अटकी हुई थी। मैं हताशा के उस प्रदेश में पहुच गया था जहां रोने और हसने मे कोई अन्तर नहीं रहता। ऐसी चरम अवस्था का अनुभव कभी कभी ही होता है। इस दृष्टि से वह समागम मेरे लिए सार्थक रहा था। मैं अब झूम भी रहा था, झर भी। बड़ी बड़ी ठोस इमारतें अठोस नजर आ रही थीं। महसूस हो रहा था जैसे धरती डावाडोल हो रही हो और आकाश उसे सभाल न पा रहा हो। मुझे सब कुछ भूला हुआ था, सिवाय इसके कि मेरा घर वहा से बहुत दूर था और मुझे हर हालत मे उसी रात वहा पहुंचना था। अपने घर की कोई तस्वीर उस वक्त मेरे जेहन मे नहीं थी। जोर लगाता तो जेहन कड़वे अंधेरे मे अट जाता। कुछ दूर उन डगमगाती इमारतो के बीचोंबीच डगमगा लेने के बाद मुझे होश आया कि पैदल घर नहीं पहुच सकूगा। याद आया मेरी कार वहीं कहीं खड़ी होगी। कार की तलाश शुरू होते ही हताशा चिन्ता मे बदल गयी, मामूली चिन्ता मे। जिस इमारत के साए मे मेरी कार खड़ी थी वह न जाने कहां उड़ गयी थी।

अब मै सब दिशाओं मे देख दौड़ रहा था। पता नहीं कितनी रात कार की बेकार तलाश मे कट गयी। कई सड़कें नापीं, या शायद एक ही बार बार, कई सीढ़िया उतरी चढ़ी, या शायद एक ही बार बार, कई मोड़ मुड़, या शायद एक ही बार बार, कई लोगो से पूछताछ की, या शायद एक ही शख्स से बार बार ---और आखिर बदबद हो वहीं कहीं पड़ रहा और रात भर कई तरह और दर्जों के कड़वे अंधेरों मे भटकता रहा, खुब्वार खुशपोश लोगो से घिरा हुआ।

मै मगीत पर सर धुन रहा हू और गोद में लेटे बच्चे के मर को हौले हौले थपक रहा हूं। वह बच्चा न जाने कब और कहां मे उड आ कर मेरी गोद पर काबिज़ हो गया है। मैं डर रहा हू कि उमकी मां किमी भी क्षण मेरी गोद पर झपट पड़ेगी और मगीत मभा भग हो जाएगी। मब लाग मुझे शक की निगाह से देखना शुरू कर देंगे। बच्चे की मा बच्चे की बलाए लेते लेते कहेगी—उठाईगीर ऐसे ही होते हैं, देखने में शरीफ़, अन्दर मे शाहदे। मैं कोई मफ़ाई नहीं दे सकूंगा। कुछ लोग मुझे पुलिस के हवाले करने का सुझाव देंगे, कुछ शायद मुझ पर तरस खा कर कहेंगे, बेचारा सीधा है, जाने दो। यह सोचते मोचते मै संगीत को भूल बच्चे को घूरना शुरू कर देता हूं। फिर खयाल आता है बच्चा डर कर रोने लगा तो और मुसीबत खड़ी हो जाएगी। मैं फिर मगीत पर सर धुनना शुरू कर देता हू लेकिन बच्चे के मर को थपकना नहीं। बच्चा मेरा हाथ पकड कर कहता है, थपकते रहिए। मैं डर जाता हूं। मैंने मोचा था वह एक साल मे ज़्यादा नहीं होगा, बल्कि बीच बीच में न जाने क्यों मुझे तो यह खयाल भी आता रहा था कि वह शायद बच्चा नहीं, पिल्ला था। अब मैंने बच्चे के मर को फिर मे थपकना तो शुरू कर दिया है लेकिन मेरे दिल मे अब उस बच्चे को ले कर एक नया डर बैठ गया है जिसकी वजह से संगीत मुझे अप्रासंगिक भी महसूम हो रहा है, असहनीय भी। कानों में अगुलियां फंसा देने का मन हो रहा है, आखिर कुछ देर बाद जब मगीत खत्म होता है तो सब के साथ मैं भी तालिया बजाता हू, बच्चा भी। मैं उसे उठा कर एक तरफ खडा कर उम से अपनी मां के पास चले जाने के लिए कहने को तैयार हो ही रहा होता हूं कि बच्चा बोलता है—अब मुझे मेरे घर छोड़ आइए।

अबकी बार मुझे और हैरानी होती है। जाहिर है कि वह चल नहीं सकता लेकिन बोल ऐसे रहा है जैसे दस साल का हो। अब मेरी हैरानी में यह खतरा भी मिला हुआ है कि किसी और ने भी उमकी बात को सुन लिया होगा। मैं किमी और का ध्यान उमकी या अपनी तरफ नहीं खीचना चाहता। मैने बच्चे को अपनी बुक्कल में छिपा लिया है। अगर उमने एतराज उठाया होता तो मैंने डर के मारे शायद उसका गला घोंट दिया होता। मैं खैर मना रहा हूं कि बुक्कल बनाने के लिए मेरे पास शाल है। मुझे बच्चे के घर का रास्ता मालूम नहीं लेकिन मैं चल ऐसे रहा हूं जैसे मुझे मब मालूम हो। मुझे भरोसा है कि बच्चा मुझे रास्ता बता देगा। कुछ देर बाद बच्चा बुक्कल से सर बाहर निकालता और कहता है—वह रहा मेरा घर। उसने एक काले फाटक की तरफ़ इशारा किया है। वहां एक मुच्छल दरबान खड़ा हमारी तरफ़ देख रहा है। मैने उमके पास जा कर कहता हूं—सभालो इसे! दरबान मुझे यू देखता है जैसे मैंने बहुत

हो बेवकूफाना बात कह दी हो। फिर वह कहता है—इसे गोद मे क्यों उठा रखा है? फेंक दो नीचे साले को, अपने आप चला जाएगा अपनी मा के पास। बच्चा छलांग मार देता है। ज़मीन को छूते ही वह पिल्ले में बदल जाता है। उसकी छोटी सी दुम एक लंबी सी अगुली की तरह हिल रही है। मैं अपनी हैरानी को दबा कर दरबान के साथ मिल मुस्कराना चाहता हूं लेकिन दरबान मुझे कोई शह नही देता।

एक धुंधले कमरे में एक मैली दीवार से पीठ लगाए बैठा लिफ़ाफ़ों पर नाम-पते लिख रहा हूं, एक तख्ती को घुटनों पर टिकाए हुए, उर्दू के किसी बूढ़े बहरे कारीगर कातिब की तरह, जिसकी बीनाई जा रही हो, जिसे अब बहुत कम काम मिलता हो, जिसे उसकी कारीगरी की मुनासिब तारीफ़ मिलती हो न उजरत, जिसके घुटने टूट चुके हों, दिल टूटने वाला हो, जो अब किसी और काम के काबिल न रहा हो।

यह किसी नाकाम नेता का दफ्तर भी हो सकता है, किसी बेईमान व्योपारी की काली कोठरी भी, मेरा अपना पराया कमरा भी।

लिफाफे सब लिफलिफे है, कलम घिसा हुआ है, स्याही फीकी है, नाम-पते अपूर्ण है। नामों और पतों की कोई सूची मुझे नहीं दी गयी। जो नाम-पते मुझे सूझ रहे है, उन्हे मै लिफाफों पर उतार रहा हूं। ज्यादा जोर नहीं लगा रहा क्योंकि एक तो जोर ज्यादा है ही नहीं, दूसरे यह खतरा भी है कि ज्यादा जोर लगाऊंगा तो लिफाफे फट जाएंगे।

सारा काम उसके आने से पहले पूरा हो जाना चाहिए। उसी के आदेश पर यहां बैठा यह काम कर रहा हूं। उसके आने का समय निश्चित नहीं। इतना जानता हूं कि अगर उसके आने से पहले काम पूरा न हुआ तो वह खफा होगा, कहेगा, जल्दी करो, जल्दी करो। घबराहट में कई गलतियां कर रहा हूं। उसे उनका पता नहीं चलेगा। हमेशा की तरह आज भी वह जल्दी में होगा। सर पर सवार हो कर हुक्म चलाना शुरू कर देगा— जल्दी करो, जल्दी करो।

देखने में तो बेदम नजर आता है लेकिन मुंह खोलते ही भेड़िये में बदल जाता है।

मै उसकी जल्दी जल्दी को कभी समझ नहीं पाया। एक तरफ तो कहता है कि सब कोशिशे कमोबेश एक सी बेकार होती है, और सब काम और कारनामे कमोबेश एक से बेहूदा, दूसरी तरफ हर बात मे इतनी जल्दी मचाता है, इतनी जान खपाता है, कि लगे जिन्दगी और मौत का सवाल हो। अगर ऐसा हो तो भी उसे कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि उसे तो जिन्दगी और मौत मे भी कोई खास फर्क दिखायी नहीं देता। लेकिन उसकी असंगतियों की शिकायत बेकार है। असंगतियां हर मालिक में होती है, होनी चाहिए, न हों तो उनके नौकर उन से पूरी तरह आतंकित नहीं होते। तो क्या वह मेरा मालिक है? शायद।

मै जल्दी और घबराहट मे गलतियां तो कर ही रहा हूं, फिर भी उसके आने से पहले मै शायद ही सारा काम खत्म कर सकूं। कोरे लिफाफों को इधर उधर छिपा दूंगा। उसे कुछ पता नहीं

चलेगा। जितने लिफाफे उसे थमा दूंगा, वह ले कर चलता बनेगा, गिनती करेगा न पतों की पड़ताल।

मेरी गलती के कारण किसी बेचारे का लिफाफा किसी बेचारी को मिल जाएगा या किसी दूसरे बेचारे का, या फिर पता पूरा न होने के कारण किसी को भी नहीं मिलेगा, या फिर इतनी देर बाद मिलेगा कि उसे कोई फायदा होगा न नुकसान। लेकिन अगर सारे नाम और पते मेरे अन्दर से ही आ रहे है तो वे सही या गलत कैसे हो सकते है? शायद उसी ने अपने किसी कमाल से उन्हे मेरे अन्दर दर्ज और सुरक्षित कर रखा हो, शायद मै उसका कम्प्यूटर भी हू, क्लर्क भी। इस सम्भावना पर मुस्कराहट आ जाती है, मुस्कराहट से मलाल में कुछ कमी हो जाती है, यह जानने की ख्वाहिश होती है कि देखू लिफाफो के अन्दर सन्देश या सकेत या आदेश या सूचनादि क्या है, सब मे एक ही सन्देशादि है या अलग अलग, उस सन्देशादि को लिखने का काम कब हुआ होगा, किसने किया होगा। लिफाफे सब बन्द है लेकिन उन्हें खोलना आसान है। खोलना अनैतिक जान पड़ता है। वैसे भी अगर इस चक्कर में पड़ गया तो निकलना मुश्किल हो जाएगा। एक को खोलूगा तो सबको खोले बग़ैर चैन नही आएगा। फिर इस सोच को दबा एक लिफाफा उठा लेता हू और उसे खोले बगैर उसके अन्दर बन्द इबारत को उकेरने की कोशिश करता हू। लिफाफे का कागज पतला है, उसके अन्दर वाला कागज भी पतला है, लेकिन दो तीन तहो के कारण उसकी इबारत का फीका सा आभास तो होता है लेकिन वह उकेरी नहीं जाती। यह कोशिश भी अनैतिक तो जरूर जान पड़ी लेकिन लिफाफे को खोल कर देखने से कम। फिर सोचता हू एक लिफाफा तो खोल ही लेना चाहिए। इतने सारे लिफाफों मे से एक को खोल कर फाड़ भी दूंगा तो उसे कुछ पता नहीं चलेगा, चल भी गया तो वह शायद ही ज्यादा विचलित हो, सोचेगा, इन्सान है, कौतूहलवश यह हरकत कर बैठा, कोई बात नहीं। वह जल्दी तो बहुत मचाता है, बाहर से सख्त भी बहुत नजर आता है, लेकिन भीतर से भोला है, मामूली खताओं को मुआफ कर देने मे देर नहीं लगाता। इस सोच पर हसी आ जाती है— मै तो उसके बारे मे यू सोच रहा हू जैसे बरसो उसकी चाकरी मे बिताए हों, जबकि हकीकत यह है कि आज रात से पहले की किसी रात की कोई बात मुझे इस वक्त याद नही। मै उसके और उसकी आदतो के बारे मे जो सोच रहा हू उसका आधार मेरी कल्पना है, या फिर शायद कुछ धुंधले अधूरे स्वप्न।

मै जानता हू कि अगर एक लिफाफा खोल लिया तो दूसरा खोलने से बाज नहीं आऊगा और फिर तीसरा...और तब उसके आने से पहले यह काम खत्म नही हो पाएगा। वह नाराज होगा। अगर वह नाराज न हुआ तो मुझे अपने किये और न किये पर शर्म आएगी, महसूस होगा मैंने उसे धोखा दिया है, मैं उसकी कृपा का हकदार नहीं। यह सब सोचते सोचते मैं इतना घबरा जाता हूं कि बाकी बचे कोरे लिफाफों के लिए नाम-पते सूझने बन्द हो जाते हैं। मै एक कोरे लिफाफे को घूरना शुरू कर देता हू, देर तक घूरता रहता हूं। फिर उस लिफाफे मे एक कड़ी सूरत दिखायी देती है। महसूस होता है जैसे वह मेरी पीठ के पीछे मैली दीवार से कहीं खड़ा हो और मेरे सामने पड़ा कोरा लिफाफा आईने मे बदल गया हो, जिसमे उसकी सूरत का अक्स मुझे दिखायी दे रहा हो।

हम सीढ़ियां चढ़ रहे है, सब से आगे वह, उसके पीछे माया, फिर मैं। सीढ़ियों में सहमी सहमी सी रौशनी है, मेरे मन में सहमा सहमा सा उत्साह। आज वह हमें अपनी साथिन से मिलवाएगा। पिछले कई दिनों से वह हमें उसके बारे में बता रहा है। पिछली कई रातों से मैं उसकी साथिन के बारे मे स्वप्न देख रहा हूं। माया शिकायत करती रहती है मै उसे देखे बगैर ही उस पर फ़िदा हो गया हूं। मैं माया से कहता रहता हूं मैंने उस मरदूद की बातो में उसकी साथिन को देख लिया है। माया मानती नहीं। वह कहता है, उसे देखोगे तो मेरी बातों में देखे उसके अक्स से असन्तुष्ट हो जाओगे। वह कहता है हम दोनों को दिखा लेने के बाद ही उसे अपनी आंखों पर यक़ीन आएगा। माया को उसकी यह बात उस औरत के प्रति उसके अन्याय का ही एक प्रमाण दिखायी देती है। मैं कुछ भी नहीं कहता। उसकी बातों में मैंने जिस औरत को देखा है वह सुन्दर है, स्वस्थ है, उन्मुक्त है, अनुभवी है, और ज्यादा देर तक सिर्फ़ उसकी या किसी और की साथिन बन कर रह सकने के नाकाबिल है। उसकी बातों में ऐसी कोई बात नहीं थी जिस से मुझे उस औरत की यह तस्वीर बना लेने की कोई प्रेरणा मिलती, फिर भी मेरा यह दावा है कि मेरी तस्वीर का आधार उसकी बातें ही हैं, मेरी कल्पना या मनोकामनाएं नहीं। अगर मेरी तस्वीर ग़लत निकली तो मुझे निराशा होगी। इसीलिए मेरा उत्साह सहमा सहमा सा है।

बात याद नहीं क्या हो रही थी, लेकिन वे दोनो उस बात को ऐसे बना सवार रहे थे, नुमाइशी अन्दाज़ में, बढ़ चढ़ कर, जैसे और किसी को उस बात की बारीकी और खूबसूरती का कोई अन्दाजा न हो, जैसे और किसी को उसे बनाने सवारने का सलीका न आता हो, जैसे वह बात न हो उनकी बेटी हो। मुझे उस बात में कोई बारीकी और खूबसूरती नजर नही आयी थी, उनका नुमाइशी अन्दाज अश्लील नज़र आया था, और मेरे प्रति उनका रुख रूखा और बेगाना। इसीलिए मैंने एक भद्दे भरपूर झटके से बात को बदल दिया। मैंने उन्हे टोकते हुए कहा, अगर मैं आप लोगों के घर के आसपास कहीं रह रहा होता तो हर दूसरे तीसरे रोज आपके घर पहुंच आपके घर का कूड़ा बाहर फेंक आता, बाकी चीजों को इधर उधर सरका कर घर की सजावट को सही कर देता, परदों को फाड़-कुतर देता ताकि आप उन्हें बदलने पर मजबूर हो जाते, गुसलखानों और बावर्चीखाने के बल्बों को बदल देना ताकि उनकी गलाज़त आपके मेहमानों को नजर आ सकती, आपकी खरीदी हुई किताबो और तस्वीरों को उठा उठा कर बाहर फेंकता रहता, मतलब यह कि अगर मैं आप लोगों के घर के आसपास कहीं रह रहा होता तो मैंने आपका अपने घर में जीना हराम कर दिया होता उसी तरह जैसे आप लोग इस वक़्त अपनी इस बात और इसके नुमाइशी हार सिंगार से मेरा जीना हराम कर रहे हैं।

यह कहते हुए मैं मुस्करा तो रहा था लेकिन वे दोनों समझ गये थे कि मै उनके घर की बदजौकी की ही कड़ी आलोचना नहीं कर रहा था, उनके आत्ममुग्ध सरपरस्ताना अन्दाज़ की भी, उनकी क़दरो की भी, उनकी नुमाइशपसन्दी की भी, असल में उनकी हर बात की, हर उस बात की जिस पर उन्हें नाज़ था। मेरी मुस्कराहट मेरी आलोचना पर मीठा लेप चढ़ाने के बजाय उसे और निर्मम और नाक़ाबिले-बरदाश्त बना रही थी, मैं जानता था और मन ही मन खुश हो रहा था कि मैंने उनका मुंह तो बन्द कर ही दिया था, उनकी आंखे भी नीची कर दी थीं। उनका रंग फक होता देख मुझे रुक जाना चाहिए था, कह देना चाहिए था, अरे यार मैं तो यूहीं बेमौका मजाक कर रहा हूं, आप लोग निश्चिन्त रहें मैं आपके घर के आसपास कभी नहीं रह सकूंगा, मुझे जिस घर की तलाश है वह मुझे वहा नहीं मिलेगा, कहीं नहीं मिलेगा, आप लोग अपनी बात जारी रखे, मुझे वह बहुत सुन्दर लग रही है, ब्याह के लिए सजाई जा रही बेटी की तरह, सच, मुझे बहुत मजा आ रहा है, मै आपकी बात को अपने साथ ले जाऊंगा, माया को दिखाऊंगा, कहूंगा, देखो कैसी सजी धजी बनीठनी बात तुम्हारे लिए ले आया हूं। अगर मैंने ऐसा कुछ कह दिया होता तो उनके रंग के साथ शायद उनके होश भी उड़ जाते और मुझे सचमुच मजा आ जाता।

अब उधर वे दोनों मुह बाए मेरी तरफ देख रहे थे, इधर मैंने उन की बदजौकी के नमूने उनके सामने सजाने शुरू कर दिए थे, उनके घर की तस्वीरों की तफ्सील में जाना शुरू कर दिया था, पर्दों के रंगों के आपसी टकराव और भारी गालीचों के नीचे छिपी गलाजत को बाहर निकालना शुरू कर दिया था, मेहमानों के सामने परोसे हुए पकवानों में से मरे हुए तिलचट्टों के पंख और चींटियों की चिन्दियां निकाल निकाल कर उनके सामने रखनी शुरू कर दी थीं। अब मेरा प्रहार और प्रखर हो गया था, इतना प्रखर कि अगर उन दोनों ने मुझे पीट डाला होता तो मुझे कोई हैरानी न होती। मेरे दोस्त का रंग अब पीला हो कर उसके चेहरे पर फैलता जा रहा था, उसकी बीवी का लाल हो कर। उसकी बीवी एक जमाने में खूबसूरत समझी जाया करती थी। उस जमाने में मैं उसे दूर से हिरसीली निगाहों से नोचा करता था। मेरा दोस्त उस जमाने में भी मुझे काफी बदसूरत नजर आया करता था। मैं अक्सर सोचा करता था खूबसूरत नजर आने वाली औरतें क्यों कई बार बदसूरत मर्दों के कब्जे में आ जाती हैं। उनकी शादी के बाद मैं उन से दूर होता चला गया था, क्योंकि उनकी शादी के बाद मुझे महसूस होने लगा था जैसे वह औरत भी अपने खाविन्द की तरह बदसूरत होनी शुरू हो गयी हो। मुझे उसकी सूरत में कई दोष दिखायी देने लगे थे, उसका स्वर कर्कश लगने लगा था, उसका लिबास भड़कीला भड़कीला, उसकी बातें नंगी नुमाइशी। अब मैंने सोचना शुरू कर दिया था कि दूर से खूबसूरत दिखने वाली औरतें क्यों अक्सर पास से निराश करती हैं। अगर वे दोनों इतने मस्त और खुश नज़र न आते तो शायद मैंने उन्हें मुआफ कर दिया होता, उनका लिहाज किया होता, उन्हें अपने मन से एकदम निकाल न दिया होता। लेकिन वे जब कभी दिखायी देते इतने खुश नजर आते कि लगता उन्हें किसी तीसरे की ज़रूरत हो न ख्वाहिश न चिन्ता। हर मुलाकात के बाद मेरे मन की मैल बढ़ जाती। मैं सोचता कुछ औरतों को दूर से ही देखना-चाहना चाहिए क्योंकि पास से वह मामूली नजर आने लगती हैं। मैं सोचता मैं उन मर्दों में से नहीं जो मामूलियत, अपनी और दूसरों की, पर खुशफहमियों का मुलम्मा चढ़ा लेते हैं। मैं सोचता मैं हर अनुभव की तात्त्विक मामूलियत को ढूंढ निकालने के लिए अभिशप्त हूं। अब भी मैं यही सोचता हू, इसीलिए कभी कभी अचानक मामूली सी बात पर बुरी तरह बेहाल हो जाता हू, खास तौर पर रात को, जैसे कि कल रात।

मुलाकात उसी बार में हुई थी जिसमें आजकल अपने कई भूले-चूके दोस्त कभी कभी भूतों की तरह बैठे पीते बतियाते नजर आ जाते हैं। उनसे मिल कर तरह तरह की तकलीफें होती हैं, तरह तरह की तल्खियां ताजा होती हैं, तरह तरह की हसरतें सुलग उठती हैं, तरह तरह की तसल्लियां भी मिलती हैं लेकिन सीधी सादी खुशी कभी नहीं होती। भूतों से मिल कर सीधी सादी खुशी हो ही नहीं सकती, होनी भी नहीं चाहिए, भूत बने ही भय और पश्चात्ताप पैदा करने के लिए हैं। तो कल रात मैं चाहता तो उन्हें न पहचानने का बहाना कर सकता था, उसी तरह जैसे वे दोनों कर रहे थे। लेकिन मैं उल्टी आदतों का बन्दा हू, न होता तो आज यह हालत न होती, इस इन्तहा पर भी मैं बेघर न होता, घर की तलाश में मारा मारा न फिर रहा होता। मैं हमेशा वही करता हू जो मुझे नहीं करना चाहिए, जो मुझे मालूम होता है गलत है, नुक्सानदेह है, घातक हो सकता है। मैं गिलास उठा कर उनकी मेज पर

जा बैठा। उनके साथ एक और शख्स बैठा हुआ था, जिसके साथ मेरा परिचय कराना उन्होंने जरूरी नहीं समझा। पहली अखरन तो मुझे इसी बात से हुई। कुछ देर तक तो मैं चुपचाप बैठा उनकी उस बात को सुनता रहा जिसे शायद वे उस शख्स पर प्रभाव डालने के लिए बना-सवार रहे थे, लेकिन फिर मैं अचानक फट गया।

उस विस्फोट पर मुझे खुद हैरानी हुई थी। रुक जाने की ख्वाहिश हुई थी लेकिन मैं जानता था रुक जाना मेरे लिए असम्भव था। विस्फोट का प्रत्यक्ष कारण तो इन दोनों की आत्ममुग्धता और मेरी तरफ रूखा रुख ही था लेकिन परोक्ष रूप से कई और काले कारण भी जरूर रहे होंगे। मुझे अपना वह दोस्त उस वक्त साक्षात् राक्षस नजर आया था, उसकी बीवी उसकी बन्दिनी जो डर के मारे ही उसकी हां में हां मिला रही थी, और खुद मैं अपनी निगाहों में सफेद घोड़े पर सवार एक ऐसा हीरो बन बैठा था जिसका एक मात्र धर्म उस बेचारी को उस राक्षस की हिरासत से आजाद कराना हो। उसका सब से सीधा और कारगर तरीका तो शायद यही था कि मैं उस राक्षस को वहीं मार डालता लेकिन सब पिये हुए होने के बावजूद वैसी बर्बर हिम्मत मुझ में नहीं थी, इसीलिए मैंने वही किया जो मैं कर सकता था—मैंने उस घर पर हमला कर दिया जिसकी बदौलत उसकी बीवी उसकी बन्दिनी बन गयी थी। मुझे उसकी बीवी से कोई खतरा नहीं था। मुझे यकीन हो गया था कि वह उस राक्षस से आजाद हो जाने के लिए न सिर्फ तय्यार थी बल्कि तड़प रही थी। इस यकीन का कोई आधार मेरे पास नहीं था। यह उसी वक्त अचानक पैदा हुआ था, इसीलिए एकदम पुख्ता था। इस यकीन के आलोक में मुझे दिखायी दे रहा था कि मेरे हमले पर चौंक उठने के बावजूद अन्दर से वह खुश थी, कि उसने देख लिया था कि मैं उसे आजाद कराने के लिए ही उस घर को मिस्मार कर रहा था जिसमें वह कैद थी, कि मेरा असली निशाना घर नहीं, उसका वह राक्षस पति ही था। शुरू शुरू में तो मैंने उन दोनों को अपने कटाक्ष की चपेट में ले लिया था लेकिन फिर हुशियारी से उस औरत को पहले एक तरफ, और फिर अपनी तरफ करना शुरू कर दिया था।

हमला शुरू करते वक्त मैं मुस्करा रहा था लेकिन जल्दी ही वह मुस्कराहट कस कर एक कड़वी गांठ में बदल गयी थी। लोगों ने मुझे यूं घूरना शुरू कर दिया था जैसे लोग अक्सर किसी बेकाबू बकने-झकने शराबी को घूरते हैं। अगर कोई और मौका होता तो शायद अपनी छवि की चिन्ता उठ खड़ी हुई होती और मैं सम्भल जाता लेकिन मैं जानता था वैसा मौका मुझे शायद ही फिर मिले, इसलिए मैंने अपनी धुन को नहीं तोड़ा। अब मैं सिर्फ अपने दोस्त से मुखातिब था : घर और कैदखाने में फ़र्क होना चाहिए। तुम ने अपने घर को एक सजे-धजे कैदखाने में बदल दिया है जिसमें यह बेचारी सांस भी नहीं ले सकती। जिसे तुम सजावट समझते हो वह तुम्हारी दौलत की भुन्डी नुमाइश है। तुम ने जो तस्वीरें टांग रखी हैं उन से तो पटरियों पर बिकने वाले कैलन्डर बेहतर हैं। तुम ने एक बदसूरत घर में एक खूबसूरत औरत को कैद कर रखा है। उस औरत की खूबसूरती को तुम्हारी जुटायी हुई कीमती बदसूरत चीजों ने मार डाला है। लेकिन कोई राक्षस किसी सुन्दरी को सारी उम्र कारागार में नहीं रख सकता। हां, तुम राक्षस हो और तुम्हारी बीवी एक परी जो एक दिन

तुम्हारे साज़ोसामान को ठुकरा कर उड़ जाएगी और तुम किसी सूअर की तरह सोये रहोगे। अगर तुम्हारी आंखों पर अहंकार और काले धन की पट्टी न बंधी होती तो तुमने देख लिया होता कि यह खूबसूरत औरत ख़ामोशी से उस रात का इन्तजार कर रही है जब कोई इसे तुम्हारे बदसूरत किले से उड़ा ले जाएगा।

फिर पता नहीं क्या हुआ कि मेरी आंखों के सामने धुन्ध का एक गुबार सा लहरा गया और मैंने उस औरत को एक बेजौक़ सजे धजे कमरे में बिछे एक पलंग पर अपने साथ सोये हुए देखा—उसकी आखें खुली थीं और वह कोई ऐसा सपना देख रही थी जिसमें न वह कमरा था न उसका वह पति न मैं।

हम बरसों से एक दूसरे को जानते हैं, एक दूसरे के बारे मे जानते है, जब इत्तफाक़ मे कहीं किसी के घर या किसी अवसर उत्सव पर, या किसी बार वगैरह मे मिल जाते हैं तो हाथ भी मिलाते हैं, मुस्कराते भी हैं, चलताऊ अन्दाज में अनावश्यक हँसी मजाक़ भी कर लेते है, लेकिन फ़ोन पर कभी बात नहीं होती और न ही हम कभी एक दूसरे के घर आए गये हैं। इसलिए उसे कल रात अपने दरवाज़े पर देख मैं हैरान तो हुआ, खुश खास नहीं, और जब उसने बताया कि वह मुझे खाने की दावत देने आया है तो मेरी हैरानी में एक बल सा पड़ गया।

वह दूसरो की बातों और अदाओं की नकल उतारने में उस्ताद सा है। शायद हमारी जान पहचान का एक आधार उसका यह हुनर भी है—जब कभी मुलाकात हो जाती है तो वह अक्सर बगैर किसी सन्दर्भ के किसी न किसी की नकल उतार कर मुझे हँसा देता है और मुझे कुछ लम्हो के लिए यह गुमान हो जाता है कि वह गर्मजोश है, होशियार है, दिलचस्प है, दोस्ती के काबिल है, लेकिन मुलाकात खत्म होते ही मै उसे भूल जाता हूं, वह शायद मुझे, अगली इत्तफ़ाकिया मुलाक़ात तक, और इस तरह हमारी जान पहचान दोस्ती में नहीं बदल पाती। मैं सोचता हूं अगर वह औरत होता तो शायद बात अब तक जान पहचान से आगे निकल गयी होती, लेकिन ज़्यादा आगे शायद ही, एक दो बार से ज्यादा शायद ही, क्योंकि दूसरो की नकल उतारने वाली औरतें अक्सर खूबसूरत नहीं होतीं, हो तो भी उनकी खूबसूरती खुश्क होती है, कामुकता से वंचित, लकड़ीली सी।

तो कल रात जब उसने तत्काल मेरी हैरानी की नकल उतार कर मेरी हैरानी को हंसी में बदल दिया तो मुझे हल्की सी ग्लानि महसूस हुई कि यह शख्स न जाने कितनी दूर से मुझे दावत देने आया है और मैं सिर्फ़ हैरान हो रहा हूं, खुश नहीं। सो मैंने खुश दिखने की कोशिश की, कहा ज़रूर आऊँगा, आप बुलाने आए हैं तो ज़रूर आऊंगा। अब वह हैरान हो रहा था, क्योंकि मेरी आवाज की गर्मी खुद मुझे अपर्याप्त महसूस हो रही थी। मैंने संभल कर पूछा मौका क्या है तो उसने झट जवाब दिया अजी मौके को गोली मारिये बस आ जाइए। 'गोली' के साथ ही उसने गोली मारने की अदा की नकल उतार दी तो मुझे फिर हंसी आ गयी। फिर पता नहीं क्या हुआ और कैसे—शायद हँसते हँसते मै बीच मे कुछ क्षणों के लिए बेहोश हो गया था—कि मैंने देखा हम दोनों मेरे दरवाज़े से दूर उसकी कार के पास खड़े थे और वह मुझे अपने घर का पता लिखवा रहा था, रास्ता समझा रहा था, मै एक कान से उसे सुन रहा था, दूसरे से अपने मन के इस सवाल को कि मैं अपने दरवाजे से इतनी दूर कैसे आ

गया था। उसने अपने घर का रास्ता दो बार बताया तो भी मैं उसे समझ न पाया, आखिर मैंने कहा एक कागज पर नक्शा सा बना दीजिए, यह जानते हुए कि मै उस नक्शे को कभी समझ नहीं पाऊगा। जब वह नक़्शा बना रहा था तब भी मैं यही सोच रहा था कि मुझे याद क्यो नहीं आ रहा कि अपने दरवाज़े पर उस से बात करने और उसकी कार तक पहुचने के बीच वाले वक्फ़ म क्या हुआ था। मेरी हालत किसी ऐसे शख्स की सी थी जो किसी बेहोशी के बाद किसी अस्पताल मे आख खोल कर पूछता है, मैं यहां कैसे आया?

उसकी कार नयी थी। शायद उस नयी कार की खुशी में ही वह कोई पार्टी दे रहा था लेकिन उस जैसा आदमी नयी कार की नुमाइश शायद नहीं करेगा। उसने नक्शे वाला कागज मुझे देते हुए कहा—अगर यह गुम हो जाए तो भी आ जाइए, बस उस इलाक़े का नाम याद रखिए और मेरा, वहा मुझे और मेरी बीवी को सब लोग जानते हैं। यह कह कर वह कार की तरफ बढ़ा तो मैने सोचा मुझे मेरे घर तक छोड आएगा लेकिन जब उसने दरवाज़ा बन्द कर लिया तो मुझे हैरानी भी हुई, अफसोस भी, और घबराहट भी, क्योंकि आस पास सब मुझे बिलकुल बेगाना नजर आया और वहा से अपने घर पहुचना मुझे कठिन लग रहा था। मैंने सोचा वह हिले तो किसी से पूछू मै कहा था। तभी उसका और मेरा एक वाक़िफ वहा आ टपका, न जाने कहा से, और वह मुझे उसके हवाले सा कर कार समेत हवा हो गया। उस दूसरे को मैं वाकिफ का दर्जा दे देना चाहता हू, पहले को दोस्त का—सहूलियत के लिए, ताकि मै इस किस्से को जैसे तैसे आखिर तक पहुंचा सकू, उन दोनों के नाम इस वक्त मुझे भूले हुए हैं।

मै नहीं जानता कि वाकिफ को भी दोस्त ने दावत दे रखी थी या नहीं, इसलिए मै उस से पूछना नहीं चाहता था। मैं उस से अपने घर का रास्ता भी नहीं पूछना चाहता था। मै चाहता था वह चला जाए ताकि मैं किसी अजनबी से अपने घर का रास्ता पूछ सकू, उस बेगाने इलाक़े का नाम पूछ सकू, आराम से सोच सकू आखिर हुआ क्या था। इतने मे वाकिफ ने कहा, मेरी कार वह खड़ी है, चलिए मैं आपको आपके घर छोड़ दूंगा। उसकी पेशकश एक नई उलझन मे लिपटी हुई नजर आयी, मैं खुश नहीं हुआ, लेकिन कोई बहाना बना कर उसे टाल या ठुकरा देना मुझे गलत और खतरनाक जान पड़ा। मैं उसके साथ हो लिया, सोचा शायद उसे मेरा घर मालूम हो, शायद वह रास्ते में दोस्त और उसकी दावत के बारे में कुछ बताए। कार के पास पहुचते ही मैने वाकिफ से कहा, अगर आप इजाजत दें तो मै ही कार चलाऊँ, मुझे आपको रास्ता नही बताना पड़ेगा, रास्ता बताने में मुझे बड़ी मुश्किल होती है। उसने चुपचाप चाबी मुझे दे दी। कह नहीं सकता क्यो लेकिन मुझे लगा वह मुझ से डर रहा था और डर के मारे ही उसने मेरे उस अजीब सुझाव पर कोई एतराज नहीं उठाया था। जब हम कार मे बैठ गये तो कार चलाने से पहले मैने आंखे मूद कर घर का रास्ता याद करने की कोशिश की। वाकिफ ने सोचा होगा मै प्रार्थना कर रहा था कोई हादसा न हो क्योंकि वह कार मेरी नहीं थी। जो हो मेरी हरकत से वाकिफ का डर और ज़्यादा हो गया होगा। आखे मूंदने से मुझे घर का रास्ता मिला था न कोई और तदबीर सूझी थी। मैने कार स्टार्ट की, सोचा कुछ देर इधर उधर घूम लेने के बाद किसी मोड़ पर कार रोक कर कह दूगा अब यहा से मै पैदल ही चला जाऊंगा, आप चिन्ता मत कीजिए।

मैंने वाक़िफ की तरफ देखा। वह खोया हुआ दिखायी दिया। शायद वह दोस्त के बारे मे सोच रहा था। मैंने कहा, घबराइए नहीं, मै माहिर ड्राइवर हूं। मैने एक और झूठ बोल दिया था। मेरे झूठ से वाकिफ की परेशानी दूर नहीं हुई थी। सड़क साफ थी। मेरे अपने इलाके की सारी सडके हमेशा कटी फटी रहती है। कार चलाने मे मुझे मजा आने लगा था। दूसरे की कार चलाने मे अक्सर वैसा ही नाजाइज सा मजा आता है जैसा दूसरे की बीवी से फ्लर्ट करने मे। इस मजे के सरूर में मै भूल गया कि मुझे अपने घर का रास्ता भूला हुआ था। मैंने अपनी महारत की नुमाइश भी शुरू कर दी, कार को झुलाना शुरू कर दिया। वाकिफ किसी सहमे हुए बच्चे की तरह दुबक पिचक गया था। जब मै सड़क से नजर और स्टीयरिंग से हाथ हटा कर उससे कोई बेकार सी बात करता तो उसका उड़ा हुआ रंग देख कहता, घबराइए मत, आपकी कार को कुछ नहीं होगा। उसकी कार भी नयी नयी ही थी और उसकी चिन्ता बजा थी क्योंकि मै उसे ऐसे चला रहा था जैसे कोई लड़का किसी साइकिल को। मैंने उसकी चिन्ता का भी मजा लेना शुरू कर दिया था। मजे के साथ साथ मै हैरान भी बहुत हो रहा था क्योंकि वाकिफ हर क्षण छोटा होता जा रहा था, गोया उसका कायाकल्प सा हो रहा हो। उधर अचानक सड़क के दूसरे किनारे के साथ एक नदी ने बहना शुरू कर दिया था। मै पानी पर रीझता भी बहुत हूं, उस से डरता भी बहुत हूं, क्योंकि डूब मरने की ख्वाहिश मचलने लगती है। मैं वाकिफ से उस नदी के बारे में पूछना चाहता था लेकिन यह सोच कर चुप रहा कि शायद वह नदी मेरी नजर का धोखा भर ही हो। कार इतनी तेज चलने लगी थी कि मुझे लगा जैसे वह बेकाबू हो जाने को हो। ब्रेक दबा कर शक दूर करने की हिम्मत नहीं हुई। अब मै खुलकर डर रहा था, शायद अपने साथी से ज्यादा। मैं दुआ माग रहा था वह कुछ कहे, कुछ करे, स्टीयरिंग मेरे हाथ से ले ले, ब्रेक को दबा दे, अब उसकी तरफ़ देखने की हिम्मत नहीं हो रही थी, खतरा महसूस हो रहा था कहीं वह छोटा होता होता खत्म न हो गया हो। कार भी फिसलती हुई सी दौड़ रही थी, नदी भी। कहीं से कोई शोर नहीं उठ रहा था, कोई नज्जारा नहीं लपक रहा था। मैंने किसी टक्कर-धमाके का इन्तजार करना शुरू कर दिया था। आखिर मेरे इन्तजार का अन्त तब हुआ जब कार सड़क से नीचे उतर एक पहाड़ी सी पर चढ़ते चढ़ते रुक गयी। मैंने बड़ी मुश्किल से दरवाजा खोला और उतर कर वाकिफ को उतारा। वह अब एक बच्चे से ज्यादा नहीं रह गया था, उसकी कार एक विकराल तिलचट्टे सी पहाड़ी से चिपकी हुई थी और किसी भी क्षण खिसक कर गिर सकती थी। वह पहाड़ी, अब मैंने देखा, कूड़े कचरे का एक ठोस ढेरी भर थी। एक बड़ी दाढ़ी वाला मैला मलंग उसकी चोटी पर खड़ा अपने एक पांव से उसे दुलार रहा था। उसने हमारी तरफ देखा तक नहीं। मैंने वाकिफ का हाथ अपने हाथ मे ले लिया। अब वह मेरा बेटा नजर आ रहा था। वह शायद अपनी कार को भूल गया था, मै उस दोस्त को भूलने की कोशिश कर रहा था जिसकी वजह से वह सब कुछ हुआ था।

मैं चढ़ाई चढ़ रहा था, धीरे धीरे, और सोच रहा था, बार बार, यह रास्ता शायद ही हमें उधर ले जाए।

जो मेरे साथ थी कहे जा रही थी, ऊपर कमरा नहीं मिलेगा।

मुझे कमरे की चिन्ता नहीं थी, मैं खुले में पड़े रहने के लिए तय्यार था।

जब हम ऊपर पहुंचे तो वह कमरे की तलाश में गुम हो गयी, मैं उधर जाने वाले रास्ते की तलाश में।

उसे कमरा मिला न मुझे रास्ता।

अब हम दोनों आमने सामने खड़े थे, अंधेरे और अजनबियों से घिरे हुए, एक दूसरे को घूरते हुए, मानो मैंने उसका कमरा चुरा लिया हो, उसने मेरा उधर जाने का रास्ता।

अचानक मैंने पूरे ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया, उसने रोना, कुछ इस तरह से कि सुनने वालों को लगे हम कोई नया मातमी संगीत रच रहे थे।

सुनने वालों पर हमारे रोने चिल्लाने का कोई असर नहीं हो रहा था, शायद उन्हे कुछ सुनायी ही नहीं दे रहा था।

जब उसने अचानक और अकारण मुझ से मेरे घर का पता और रास्ता पूछा तो मुझे बुरा लगा, कई बुरे खयाल आए, महसूस हुआ वह कमीनगी कर रहा था, मन हुआ कोई जवाब देने के बजाय उसे काट कर इधर उधर हो जाऊं, अजनबियो की भीड़ मे खो जाऊं, या उसे झिड़क दूं, फिर अपनी और उसकी उम्र का लिहाज़ सा आ गया, या शायद यह सोच कर शर्म कि अपने किसी पुराने भूतपूर्व दोस्त की गलती पर मैं इतना नाराज क्यो हो रहा था। जैसे अगर मैंने उसे घर आने के लिए कहा होता तो मैं समझता वह व्यंग्य कर रहा था, संकेत दे रहा था कि उसे मेरे घर का पता रास्ता भूल गया था, या वह सुझा रहा था कि मैने ज़रूर घर फिर बदल लिया होगा। पिछले कई वर्षों से हमारी दोस्ती न सिर्फ ठंडी होती चली आ रही है बल्कि एक तरह की खामोश दूरी बल्कि दुश्मनी में बदलती जा रही है। उसका मुझे मालूम नहीं लेकिन मुझे इस परिवर्तन से पीड़ा होती है, कभी कभी, जब कभी मैं अपने अहम् से कुछ ऊपर उठ जाने में सफल हो जाता हूं, कुछ देर के लिए, और ऐसा अक्सर रात को ही होता है। दिन के दौरान हम अक्सर एक दूसरे से बचते कतराते रहते है। जब कभी इत्तफाक़ से आमने सामने हो भी जाते हैं तो हमारी मुस्कराहटें आपसी मैल से अटी रहती हैं, हमारी आंखें एक दूसरे के चेहरे पर ठहर नहीं पातीं। रात को आमने सामने होने के अवसर कम मिलते हैं लेकिन जब मिलते हैं तो मुझे महसूस होता है शायद इस मुलाक़ात में हमारी मैल धुल जाए और हम फिर एक दूसरे के दोष भूल बूढ़ी दोस्ती को बहाल कर लें। अभी तक ऐसा हुआ तो नहीं लेकिन ऐसा होने की संभावना से सुख जरूर मिलता रहता है।

कल रात की उस पार्टी में हम एक कोने में एक दूसरे के सामने पड गये थे। अगर मुझे मालूम होता कि वह उस पार्टी में होगा तो शायद मैं वहा न जाता; अगर उसे मालूम होता कि मैं वहा रहूंगा तो शायद वह ग़ैरहाज़िर रहता। मुझे मालूम तो नहीं था लेकिन अन्देशा जरूर था कि वह भी वहा होगा। मेरा खयाल है उसे भी यह अन्देशा जरूर रहा होगा कि मैं वहा रहूंगा। शायद हम दोनों के अन्देशों में आशा की कुछ मात्रा भी रही हो। मुझे देख वह मुस्कराया तो उसका चेहरा मुझे किसी चालबाज बुढ़िया के चेहरे सा नज़र आया। उसकी मुस्कराहट के जवाब में जब मै मुस्कराया तो मेरा चेहरा मुझे एक घाव मे बदल गया महसूस हुआ। उसके और अपने चेहरे का यह रूप मेरे लिए नया नहीं लेकिन जब से हमारे मुंह पोपले होने शुरू हुए हैं, हमारी मुस्कराहटें उनमे यूं खुसी हुई नजर आती है जैसे बूढ़ी वेश्याओं के बालों में मुरझाए हुए फूल।

उस से नजर मिलने से पहले मैं किसी से पूछने के लिए तय्यार हो रहा था कि हमारी होस्टेस कौन सी मौटी औरत थी। उसकी मुस्कराहट ने उसके चेहरे को किसी चालबाज बुढ़िया का सा और मेरी ने मेरे चेहरे का घाव सा न बना दिया होता तो मैने उसी से पूछ लिया होता और तब हमारी हंसी एक साथ छूट जाती और कुछ देर के लिए हम एक दूसरे के लिए वैसे ही निर्विकार हो जाते जैसे कि किसी जमाने मे शायद हुआ करते थे। उस ने मुझ से मेरा हालचाल पूछा न मैने उस से। कुछ देर हम दोनो खामोश इधर उधर यूं देखते रहे जैसे दूसरो से पूछ रहे हो हम क्या बात करें, कैसे बर्फ तोड़ें। एक जमाना था ऐसे अवसरो पर हम एक किनारे खड़े हो आस पास हो रहे तमाशे पर हंसा करते थे और कभी इतना कि आंसू आ जाया करते थे। तब भी हमारे मतभेद हमारे बीच हुआ करते थे लेकिन हमारी रुचियो और रिक्तताओं में तालमेल भी बहुत हुआ करता था। हमारे मतभेद हमारे सम्बन्धों को सूखने से बचाए रखते थे, हमारा आपसी तालमेल उन्हें हरा भरा रखता था। अब वह बात नहीं रही।

वह पार्टी अब याद नहीं आ रहा कहां और क्यो हो रही थी और हम दोनों वहां किस सयोग से जा मौजूद हुए थे। उस पर नजर पड़ने से पहले मैं किसी से उस पार्टी के बारे में पूछताछ करने के लिए तय्यार हो रहा था। ख्वाहिश हुई कि उसी से पूछ लूं लेकिन उसकी मुस्कराहट ने उसके चेहरे को किसी चालबाज बुढ़िया के चेहरे सा बना दिया था। उस पार्टी में कई ऐसी हरकत हो रही थी जिन पर अगर हम मिल कर हंस सकते तो उसके चेहरे की चालबाजी चूर चूर हो जाती, मेरे चेहरे का घाव भर जाता और कुछ देर के लिए दो बूढ़े शरारती दोस्तो मे बदल जाते लेकिन ऐसा नहीं हो सका। पहले उसके चेहरे की चालबाजी पर भी मुझे हंसी ही आया करती थी और मै उसकी चालबाजी को उसकी मुस्कराहट का ही एक दोष मान कर उसे मुआफ कर दिया करता था, समझता था कि वह चेहरा उसका असली चेहरा नहीं, उसका असली चेहरा वही है जो हंसते समय बनता है—एक मासूम बूढ़े बच्चे का सा, द्वेष-दाग-मुक्त।

तो उसी ने कुछ देर बाद अपनी मुस्कराहट को समेट पक्के मुंह से कहा—अपने घर का पता और रास्ता तो बताओ जरा।

मैं भी पक्के मुंह से कह सकता था कि पहले तुम बताओ या इसी तरह का कोई कामचलाऊ जुमला, जिस से बर्फ टूट जाती और हम आपसी रंजिशों के शिकंजे से आजाद हो जाते, उस शिकंजे को अपनी हंसी का निशाना बना सकते, लेकिन ऐसा करने के बजाय मैने उसे अपना पता बता दिया और वहां तक का रास्ता बताने के लिए कई आड़ी तिरछी लकीरें हवा मे खींच दी, उसे समझाया कि अपने घर से चलने के बाद वह किस मकाम पर किस तरफ मुड़े, कितनी दूर तक उस रास्ते पर चले, किस चौराहे से किस तरफ मुड़े, ...। मोड़ों, चौराहो, लाइटों के इलावा मै उसे रास्ते में आने वाली खास खास इमारतों और दूसरी निशानियों के बारे में भी बता रहा था, उनकी हवाई तस्वीरें भी बना रहा था। पार्टी का शोर धीमा होता जा रहा था, दूसरो की उपस्थिति धुंधली पड़ती जा रही थी, मेरे उस भूतपूर्व दोस्त का चेहरा घिरते चले आ रहे अंधेरे मे उसी तरह गुम होता जा रहा था जिस तरह मेरे बताए हुए रास्ते के उलझावो मे मेरा घर। याद उस अंधेरे मे डूब जाने से पहले मुझे खयाल आया अगर उसने

मुझ से मेरे घर का पता और रास्ता न पूछा होता तो मुझे पता ही न चलता कि मुझे अपने घर का रास्ता भूला हुआ है या शायद मेरा घर अपनी जगह से उखड़ कहीं और जा गुम हो गया है। दोनों सम्भावनाओं में एक सा आतंक फूटता हुआ महसूस हुआ, जिसे झेलने के लिए अपने उस दोस्त का दामन पकड़ना मुझे इतना जरूरी जान पड़ा कि मैं सारी रंजिशें भूल गया लेकिन जब मैंने हाथ बढ़ाया तो हवा और अंधेरे के सिवा कुछ मेरे हाथ में नहीं आया—मैं एक वीरान अँधेरे में अकेला खड़ा था, जहां से अपने या किसी और के घर का कोई रास्ता मुझे कहीं नजर नहीं आ रहा था।

मुझे लगा वह मुझ से पीछा छुड़ाना चाह रहा था। मैं उसका पीछा छोड़ देना चाहता था लेकिन एक बार साफ साफ उस से पूछ लेना चाहता था क्या वह मुझ से पीछा छुड़ाना चाहता था और यह भी कि मुझ से पीछा छुड़ा कर वह जाना कहा चाहता था। कई रातों से मैं हिम्मत बांध रहा था, आखिर उस रात मैं कामयाब हो गया और मैंने उस से पूछ ही लिया। वह बोला—क्या बकवास कर रहे हो यार, कौन कमबख्त तुम से पीछा छुड़ाना चाहता है, मैं तो तुम्हें साथ ले जाना चाहता हू, मैं तो तुम्हारा इम्तहान लेने के लिए ही ऐसी हरकतें कर रहा था जिन से तुम्हें लगे मैं तुम से पीछा छुड़ाना चाहता हूं, मैं तो इसी इन्तजार में था कि तुम मुझ से पूछो क्या मैं तुम से पीछा छुड़ाना चाहता हू, मैं खुश हू तुम उस इम्तहान में पास हो गये और तुम ने मुझ से पूछ लिया, सो अब सुन लो, ध्यान से, कि मैं तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता हू, वहा जहां की कैफियत का तुम्हें कोई अन्दाज़ा नहीं, वहां जहा तुम्हें ऐसी वीरानियों का सामना करना पड़ेगा कि तुम तड़प उठोगे और पूछोगे तुम मुझे यहा क्यो ले आए, वहां जहा से कहीं और जाना नामुमकिन है, मैं खुश हूं कि तुम मेरे साथ चलना चाहते हो, सो चलो, चलने से पहले यह चोला यहीं छोड़ देना होगा, मै भी छोड़ रहा हू, क्योंकि जहां हम जा रहे हैं वहा किसी चीज की जरूरत रहेगी न किसी चोले की, चलने से पहले मन को भी एकदम खाली करना होगा, अगर मन मे जरा सी मैल भी बची रह गयी तो मुझे पता चल जाएगा और...

वह बोलता चला गया, मैं सुनता। मुझे मालूम हो गया था वह मुझ से पीछा छुड़ा लेने में कामयाब हो गया था, और यह भी कि वह मुझे धोखा दे रहा था, जा कहीं और रहा था, बता किसी और जगह के बारे में।

एक लायब्रेरी मे खड़ा एक किताब पढ़ रहा हू, जैसे कोई किसी बस की प्रतीक्षा मे खड़ा कोई अखबार पढ़ रहा हो। लायब्रेरी बन्द होने में बहुत थोड़ा वक्त रह गया है और मुझे यह किताब खत्म करनी है। कुछ और लोग हैं जो शायद इस इन्तजार में है कि मैं इस किताब को खत्म करू ताकि वे इस पर झपट पड़ें। उनमें से एक आते जाते उचक कर देख लेती है कि मैं किस पृष्ठ पर हू। माया को भी कहीं जाने की जल्दी है, वह कई बार मुझ से कह चुकी है, अब चलना चाहिए, बहुत देर हो रही है। इस अफ़रातफ़री के कारण किताब का कुछ भी मेरे पल्ले नहीं पड़ रहा लेकिन मैं उसे छोड नहीं सकता मानो किसी से या अपने आप से शर्त बांध रखी हो कि इसे खत्म कर के ही यहां से हिलूंगा। बीच बीच में खैर सर तो उठाना ही पड़ता है। जब उठाता हूं तो लायब्रेरी के बाहर एक चबूतरे पर एक लड़की बैठी नजर आती है जो दूर से हमारी एक बेटी से इतनी मिलती जुलती नजर आती है कि मुझे लगता है वही है, हालांकि मै जानता हू वह यहा हो ही नहीं सकती, लेकिन शायद वही हो, माया से पूछ सकता हू लेकिन सोचता हू वह कहेगी मुझे इतना भी मालूम नहीं, मैं रहता कहां हूं, किस बेखबरी के आलम में, फिर खयाल आता है माया शायद इसीलिए जल्दी मचा रही हो कि हम जा कर अपनी बेटी से पूछें वह यहा कैसे ? लेकिन नहीं, वह कोई और ही होगी, मुझे अब यह किताब रख देनी चाहिए नहीं तो वह औरत जो उचक उचक कर देख रही है मैं किस पृष्ठ पर हू मेरा मुंह नोच लेगी। मै फिर किताब में डूब जाने की मुद्रा बना लेता हूं। अब इस किताब का कोई करतब मेरी समझ में नहीं आ रहा। शब्द मेरी नजर के नीचे कभी नाचना शुरू कर देते है कभी रेंगना। अब वह उचकने वाली औरत जम कर मेरे पास खड़ी हो गयी है। मन होता है किताब उसके मुंह पर दे मारूं या कहू मुझे तंग करने के बजाय वह लायब्रेरियन को तंग करे। यह लायब्रेरी भी अजीब है। लोग बैठ कर पढ़ने के बजाय खड़े खड़े पढ़ रहे हैं या यूं घूम फिर रहे हैं जैसे कोई छोटा मोटा मेला हो। मेले का खयाल आते ही मुझे वह सपना याद आ जाता है जिसमें कल रात मैं एक मेले मे मंच पर खड़ा सामने बैठे बेचेहरा भीड से मुखातिब हो रहा था। अपनी तकरीर की ऊटपटांग बातों और अपनी मुद्राओ के बेढब तोतों कबूतरों की याद से मुझे हंसी आ जाती है। माया पास आ फुसफुसाती है, पागल हो गये हो ? उस स्वप्न मे तीन भद्दे से व्यक्ति मेरी तकरीर को तोड़ने के लिए मंच पर आ गये थे। पहले मुझे खतरा हुआ था वे मुझे पीट डालेंगे। शायद जाने अनजाने मैंने उनके धार्मिक विश्वासो को कोई चोट पहुचा दी हो। उनमें एक मोटी सी औरत भी थी जिसकी नाक का लौंग अंगारे की तरह दमक रहा था, मुझे खयाल आता रहा

था इस औरत को मैंने किसी गाड़ी में देखा था। उस औरत ने अचानक मच पर नाचना शुरू कर दिया था, उसके दोनों साथियों ने गाना, और भीड़ ने तालिया पीटना। मेरी तकरीर टूट गयी थी और मैं मच छोड़ भीड़ मे गुम हो गया था।

माया कहती है—अब छोड़ भी दो इस किताब को!

उचकने वाली औरत इसी अवसर की तलाश मे थी, कहती है—न खुद पढ़ रहे हैं, न किसी और को पढ़ने दे रहे हैं।

लायब्रेरी की बत्तियों ने झपकना शुरू कर दिया है।

माया किताब मेरे हाथ से छीन लेती है, वह औरत उसके हाथ से। किताब के दो पन्ने फट खिंच कर मेरे हाथ में रह जाते है। मै उन्हे मरोड़ कर जेब में डाल लेता हू और डरना शुरू कर देता हूं किसी ने देख लिया होगा।

माया के चेहरे पर परेशानी पुत गयी है। हम दोनों की निगाहें एक साथ उस चबूतरे की तरफ उठ जाती हैं जहां वह लड़की बैठी हुई थी जिस पर मुझे अपनी एक बेटी का गुमान हुआ था। वह अब वहां नहीं। मैं घबरा जाता हूं चिल्लाने के लिए मुंह खोल ही रहा होता हूं कि माया आंख के इशारे से याद दिला देती है यह लायब्रेरी है कोई मेला नहीं।

जब हम सब रेस्तोरां के सामने रुके तो मैंने देखा मैं नंगा था। पहले तो मुझे खयाल आया शायद हम सब नंगे हों लेकिन बाकी सब खूब ढंके संवरे हुए थे, कार से बाहर निकलने के लिए उतावले हो रहे थे, एक दूसरे को जल्दी करने के लिए कह रहे थे, अकेला मैं ही कोने में दुबका बैठा सोच रहा था अब मेरा क्या होगा! जब मैं उनके साथ कार में बैठा था तो मैंने मुनासिब कपड़े पहने हुए थे, बाकियों की तरह, उन सब ने देखा ही होगा, फिर रास्ते में कब और कैसे मेरे कपड़े ग़ायब हो गये, किसने कर दिये, कुछ समझ नहीं आ रहा था किस से पूछूं। सब नीचे उतरने की जल्दी मे थे, इसीलिए किसी को मेरी हालत का पता नहीं चला होगा, वर्ना शोर मच गया होता। मेरे दोस्त की बीवी, जो कार में मेरे साथ बैठी थी, अब अपने तीनों बेटों की बलाएं ले रही थी, मेरा दोस्त अपनी बीवी की। एक क्षण के लिए उम्मीद बंधी कि वे सब मुझे भूल गये थे, मुझे कार में बन्द कर रेस्तोरां में घुस जाएंगे, और मैं कोई तरकीब निकाल लूंगा, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मैंने माया को याद करना शुरू कर दिया। उसने साथ आने से इनकार कर दिया था। उसे शक है मेरे दोस्त की बीवी उसे पसंद नहीं करती और मैं अपने दोस्त की बीवी को कुछ ज़्यादा ही पसंद करता हूं। मैं सोच रहा था अच्छा ही हुआ माया इस मौके पर मौजूद नहीं, वर्ना मुझे नंगा देख वह कहती, मुझे मालूम था तुम कोई बेहयाई करोगे, इसीलिए मैं आना नहीं चाहती थी।

मैं दुबका बैठा अपनी जांघों मे हाथ दबाए किसी की चीख का इन्तज़ार कर ही रहा था कि मुझे अपने दोस्त की बीवी की आवाज़ सुनायी दी---वह क्या सो गया बैठे बैठे वहीं!

उसकी पीठ मेरी तरफ थी और वह मेरे दोस्त से मुखातिब थी। मेरा दोस्त शायद मुझे भूल गया था। लपक कर आया और बोला---तू क्या यहीं बैठा रहेगा? चल उतर नीचे!

वह सीधा साफ़ मुझे देख रहा था और उसकी आंखों में कोई हैरानी थी न उसके चेहरे पर। शायद वह अपनी सालगिरह की खुशी मे अन्धा हो गया हो, मैंने सोचा, और अपनी आंखों से अपनी जांघों की तरफ इशारा करते हुए कहा---पागल हो गये हो, मैं इस हालत में रेस्तोरां मे कैसे जा सकता हूं? कौन अन्दर जाने देगा मुझे?

अब उसकी आंखें और चेहरा एक साथ मारे हैरानी के फटते हुए से दिखायी दिये तो मुझे कुछ राहत मिली, मैंने सोचा, बाकी लोग तो रेस्तोरां में दाखिल हो ही गये हैं, अब यह मुझे मेरे ठिकाने पर छोड़ आएगा, अपनी बीवी से कोई बहाना बना देगा, कह देगा अचानक

साले के पेट में दर्द उठ खड़ा हुआ, और माया और मैं मिल कर सोच-समझ लेंगे कि आखिर हुआ क्या था, मैं नंगा कैसे हो गया था, मेरे कपड़े कहां और कैसे गायब हो गये थे?

मेरे दोस्तों ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे एक झटका सा दिया और कहा—यह तुम्हें पहले सोचना चाहिए था, अब आ गये हो तो बाहर निकलो ताकि जल्दी जल्दी खाना खाएं और खत्म करें यह टंटा, और फिर सालगिरह मेरी है तेरी नहीं, तुझे अपने कपड़ों की इतनी चिन्ता क्यों, तू जैसा है ठीक है।

अब मैं समझा कि उसकी निगाह में मैं नंगा नहीं था। मैंने सोचा, इसे बताऊंगा मैं नगा हूं तो यह समझेगा मैं पागल हो गया हू। खुद मुझे भी यह खयाल आना शुरू हो गया था। मैंने एक निगाह अपने नगे निहत्थे शरीर पर डाली, एक लम्बी सास ली, और यह सोचता हुआ कि जो होगा देखा जाएगा शायद कुछ भी न हो शायद मैं सिर्फ अपनी ही निगाह मे नंगा हुआ हूं मै कार से नीचे उतर पड़ा।

—ठीक तो हैं तेरे कपड़े, क्या कमी है इनमें?

रेस्तोरा में दाखिल होते हुए मैं सोच रहा था मेरे साथ कोई खेल खिलवाड हो रहा है लेकिन कौन कर रहा है, शायद मेरे दोस्त की बीवी ही, शायद वह मुझे कोई इशारा दे रही है लेकिन यह सब उसने किया कैसे? खाने के दौरान मैं उसकी आंखो और उसके मन की तलाशी लूंगा। अगर रेस्तोरां में बैठे दूसरे लोगों ने देख लिया मै नगा हूं तो वे क्या करेंगे, शायद कुछ भी न करें, शायद सोचें मैं कोई महात्मा हूं।

जब मै अपने दोस्त की बीवी के साथ वाली कुरसी पर बैठ रहा था तो वह धीरे से कह रही थी—आज आखिर मेरी मुराद पूरी हो ही गयी, मैने तुम्हें तुम्हारी असली हालत में देख ही लिया, चौंको मत, किसी और को कुछ पता नहीं चला।

यह कह कर वह फिर अपने बेटों की बलाएं लेने में लीन हो गयी।

कल रात फिर बरसों बाद मैं किसी बस के इन्तजार मे उसटा उसडा सा अधीर हो रहा था और अपने आपको समझा रहा था अधीर होने से इन्तजार और कठिन हो जाएगा।

एक जमाना था जब मैं साइकल की सवारी किया करता था, काम पर जाने के लिए भी और सैरतफरीह के लिए भी। जब साइकल टूट जाती और उसकी मरम्मत करवाने का मन न होता तो मैं बसों के इन्तजार मे खड़ा या उनके पीछे भागता रहता। जब बसों के लिए किराया न रहता तो पैदल चलना शुरू कर देता। जब पैर या जूते जवाब दे जाते तो फिर साइकल की तरफ मुड़ता। उस जमाने मे टैक्सी की सवारी मेरी तौफीक मे नहीं थी, साइकलरिक्शा की मुझे अमानवीय लगती थी, फटफटिया की भद्दी। कभी कभी तांगा तौफीक की पकड़ में आ जाता तो मैं एकाध घन्टे के लिए पूरा तांगा कर अपने शहर मे किसी बादशाह की तरह उड़ता फिरता।

उस जमाने मे ताबदार तांगे, आबदार घोड़े और बातूनी कोचवान मेरे शहर के कुछ इलाकों मे मिल जाते थे।

कल रात एक अन्धे मोड़ पर खड़ा मैं बस का इन्तजार कर रहा था और उस जमाने की जर्द यादों मे अपने अधैर्य को सहला रहा था। मै नशे मे तो नहीं था लेकिन यह भूला हुआ था कि मैं वहां क्यों बस के इन्तजार में खड़ा अधीर हो रहा था। आजकल रात को अक्सर बहुत कुछ भूल जाता हू, खास तौर पर समय और स्थान से सम्बन्धित कई बाते, और अपने कहीं होने के कारण, और रास्ते।

हवा खुशबूदार थी, मानो आस पास कोई अमीर शौकीन औरत खड़ी इतरा रही हो, इत्र बिखेर रही हो। मन हुआ किसी से पूछूं, भाई साब, यह खुश्बू कहा से आ रही है। उस जमाने में जब बस के इन्तजार में ऊब इन्तिहा को छूने लगती थी तो मैं दूसरों से बेकार सवाल पूछना शुरू कर देता था . भाई साब, टाइम क्या हुआ है आप की घड़ी मे; भाई साब, इक्कीस नम्बर की बस यहा रुकती भी है या नहीं; भाई साब, आप कितनी देर से यहां खड़े है...। डर लगा रहता था किसी दिन कोई भाई साब भड़क कर पीट देगा। उस जमाने मे भी मुझे डर बहुत हुआ करते थे। सब से बड़ा डर तब भी यही होता था कि किसी को मेरी कोई बात इतनी बेहूदा और बुरी लगेगी कि वह मुझे पीट डालेगा। इस डर की गहराई मे उतरने से भी डर लगता था। लेकिन डर के बावजूद दूसरों से बात करने से मै बाज नहीं आता था

भाई साब, आपको ऊब की बीमारी क्यों नहीं ? भाई साब, कभी आपने आत्महत्या करने के बारे में सोचा है ? भाई साब, परमात्मा है या नहीं ? भाई साब, यह सब क्यों है ?

उस जमाने की याद में उस मनचढ़ल भाई साब से मैंने मन ही मन कई सवाल पूछ लिये और फिर मुस्कराना शुरू कर दिया। उस जमाने में अपने मुस्कराने को मैं मरने का पर्याय माना करता था। सोचा करता था अगर मरते वक़्त मुस्कराऊंगा तो सीधा स्वर्ग चला जाऊंगा। स्वर्ग में आस्था नहीं होती थी लेकिन सीधा स्वर्ग जाने की संभावना से सुख मिलता था। आस पास उस जमाने में भी अक्सर नरक ही नरक नजर आता था और उसमें नाचते हुए बेशुमार लोग, अन्धे और बहरे, जिन से मुझे नफरत हुआ करती थी। अब नहीं होती। अब मैं भी अन्धा और बहरा हो गया हूं। नाचता तो नहीं लेकिन नाचने वालों से अब हमदर्दी ही होती है, नफ़रत नहीं। इस परिवर्तन को कभी अपनी उदारता का प्रमाण मान लेता हूं, कभी अपने पतन का, कभी अपनी कायरता का, कभी अपनी बेईमानी का।

कल रात जिस मोड़ पर खड़ा था उसके आस पास दरिद्रता के दाग उस वक्त मुझे नजर नहीं आ रहे थे। उस ज़माने में भी रात की रौशनी में गन्दगी और ग़रीबी के दाग दर्द धुंधले या कभी कभी इतने कोमल हो जाया करते थे कि उन पर कलियों की कशीदेकारी का गुमान हुआ करता था।

अंधेरा न हो तो नरक नारकीय हो जाए। आकाश न हो तो धरती असहनीय हो जाए। अंधेरे और आकाश को मैं एक सा आराध्य मानता हूं।

कल रात मैं अंधेरे और आकाश की आराधना कर ही रहा था कि मुझे कई साए आस पास मंडराते महसूस हुए। क़ायदे से मुझे डर जाना चाहिए था लेकिन मुझे डर महसूस नहीं हुआ। जब उन सायों ने भिखारियों का रूप लेना शुरू कर दिया तो भी मुझे डर महसूस नहीं हुआ। मुझे लगा शायद मैं उन्हें देखने के लिए ही वहां जा खड़ा हुआ था, बस का इन्तजार महज एक बहाना था, मैं अंधेरे में छिपे हुए नरक का साक्षात्कार करना चाहता था। अब मेरे सामने एक काला कोढ़ी दोनों हाथ फैलाए खड़ा था। उसकी अगुलियां और होंठ गले हुए थे, आंखें चुस्त थीं, मुंह से महीन आवाज रिस रही थी। मैंने उसे पहचान लिया था, उसने मुझे---उस जमाने में जिस अड्डे पर मैं अक्सर बस का इन्तजार किया करता था और बस से उतरा करता था उसी अड्डे पर वह काला कोढ़ी अपनी महीन आवाज में भीख मांगा करता था और मैं किसी दिन उसके पास बैठ उसकी कहानी सुनने के खाम खयालों में खेला करता था। मैंने उस से नजर हटायी तो मुझे एक औरत लकडी की एक टांग पर खड़ी नजर आयी। उसकी दोनो बाहें भी कुहनियों से कटी हुई थीं और दो मोटी अगुलियों की तरह मेरी तरफ उठी हुई थीं। मैंने उसे पहचानने की कोशिश नहीं की, करता तो शायद पहचान ही लेता। उन दोनों से कुछ हट कर एक लड़का अपने चूतडों पर फिरकी की तरह यूं घूम रहा था जैसे कोई बाजीगर करतब दिखा रहा हो। गौर से देखा तो दिखायी दिया कि उसकी टांगें उसकी गर्दन से लिपटी हुई थीं, हाथ चूतडों के नीचे दबे हुए पैरों का काम कर रहे थे, पैर हाथों की तरह फैले भीख मांग रहे थे। उसे मैं शायद ही पहचान सकता। मैं उससे कुछ पूछने की सोच

हो रहा था कि पीठ पर किसी नुकीली चीज की चुभन महसूस हुई। मुड़ कर देखा तो पहले कुछ नजर नहीं आया, फिर अंधेरे में से एक लाठी उठती हुई दिखायी दी। एक बूढ़ा लेटा हुआ था। उसके बाजू नहीं थे। लाठी उसके घुटनों ने पकड़ी हुई थी। वह उस लाठी से मुझे कोंचने की कोशिश कर रहा था, उसकी आंखें भीख मांग रही थीं। मुझे डर फिर भी महसूस नहीं हुआ। जो महसूस हुआ उसके लिए मेरे पास शब्द नहीं।

अगर बस खचाखच भरी हुई होती और किसी थकी टूटी बुढ़िया की तरह मेरे पास न आ खड़ी होती तो मैं उस पर सवार हो जाने की हिम्मत न जुटा पाता। किसी ज़माने में मैं माहिर बसबाज हुआ करता था। चलती बस पर लपक कर चढ़ जाया करता था, उसके रुकने से पहले ही छलांग लगा कर उतर जाया करता था। कभी मुझे कहीं चोट नहीं लगती थी। देखने वाले दंग रह जाया करते थे। वह ज़माना बहुत पीछे छूट गया है। उसी ज़माने की याद मे ही कभी कभी रात को पास के किसी बस अड्डे पर जा खड़ा होता हूं, जैसे कल रात। ड्राइवर ने मुझ पर तरस खा कर बस रोक ली होगी, कोई मुसाफ़िर वहा उतरने वाला नही था, मेरे सिवा कोई और मुसाफिर वहा खड़ा हुआ नहीं था, और मै यो सर झुकाए खड़ा था जैसे मुझे बस का नहीं भगवान का इन्तजार हो।

सवार हो जाने के बाद सवाल उठा कि कहा का टिकट कटवाऊंगा, कंडक्टर पूछेगा तो क्या जवाब दूगा। बसबाजी के जमाने मे यह सवाल नहीं उठा करता था। कंडक्टर आया तो मैंने डरते डरते पूछा बस के आखिरी स्टाप का नाम क्या था। कडक्टर बूढ़ा था, न होता तो शायद उसने मुझे डॉट दिया होता : बुझारतें मत पूछो, बाबा, सीधी तरह से बताओ टिकट कहां का काटूं! लेकिन उस भले आदमी ने आखिर स्टाप का नाम बता दिया और मैंने वहा का टिकट कटवा लिया। अगर कंडक्टर भला आदमी न होता तो उसने किसी दूसरे मुसाफिर को आंख मार कर कह दिया होता : बाबा जी रात की सैर को निकले हैं।

वैसे मैं निकला सैर के लिए ही था, बस अड्डे पर तो यूँही थोडी देर के लिए रुक गया था, बस पर सवार होने का कोई इरादा नहीं था, लेकिन अब तो टिकट कटवा ही लिया था, सो मैं पसर कर बैठ गया, क्योंकि अगल बगल कोई नहीं था। हिचकोलों का असर था या खड़खड़ का, पसरने के कुछ देर बाद मैंने ऊंघना शुरू कर दिया। बसो और लायब्रेरियो में ऊंघते हुए बूढ़े बेघर और बेचारे नजर आते है। अपनी बसबाजी के जमाने मे मुझे ऐसे बेचारो पर तरस भी आता था, उनसे डर भी लगता था। हैरानी होती थी इतने शोर-शराबे के बीच ये बेचारे ऊंघ कैसे रहे है। उन्हे जगा कर उन से बातें करने का मन हुआ करता था।

मेरी बस मे शोरशराबा नहीं था। ऊंघना शुरू करने से पहले मैंने देख लिया था कि अगली सीट पर तीन लड़कियां बैठी हुई थी, तीनों के हाथो मे एक एक किताब थी, तीनो बस की बुझी बुझी रौशनी मे अपनी अपनी किताब पर झुकी हुई थीं। उन्हें देख दिल थोड़ी देर के लिए खुश हो गया था। आजकल के जमाने मे भी कुछ तो ऐसी हैं जिन्हे पढ़ने का शौक है।

मेरे झोले मे भी एक किताब थी। मैंने उसे निकाल कर आखों के साथ तो सटा लिया लेकिन उस फीकी रौशनी में पढ़ कुछ नही सका। अगर उन लड़कियों ने देख लिया होता तो सोचतीं बुढ़ापे मे भी कुछ लोग सिर्फ अखबार नहीं पढ़ते। जब ऊंघ आने लगी तो मैंने आखों को मसला, ऐनक को साफ़ किया, सर को खुजलाया, पैरों को पटखा, लेकिन आगे कुछ नहीं रख पा रहा था। आखिर मैंने हार मान ली और झूलना शुरू कर दिया। जब नींद खुली तो वे तीनों लड़कियाँ मेरी सीट के पास खड़ी मुस्करा रही थी।

—अब उठ भी जाइए।

—आखिरी स्टोप यहीं है।

—हमने आपको पहचान लिया है।

पहली की आवाज दानेदार थी, दूसरी की मे पानी बोलता सुनायी देता था, तीसरी की कुछ बैठी बैठी सी थी। सूरत से तीनो बहनें नजर आती थीं, शायद थी नहीं। उन से कोई गलती हो रही थी।

—आपको हमारे घर चलना होगा।

—हम आपको जानती है।

—आपको न सही, आपके काम को तो जानती ही है।

—हम आपकी फैन्ज है।

—चलिए हमारे साथ।

एक मुद्दत के बाद किसी ने गलत ही सही मुझे पहचाना तो। लेकिन मै उन की भूल का फायदा नहीं उठाना चाहता था, सोच रहा था कैसे उन्हे समझाऊं मैने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसकी जानकारी उन्हें हो सकती हो। मेरी ही शक्ल सूरत का एक कलाकार इस शहर मे है, शायद वह मुझ में उसी को देख रही होंगी। एक कसैली सी मुस्कराहट मेरे होठों पर उतर आयी।

—झोला मुझे दे दीजिए।

—मेरा हाथ पकड़ लीजिए।

—ध्यान से उतरिये।

बस से उतरने ही वे खामोश हो गयीं। शायद अचानक उन्हे अपनी गलती का एहसास हो गया था या शायद इस बात का कि इतनी रात गये वे मुझ अपने घर नहीं ले जा सकतीं। मैंने तो खैर फैसला कर ही लिया था कि मैं उनके साथ तो नही जाऊंगा लेकिन उन्हे उनकी भूल से आगाह नहीं करूंगा।

—मै फिर कभी आऊंगा, आज नहीं।

—हम इसी सड़क के आखिर वाले मकान मे रहती है।

—अपना वायदा मत भूलिएगा।

—हम आपका इन्तज़ार करेंगी।

मैं देख रहा था कि मेरे इनकार से उन्हें राहत मिली थी। जब वे चली गयीं तो कुछ क्षण मैं वहीं खड़ा रहा। कण्डक्टर कुछ फ़ासले पर खड़ा बीड़ी पी रहा था, ड्राइवर पेशाब कर रहा था। दोनो बहुत थके हुए दिखायी दिये। मुझे याद आया वहां कहीं मेरा एक बहुत पुराना वाकिफ़ दोस्त रहता था। शायद वह जिन्दा हो। झोले से एक पुरानी नोटबुक निकाल कर उसका पता देखा और कुछ देर बाद उसके दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ। घन्टी बजाने के लिए हाथ उठाया तो सैकड़ों संशय भी साथ उठ खड़े हुए। मैं फीका सा मन लिए फिर उसी बस अड्डे पर जा खड़ा हुआ। वह बस जिस से मैं वहां आया था जा चुकी थी। तीन हारे मारे लोग वहां खड़े एक दूसरे का मुंह देख रहे थे। उनमें से किसी से कुछ पूछने में मुझे कोई तुक दिखाई नहीं दी।

बात उसी ने शुरू की थी। दूसरों की बातों के शोर के बीचोंबीच उसने अपनी बात के लिए थोड़ी सी जगह तराश ली थी। वह कह रही थी—दोस्त बदल जाते है, बदलते रहते है, अन्दर से न भी बदले तो भी बाहर से बदले हुए, बदलते हुए, दिखायी देते है, अगर तुम उनकी तब्दीलियों को स्वीकार न करो, उन तब्दीलियो को स्वीकार न करो जो तब्दीलियां हों या न हों तब्दीलियों सी दिखाई देती है, तो तुम्हें निराशा होती है, तुम उनके दोस्त बने रहने के बजाय उनके कड़े आलोचक बन जाते हो, यह सोच सोच कर परेशान होते रहते हो कि उनका असली रूप तुमने पहले क्यों नहीं पहचाना, या फिर यह सोच सोच कर कि उनका असली रूप है क्या, जबकि हकीकत शायद यह होती है कि किसी का कोई एक असली रूप नहीं होता, सब के सब रूप समय और स्थिति के साथ बदलते रहते है और...

मै उसकी बात से प्रभावित तो हुआ था, सहमत नहीं, लेकिन अपनी असहमति को दबाए रखना चाहता था, क्योंकि मैं उसके साथ बने अपने सामीप्य को समाप्त नहीं करना चाहता था, क्योंकि आस पास हो रहे शोर के बावजूद उसकी आवाज़ मुझे बहुत साफ और मधुर लग रही थी, महसूस हो रहा था उजली शीतल धूप इधर उधर उड रही हो। लेकिन जब मैंने मुह खोला तो मेरी असहमति अनायास फूटनी शुरू हो गयी। मैंने सुना मै कह रहा था—मैं नहीं मानता, मेरा खयाल है हर एक का एक असली रूप होता है जो कभी नहीं बदलता, बदलता हुआ महसूस भले ही हो, और फिर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जो अपने असली रूप कई तरह के आवरणो से ढांपे रहते हैं, और जब वे आवरण उनकी असावधानी के कारण या किन्हीं और कारणों से उड या घिस फट जाते हैं तो हम, उनके दोस्त, उनका असली रूप देख कर निराश हो जाते हैं, समझते हैं हम से धोखा हुआ, दुखी होते हैं कि हमने अपने साथ धोखा क्यों होने दिया, और मैं समझता हूं यह निराशा और यह दुख स्वाभाविक है, अनिवार्य भी है, क्योंकि हरएक के हर रूप को स्वीकार तो कोई सन्त ही कर सकता है और अगर तुम सन्त नहीं हो तो तुम्हें अपने दोस्तों के अप्रिय रूप या व्यवहार या तथाकथित परिवर्तन से परेशानी भी होगी और इस खयाल से दुख भी होगा कि तुमने उनके असली रूप को पहले क्यो नहीं देखा, बल्कि मैं तो यह भी मानता हू कि तुम अगर ईमानदार हो तो अपनी तथाकथित तब्दीलियों से भी निराश और दुखी हुए बगैर नहीं रह सकते, तुम्हें यह सोच कर दुख होना अनिवार्य है कि तुम अपने आपको धोखा देते रहे, अपने आप में अपना असली रूप छिपाते रहे, सन्तों की बात दूसरी है, वे दोष देखते ही नहीं, शायद देख ही नहीं सकते, लेकिन...

मैं देख रहा था कि वह मुझ से दूर होती जा रही थी, उसका रंग बदलना शुरू हो गया था। मुझे अपनी बात में कई उलझाव नजर आ रहे थे, महसूस हो रहा था मानो कोई और किसी स्वप्न में किसी और से कुछ ऐसा कह रहा हो जिसका कोई सर पैर न हो। मुझे रुक जाना चाहिए था। मैं चाह रहा था कि वह हाथ बढ़ा कर मेरा मुंह बन्द कर दे या किसी तरीके से बात बदल दे। वह खुद बदलती जा रही थी। अब मैं उस जगह में उसके साथ नहीं था जो उसने कुछ ही देर पहले अपनी बात के लिए दूसरों के शोर के बीचोंबीच बना ली थी। दूसरों का शोर अब मेरी बात को खा रहा था। मैं फिर भी बोलता चला जा रहा था, कह रहा था—मिसाल के तौर पर तुम उसी को लो जिसे मैं बरसों से अपनी दोस्त समझता हूं, जो एक तरह से अब भी मेरी दोस्त ही है, लेकिन जिस से मैं इधर एकदम निराश हो गया हूं क्योंकि मुझे लगता है मैं उसका असली रूप अब देख रहा हूं, और वह रूप मुझे पसंद नहीं, मुझे लगता है वह अब तक मुझे धोखा देती रही है, या शायद मैं खुद अपने आपको धोखा देता रहा हूं, दोनों हालतों में मेरा दुःख अनिवार्य है, हां अगर मैं सन्त होता तो शायद मुझे कोई निराशा न होती, कोई दुख न होता, लेकिन मैं सन्त नहीं, इसलिए मुझे यह देख कर दुःख होता है कि वह वैसी नहीं जैसी मैं उसे समझता रहा, कि वह ईमानदार नहीं, कि वह खुदगर्ज है, इसीलिए इतनी सफल है, मतलब यह कि मैं नहीं मानता...

मैं बोलता जा रहा था और उसका रंग बदलता जा रहा था। अब मुझे महसूस होना शुरू हो गया था कि मैं अपनी जिस दोस्त की मिसाल दे रहा था वह वही तो थी जो मेरे पास खड़ी थी और मेरी बात सुनते सुनते मुझ से दूर होती जा रही थी क्योंकि उसने भी मेरी मिसाल के आईने में अपने रूप को पहचान लिया था।

मैंने एक फ़ार्म लिया, उसे पुर किया, एक छोटी सी खिड़की में से उसे उधर सरकाया, उसके पीछे पीछे सारी रकम भी सरका दी। खिड़की के उस तरफ बैठी औरत ने आखें तरेर कर मेरी तरफ देखा न मेरे फार्म की तरफ, बल्कि वह फार्म और पैसे उठाते समय मुस्कराती। फार्म को तो उसने एक नजर देखा लेकिन पैसे गिने तक नही।

—मुझ से कोई गलती तो नहीं हुई?

मेरी आवाज़ मेरे डर के कारण अस्थिर थी।

—नहीं, नहीं, सब ठीक है, आप अब जा सकते हैं।

उसकी आवाज इतनी मधुर और मुआफिक थी कि अगर मुझ में हिम्मत होती तो कह देता—मै अब और कही नहीं जा सकता। जब मैंने उसे सलाम किया तो वह अपने काम में डूबी हुई थी। मैं वहां से चल दिया। कुछ दिन बाद मैं एक तौलिया कन्धे पर डाले कहीं और खड़ा था कि एक औरत आयी और मेरे तौलिये को प्यार करने लगी। मुझे कुछ अजीब तो लगा लेकिन बुरा नहीं। अगर किसी अजनबी के बच्चे या कुत्ते से प्यार किया जा सकता है तो उसके तौलिये से क्यो नहीं। वह तौलिये पर यू हाथ फेर रही थी जैसे किसी तकिये या खरगोश पर। और वह कहे जा रही थी—कितना मुलायम, कितना मोटा, कितना कीमती!

मैंने तौलिये को कन्धे से हटा कर अपने बाज़ू पर यूं डाल दिया जैसे वह मेरा बाज़ू न हो, किसी ग़ुसलखाने मे ठुका फ़ौलाद का डडा हो।

अब उस औरत को मेरे तौलिये पर हाथ फरने मे कुछ कठिनाई हो रही थी और शायद उसे पूरा मजा भी नहीं आ रहा था, फिर भी वह मुग्ध नजर आयी। उसका हाथ तौलिये के साथ साथ मेरे बाज़ू को भी सहला रहा था।

—कितना प्यारा है! बहुत कीमती होगा? यहीं का है या बाहर से आया है? बहुत ही मुलायम है। जी करता है सहलाती ही चली जाऊं। कितना मजा आता होगा आपको इस से बदन पौछने में! सच, मन करता है...।

वह मुखातिब तो मुझ से थी लेकिन दुलार मेरे तौलिये को रही थी, आँखों से भी, हाथों से भी, बातो से भी।

मैने तौलिया फिर अपने कन्धों पर डाल लिया, अबकी बार कुछ इस तरह से जैसे कुछ बूढ़े ब्राह्मण डाले फिरा करते है। मेरा खयाल था उसे हंसी आ जाएगी, लेकिन वह पहले की ही

तरह तौलिये पर हाथ फेरती रही, अब मेरे पीछे खड़े हो कर, क्योंकि तौलिये का ज्यादा हिस्सा अब मेरी पीठ को ढांपे हुए था। अब उसका दुलार तौलिये में से होता हुआ मेरी पीठ तक पहुंच रहा था, उसकी सांसों की सुगन्ध भी मुझे मिल रही थी, उसके वक्ष का सरसरी सा स्पर्श भी। कोई उस वक्त हमें देख रहा होता तो यही समझता कि वह मेरी पीठ सहला रही थी, मुझे मना रही थी, मुझे पसमा रही थी। और मैं किसी लकड़ीले बुत या बुद्धू की तरह उसकी तरफ़ पीठ किये खड़ा था।

जो जिसके मन मे आए समझे, मैंने सोचा, मै इसी तरह खड़ा रहूंगा, मुझे और मेरे तौलिए को जो सुख मिल रहा है वही मेरे लिए काफी है, मैं लालच नहीं करूंगा, कोई चाल नहीं चलूंगा, जब तक यह मेरे तौलिये को सहलाती रहेगी, मै यहा से हिलूंगा नहीं। मुझे सांस लेने में तकलीफ़ हो रही थी लेकिन उस तकलीफ़ के बावजूद मुझे इतना आनन्द आ रहा था कि मेरी आंखें बन्द हुई जा रही थीं, मेरी टागें कांप रही थीं। उसने मेरी खस्ता हालत को भांप लिया होगा, इसीलिए शायद एक कदम पीछे हट बोली—मै आपके तौलिये पर फ़िदा हुई जा रही हू और आपके मुह से कुछ निकल ही नहीं रहा! आपकी जगह कोई और होता तो कहता, इतना पसंद है आपको तो रख लीजिये, मैं और खरीद लूगा।

यह कहते कहते वह मेरे सामने आ खड़ी हुई। अब वह मुस्करा रही थी। उसकी मुस्कराहट को मैंने पहचान लिया तो उसकी आवाज़ भी पहचानी सुनायी दी। मै इतना सटपटा सा गया कि मैंने तौलिये को कन्धो से खिसका मरोडना शुरू कर दिया।

—यह आप क्या कर रहे हैं? इतने सुन्दर तौलिये का सत्यानाश क्यों कर रहे हैं! इसे इस तरह मरोड़ क्यों रहे हैं! गुस्सा आपको मुझ पर आ गया है, और निकाल तौलिये पर रहे हैं, बेचारे की जान ही निकाल देंगे क्या?

मुझे उसकी बात पर हंसी नहीं आयी। मुझे गुस्सा उस पर नहीं, अपने आप पर ही आ रहा था। मैंने उसे पहचानने में इतनी देर क्यों कर दी और अब उस से अपने केस के बारे में पूछने में इतनी देर क्यों कर रहा था?

तौलिया मैंने फिर अपने कन्धे पर डाल लिया, अबकी बार इस तरह कि उसका ज़्यादा हिस्सा मेरे सीने को ढांपे हुए था। मैंने सोचा यह था कि वह मेरे और करीब आ कर अब सामने से तौलिये को सहलाना शुरू कर देगी और उसके हाथों की हरारत मुझे अपने सीने में महसूस होगी, उसके वक्ष का स्पर्श सामने से महसूस होगा और फिर मैं धीमी आवाज़ में उससे पूछ लूगा—मेरे केस का क्या हुआ?

वह मेरे क़रीब तो नहीं आयी लेकिन उसकी निगाहो से मैंने यह अनुमान लगा लिया कि मेरा केस बेशक बना न हो, बिगडा नहीं। मेरा केस था क्या, यह उस वक्त मुझे याद नहीं था, लेकिन मैंने एक फ़ार्म पुर किया था और फीस के साथ उसे उसी औरत के सुपुर्द किया था, वह फार्म और फीस लेते समय मुस्करायी थी, यह मुझे याद था।

—तो क्या यह नहीं बताइएगा, कि इतना कीमती तौलिया ले कर आप सुबह सवेरे जा कहां रहे हैं?

ख्याल आया खबरदार रहना चाहिए, सवाल को टाल देना चाहिए, कह देना चाहिए जा कहीं नहीं रहा, जा कहा सकता हू, झूठ बोल देना चाहिए, कह देना चाहिए आप ही से मिलने जा रहा था और कहा जाऊंगा, या मुस्करा देना चाहिए और मौन रहना चाहिए, देखना चाहिए वह जवाब में मुस्कराती है या नही, फिर सोचा, सच बोल देना चाहिए, झूठ के पांव नहीं होते, झूठ बोलूंगा तो पकडा जाऊंगा, पकडा गया तो केस खराब हो जाएगा, फिर पछताऊंगा, और पछताने से कुछ होगा नही।

---अपने पाप धोने जा रहा हूं।

कहना सिर्फ यह चाहता था कि नहाने जा रहा हू लेकिन मुंह मे मजाकिया जुमला अनायास निकल गया था। मेरे जवाब पर जब वह हसी या मुस्करायी नहीं तो मुझे खटक गया कि मेरे मुह से गलत जवाब निकल गया था। घबराहट के कारण मुझे खिसियानी सी हसी आ गयी।

---आपको हसी अपने जवाब पर आ रही है या मेरे सवाल पर ?

मेरी हसी को उसके बदले हुए लहजे ने भस्म कर दिया। मुझे लगा उसने जतला दिया हो कि मेरा केस अभी बीच में ही कहीं लटका हुआ था और मेरी अगम्भीरता उसे खराब कर सकती थी

कुछ देर की खामोशी के बाद वह फिर रुक्ष लहजे मे बोली---आपके पाप इस बूंद बूंद पानी से नहीं धुलेंगे !

वह एक नल की ओर अगुली उठाए हुए थी। नल मे बूद बूद पानी टपक रहा था। वह नल मुझे किसी नगे बूढ़े सा नजर आया।

---इस नल के नीचे बैठ नहाने का मेरा कोई इरादा नहीं था।

मै अब भी यह उम्मीद कर रहा था कि वह नर्म पड़ जाएगी और मेरी गलती को भूल फिर मेरे तौलिए को सहलाना शुरू कर देगी।

---तो और कहां नहाएंगे आप ?

उसकी आवाज मे कड़क थी।

---आप बताएं, मुझे क्या मालूम ?

मैं इस बार भी उसके लहजे को बदलने की कोशिश मे ही फिर कुछ गलत बोल गया था।

---आप समझते है कि एक फार्म पुर कर देने और फीस जमा करवा देने से आपके केस का फैसला हो गया और आपको अपने पाप धो डालने की इजाजत मिल गयी, उसके लिए पानी मिल गया ?

मैंने ऐसा कुछ नहीं समझा था। वह यूही अचानक मुझ पर बिगड़ने बरसने लगी थी। जरूर अनजाने मे मुझ से कोई बड़ी भारी गलती हो गयी थी।

—आप नाराज़ क्यों हो रही हैं ? पाप धोने की बात तो मैंने यूहीं मजाक़ में कह दी थी। आप चाहती हैं तो मैं नहाने का खयाल भी छोड़ सकता हूं, इस तौलिये को उस घूरे पर फेंक सकता हूं, और पाप कर सकता हूं, इतने कि आपको मुझ से बू आने लगेगी, आप चाहें तो उस फ़ार्म को आग लगा दें, उस फीम को खुद हड़प लें, मुझे नहीं चाहिए आपकी मदद, मै मुजरिम ही भला, मुझे नहीं चाहिए न्याय या मुआफी, मैं हर सभव सजा के लिए तैयार हूं, मुझे नहीं चाहिए पानी, मैं गन्दा ही भला।

और फिर मैंने वह तौलिया उसकी तरफ़ फेंक दिया लेकिन मैंने देखा कि वह वहां नहीं था। मेरा तौलिया उस नंगे नल पर टगा हुआ था।

हम एक मकरे मे शिखर पर दो उदास पक्षियों की तरह बैठे है। मझे यह अन्देशा उमेठ रहा है कि हवा का कोई निर्मम झौंका किसी भी क्षण उसे या मझे या हम दोनों को यहा से उखाड़ देगा। मै चाहता हू हम दोनो एक दूसरे को अपनी बांहों मे कस ले। मैं पहल नहीं कर पा रहा। कुछ देर पहले कहीं किसी समारोह में मेरा सार्वजनिक अपमान हुआ था, और मै अब इतना निर्बल महसूस कर रहा हू कि उसे अपनी बांहो मे नहीं कस सकता। मेरा आत्मविश्वास एकदम उड़ गया है। मैं सोच रहा हू मेरे साथ बैठी यह अजनबी औरत भी असल में मेरे साथ नहीं, मेरा अपमान करने के लिए ही मेरे पास आ बैठी है। लेकिन वह मेरे साथ सटी बैठी है और उसके स्पर्श से मझे कोई कुसकेत नही मिल रहा। उसकी आखें मेरी तरफ उठी हुई हैं और उन में आसुओ की लरजती हुई चमक है। उसकी खामोशी से किसी खतरे की किरण नहीं फूट रही। फिर भी मै आश्वस्त नहीं हो पा रहा। मुझे यह मालूम नहीं कि उस सार्वजनिक अपमान के बाद मैं यहां कैसे आ बैठा, यह औरत कैसे मेरे साथ आ बैठी, यह शिखर असल में है क्या, रात के किस प्रदेश में स्थित है। मुझे वह समारोह रह रह कर याद आ रहा है जिसमे मेरा अपमान हुआ था। शायद वहीं से भाग कर मैं यहां आ बैठा हू। शायद यह औरत भी वहीं से उठ कर मेरे साथ चली आयी हो।

मैं इस औरत से अपने अपमान के बारे में बात करना चाहता हूं। शायद इस औरत ने अपनी आखो से मेरी चोट को चूम कर मझे उस चोट के बारे में बात करने की प्रेरणा दे दी हो। इस प्रेरणा के पीछे इस औरत की काया में छिप जाने की कामना छिपी महसूस होती है। क्या हर हारा हुआ आदमी अपनी हार को सहने के लिए किसी अजनबी औरत की काया का ही मोहताज होता है ? मै मारे का मारा अब इस औरत के लिए तड़प रहा हू। अपने अपमान की याद और यातना इस तड़प मे घुलीमिली हुई है। मेरे जिस्म की हर कपकपी के जवाब मे यह औरत मेरे साथ कुछ और सट जाती है और मझे महसूस होता है मानो वह मेरे जिस्म में घुसी जा रही हो। मै उसे अपनी बाहों मे कस लेना चाहता हू लेकिन मेरी बाहों का बल मेरे अपमान ने खींच लिया है।

आखिर उसकी आवाज सुनायी देती है। मैं चौंक उठता हूं। आवाज माया की है। वह कह रही है : उस अपमान को भूल जाओ। मैं अनायास उसकी गोद में लुढ़क जाता हू और हम दोनो फिर नीचे के अंधेरे में जा गिरते हैं।

वह साथ वाली मेज पर दो बाके बूढ़ों के साथ बैठी बीअर पी रही थी। वे बूढ़े इतने सजे धजे थे कि दो बनीठनी बुढ़ियाओं जैसे नजर आ रहे थे। रसकी बीअर का रंग इतना गहरा था कि लगता था उसने उसमें थर्ना रम मिला रखी हो। मैं अकेला बैठा उस औरत का इन्तजार कर रहा था जो हर वक्त बनीठनी रहती है और जिसे इन्तजार करवाने की बुरी आदत है। मैं आजमाए हुए को आजमाते रहने की अपनी बुरी आदत के लिए अपने आपको कोस रहा था। मुझे अपने आपको कोसने की भी बुरी आदत है। शायद मैं अपने आपको इसीलिए कोसता रहता हूं ताकि दूसरों को कोसते वक्त मुझे कम कोफ्त हो। मुझे दूसरों को कोसने की भी बुरी आदत है। मेरे कुछ हितैषियों का कहना है कि अगर मैं अपने आपको और दूसरों को कोसना बन्द कर दूं तो मेरा आधा क्लेश खत्म हो जाए और बाकी बचे आधे को सहने की शक्ति दुगुनी हो जाए। मुझे उनकी यह बात बेतुकी तो नजर आती है लेकिन बहस से बचने के लिए मैं उनसे कह देता हूं कि वे जो कहते हैं ठीक है। वे आरोप लगाते हैं मैं झूठ बोल रहा हूं, कि मुझे उनकी बात मन्जूर नहीं।

मैं जिस मेज़ पर बैठा हुआ था वह उस बार के एक कोने में थी। मुझे महसूस हो रहा था जैसे उस औरत ने जिसका मैं इन्तजार कर रहा था मुझे उस कोने में धकेल रखा था, मुझे वहां क़ैद कर रखा था। किसी कोने में धकेल दिये जाने, वहां कैद कर लिये जाने, के खयाल से मुझे खुशी तो नहीं मिल रही थी लेकिन एक काली सी मस्ती का अनुभव जरूर हो रहा था, महसूस हो रहा था जैसे कुछ देर के लिए मुझे कुछ करने-धरने की जहमत से आजादी मिल गयी हो।

साथ वाली मेज पर बैठे दोनों बूढ़ों और उनके साथ बैठी नखरीली अधेड़ औरत को मैं जानता हूं—पास से नहीं, प्यार से भी नहीं, बस इतना ही कि हेलो हेलो होती रहती है। औरत को कई एक बार आंखों से और कुछ एक बार बातों से टटोल कर इस नतीजे पर पहुंच चुका हूं कि चाहूं तो उस से तन बहला सकता हूं। जानता हूं कि मन अब माया के सिवा किसी भी महिला से नहीं बहला सकूंगा। सोचता हूं अब मन बहलाने की कोई नयी कोशिश मुमकिन नहीं। मानता हूं कि तन मन से कम कठिन है, उसे बहलाना कम कठिन है। अभी तक यह चाहने की नौबत नहीं आयी—उस औरत से तन बहलाने की ख्वाहिश की नौबत नहीं आयी। जब तक उसमें माया के कुछ खास गुण या ऐब नहीं देख लूंगा तब तक यह नौबत नहीं आएगी। किसी भी औरत पर किसी भी हद तक मायल होने के लिए जरूरी है कि मुझे उसमें माया की कोई न कोई झलक जरूर दिखायी दे जाए। और यह भी कि मुझे

विश्वास हो जाए या मै कल्पना कर सकू कि वह औरत माया को भी पसद आ जाएगी। मतलब यह कि मायल होने या झख मारने का मेरा क्षेत्र सीमित है, क्योंकि माया की गौण मन्जूरी मेरे लिए जरूरी रहती है, क्योंकि अब भी मैं एक तरह से माया के ही किसी रूप से मार सकता हू, मारना चाहता हू। कुछ लोग उम्रभर हर औरत मे अपनी मा को ही तलाशते रहते है या सिर्फ उन औरतों मे रमने की कोशिश करते रहते है जिनमे उन्हे उनकी मा के किसी गुण या दोष की कोई झलक दिखायी दे जाए, या फिर वे किसी भी औरत मे रम नही पाते क्योंकि उन्हें हर औरत के भीतर कही न कही उनकी मा बैठी नजर आ जाती है। मैं उन लोगों में से एक तो नही लेकिन उनमे से एक जरूर हू जो उम्रभर एक ही औरत मे उलझे-फसे रहते है, उसी एक मे अनेक औरतो को देखते रहते है, उसी एक को अनेक औरतो मे देखना चाहते है।

अपने कोने मे बैठा मै उस औरत की अदाओ को देख रहा था, जिस औरत के इन्तजार मे वहा बैठा हुआ था उसको कोस रहा था, सोच रहा था उसे अपने क़ौल इक़रार भूल जाने या उन्हे तोड-मरोड डालने की बुरी आदत है। मुझे मालूम होना चाहिए था वह वक्त और वायदे की पाबन्द नही, कि वह हर बात मे कोई पेच डालती है, हर एक से तरह तरह के खेल खेलती है, झूठ बोलती है, अपनी गलती को कभी स्वीकार नही करती। मै यह सब सोच रहा था, सोच सोच सीखपा हो रहा था, पी रहा था, और साथ वाली मेज पर बैठी उस औरत को घूर रहा था—उसकी आख पकडने के लिए नही, उस पर डोरे डालने के लिए नही, अपनी सफगी और खिफ्फत से बचने के लिए, अपनी आक्रोशभरी आखो को कोई निशाना देने के लिए।

अगर मुझ मे अक्ल होती तो मैं वहा से उठ गया होता; अगर मुझ मे अक्ल होती तो मै वहा बैठा उस औरत का इन्तजार न कर रहा होता जिसे इन्तजार करवाने की आदत है; अगर मुझ मे अक़्ल होती तो मैने उस औरत से वह मुलाकात तै ही न की होती। जो हो कायदे से अब मुझे वहा से चल देना चाहिए था क्योंकि मै जानता था कि अब अगर वह औरत वहा पहुच भी गयी तो मै उससे सीधे मुह कोई बात नहीं कर सकूगा, उसके किसी झूठ को बरदाश्त नही कर सकूगा, उस से लड पडूगा। मै यह सब जानता था, इसीलिए मै उठा नहीं। बैठे रहने की बेवकूफी या जिद्द को किसी बहाने की बैसाखी थमा देने के लिए मैंने सोच लिया कि अब उठूगा तो साथ वाली मेज पर बैठे वे तीनो मेरे बारे मे बाते करने लगेगे—बनीठनी औरत उन बूढ़ो से पूछेगी वे मुझे कितना जानते है, वे बूढ़े उससे पूछेगे वह मुझ मे इतनी दिलचस्पी क्यो ले रही है, फिर तीनो की हंसी छूट जाएगी, और उस हसी के बाद वे खुल कर मेरी निन्दा शुरू कर देंगे। मुझे उनकी निन्दा की परवाह नही होनी चाहिए थी, इसीलिए हो रही थी। कुछ लोग यह सोच सोच कर परेशान होते रहते है कि उनके निधन के बाद उनके दोस्तयार उनके बारे मे क्या कहेंगे, क्या सोचेंगे। मे उन लोगो मे से एक हू। मै तो यह सोच सोच कर भी परेशान होता रहता हू कि मेरी गैरहाजिरी मे लोगबाग मेरे बारे में क्या कहते सोचते है। अपनी हर गैरहाजिरी को मे अपनी मौत का ही एक नमूना मानता हू।

मेरा तो अब मेरी आंखें क़रीब करीब पूरी बेहयाई से उस अधेड़ औरत की अदाओं का मुआइना कर रही थीं, मेरे कान उन तीनों की बातों को पकड़ने की कोशिश। मैं उम्र भर इस कौतूहल का शिकार रहा हूं कि लोग किसी बार या रेस्तोरां या बाग में घन्टों बैठे बैठे बातें क्या करते रहते हैं। इस कौतूहल के पीछे मेरा यह विश्वास बैठा हुआ है कि वे सब बातें बेहूदा और अनावश्यक होती हैं, कि सब लोगों को अपना सारा समय कमोबेश अटूट खामोशी में ही काटना चाहिए, यथासंभव अकेले, यथासंभव अंधेरे में। इस विश्वास के बावजूद मैं खुद सोहबत से बाज आता हूं न बातों से—इस कड़वी असंगति से मुझे इन्कार नहीं।

और आखिर जब मैंने इतनी पी ली कि मेरी आंखें और कान देखने और सुनने के बजाय बहकने लगे तो मैं लड़खड़ाता हुआ बार के दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा। ऐन उसी वक़्त एक बनीठनी औरत इठलाती हुई अन्दर आती सुझायी दी। नशे की झिलमिलाहट के बावजूद मुझे उसके चेहरे पर झूठे बहानों के कई फूल खिले दिखायी दिये। मैं उन्हें सूंघने के लिए रुका नहीं। जब मैं उसके पास से गुज़र रहा था तो उसने मेरा हाथ पकड़ने की कोशिश की। मैंने उसका हाथ झटक दिया।

उस मुसाफिरखाने में बाक़ी सब मुनासिब कपडों में थे, मै कपडो के बगैर था। इसीलिए शायद वे सब कुर्सियों और सोफ़ों पर बैठे हुए थे, मैं नीचे नंगे फर्श पर। बाकी सब बातें कर रहे थे, मैं टुकर टुकर उनकी तरफ देख रहा था। उनका सामान बाकायदा था और करीने से उनके क़रीब रखा हुआ था, मेरा किसी बीमार बच्चे की तरह एक मैली ढीली गठरी में बंधा मेरी गोद में गिरा पड़ा था। शायद अपनी नग्नता को कुछ कम करने के लिए ही मैंने उस कूड़े कचरे को अपनी गोद मे ले लिया था जिसे अब सामान का दर्जा दे रहा हू। शायद मेरा असली सामान किसी ने, हो सकता है उन लोगों में से ही किसी ने, छीन लिया था। शायद उसी शख्स ने ही मेरे कपड़े भी उतार लिये थे। इन अनुमानों का आधार सिर्फ़ मेरा सन्देह था। मेरा सन्देह सिर्फ मेरे अँधेरे में से ही फूट रहा था। जो हो गोद में गिरी पड़ी उस मैली ढीली गठरी की बदौलत ही मैं कुछ कम नंगा दिखायी दे रहा था और इसीलिए शायद किसी ने मुझे वहां से उठवाने की कोई कोशिश अभी तक नहीं की थी।

मैं यह सोच सोच कुछ कम असुरक्षित हो ही रहा था कि एक बावर्दी बाबू तेज तेज़ आता नजर आया। बावर्दी बाबुओं से मैं उतना ही डरता हूं जितना बच्चे भूतों से। मुझे लगा वह सीधा मेरी तरफ़ आ रहा था और पास आते ही कहेगा, तुम्हारे कपड़े कहां हैं। उसके एक हाथ में एक काली फाइल थी, दूसरे में एक काली वाकी टाकी जिसे वह कान से लगाए हुए था। मैने अपना सर गोद में पडी गठरी पर यूं झुका लिया जैसे कोई दूध पिलाती मां अपना सर गोद मे पडे दूध पीते बच्चे पर। सर झुकाए झुकाए ही चोर नजरों से मैंने देखा कि बाक़ी के लोग उठ खडे हुए थे और उचक उचक कर उस बाबू को अपने कागजात वगैरह दिखा रहे थे, सवाल पूछ रहे थे, उसे खुश करने के लिए खीसे निपोर रहे थे। एक औरत बार बार उसके साथ सटने की कोशिश कर रही थी लेकिन बाबू उसे शह नहीं दे रहा था क्योंकि उसकी बुरी नजर एक और औरत पर थी जो ज्यादा सजी धजी थी और उस से दूर खड़ी आखें मटका रही थी।

मैंने चोरी से अपनी गोद में पडी गठरी को टटोल फिरोल कर देख लिया था कि मेरे पास किसी किस्म का कोई काग़ज नहीं था। काग़जात सारे शायद माया के पास पडे थे और वह उस वक्त कहीं और भटक रही थी, किसी और समस्या मे उलझी हुई थी। मारे घबराहट के मेरा पसीना छूटना शुरू हो गया। पसीने में तरबतर नंगा आदमी यूं नजर आता है जैसे अभी अभी चुल्लू भर पानी मे डूब मरने की कोशिश में नाकाम हुआ हो। दूसरे लोगों से निबट लेने के बाद वह बाबू मेरे सर पर आ खड़ा हुआ तो भी मैं सर झुकाए बैठा रहा। दूसरे सब उस



वक्त मेरा तमाशा देख रहे थे या कुछ और कर रहे थे, मैं नहीं जानता था, लेकिन मेरा अनुमान था कुछ मेरा तमाशा देख रहे थे, कुछ न देखने का बहाना कर रहे थे, बाकी खैर मना रहे थे कि उस बाबू ने उन्हें तंग नहीं किया।

जैसाकि मुझे खतरा था बाबू ने अपनी आवाज मे भरपूर हिकारत भर कर हुक्म दिया—जनाब, उठ कर अपने कागजात मुझे दिखाइये।

मैंने सर उठा कर अपनी आंखें उसे दिखा दीं। उसकी आंखो में हिकारत अटी हुई थी। मैंने अपनी आंखों से गोद में पड़े कूड़े कचरे की तरफ इशारा कर दिया, इस आशय से कि मेरे पास तो यही कूड़ा कचरा है, इसे देखना चाहते हो तो हाथ बढ़ा कर देख लो, कागजात मेरे पास नहीं, माया के पास है और वह इस वक्त कहीं और भटक रही है, और उठ कर बात करने की या कुछ दिखाने की स्थिति में मैं नहीं, नंगा आदमी दिखाएगा क्या और छिपाएगा क्या!

इतने लंबे आशय को वह बाबू कैसे समझ सकता था। उसने तो यही समझा कि मैं उसे कोई अश्लील इशारा या चैलिंज दे रहा था। उसकी हिकारत दुश्मनी में बदल गयी, उसका रंग नीला पीला हो गया, और उसने उस वाकी टाकी को यूं अपने मुंह से लगा लिया जैसे उसे चूसचाट कर अपना गुस्सा बुझा लेना चाहता हो।

मैं समझ गया कि वह मुझे वहां से उठवा कर किसी काल कोठरी में फिकवा देने का इन्तजाम कर रहा था। मेरी घबराहट दूर हो गयी। मैंने सर झुका लिया, आंखें मूंद लीं, और इन्तजार करना शुरू कर दिया।

उस तरहदार स्टोर मे मैंने खाने पीने का कुछ कीमती सामान बंधवा लिया। जिस लड़के ने उस सामान की दो थैलिया मेरे हाथ मे थमाई उसका रुख रूखा था। उसकी सूरत मे मुझे उन तीनों लडको की सूरते दिखायी दीं जिन्हे मैंने एक रात कहीं देखा था। मुझे उसके रुख पर हैरानी तो नहीं हुई, रंज जरूर हुआ। दुकानो और दफ्तरो मे काम करने वाले लोग कभी मेरे साथ मीठा नहीं बोलते। कितना भी सतर्क क्यो न रहूं उन से अक्सर मेरी तकरार हो ही जाती है। मुझे उनका सुस्त सरसरी तौरतरीका नागवार गुजरता है, उन्हे मेरी साहिबाना बेसब्री। मुझे उन की हर अदा मे कामचोरी उदासीनता और हर बात में गुस्ताख क्रूरता दिखायी देती है, उन्हे शायद मेरी आखो मे उनके बारे मे मेरे सारे पूर्वग्रह। पहली निगाह और पहले शब्द मे ही पारस्परिक विरोध शुरू हो जाता है। दुकानदार या उनके कारिन्दे अक्सर मुझे हांक देते है—जाइए कहीं और से खरीद लीजिए, हमें नहीं चाहिए आपकी गाहकी, जाइए। सभी दुकानदार और उनके कारिन्दे ऐसे शालीन तरीके से नहीं हाकते, कई तो बदकलामी पर उतर आते है, कुछ एक के हाथों से मैं धकेला भी जा चुका हूं। दफ्तरों के बाबू और बीबिया मेरी बात सुनने या मानने के बजाय अक्सर मुझे फिर आने के लिए कह कर मुह दूसरी तरफ़ मोड़ लेते हैं। अगर मै अड जाऊ तो वे बिगड जाते है—नहीं होगा आपका यह काम आज, आप जो चाहे कर लें। मै करना तो बहुत कुछ चाहता हू लेकिन कर कुछ नही सकता, सिवाए हाथ मुह हिला कर अपना सा मुह लेकर घर लौट जाने के और माया से उनकी शिकायत करने के। ऐसे अवसरो पर माया भी अक्सर मेरे खिलाफ हो जाती है—मुझे पहले ही पता था, न जाने तुम क्यो कभी किसी से कोई काम नहीं करवा सकते। उसे इस तरह बोलते सुन मुझे लगता है जैसे वह भी मेरी दुश्मन हो, दुकानदार हो, किसी बैंक या दफ्तर की मुंहतोड मैडम हो। बैंक से पैसा निकलवाना हो, डाकखाने मे टिकिट खरीदना हो, सफर के लिए सीट बुक करवानी हो, लाइसेंस-राशन कार्ड वगैरह बनवाना, बदलवाना हो, कहीं से पैसे वापस लेने हो, कहीं पैसे जमा करवाने हो, चोरी की रिपोर्ट दर्ज करवानी हो, पासपोर्ट पर मुहर लगवानी हो, कोई मामूली सी जानकारी लेनी हो—कुछ भी करना करवाना हो मुसीबत खडी हो जाती है, काम अक्सर नहीं होता, और मैं सब से लड-झगड कर लौट माया के साथ लेट जाता हू, और वह ऐसे मुस्कराती है या कभी कभी ऐसे ताने बरसाती है जैसे कोई मा अपने बुद्धू बेटे पर।

कल रात कैसे मैंने किसी बदमज्गी के बगैर उस स्टोर से खाने-पीने का सामान खरीद लिया, मुझे मालूम नहीं। माया उस वक़्त कहा थी, मुझे याद नहीं। मै खाने-पीने का सामान ले कर

जा कहा रहा था, मुझे मालूम नहीं। उस लड़के के रूखे रुख के अलावा कोई अप्रिय अड़चन नहीं उठी। स्टोर में चीजें चुनने में मुझे कोई दिक़्कत नहीं हुई, किसी से कुछ पूछने की जरूरत नहीं पड़ी। बहुत कम कसाव महसूस हुआ था। सामान के दाम एक दुबली दोशीज़ा ने जोड़े थे। रूखे रुख वाले लड़के के कारण मेरी कैफियत किरकिरी होने ही वाली थी कि दूसरे ग्राहक का हिसाब लगाना शुरू करने से पहले उस दुबली दोशीजा ने आंख उठा कर मेरी तरफ देखा और एक मुस्कराहट से मेरा आहत मन हर लिया। मैं उस लड़के को भूल फिर बहाल हो गया। वह दुबली दोशीज़ा मेरे किसी दोस्त या हमसाए की बेटी भी हो सकती थी लेकिन थी शायद कोई उदार सुशीला ही जिसे मेरे लम्बे पके बालों पर प्यार आ गया होगा। उसकी मुस्कराहट के जवाब में मैं मुस्करा तो नहीं सका लेकिन उसने देख लिया होगा कि मेरा दिल खुश हो गया था। जब मैं चलने लगा तो वह बोली—मै जल्दी ही आप से मिलने आऊंगी, आजकल रिहर्सल चल रही है, उसके बाद, आने से पहले फोन करूंगी, माया जी से हेलो कह दीजिए, आपने मुझे पहचाना नहीं, कोई बात नहीं, जब आऊंगी तो बताऊंगी मैं कौन हूं।

अब मैं भी मुस्करा रहा था। मैने कुछ कहा तो नहीं लेकिन उसने देख लिया होगा मैं बहुत कुछ कहना चाहता था। वह फिर अपने काम में व्यस्त हो गयी। मैंने तो उस लड़के की तरफ नहीं देखा लेकिन उस लड़के ने जरूर सोचा होगा उसे मेरे साथ रुखाई से पेश नहीं आना चाहिए था।

बाहर अंधेरा उड़ रहा था, रौशनियां झिलमिला रही थीं। मेरे हाथों में दो थैलियां थीं और मैं झूमता हुआ एक सुहानी ढलान उतर रहा था। ढलान एक ढीली सी सड़क पर जा कर खत्म हुई तो सवाल उठा कहां जाऊं, कहां बैठ कर खाऊं पियूं, अपने अच्छे मूड को मनाऊं। तभी कुछ दूरी पर एक बत्ती के नीचे दो फिटनें खड़ी दिखायी दीं। फिटनें तो आजकल सपनो में भी मुश्किल से ही दिखायी देती हैं। मुझे लगा उन्हें मेरे ही लिए वहां खड़ी कर दिया गया था ताकि मैं उन्हें देख भी लूं, उनमें से एक को चुन भी लूं, कोचवान से कहूं मुझे सैर करवा दे। लेकिन उनकी तरफ बढ़ने की हिम्मत मुझे नहीं हुई। जिन कोठियो के बाहर वे खड़ी थीं उन्हें देख मैं दब गया। वे कोठियां मेरी नहीं थीं, वे गाडिया मेरे लिए नहीं हो सकती थीं। खयाल आया किसी पार्क में जा बैठूं लेकिन अगर इतनी रात गये पीते-खाते पकड़ा गया तो पिटायी भी हो सकती थी, हवालात मे बन्द भी किया जा सकता था। अव्वल तो चौकीदार पार्क के अन्दर ही नहीं जाने देगा। लेकिन असली दिक्क़त यह थी कि उन फिटनों को देखते ही मुझे न जाने क्या हो गया था, दिशा-ज्ञान और काल-बोध एक दम धुन्धला गया था, और मुझे कुछ पता नहीं चल रहा था कि वहां से कौन सा पार्क किस दिशा में कितनी दूरी पर था। उन कोचवानों से पूछ सकता था लेकिन उनके पास जाने पर पता चला वे लम्बी तान कर सोए हुए थे। उन्हें जगाने से डर लगा। मैं आगे बढ़ गया। कुछ देर बाद वे कोठियां कोचवान और फिटनें सब मेरे जेहन से उतर गये। वह दुबली दोशीज़ा याद आयी तो मुस्कराहट आ गयी। अंधेरे और अकेले में जो मुस्कराहट या हंसी या रुलाई आए उसकी कचोट कुछ और ही होती है, साथ ही अनायास कई प्रकार की पीड़ाएं और अरमान और छोटी छोटी तसल्लियां भी

याद आ जाती हैं। कुछ दूर तक मैं उन्हीं मे उलझा रहा। फिर बांहे दुखने लगीं तो उन थैलियो की याद हो आयी। अब मैंने देखा कि मेरे दाएं बाए पानी बह रहा था। मेरी सड़क उस पानी की सतह मे इतनी ऊँची थी कि उसपर किसी पुल का गुमान हो सकता था। दोनो तरफ बहते हुए पानी को देख हमेशा की तरह मुझे एक साथ पूर्णता और अपूर्णता का असह्य एहसास अनुभव हुआ। डूब मरने की ख्वाहिश भी हुई, खून सुखा देने वाला खौफ भी। गला इस तरह से भर आया कि कुछ पता न चला मितिली आने को है या रुलाई। हाथो मे पकड़ी थैलिया इतनी भारी हो आयी कि उन्हें पानी मे फेंक देने का मन भी हुआ और वहीं बैठ कर सब कुछ खा पी लेने का भी। लेकिन बैठने के खयाल को चलते रहने की जिद् ने चाप लिया और भूख प्यास उड सी गयी। अब अफ़सोस होने लगा क्यो वह सारा सामान बंधवा लाया, उस वक्त न जाने किस मौज या उम्मीद मे था, माया साथ होती तो भी कोई बात होती। माया की याद के लिए उस वक़्त मेरे मन मे कोई जगह नहीं थी, इसीलिए शायद वह टिक नहीं पायी।

कुछ देर बाद न जाने कैसे मेरा रास्ता फिर बदल गया और आस पास का दृश्य भी। अब मै कूड़े कचरे के ढेरों के बीचोंबीच बल खाती हुई एक पगडंडी पर चल रहा था। ऐसे लगा जैसे वह पगडंडी खुद भी पहाडियो मे भटक रही हो, मुझे भी भटका रही हो। नीचे दाएं बाए झुग्गियाँ झिलमिला रही थीं। उनमे छलांग लगा मर जाने की ख्वाहिश भी हुई, खून सुखा देने वाला खौफ़ भी महसूस हुआ। बदबू के झौंके उन झुग्गियों मे से यूं उठ आ रहे थे जैसे खुश्बूदार धुआं। खाने पीने के सामान की थैलियों को वहीं फेंक हल्का हो जाने का खयाल बार बार आ रहा था ओर हर बार साथ ही शर्म भी आ जाती थी . करोड़ो लोग एक एक दाने और एक एक बूंद के लिए तरस तड़प रहे हैं और तुम खुराक को फेंक देना चाहते हो। शर्म को और घना करने के लिए ही मेरा ध्यान बार बार कचरा बीनने वाले मैले कुचैले बच्चो और सूखी उदास गऊओ की तरफ जा रहा था जिन्हे मै अक्सर ईंटों के बने बड़े बड़े कूड़ेदानों का कुरेदते-फिरोलते देख मुह बनाता बिगाड़ता रहता हूं, और उस दाढ़ी वाले मौलवीनुमा बूढ़े की तरफ़ भी जो मेरे घर के पास वाले कूड़ेदान के गोल मुहाने पर ताज़ा कचरे के इन्तजार में बैठा रहता है और जब मैं उसके पास से गुज़रता हू तो वह बिटर-बिटर मेरी तरफ यों देखता है जैसे पूछ रहा हो तुम अपना कचरा कहा फेंकते हो ?

मन करता है किसी दिन उस मौलवी के पास बैठ पूछूं - क्या तुम सचमुच मौलवी हो ? इस मुहल्ले को तुमने क्यों चुना ? तुम्हे यहा के लोगों से डर नहीं लगता ? कचरा क्यो बीनते हो ? कब से कामधाम छोड़ रखा है ? बू तो आती ही होगी ? रात कहा काटते हो ? मा बाप क्या काम करते थे ? कोई भाई बहन है ? कोई औलाद है ? भीख भी मागते हो या कचरे से ही काम चल जाता है ? जब मै यहा से गुजरता हूं तो मेरी तरफ बिटर-बिटर क्यों देखते हो ?

लेकिन मैं जानता हूं मै कभी उस से कोई सवाल नहीं पूछूंगा। किसी उजड़े हुए अजनबी से कुछ पूछने के लिए उसके पास खड़े होने, उसकी आंख से आख मिलाने, उसके दुख दारिद्र की भाप और बदबू को सूंघने सहने की हिम्मत जरूरी है, जो मुझ मे नहीं, वर्ना अब तक किसी

एक भिखारी से तो मैंने कोई बात की होती। बरसों से भूख और भिखमगों से घिरा हुआ उनके बारे मे सोच विचार रहा हू, लेकिन किसी एक से भी बात करना तो एक तरफ, उसे सीधी स्थिर आंखों से देखा तक नहीं।

तो मैं वह थैलियां हाथ से लटकाए उस गन्दी पगडण्डी पर चलता हुआ उन टिमटिमाती झुग्गियों और कचरे की पहाड़ियो मे परेशान हो ही रहा था कि किसी ने पीछे से कुछ गन्दी गालिया मेरी पीठ पर दाग दीं। मै ने मुड़ कर देखा तो एक गन्दा नगा बच्चा कुछ फासले पर खड़ा अश्लील इशारे करता नज़र आया। मै एक दम पागल हो गया। पहले एक थैली उसपर फेंकी, फिर दूसरी। लड़का दो क़दम पीछे हट फिर गालिया बकने और अश्लील इशारे करने लगा। फेकी हुई थैलियों का कुछ सामान इधर-उधर बिखरा देख मेरा गुस्सा और उबल पड़ा, मेरे दांत भिच गये, मेरी मुट्ठियां तन गयीं, मेरे मुह से भी गन्दी गालिया फूट निकली होती अगर गुस्से के बावजूद उस गन्दे नंगे बच्चे और अपने बीच के अन्तर से आगाह न रहा होता। मुझे मुड़ कर देखना ही नहीं चाहिए था। देख लिया था तो यह देख कर कि गालिया एक गन्दे नगे बच्चे के मुह से निकली थीं मुझे खामोश रहना चाहिए था, मुस्करा देना चाहिए था, प्यार से पचकार कर उस बच्चे को पास बुलाना चाहिए था, पूछना चाहिए था कि वह इतनी रात गये वहां क्या कर रहा था, अपनी थैलियो में से कुछ निकाल कर उस से कहना चाहिए था, यह लो बेटा खा लो। ये खयाल मुझे बाद मे तो आए ही, उस वक़्त भी आए थे, लेकिन इन से मेरा ग़ुस्सा बुझा नहीं था। मैंने उन थैलियो को उस पर ऐसे फेका था जैसे उसे पत्थर मारे हों या उसपर थूक दिया हो। बाद में तो मुझे अपने गस्से पर शर्म आयी ही थी, उस वक्त भी आयी थी लेकिन उस शर्म से मेरी हिंसा शान्त नही हुई थी बल्कि मन हुआ था कि पकड़ कर उस बच्चे की जान ले लूं। वह मेरे ताव से डरने के बजाय मुझे ललकार रहा था, और गालिया बके जा रहा था, अश्लील इशारे किये जा रहा था। मुझे मालूम था मै उसे पकड़ नहीं सकूंगा, इसीलिए मैंने उसे पकड़ने की कोई कोशिश नही की। अपने मुंह मे अटी गन्दी गालियों को जैसे तैसे रोक कर मैंने सोचा, यह कमबख्त आखिर चाहता क्या है, कहीं पागल तो नहीं, शायद उसी तरह भूक रहा हो जैसे कुत्ते अपने इलाके मे किसी अजनबी या दूसरे कुत्ते को देख भूंकना शुरू कर देते हैं, शायद डर गया हो...लेकिन मेरी दिली ख्वाहिश उस वक़्त यही थी कि किसी तरह उसे चुप करा दू, भले ही उसके लिए मुझे उसे कुचलना ही क्यों न पड़े। मैंने पेन्ट की जेब में हाथ डाल कर एक चीखती हुई धमकी दी, चुप हो जाओ नहीं तो गोली से उड़ा दूगा। इस धमकी से वह सचमुच डर गया, एकदम चुप हो गया, कुछ क्षण मेरी उस तेवर को घूरने के बाद वह भाग उठा। अपनी झूठी धमकी के असर पर मुझे खुशी हुई, हालांकि शायद मुझे शर्म आनी चाहिए थी। वह ज्यादा तेज नहीं भाग रहा था या मैं ज्यादा तेज भाग रहा था, कुछ ही देर बाद मैने उसे गर्दन से पकड़ लिया। मेरे हाथ उसका गला घोट देने के लिए हुमक रहे थे लेकिन साथ ही खयाल आ रहा था जैसे वह बच्चा न हो, रबड़ का गन्दा सा गुड्डा हो। जब मैंने उसे छोड़ा तो वह भागने के बजाय नज़रें नीचे किये खड़ा रहा। अब मौका था कि मै उसके पास बैठ उस से बात करूं, पूछूं उसने मुझे गालिया क्यों दीं, कहूं मै उसे कपड़े सिलवा दूगा, अपने साथ ले जाऊंगा, पढ़ाऊं लिखाऊंगा, लेकिन मैंने यह सब

नहीं किया। मैने देखा हम एक छप्पर मे के पास खड़े थे जिसके नीचे एक बढ़िया बैठी एक रोकरे मे आटा गून्ध रही थी। मै उस बच्चे का हाथ पकड़ उसे घसीटता हुआ उस बढ़िया के पास ले गया और बोला, संभालो अपने लाड़ले को। बढ़िया बड़बड़ायी, मेरी तरफ देखे बगैर, यह मेरा लाडला नही, मेरा कोई लाडला नहीं। वह बच्चा अब हस रहा था। उसकी हसी मुझे उसकी गालियों से भी ज्यादा बुरी लगी, लेकिन मै अपना गुस्सा पी गया। मुझे महसूस हुआ जैसे मैंने ऐसा कोई ज़हर पी लिया है जिस से मेरी मौत धीरे धीरे होगी, इतनी धीरे धीरे कि मुझे पता नही चलेगा कि हो रहा है।



तुम मरना कहां चाहते हो?

कैसे?

यहां या वहां?

या कहीं भी?

अपने घर मे या किसी घूरे पर?

तुम्हारा घर कहां है?

अभी तक नहीं मिला?

मरने के बाद मिलेगा?

अकेले मरना चाहते हो या किसी की बांहों मे?

तुम्हारा कोई है भी?

नींद में मरना चाहते या या जागते हुए?

मुस्कराते हुए मरना चाहते हो या हसते हुए या मिमियाते हुए?

मरना चाहते भी हो या नहीं?

किसी लम्बी बीमारी के दौरान एड़िया रगड़ रगड़ कर यह शोर मचाते हुए कि तुम मरना नही चाहते मरना चाहते हो या किसी हादसे में अचानक किसी सड़क के बीचोंबीच अजनबियों से घिरे हुए?

अपने हाथो मरना चाहते हो या अपने किसी चाहने वाले के हाथो?

तुम्हे चाहने वाला कोई है भी?

धीरे धीरे मरना चाहते हो या एक ही झटके से जैसे कोई दिया किसी हवा मे गुल हो जाए?

मरते समय कोई पैगाम छोड़ जाना चाहते हो?

क्या?

किसी से कुछ कहना चाहोगे?

किसी से कुछ पूछना चाहोगे?

मरने से पहले किसी से मिलना चाहोगे ?

किसी को याद करना चाहोगे ?

कहीं जाना चाहोगे ?

कुछ खाना चाहोगे ?

कुछ लिखना पढ़ना चाहोगे ?

किसी याद या सूरत को सहलाना चाहोगे ?

किसी अनुभव को दोहराना चाहोगे ?

कोई फूल सूंघना चाहोगे ?

कोई गाली देना चाहोगे ?

या कोई दुआ ?

कोई शेर गुनगुनाना चाहोगे ?

या कोई दोहा ?

या कोई कहावत ?

किसी से मुआफी मांगना चाहोगे ?

किस किस से ?

किसी को मुआफ करना चाहोगे ?

किस किस को ?

किस किस खता के लिए ?

क्या कोई ऐसी हरकत या बात या हसरत है जिसे तुमने अन्तिम क्षणों के लिए बचा रखा हो ?

मरने से फौरन पहले किसी मुस्कान, शाम, आवाज, अरमान, जानवर, चीज, दुख, दृश्य, उपलब्धि, शिकायत, पाप, भय, सुख, भूल, गाने, पेड़, मौसम को याद करना चाहोगे या नहीं ?

मरने से पहले मौत या जिन्दगी के बारे में कोई आखिरी बयान देना चाहोगे ?

उसके सवाल उसके सूखे होठों से पत्तों की तरह झड़ रहे थे। मेरी आंखें बन्द थीं। मैं इन्तजार कर रहा था कि वह बोलना बन्द करे ताकि मैं आराम से मर सकूं।

छत का रास्ता

कल रात फिर मैं उस घर का रास्ता भूल गया जिसे अपना असली घर मिल जाने तक मैंने अपना घर मान लिया है।

अपना असली घर मिल जाने की मुझे कोई उम्मीद नहीं क्योंकि मुझे अन्देशा है कि आखिर तक मुझे हर घर किसी न किसी कोण से किसी न किसी आलोक में किसी न किसी क्षण नकली नज़र आ जाएगा और मैं फिर उस तथाकथित असली घर के लिए तड़पना शुरू कर दूंगा जिसके मिलने की मुझे कोई उम्मीद नहीं।

कल रात भी शायद उस असली घर की तलाश में अंधेरे में बहुत दूर निकल गया था और जब लौटने का ख्याल आया तो पता चला कि मुझे उस घर का रास्ता भूल गया था जिसे अपना असली घर मिल जाने तक मैंने अपना घर मान लिया है।

ऐसा मैं पहले भी कई बार कर चुका हूं, जब तक असली घर नहीं मिलेगा बार बार करता रहूंगा, क्योंकि असली घर मिलने की मुझे कोई उम्मीद नहीं इसलिए आखिर तक करता रहूंगा।

जिस चीज़ के मिलने की कोई उम्मीद न हो उस चीज़ के लिए मैं क्यों तड़पता हूं, क्यों इतना तड़पता हूं, मैं नहीं जानता।

कल रात यही तड़प मुझे अंधेरे में बहुत दूर, इतनी दूर, ले गयी थी कि जब लौटने का ख्याल आया तो लगा लौट नहीं सकूंगा, रात भर उस रास्ते की तलाश में भटकता रहूंगा जो मुझे भूल गया था।

मुझे शक है मैं शायद जान बूझ कर ही उन घरों के रास्ते भूलता रहता हूं जिन्हें मैं असली नहीं मानता, जो असली नहीं, जो मैं जानता हूं असली नहीं।

जान बूझ कर किसी रास्ते या नाम या निशान या नक्शे या नुकसान या एहसान को याद तो किया जा सकता है, भुलाया नहीं जा सकता। मेरा मतलब शायद यह था कि कल रात भी मैंने पहले की कई रातों की तरह यह चाहा होगा कि मैं वह रास्ता भूल जाऊं जो मुझे वापस उस ठिकाने पर ले जाएगा जिसे मैंने फिलहाल घर का नाम दे रखा है और मेरी यह मुराद पूरी हो गयी होगी।

मैंने देखा है मेरी वे सारी मुरादें जिन से मेरी समस्याएं बढ़ती हैं अक्सर पूरी हो जाती हैं। भटकता भटकता कल रात मैं एक पहाड़ी गांव की पथरीली गली में जा पहुंचा जिस में मुझे

पुरानी परिचित गन्ध आयी तो महसूस हुआ पनाह मिलने वाली है। कुछ देर तक अपने में गुमसुम मैं उस गली के साथ साथ घूमता रहा। कुछ लोग नजर आए। किसी की आंख मुझ पर टिकी न मेरी किसी पर; किसी ने मुझ से कुछ कहा पूछा न मैंने किसी से। इतनी रात गये उन्हें उस गली में खोए डूबे देख मुझे हैरानी नहीं हुई बल्कि महसूस हुआ कि इतनी रात गये ही वैसे लोग मुझ जैसे परेशान खोजी को ही नजर आ सकते थे। महसूस हुआ दुनिया के हर कोने में रात को इस तरह के लोग नजर आ जाते होंगे, बस नजर की जरूरत है। महसूस हुआ मैं अपनी महरूमी को एक नियामत में बदल देने की नामुमकिन कोशिश कर रहा था। इस एहसास पर हंसी तो आयी लेकिन नामुमकिन कोशिश जारी रही।

एक खुला दरवाजा नज़र आया तो मैं उसके सामने ठिठक गया। उस दरवाजे में से फूटता हुआ धुआं अपना महसूस हुआ। खयाल आया शायद यही मेरा असली घर हो, अन्दर जाऊँगा तो हर चीज़ परिचित महसूस होगी—अंधेरे और अभाव में लिथड़ी हुई। मैं अन्दर चला गया। आवाज़ दी—मैं आ गया। कोई हरकत नहीं हुई, कोई जवाब नहीं आया। मैंने फिर कहा—मैं आ गया। इस बार पिता की हंसी सुनायी दी। याद आया पिता इस तरह की हंसी तभी हंसा करते थे जब उन्हें कोई रास्ता नजर नहीं आता था, जब वह छोटी छोटी बेहूदा विपताओं से घिर जाते थे, जब उन्हें यकीन हो जाता था कि उन से ज्यादा बदकिस्मत इन्सान कोई नहीं, कहीं नहीं। उनकी हंसी जिस कोठरी में से आ रही थी उस में अंधेरा शायद उस हंसी के कारण ही कुछ कम था। मैं उस कोठरी के मुंह पर जा खड़ा हुआ। पिता एक ढीली चारपाई में पड़े दिखायी दिये—एक लेटी हुई लौ की तरह। उनकी आंखें बन्द थीं, मूंछें हिल रही थीं। अब मैं देख सकता था कि उनकी हंसी रुलाई में बदल गयी थी। मैं उनकी चारपाई के पास बैठ गया। फर्श की सीलन से मेरा जिस्म झनझना उठा। कुछ देर वे लेटे रहे, मैं बैठा रहा, फिर अचानक वह उठे और मुझ पर झपट पड़े। उनके हाथ दो सूखे पंजों से महसूस हुए। किसी तरह उन्हें झटक कर मैं साथ वाली कोठरी में घुस गया। उसका दरवाजा मुश्किल से बन्द किया ही था कि पिता ने दो ठोकरें मार कर उसे तोड़ दिया। मुझे नीचे गिरा कर मेरे दोनों हाथों को अपने पंजों में जकड़ वह मेरे पेट पर बैठ गये। मुझे उनकी ताकत पर हैरानी हुई। मेरे मुंह से मोहमल आवाजें फूट रही थीं, उनके मुंह से खौफनाक खामोशी। मुझे लगा वह मुझ से कुछ मनवाना कहलवाना चाहते थे, और मैं मानने कहने से इनकार कर रहा था। उनकी जकड़ हर क्षण और कसती जा रही थी। मैं समझ गया कि अगर मैंने वह न माना कहा जो वह मुझ से मनवाना कहलवाना चाहते थे तो वह मुझे मार डालेंगे। उस अंधेरी कोठरी में उनके हाथों मारे जाने की संभावना से मुझे इतना सकून मिला कि मेरा मुंह बन्द हो गया, आंखें मुन्द गयी, जिस्म ढीला पड़ गया।

हम घबराए हुए थे, मैं माया से ज़्यादा, क्योंकि हमें कुछ मालूम नहीं था हमें कहां ले जाया जा रहा था और ले जाने वाले कौन थे। मालूम होता तो भी हम घबराए हुए तो होते लेकिन तब हमारी घबराहट का कोई एक केन्द्र होता, कोई ख़ास कारण होता। हम अंधेरे में थे और अंधेरा किसी पुरानी लेकिन बेआवाज़ काली कार की तरह हिचकोले खाता और देता हुआ चला जा रहा था। अंधेरे में कुछ खिड़कियां शायद थीं लेकिन वे सब या तो बन्द थीं या वे सब भी उसी तरह के अंधेरे पर खुली हुई थीं जिसमें हम थे। हमारे साथ और कितने थे, वे सब हमें कहीं ले जाने वाले ही थे या उनमें कुछ ऐसे भी थे जो हमारी तरह घबराए हुए थे और जिन्हें कुछ मालूम नहीं था उन्हें कहां ले जाया जा रहा था और ले जाने वाले कौन थे——यह सवाल मुंह या आंख में आ पड़े बाल की तरह मुझे तंग कर रहा था और मैं उसे यह सोच कर टाल रहा था कि वह प्रासंगिक नहीं। हमारे हाथ बंधे हुए थे न हमारे मुंह बन्द थे लेकिन हम सुखे सिमटे उस अंधेरे में बैठे हुए थे। मैं सोच रहा था अगर हम खुल कर अपनी घबराहट का इज़हार करने लगें, एक दूसरे को थामना थपकना शुरू कर दें, पूछना शुरू कर दें हम कहां हैं और हमें कहां ले जाया जा रहा है तो शायद अंधेरा इतना अटूट न रहे, तो शायद हमारी घबराहट कौतूहल में बदल जाए, तो शायद हम एक दूसरे में गुम हो जाएं। कह नहीं सकता कितनी देर तक मैं यह सब सोचता रहा और कब अचानक मुझे कुछ लड़खड़ाते खण्डहर नज़र आने लगे जिन्हें देखते ही मेरी घबराहट शुद्ध विस्मय में बदल गयी, ऐसे विस्मय में जो हमें किसी ऐसे चमत्कार पर होता है जिसकी आशा अपेक्षा हम ने मुद्दतों से छोड़ रखी हो। मैं चौंक उठा——उस मुसाफ़िर की तरह जिसे चलती गाड़ी की खिड़की से कोई ऐसा दृश्य या वृक्ष या मकान दिखायी दे जाए जिसे वह जानता हो, जिसे उसने पहचान लिया हो, जो कुछ ही क्षणों में पीछे छूट जाएगा, उसकी नज़रों से ओझल हो जाएगा। मैंने उन खण्डहरों को पहचान लिया था, माया को शायद वे दिखायी ही नहीं दिए थे। वे मेरे बचपन के खण्डहर थे। मुझे महसूस हुआ मानो अंधेरे में एक खिड़की सिर्फ़ मेरे लिए खुल गयी हो।

जिस सीढ़ी पर मैं चढ़ रहा था या शायद चढ़ने की कोशिश कर रहा था वह हवा और अंधेरे में यूं झूल रही थी जैसे सीढ़ी न हो, हवा और अंधेरे की बनायी हुई कोई ऐसी बिपता हो जो मुझे गिरा डालने पर तुली हुई थी।

अंधेरा ठोस महसूस हो रहा था, हवा निष्ठुर। जब सहसा मुझे उस सीढ़ी का आभास हुआ था, मैं किसी सीढ़ी या सड़क की उम्मीद को उस रात के लिए मार चुका था और ठोस अंधेरे और निष्ठुर हवा के बनाए हुए उस बेबुनियाद घर में चुप मार कर पड़ रहने के लिए तय्यार हो रहा था, अपने आपको मुझा बरगला रहा था, इसी आलम को अपना घर समझो, कम अज़ कम आज रात के लिए, सवेरे उठ कर भले ही फिर से भटकना शुरू कर देना।

उस झूलती हुई सीढ़ी को देखते ही मुझे इस खयाल का खुमार आना शुरू हो गया था कि यह सीढ़ी एक सभावना है, हवा और अंधेरे की बनायी हुई एक ऐसी सभावना जिस पर चढ़ता या चढ़ने की नाकाम कोशिश करता हुआ मैं ऊपर के अंधेरे में जा रमूगा और बाद नीचे के उस अंधेरे से ज्यादा गहरा और ऊँचा होगा, इतना ज्यादा गहरा और ऊंचा होगा कि कुछ देर के लिए मुझे भ्रम हो जाएगा मैं अपने घर, अपने असली घर, पहुच गया हू, और उसी खुमार पर सवार मै उस सीढ़ी या सम्भावना या बिपता की तरफ लपक उठा था।

कुछ ऊपर जा लेने के बाद मैंने महसूस किया मेरा भय कम होना और मेरा भरोसा ज्यादा होना शुरू हो गया था, इसलिए मैंने रुक कर इधर उधर ऊपर नीचे निगाह दौड़ाई और सीढ़ी ने कुछ ऐसे ढब से झूलना शुरू कर दिया कि मेरा भय फिर बहाल हो गया, मेरा भरोसा फिर भरभुरा हो गया, मेरी जान में जान आयी, और मैंने फिर ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया।

कुछ और ऊँचा चढ़ जाने के बाद मैं फिर रुक गया और मैंने एक लम्बी सास ली, क्योंकि मैंने सुन रखा है कि कोई बड़ा क़दम उठाने से पहले अगर एक लंबी सास ले लो तो शरीर की परेशानी थोड़ी देर के लिए थम जाती है, मन के सशय कुछ देर के लिए सो जाते हैं, और जो बड़ा कदम आप उठाने जा रहे होते है उसकी व्यर्थता का एहसास कुछ कम हो जाता है, वैसे लंबी सास ले लेने के बाद भी अक्सर मेरे साथ यह सब नहीं होता लेकिन मुझे यह तसल्ली तो रहती ही है कि मैंने अपना फर्ज पूरा कर दिया, कि अब कोई मुझ से यह तो नहीं कहेगा कि लबी सास न लेने के कारण ही मेरा बड़ा कदम बौना हो गया।

तो लबी सास ले लेने के बाद मैंने बाईं तरफ सर घुमा कर नजर नीचे डाली तो मुझे नीचे लहलहाता हुआ सागर दिखायी दिया, फिर दाईं तरफ सर घुमा कर नीचे नजर डाली तो मुझे

नीचे लहलहाता हुआ रेगिस्तान नजर आया. फिर गर्दन टेढ़ी कर के ऊपर देखा तो लहलहाता हुआ शून्य नजर आया, और मुझे महसूस हुआ मेरा घर, मेरा असली घर, उस ऊंचे अंधेरे में भी नहीं था, लेकिन इस एहसास को दबा कर मैं उस झूलती हुई सीढ़ी से और अपने भय से चिपका हुआ ऊपर चढ़ते चले जाने की नाकाम कोशिश में जुट गया।

न लौटने की ख़्वाहिश के बावजूद मैं फिर घर लौट रहा था क्योंकि शाम को सब भूले भटके घर लौट जाते हैं या घर लौटने के लिए अकुलाने लगते हैं। मैं अकुलाए बग़ैर ही लौट रहा था, याद करता हुआ कि बचपन में भी शाम को इसी तरह इतना सा मुंह ले अनमना सा घर लौटा करता था, लड़कपन में भी, जवानी में भी। बीती बिपताओं की याद बहुत रातो बाद आयी थी, और मैं सोच रहा था घर बदलते रहे हैं, घर के साथ उलझा हुआ रिश्ता नहीं बदला, और उस रिश्ते के रेशे रेशे में उदासी, भय, अवसाद, अनिश्चय, अभाव, असुरक्षा का ही रचाव है, हर्ष या उल्लास या सीधे साफ़ प्यार का नहीं, क्यों नहीं, कब होगा, अब *नहीं होगा, अब खाक होगा।* *खास* तौर पर *शाम* को, मैं सोच रहा था, क्यों घर मुझे काट खाने को हो आता है—उजाला जब अँधेरे में बदल रहा होता था तो घर घूरे में बदल जाया करता था, खास तौर पर बचपन में, घर वाले बेघर भिखारियों में, मैं खुद एक मुजस्सम झुंझलाहट में। कल रात मैं बचपन के उसी बेकैफ़ और बेसरोसामान से घर की ओर ही लौट रहा था, एक बार फिर, और सोच रहा था कब तक मैं उस घर से ही बँधा रहूंगा। मै खाली हाथ और खाली जेब था, अपने पिता ही की तरह नुचाखुचा सा, मुजरिम, मुरझाया हुआ। पिता की याद में मैं अक्सर रात को पिता सा ही हो जाया करता हू। दिन में भी यह खयाल बार बार आता रहता है कि मैं हर लिहाज़ से उन सा ही हो गया हू --अपनी आवाज मे उनकी आवाज और अपनी खामोशी में उनकी खामोशी सुनायी देती है, उनकी ही तरह कन्धे किसी काले बोझ से दबे झुके रहते हैं—आखों मे उनकी सी वीरानी और खयालो मे उनका सा खौफ और होठों से उनकी सी ही हारी मारी मुस्कराहटें रिसती रहती हैं।

मै घर लौट रहा था लेकिन रास्ता सही नहीं लगता था। यह भी साफ नहीं था कि मै कहा था और किस घर लौट रहा था। कभी आभास होता कि बचपन के ही किसी घर लौट रहा था, कभी कि बचपन का कोई घर अब कहीं नहीं था, इसलिए मैं वहा लौट नहीं रहा था बल्कि न लौट पाने के कारण यूंही बहक भटक रहा था, इस उम्मीद में कि कुछ देर बाद थक टूट कर वहीं कहीं पड़ रहूगा। तभी दूर कहीं पानी की एक लकीर किसी किरण सी नज़र आयी और मै सजग हो गया। अचानक मुझे मालूम हो गया मेरा घर उस लकीर के उस तरफ होगा। मेरे कदम उस लकीर की तरफ उठ गये। एक छोटा सा पुल याद आया और मुझे विश्वास हो गया मुझे उस पुल को पार करना होगा। मेरे कदम तेज हो गये और मुझे महसूस हुआ सिर्फ मै ही पानी की तरफ नहीं बल्कि पानी भी मेरी तरफ बढ़ रहा था। आंखे बन्द कर मैंने पानी की भीगी भीनी आवाज सुनी और जब आखे खोलीं तो अपने इर्दगिर्द पानी

का कापना हुआ फैलाव देखा। मैं खुद अब एक चट्टान सी पर खड़ा था। पानी हर क्षण ऊपर उठता हुआ सा महसूस हो रहा था। कहीं कोई पुल दिखाई नहीं दे रहा था। उतने फैलाव पर पुल हो ही नहीं सकता था। मुझ से कोई गलती हो गयी थी। मुझे तैरना नहीं आता। दूर दूर तक कहीं कोई घर नज़र नहीं आ रहा था। मुझे लग रहा था अगर उस पानी में डूब गया तो घर पहुंच जाऊँगा।

मैं उम कस्बे की एक कसमसाती हुई तंग गली मे हू जिसमें मेरा बूढ़ा बचपन बीता था। किसी गये बीते बूढ़े सा भी महसूस कर रहा हूं, किसी गये बीते बच्चे सा भी।

गली सुनसान है। किरिको की एक तस्वीर याद आ जाती है। मै और सूना हो जाता हू। महसूस होता है मेरे भीतर वैसी बीसियों गलियां बिछी हुई हैं।

अब अपनी उदासी के अन्धे कुएँ में झांकता हुआ चल रहा हूं।

एक औरत रास्ता रोक कहती है—और आगे मत जाओ!

उसकी आवाज में उपदेश भी है, आदेश भी है, धमकी भी है, हमदर्दी भी है, और चेतावनी भी।

उस औरत ने मेरी उदासी के कुएँ को और अन्धा. और गहरा कर दिया है।

मैं उस औरत को पहचानने के लिए उसके चेहरे को अपनी आखो से नोच रहा हू।

वह कहती है—क्यों परेशान होते हो, तुम मुझे पहचान नहीं सकोगे, मैं एक नहीं, अनेक हूं।

अब मैं उसकी आवाज़ में उसकी वह सूरत ढूंढ़ना शुरू कर देता हूं जो शायद किसी ज़माने मे उसकी रही हो।

फिर ख्याल आता है वह कोई भी हो, कई भी हों, मैं क्यों परेशान हो रहा हू।

मैं कहता हूं—रास्ता दीजिए, मुझे आगे जाना है।

फ़िक़रा खत्म करते करते मुझे अपनी गलती मालूम हो जाती है। अगर उसने पूछ लिया, आगे जा कर क्या करोगे तो मैं क्या जवाब दूंगा।

वह पूछती है—आगे जा कर करोगे क्या?

मैं कोई जवाब नहीं दे पाता।

वह एक तरफ हट जाती है।

गली इस बीच शायद कुछ और तंग हो गयी है। मैं अब आगे जाना तो नहीं चाहता लेकिन अगर न गया तो वह औरत शायद हंसना शुरू कर दे।

आगे बढ़ते समय मेरा कन्धा उसके वक्ष से छू जाता है। उस स्पर्श से भी कोई याद तो नहीं फूटती लेकिन उस औरत की हंसी लगता है उस स्पर्श में से ही फूट निकली हो।

मैं अपनी झेंप को समेटता हुआ उसकी तरफ देखे बगैर आगे बढ़ना जारी रखता हूं।

गली और तंग होती जा रही है। अगर मैं मोटा होता तो फंस जाता या छिलता हुआ ही आगे बढ़ सकता। शायद इसीलिए वह मुझे आगे जाने से रोक रही थी। अब भी वापस मुड़ सकता हूं। वह शायद वहीं खड़ी मेरा इन्तजार कर रही हो। अब शायद उसे पहचान लूं या वह ही बता दे वह कौन है, कौन कौन है, लेकिन मैं दोबारा उसका सामना नहीं करना चाहता। मुड़ कर देखता हूं तो वह नज़र नहीं आती। शायद मैं बहुत आगे निकल आया हूं। अब और आगे नहीं जाना चाहिए। यहीं खड़े हो चिल्लाना शुरू कर देना चाहिए—सब कहां हैं!

अब उदासी का अन्धा कुआ भय के अन्धे कुएं में बदल गया है। एक गस्मैल गाय सामने खड़ी नजर आती है।

शायद उस औरत को इस गाय के बारे में मालूम था।

गाय के सींग जैसे दो हंसिये हो। जिस मुद्रा में खड़ी वह मुझे देख रही है उस से यही लगता है कि वह उन सींगों से मुझे बेध डालेगी। उसकी आंखें मुझे बेध रही है। किसी भी क्षण वह मुझ पर झपट सकती है। अगर मुड़ कर दौड़ना शुरू कर दूंगा तो गाय मेरे पीछे दौड़ेगी।

मैं चाहता हूं किसी तरह इस गाय से सुलह कर लूं। वह मेरा डर सूंघ रही है, मैं उसका गुस्सा। अगर मैं डरना बन्द कर दूं तो शायद उसका ग़ुस्सा काफ़ूर हो जाए।

उदासी और भय पर कभी मेरा जोर नहीं चला। गाय को मेरी इस बेबसी का इल्म है।

डर के बावजूद मेरा दिमाग़ बदस्तूर काम कर रहा है। डर के बावजूद यह ख्याल मुझे खुश करता है। खुशी के बावजूद गाय के सुते हुए सींग मेरा लहू खुश्क कर रहे है।

शायद उस औरत ने ही गाय का रूप धारण कर लिया हो।

यह सम्भावना सहारा देती हुई महसूस होती है, जिस पर मुझे पहले हैरानी होती है फिर हंसी आ जाती है।

मैं एक कदम आगे बढ़ता हूं तो गाय पीछे हटती है न मुझ पर झपटती है। मै पूरी एकाग्रता से गाय को निहारना शुरू कर देता हूं। निहारते निहारते मैं भयमुक्त हो जाता हूं। गाय गायब हो जाती है। मैं अपनी उदासी के अन्धे कुए में गिर जाता हूं।

मेरी आंखें धुएं में खुलीं। अँधेरे में आग के फाहे फड़फड़ा रहे थे। मैं कम्बल हटा कर उठा। चिल्लाने के लिए मुंह खोला तो धुआँ अन्दर चला गया और मैंने खांसना हांफना शुरू कर दिया। बाकी लोग शायद भाग गये हैं, मैंने सोचा। इस खयाल से खराश महसूस हुई। लेकिन उन सब ने सोचा होगा मैं अपनी गश्त में गुम कहीं और भटक रहा हूंगा, किसी और ही आग के इन्तज़ार में। फिर भी किसी ने तो मेरे कोने में झांक कर देख तो लिया होता कि मैं वहां पड़ा नींद में तड़प रहा हूं या नहीं। शायद किसी ने देखा भी हो और उसे कुछ दिखायी न दिया हो—कभी कभी किसी किसी रात मैं अँधेरे में इतना डूब जाता हूं कि देखने वाले को दिखायी कुछ नहीं ही देता है। शायद किसी ने मुझे देखा भी हो और सोचा हो इसे इस आग में जल ही जाने दिया जाए तो इसके लिए बेहतर होगा, इसके लिए न भी हो तो हमारे लिए तो होगा ही, क्योंकि अगर इसे जगा दिया तो यह हमारे साथ भाग जाने के बजाय सौ हुज्जतें निकालने लगेगा, कहेगा क्यों न हम इस आग को वरदान समझ अपनी देह की आहुति दे इस नरक से मुक्त हो जाएं। फिर अन्दर से आवाज आयी, अगर धुएँ और अँधेरे को चीर बाहर नहीं निकलोगे तो यहीं झुलस कर रह जाओगे। अन्दर की आवाज़ हमेशा की तरह निर्मम थी। मैं अन्दाज़े और आदत के सहारे दरवाज़े की तरफ़ बढ़ा, यह सोचता हुआ कि भागते समय दूसरों ने भी शायद यही सब सोचा होगा। जब कई ग़लत दरवाज़ो को धकेलने और कई अटल रुकावटों से टकराने के बाद आखिरकार मैं बड़े दरवाज़े की दहलीज पार कर ही रहा था कि मुझे खयाल आया शायद बाकी सब या उनमें से कोई या कई अन्दर अपने अपने कोनों कमरों में सोये या बेहोश पड़े हुए हों या झुलस रहे हों। इस खयाल के बावजूद मैं छलांग मार कर दहलीज़ को पार कर गया। बाहर भागे हुए लोगों की भीड़ थी न तमाशबीनों की न आग बुझाने वालों का शोर। मैंने मुड़ कर देखा तो धुएं की लकीरें नजर आयीं न आग की लपटें। रात की उजली रौशनी में वह घर बेगाना नजर आया, अपना डर अपने ही किसी दुःस्वप्न का जाया। बाहर की हवा ठंडी और निर्मल थी। वापस अन्दर जा पड़ने के बजाय मैं वहीं बाहर बैठ गया, सर घुटनों में डाल कर।

कल रात फिर उस घर में जा मौजूद हुआ जहा मे एक जमाना पहले मेरे जीवन और मेरी जलन का आरम्भ हुआ था। मै परेशानी मे था, इसीलिए शायद वहा जा पहुचा था, और वहा पहुचते ही मेरी परेशानी पीडा में बदल गयी थी। मैंने कराहना शुरू कर दिया। मेरी कराहें उस घर में कीडो की तरह रेंगने लगीं। कोई पुचकार सुनायी दी न किसी दुलार का स्पर्श महसूस हुआ। मैंने सोचा था मेरी आवाज सुनते ही सब दौडे दौडे आएंगे, मुझ से लिपट जाएंगे, अपने स्नेह और सवालों से मेरी पीड़ा को सोख लेंगे, और फिर मैं उन्हे अपने सफरनामे की कुछ क़िस्तें सुनाते सुनाते उनकी सामूहिक गोद में सो जाऊंगा। लेकिन ऐसा नहीं हो रहा था और मेरी पीड़ा क्रोध में बदलती जा रही थी। वे सब वहीं कहीं थे, किसी न किसी रूप और अवस्था में, और मेरी कराहे सुन रहे थे, मेरे क्रोध की किरणें महसूस कर रहे थे, और खामोश थे। मेरा क्रोध उबलता जा रहा था, इस एहसास के बावजूद कि उन सबको शायद यह शिकायत हो कि मैं इतनी मुद्दत बाद घर लौटा था, लुटा पिटा और घायल, उनके दुखसुख में शरीक होने के लिए नहीं बल्कि अपना दुखड़ा सुना कर उन से हमदर्दी बटोरने के लिए, उनके स्नेह से अपनी पीड़ा का इलाज करवाने के लिए। मेरा क्रोध बढ़ता जा रहा था और साथ ही यह पश्चात्ताप कि मैं क्यो फिर उसी घर जा पहुचा था जहां से मेरे जीवन और मेरी जलन का आरम्भ हुआ था। मैं अपने क्रोध को जला डालना चाहता था, अपनी पीड़ा को फूंक मार कर उड़ा देना चाहता था, अपनी कराहों को किलकारियों में बदल देना चाहता था, उन सब से बारी बारी अपनी सारी गलतियों की मुआफ़ी मांगना चाहता था—एक मुद्दत बाद खाली हाथ लौटने के लिए, कराहने के लिए, उनकी खबर न लेने के लिए, लौटते ही अपनी पीडा का नाटक शुरू कर देने के लिए—पर मैं जानता था कि मै जिस ग़लत रास्ते पर था उसी पर ढुलकता चला जाऊंगा, मै यह नहीं जानता था कि वे यूं खामोश और अदृश्य रहेंगे जैसे उन्होंने मुझे देखा सुना ही न हो।

पीडा और क्रोध के बीचोबीच रास्ता बनाती हुई यह बात मेरी तरफ बढ़ती चली आ रही थी कि वे सब मर चुके थे और वह घर उनके भूतों का बसेरा था, या मैं मर चुका था और मेरा भूत ही उन्हें तंग करने के लिए पीड़ा और क्रोध का नाटक खेल रहा था और उन्हें वह नाटक दिखायी नहीं दे रहा था या पसंद नहीं आ रहा था, या शायद हम सब मर चुके थे और वह घर असल में नरक का ही एक छोटा सा कोना था जिसमें पडे हम हमेशा के लिए तड़पते कुरलाते रहेंगे।

यह बात तीन फ़नों वाले नाग की तरह मेरी तरफ बढ़ती चली आ रही थी और मै किसी ऊंट की तरह बिलबिला रहा था।

जब मैं वहां खड़ा सामने पसरे धुंधले बयाबान पर धुंधली बयाबान निगाह दौड़ा रहा था तो मेरे मन में किसी कोटि का कोई उत्साह था न हताशा थी। जो अजनबी मुझे वहां तक लाया था, वह अब गायब था। मैंने उसे ग़ायब होते देखा तो नहीं था लेकिन मुझे मालूम था वह गायब हो जाएगा, इसलिए उसकी अनुपस्थिति पर मुझे आश्चर्य हुआ था न हर्ष। मेरे पास उस समय किसी सामान का सहारा था न किसी के नाम सिफ़ारिशी या तआरुफ़ी चिट्ठी का न अपने किसी संकल्प या संशय का न अपने किसी भ्रम या स्वप्न या भय का। मेरे कपड़े मुचड़े हुए थे और मेरे जूते ढीले। मेरी जेबें खाली थीं और मेरी आखें वहां तक के सफ़र की खाक से अटी हुई। शायद मुझे वहां तक किसी खड़खड़ाती बस या बैलगाड़ी में लाया गया था। मुझे यह याद होना चाहिए था लेकिन नहीं था, मैं सच बोल रहा हूं। किसी हमसफ़र की सूरत या आवाज़ भी मुझे याद नहीं थी। बस इतना याद था कि किसी की कड़ी निगरानी में वहां तक पहुंचा था। वह निगरान अब वहां नहीं था, जिस से मैंने अनुमान लगा लिया था कि वह उस बस या बैलगाड़ी और उसमें बैठे दूसरे लोगों समेत ग़ायब हो गया होगा। हो सकता है उसने मुझ से बाक़ायदा इजाज़त मांगी हो, कहा हो मुझे हिदायत दी गयी थी कि मैं तुम्हें यहां अकेला छोड़ दूं, पूछा हो किसी के नाम कोई पैग़ाम तो नहीं भेजना, मेरा कंधा दबा दिया हो या मेरी पीठ पर पिलपिली सी थपकी दे दी हो। यह सब और शायद और बहुत कुछ भी विदाई के समय हुआ हो लेकिन मुझे कुछ याद नहीं।

कुछ देर वहां खड़े रहने के बाद मैंने सामने पसरे उस धुंधले बयाबान की तरफ़ बढ़ना शुरू कर दिया क्योंकि और कोई विकल्प मुझे सूझा नहीं। इधर उधर कुछ आकृतियां डोल तो रही थीं लेकिन उनमें से कोई संभावना फूटती हुई मुझे नज़र नहीं आयी। उनमें से किसी से कुछ कहने या पूछने की इच्छा मुझे नहीं हुई। इच्छा की बात भी नहीं, बात दरअसल यही थी कि किसी से कहने या पूछने के लिए मेरे पास कुछ था ही नहीं। मुंह खोल कर मैं अपनी पोल नहीं खोलना चाहता था, इसलिए किसी से आंख मिलाए बग़ैर, अपनी धुन्ध में ही लिपटा हुआ मैं हौले हौले आगे बढ़ रहा था, इस तरह कि ग़ौर से देखने वाले किसी को भी पता चल जाए कि मैं बढ़ने के बहाने घट रहा था, सिर्फ़ घट रहा था। ग़ौर से देखने वाला अगर वहां कोई था तो मुझे दिखायी नहीं दे रहा था। ग़ौर से देखने वाले—हर हरकत को, हर ज़र्रे या पत्ते की हर हरकत को, गौर से देखने वाले किसी को—देखने की ख्वाहिश किसी किसी क्षण मुझे अचानक मार डालती है। उस धुंधले बयाबान में ऐसे क्षण बार बार आए।

किसी ने मुझे आगे बढ़ने (या घटने) में रोका टोका तो नहीं लेकिन मेरा स्वागत भी किसी संकेत से नहीं किया। मेरे हुलिये से यह अनुमान सम्भव और स्वाभाविक था कि मैं खोया हुआ था और अपनी स्थिति को छिपाने के लिए यह दिखाने की अधमरी सी कोशिश कर रहा था कि मुझे उस धुंधले बयाबान में किसी शख्स या शै या पनाह की तलाश थी। नहीं, उस धुंधले आलम में मेरा हुलिया कोई देख सकता था न मैं किसी का। धुन्ध न होती तो भी पूरे ध्यान के बग़ैर कोई मेरा हुलिया शायद ही देख पाता क्योंकि मैंने उसे कई प्रकार के आवरणों में छिपा रखा था—सायास नहीं, अनायास ही। आवरणों की मुझे कोई कमी नहीं, किसी को कोई कमी नहीं।

बढ़ते या घटते हुए अचानक मेरी अचेतना में कोई ऐसा परिवर्तन हुआ कि मेरी उदासीनता उड़ गयी और उसका स्थान इस चिंता ने ले लिया कि उस बयाबान के किसी कारकुन ने अगर मेरे कागज़ात देखने चाहे तो मेरा क्या होगा। मेरे पास कोई कागज नहीं था—न कोई पहचान-पत्र, न पासपोर्ट, न क्रेडिट कार्ड, न कार चलाने का लायसंस। मेरी जेबें खाली थीं, मेरा चेहरा चुका हुआ था, मेरे कपड़े मुचड़े हुए थे, मेरे जूते ढीले थे, मेरे बाल बासी थे, मेरी आंखें बेनूर थीं। कोई मझे गदागर भी समझ सकता था, पागल भी, घर से बाहर धकेल दिया कोई नाकाबिले बरदाश्त बूढ़ा भी, नशे का मारा हुआ कोई चोर उचक्का भी। मैं खुद अपने आपको अब एक ऐसे खोए हारे हुए मुसाफ़िर के रूप में देख रहा था जिसकी एक ही मनोकामना हो कि कोई उसे पहचाने नहीं, कि कोई उससे कुछ पूछे नहीं, कि कोई उसे पनाह न दे, कि कोई उसकी कोई मदद न करे, कि सब उसे उसके हाल पर छोड़ दें। यही सब सोचते सोचते, इसी सब से सहमते सहमते उस बयाबान की धुंध और खाक छानता छानता आख़िरकार मैं एक बस्ती सी में जा गुम हुआ। वहां का माहौल भी धुंधला और बेआवाज़ था। लोग कम थे, मक्खियां ज़्यादा थीं। लोग मुझे देखते ही मुंह फेर लेते थे। मक्खियां मुझ पर न्योछावर हो रही थीं। मैं उन्हें इधर उधर करता उड़ाता हुआ उनके बनाए हुए पर्दे के उस तरफ यूं झाक रहा था जैसे मुझे उम्मीद हो कि जल्द ही मुझे वहा कुछ या कोई ऐसा दिख जाएगा जिसके दिख जाने की मुझे उम्मीद थी न ख्वाहिश। मुझे उजड़े हुए झौंपड़ों और उनमे उलझे हुए कुछ खस्ता अजनबियों के सिवा कुछ और कोई नज़र नहीं आ रहा था। अब मुझे सहसा यह महसूस होने लगा था कि वह बस्ती असल में झौंपड़ों से बनी एक मैली कुचैली भूलभुलैया थी। मेरी चिंता बेचैनी और घबराहट में बदलती जा रही थी, जिन पर मुझे उत्साह और हताशा का गुमान हो रहा था। मैं बिला रोकटोक एक झौपड़े में से होता हुआ दूसरे में पहुंच जाता, दूसरे में से होता हुआ तीसरे में, और फिर अचानक उसी पहले में जहां से मैं चला था। बेचैनी और घबराहट के बावजूद मुझे किसी बचकाना खेल का सा मज़ा भी आने लगा था। किसी किसी झौंपड़े में मेरी नजर किसी रंगीन गुडिया या मिट्टी के खिलौने पर जा टिकती और मुझे अपने हाथों को रोकना पड़ता। किसी किसी झौंपड़े में मुझे अचानक कोई जिस्म नज़र आ जाता, कपड़े उतारता या पहनता हुआ, और मुझे अपनी आंखों को रोकना पड़ता। आखिर एक झौंपड़े में जब मुझे एक औरत मेरी तरफ देखती हुई नजर आयी तो मैंने उससे पूछा उसे हिन्दी आती है? उसने न में सर हिलाते हुए मुझ से कुछ पूछा जिसके जवाब में मैंने न में सर हिला दिया—उसे हिन्दी नहीं आती थी मुझे उसकी

भाषा नहीं आती थी। हम दोनों एक साथ मुस्कराए। मेरी मुस्कराहट ने पता नहीं मेरी सूरत पर क्या असर डाला होगा लेकिन उसकी मुस्कराहट ने उसकी सूरत पर जादू सा कर दिया, उसमें जान सी डाल दी। जहां पहले एक मामूली मैली काली सी सूरत बुझी बैठी थी, वहां अब एक मोहिनी साफ़ सुकांत सूरत दमक रही थी। मैंने इशारों के सहारे सवाल किया कि मैं झौंपड़ों के उस गोरखधन्धे से बाहर कब निकलूंगा, कैसे निकलूंगा। वह मेरा सवाल समझ गयी। मेरा हाथ पकड़ वह मुझे उस झौंपड़े से बाहर ले आयी, फिर वहां से कुछ ही दूरी पर खड़े एक टीले की तरफ़ खींचने लगी। मैं हैरान हो रहा था कि मुझे वह टीला पहले क्यों नज़र नहीं आया। मुझे महसूस हो रहा था कि उस औरत की नजर से ही उस बस्ती के सारे उलझाव दूर होते जा रहे थे, कि मैं उस औरत की नजर से उस बस्ती को देख रहा था। उस टीले की चोटी पर पहुंच उसने इशारा किया कि मैं वहां से छलांग लगा दूं। मैंने देखा नीचे एक गहरा कुआँ था। मैंने सोचा वह मज़ाक़ कर रही थी, मज़ाक़ के बहाने मुझे कोई बड़ी बात समझा रही थी। मैं मुस्कराया। उसने अपना इशारा दुहरा दिया। अब मुझे उसके इशारे में आदेश की झलक भी नज़र आयी। मेरी मुस्कराहट ग़ायब हो गयी। उधर उसकी सूरत पर अब जो गम्भीरता उतर आयी थी उससे उसकी सूरती की सफ़ाई और कांति में कोई कमी नहीं हुई थी। मैं अपना सब कुछ उस क्षण भूला हुआ था, या शायद मेरा सब कुछ उस क्षण में डूब गया था। आंखें मूंद जब मैं उस टीले से कूदा तो मेरी चेतना के किसी छोर से यह कामना चिपकी हुई थी कि वह औरत भी मेरे साथ कूद रही हो।

न जाने उस छलांग के कितने युग बाद मैं कहां बैठा किसी को अपने इस अनुभव के बारे में बता रहा था और मेरे मुंह से जो बयान अनायास निकल रहा था उसमें किसी धुँधले बयाबान का ज़िक्र था न उस बस्ती का जिसके झौंपड़ों की भूलभुलैया में गुम होते होते मुझे वह औरत दिखायी दे गयी थी जिसकी मुस्कराहट ने उसकी सूरत को अपने जादू से जगमगा दिया था और जिसके इशारे या आदेश पर मैं एक टीले की चोटी से एक कुएं में कूद गया था; उस बयान में एक अलौकिक उपवन था, मैं था, एक अलौकिक सुंदरी थी जिसने अपने जादू से मुझे मेंढक में बदल न जाने कितने युगों के लिए एक कुएँ मे क़ैद कर दिया था।

उस पहाड़ी पर चढ़ने के लिए जब कोई पगडंडी नज़र न आयी तो मै घबराया, मेरा काला घोड़ा मुझ से भी ज़्यादा।

मै घर से ठान कर निकला था आज हर हालत में उधर जा कर रहूंगा।

माया घर में नहीं थी, असली घर की तलाश में निकली हुई थी, इसीलिए शायद मैंने उधर जाने का इरादा बाँध लिया था, अचानक, कई दिनों की ढीली-ढाली कोशिशों के बाद।

कई दिनों से मैं उधर जाने के खयाल को कई तरह की दलीलों से टाल रहा था---जल्दी क्या है, उधर जाने से भी आखिर क्या होगा, जो उधर हो आए हैं, उन्हे भी आखिर कौन सा ऐसा सुख सकून मिल गया है जो उन्हें उधर न जाने से न मिलता, उधर और इधर में कोई अन्तर नहीं, कोई ऐसा अन्तर नहीं जिसे जाने बग़ैर रहा न जा सके—लेकिन कल रात, शायद माया की अनुपस्थिति के कारण, ऐसी अदम्य प्रेरणा उठी कि मै सारे संकोच झटक कर उठ खड़ा हुआ और अपने काले घोड़े पर सवार उस पहाड़ी तक पहुंच गया जिसे पार कर के ही उधर जाया जा सकता है।

वह पहाड़ी किसी विराट बुढ़िया की तरह बुक्कल मारे बैठी थी और उस पर चढ़ने की कोई सूरत मुझे और मेरे घोड़े को दिखायी नहीं दे रही थी।

कल रात से पहले उधर जाने से कतराते वक़्त यह खयाल कभी नहीं आया था कि जब किसी रात उधर जाने की ठानूंगा तो पहाड़ी पर चढ़ने की कोई सूरत नजर नहीं आएगी, कोई रास्ता नहीं मिलेगा, क्योंकि मैंने सुन और मान रखा था कि कहीं भी जाने का पक्का इरादा बांध लो तो रास्ता, कोई न कोई रास्ता, निकल ही आता है।

कल रात भी इसीलिए मैं काफी देर तक उस पहाड़ी के चक्कर काटता रहा, उसे निहारता रहा, लेकिन जब उसमें से कोई रास्ता फूटता हुआ दिखायी नहीं दिया तो मै घबराया, मेरा घोड़ा मुझ से ज़्यादा। कोई रास्ता दिखायी दे गया होता तो भी मै घबराता तो जरूर---तब शायद मेरी घबराहट इस अरमान का रूप ले लेती कि अगर पहाड़ी पर चढ़ने का कोई रास्ता न निकलता तो उधर जाने की जहमत आज भी टल गई होती।

मेरी घबराहट में इस शक का जहर भी घुलामिला था कि मेरा इम्तहान लिया जा रहा था और इस संभावना की स्याही भी कि मेरी दृष्टि के ही किसी दोष के कारण मुझे रास्ते के बजाय रुकावट दिखायी दे रही थी।

मैंने घोड़े से उतर घोड़े को खुला छोड दिया ताकि वह ही कोई रास्ता सूघ कर हिनहिनाना शुरू कर दे लेकिन घोड़ा मर डाल खडा हो गया तो मुझे अफ़सोस हुआ जैसा मैं, वैसा मेरा घोड़ा।

हम दोनों की बेचारगी देख आस पास के अँधेरे ने ही मानो उस अन्धे बूढ़े का रूप ले लिया जो मुझे उस पहाड़ी की चोटी पर खड़ा जगमगाता नज़र आया।

मुझे हिन्दुस्तानी फ़िल्मों के उस फ़ारमूले की याद आ गयी जिसके अनुसार हीरो के मार्गदर्शन के लिए कोई अन्धा भिखारी या बैरागी ऐन मौक़े पर नमूदार हो कबीर या सूर का कोई पद गर्म गम्भीर आवाज़ में गाना शुरू कर देता है और खोये हुए हीरो को दिशा मिल जाती है।

जो अन्धा बूढ़ा मुझे नज़र आ रहा था मुझे और मेरे घोड़े क़ो देख तो नहीं सकता था लेकिन वह नमूदार मेरा मार्गदर्शन करने के लिए ही हुआ था, क्योंकि उसने आवाज़ दी—तुम घबरा क्यों रहे हो, घोड़े पर सवार हो कहीं से भी पहाड़ी पर पिल पड़ो, रास्ता अपने आप निकल आएगा।

अब अगर यही बात उसने सांकेतिक ढंग से गा कर कही होती तो शायद मैं तत्काल उस पर अमल करने के लिए तय्यार हो गया होता, लेकिन उसकी ठंडी ठार आवाज़ मुझे एक प्रहार सी महसूस हुई।

मैंने ऊँची आवाज़ में जवाब दिया—बाबा, अगर यह इतना आसान होता तो मैं यूं खड़ा न होता, लेकिन तुम्हारा भी कोई दोष नहीं, तुम देख नहीं सकते, तुम्हें रास्ते और रुकावट का अन्तर कैसे दिखायी दे।

उस अन्धे बूढ़े की हंसी के आलोक मे मुझे अपनी दृष्टि का दोष साफ़ दिखायी दे गया जिसके कारण ही मुझे रुकावट और रास्ते का अन्तर दिखायी नहीं दे रहा था।

उसकी बात सुनने-समझने के लिए उसे देखना मुझे ज़रूरी लग रहा था और उसे देखने के लिए अपनी गरदन टेढ़ी कर चेहरा ऊपर की ओर उठाना जरूरी था, जैसे आंखों मे दवा डलवाने या दांतों के डाक्टर से मुंह का मुआइना करवाने या अपने पीछे खड़े किसी को चूमने के लिए ज़रूरी होता है। वह कहीं ऊपर और मेरी आंखों की सीध से परे और पीछे बैठा बोल रहा था, जैसे हम किसी कमरे में न हों, किसी गाड़ी के डिब्बे मे हों और वह मेरे सर से ऊपर वाली बर्थ पर बैठा हुआ हो। अगर बोलते बोलते वह थूक देता तो उसकी थूक मेरी आंखों या मुंह में गिर सकती थी, इसीलिए मैं बीच बीच में अपनी मुद्रा बदल लेता था, सर झुका लेता था, कुछ इस तरह से कि वह समझे मैं उसकी बात से सहमत हो रहा था या सहमत होने से पहले उस पर गम्भीरता से सोच विचार कर रहा था। उसके हावभाव और मुच्छल मुंह से लगता था कि उसे चलते चलते या बात करते करते बिलावजह थूकने की आदत होगी। उसकी थूक के अन्देशे के कारण मैं उसकी बात को पूरी तरह सुन पा रहा था न ठीक तरह से समझ पा रहा था। वैसे भी मैं उसकी आवाज से ऊबने लगा था क्योंकि उसमें कोई उतार चढ़ाव नहीं था, मानो कोई मशीन बोल रही हो। मुझे हैरानी हो रही थी कि मैं वहां उस वक़्त था क्यों। वह बात तो मेरे ही बारे में कर रहा था लेकिन मुझे लग रहा था जैसे वह मेरे बहाने अपनी ही बड़ाई कर रहा हो। उसके हावभाव और मुच्छल मुंह से लगता था कि उसे अपनी बड़ाई और दूसरों की बुराई करने की आदत होगी, कि उसे अपने से ऊपर कोई नज़र नहीं आता होगा। जिस हद तक मैं उसकी बात सुन समझ पा रहा था उस हद तक मैं यही अनुमान लगा पाया था कि वह मेरा कोई पुराना वाकिफ़ या सहयोगी था, शायद किसी ज़माने मे वह मेरा दोस्त भी रहा हो, शायद सहभोगी भी। उसकी बातों मे योग की अपेक्षा भोग की छटा अधिक थी। उसकी बड का बोल कुछ इस तरह का था कि मुझे लग रहा था जैसे वह कह रहा हो कि मैं उस जमाने मे उससे बहुत छोटा हुआ करता था। उसे सुनते सहते मैं अपनी याददाश्त पर दबाव डालने के बावजूद उसका नाम याद कर पा रहा था न उसकी उस ज़माने की सूरत जिसका ज़िक्र वह अपने अटपटे अन्दाज मे कर रहा था। उसकी बातो का कोई सन्दर्भ मेरी पकड़ में आ रहा था न वहां उसके नीचे अपने होने का कोई कारण।

आजकल रात की सैर के दौरान अक्सर ऐसे लोगों से आंखें दो चार होती रहती हैं जो मेरी सूरत को इस तरह टटोल रहे होते हैं जैसे उसमें से कोई और सूरत उभार लेना चाहते हों, कभी कभी ऐसे लोगों से भी जिनकी सूरतों को मैं टटोलने लगता हूं, कुछ इस तरह से जैसे

कचरा बीनने वाली भूख कमाग्या कचरे के ढेग को। आजकल रात की सैर के दौरान मुझे अक्सर महसूस होता है जैसे बहुत से भूत इधर उधर मंडरा रहे हों, मेरी तलाश में, मुझे पकड़ कर मेरी जांच पड़ताल करने के लिए, मुझ से जवाबतलबी करने के लिए, मुझे मेरी गलतियों और गुनाहों की सजा देने के लिए, मुझे शर्मिन्दा करने के लिए, मुझ से पूछने के लिए कि मै क्यों अभी तक मारा मारा फिर बिखर रहा हू, मुझे मार डालने के लिए। किसी किसी रात यह एहसास इतना शदीद हो जाता है कि मै खुद भूत बन जाता हूं और सुबह होने तक अपने भूत में भटकता रहता हूं।

जरूर ऊपर कहीं चढ़ा बैठा वह भी कोई भूत ही होगा जो मुझे पकड़ कर उस कमरे मे घसीट लाया था। शायद उससे कोई ग़लती हो गयी हो और जब उसे मेरी किसी हरकत या बात से पता चल जाएगा कि मैं वह नहीं जिसे वह कभी जानता था तो वह मुझे उस कमरे से बाहर धकेल देगा और मुझे कुछ पता नहीं चलेगा मैं कहां हूं, कैसे वहां से अपने डेरे पर लौटूंगा। इसीलिए शायद मैं कोई बात कर रहा था न कोई खास हरकत, सिवाय मुंह उठा कर उसे देखने या सर झुका कर उसकी थूक से बचने की कोशिश करने के। उधर वह अपनी पड़छत्ती सी पर आल्थी पाल्थी मारे बैठा मेरे ऊपर झुका झुका बोलता चला जा रहा था, इधर मैं नीचे नंगे फ़र्श पर बुझा बैठा अपने अज्ञान में डूबा जा रहा था। उसकी थूक के अलावा मुझे यह डर भी था कि वह किसी भी क्षण गश खा कर या छलांग लगा कर मेरे ऊपर आ गिरेगा। डूबता और डरता हुआ मैं शायद धीरे धीरे बेहोश होता चला गया क्योंकि अब मुझे कुछ याद नहीं कि इस वाक़ए का अन्त क्या हुआ। जिसे मैं अपनी बेहोशी समझ रहा हूं वह शायद मेरी ऊंघ ही रही हो। अपनी तसल्ली के लिए या कहूं कि अपने मन से इस अनुभव की अपूर्णता के कांटे को निकाल देने के लिए मैंने यह मान लिया है कि वह बोलता चला गया और मैं ऊबता; फिर मैंने ऊंघना शुरू कर दिया; जब अपनी ऊंघ को छिपाना या संभालना मेरे लिए कठिन हो गया तो ऊपर से उसकी आवाज़ आयी—तू नहीं बदला, स्कूल में भी हर क्लास में तू इसी तरह ऊंघा करता था और मैं तुझे कुहनी मारता रहता था ताकि मास्टर तेरी पिटाई न करें; अब उठ फूट यहां से और अपने घर जा कर सो मर जा! मैं उठ खड़ा हुआ और एक खिसियानी सी मुस्कराहट मुंह पर बिठाए उस कमरे से बाहर निकल गया। बाहर बेगाना घना अँधेरा था जिसमें मेरे डेरे का रास्ता यूं गुम था जैसे भूसे के ढेर में कोई सूई।

पता नहीं घर की तलाश में भटकता भटकता मैं किस पाताल में जा गिरा था। वहां का अँधेरा भी बेगाना था, उजाला भी, उन दोनों के आपसी उलझाव में से उपजता हुआ झुटपुटा भी। हवा ठहरी हुई थी, सन्नाटे में साएं साएं नहीं थी, आकाश या तो था नहीं या उस पर कोई ऐसी स्याही पुती हुई थी कि वह मुझे नजर नहीं आ रहा था। मैं अकेला था और यूं चल रहा था जैसे माया मेरे साथ हो। कोई अकुलाहट नहीं थी। मेरा मुंह बन्द था, आंखें खुली थीं, और मुझे महसूस हो रहा था जैसे बाहर के अँधेरे से ओतप्रोत हवा आंखों के ज़रीए मेरे अन्दर जा रही हो और अन्दर के अँधेरे से ओतप्रोत हवा आंखों के जरीए बाहर आ रही हो। समय के बोध से मैं उस समय मुक्त था, अस्तित्व के बोध से मुक्त होने की संभावना से आश्वस्त। लेकिन अचानक यह कैफ़ियत किरकिरी हो गयी जब मैंने देखा कि दूर सामने से एक अजीबोगरीब सी चीज मेरी तरफ़ बढ़ती चली आ रही है। वह मौत नहीं थी। मौत से मुठभेड़ का खयाल आजकल हर स्थिति में मेरे साथ रहता है। शायद कोई टैंक हो, मैंने सोचा, और हाथी होने का स्वांग रच रहा हो। सोच बेतुकी तो थी लेकिन मेरे मन पर पड़े प्रभाव के अनुकूल थी, क्योंकि उस प्रभाव में भय का अंश अगर था तो उस पर हंसने की गुंजाइश भी जरूर थी—वह चीज भयावह भी थी और हास्यास्पद भी। अब वह कुछ और क़रीब आ चुकी थी, और टैंक सी नज़र आ रही थी न हाथी सी न हाथी होने का स्वांग रचती हुई कोई और बला। अब वह कोई स्वचलित मशीन सी नजर आ रही थी। उसकी लंबी सी गरदन थी, उसके माथे पर टंकी हुई दो टिमटिमाती टिक्कियां थीं जो उसकी आंखें कही जा सकती थीं। उसका रंग काला था। और वह बेआवाज़ था।

उसके भयावह होने का मूल उसकी खामोशी में था।

बेआवाज़ बलाएं अक्सर भयावह होती हैं।

उसके हास्यास्पद होने का मूल उसके अनावश्यक दिखने वाले कलपुर्जों या अंगों में था।

अनावश्यक दिखने वाले अंगों वाले जीव-जन्तु अक्सर हास्यास्पद होते हैं।

वैसे उसका बेआवाज होना उस सारे माहौल के अनुकूल ही था—वहां के सन्नाटे तक में साएं साएं की आवाज नहीं थी।

खयाल आया मुझे रास्ता दिखाने के लिए ही उस भयावह और हास्यास्पद मशीन को वहां भेजा गया था। यह खयाल ज्यादा देर तक रुका नहीं क्योंकि वह मशीन मेरी तरफ़ यूं बढ़ती चली आ रही थी जैसे मुझे कुचल डालेगी। अब मैंने डरना शुरू कर दिया, उस मशीन से भी,

उस माहौल मे भी। मेरे पांव जाम हो गये, गला सूख गया, आंखों ने सांस लेना बन्द और दिल ने बुरी तरह धड़कना शुरू कर दिया। लेकिन बढ़ती चली आ रही उस मूक मशीन मे बचने के लिए तो कुछ करना ही चाहिए, यह सोच कर मैंने रुख फेर सरपट भागना शुरू कर दिया, किसी पेड़ या पत्थर मे टकरा जाने और किसी खाई या कुएँ में गिर जाने के डर के बावजूद। मुड़ कर देखने की उत्कट इच्छा तो थी लेकिन मुझे डर था अगर मुड कर देखूंगा तो मर जाऊँगा या पत्थर हो जाऊँगा या देखूगा वह मशीन किसी और ही बला में बदल गयी है। दिल से दुआ उठ रही थी कि पीछे से आवाज़ आए—भाग क्यों रहे हो बेवकूफ मैं बला नहीं बाला हूं और तुम्हें गले से लगाना चाहती हूं, ठहर जाओ!

ऐसी कोई आवाज़ तो नहीं आयी लेकिन मन ने एक मोड़ ज़रूर ले लिया : भाग कर जाऊँगा कहां, घर का कुछ पता है न घर के रास्ते का, माया न मालूम किस आलम में है, इस पाताल में कौन पनाह देगा मुझे, क्यों न रुक कर देखूं क्या होता है। सो मैं रुक गया। जब काफ़ी देर तक कुछ नहीं हुआ तो मैंने सोचा मुड़ कर देखना चाहिए उस मशीन का क्या हुआ। देखा तो पाया वह एक काले जानवर में बदल गयी थी जो मुझ से कुछ फ़ासले पर खड़ा अपने आप मे गुम अपना थोथना पपोल रहा था, कुछ कुछ उसी तरह जैसे कुछ बूढ़े सुपारी पपोलते हैं। सुविधा के लिए मैं उसे ऊंट कह लेना चाहता हूं लेकिन उसमें ऊंट के अलावा हाथी, रीछ, शुतुरमुर्ग, घोड़े, सांड और गैंडे के कई गुण भी मुझे दिखाई दे रहे थे, और इन सब गुणों के साथ या नीचे उसमें उस स्वचलित पेचीदा मशीन के सब गुण भी थे जिस से मुझे डर भी लगा था, हंसी भी आयी थी।

उस ऊंट की तरल आंखें मुझ पर टिकी हुई थीं। मुझे विश्वास हो गया वह और कुछ हो न हो मेरा वाहन ज़रूर हो सकता था और मैं उस पर सवार हो वहां की सैर कर सकता था। मैं उछल कर उस पर यूं सवार हो गया जैसे मुझे उस जैसे जानवरों की सवारी में महारत हो, लेकिन मेरा खयाल है जब मैं उछलने जा रहा था तो उस ऊंट ने झुक कर मेरा काम आसान कर दिया होगा वर्ना पहली ही उछाल से उस पर सवार हो जाना असम्भव होता।

ऊंट ने भागना शुरू कर दिया और मैंने फिर से डरना। महसूस हुआ मानो वह मुझे अग़वा कर ले जा रहा हो। उसकी लगाम अगर थी तो मेरे हाथ में नहीं थी, इसलिए मैं उसे रोक सकता था न उसकी रफ़्तार को कम कर सकता था। मैं उस की देह के साथ छिपकली सा चिपका हुआ था। सवारी और सैर के सरूर को खतरे और खौफ़ ने निगल लिया था। उस हालत में भी जी चाह रहा था उस से पूछूं वह क्या है, किसका है, मुझे कहां ले जा रहा है, मेरे घर का रास्ता जानता है, मुझे मेरे घर पहुंचा सकेगा, माया के बारे में उसे क्या और कितना मालूम है, असल में मन ही मन उस से यह सब और और बहुत कुछ पूछ रहा था और सोच रहा था वह जवाब दे रहा है लेकिन वह मेरी समझ में नहीं आ रहा। अगर मैं यह सब सोच पूछ न रहा होता तो मेरी जान सचमुच भी निकल गयी होती, मुहावरे में तो निकल ही गयी थी।

कह नहीं सकता कितनी देर और कितनी दूरी तै कर लेने के बाद मुझे आस पास कुछ बस्तियां उगती हुई सी दिखायी दीं। फिर कुछ लोग इधर उधर गुच्छों में खड़े दिखायी दिये।

ऊट की रफ्तार धीरे धीरे कम होती जा रही थी। मुझे लगा जैसे उन लोगो को खबर थी कि कोई आ रहा है। लोगों में मुंह बाए हक्के बक्के बच्चों की संख्या काफ़ी थी। वैसा काला ऊट उन्होंने पहले कभी शायद ही देखा हो। मेरा खयाल था वह ऊंट मुझे उन लोगों के हवाले कर खुद हवा हो जाएगा। मैं उसके झटके की प्रतीक्षा में कसा हुआ था। एक गुच्छे के पास पहुंच वह रुक गया। फिर उसने अपने जिस्म को जोहड़ से निकली हुई भैंस की तरह सिकोड़ा झिंझोडा और मैं उसकी पीठ से फिसल कर नीचे खडे लोगों के उठे हुए हाथों पर गिर गया। उन्होंने मुझे ज़मीन पर लिटा दिया और मेरे इर्दगिर्द एक घेरे मे में खड़े हो गये। बच्चों के कारण वह घेरा मुझे एक हार सा दिखायी दे रहा था।

जब हम थक टूट गये तो हमने फैसला किया कि तलाश को वहीं तोड़ हम अपने डेरे पर जा पड़ें। हम अपना रुख बदल ही रहे थे कि माया बोली—यह आवाज सुन रहे हो? कहां से आ रही है?

—पानी का शोर ही हवा के साथ इधर उधर भटक रहा है।

—नहीं। उस शोर से अलग एक और आवाज भी मुझे साफ सुनायी दी थी।

मैंने कान लगा कर सुना, इधर उधर देखा भी, लेकिन पानी के शोर के सिवा मुझे कुछ सुनायी नहीं दिया।

—अब भी सुनायी दे रही है?

—अब नहीं।

—कैसी आवाज़ थी?

—जैसे कोई औरत कुरला रही हो।

—पानी ही होगा। हवा ने कोई जादू कर दिया होगा, बेचारे की आवाज बदल गयी होगी।

—हो सकता है।

डेरे पर पहुंचते ही माया कपड़े बदल कर सो गयी। मुझे सो जाना असम्भव जान पड़ा। मैं कपड़े बदल कर बाहर निकल गया। हमारा डेरा दरिया से ज्यादा दूर नहीं था। रात कुछ और गहरी और खामोश हो गयी थी, इसलिए दरिया समन्दर सा सुनायी दे रहा था। कितनी रातें और इस कोलाहल को सुनना पड़ेगा, मैं सोच रहा था। माया भी सोयी सोयी शायद पानी के शोर से परेशान हो रही हो। हमें डेरा बदलना होगा। लेकिन अगर माया से कहूगा तो वह बिगड़ेगी . कहीं जमने भी दोगे? घर घूमने से नहीं एक जगह जड़ें गाड़ने से बनता है। तुम पैदाइशी खानाबदोश हो, मैं नहीं, मुझे टिकाव चाहिए, भटकन नहीं।

माया को पानी के शोर में किसी औरत के कुरलाने की आवाज़ क्यों सुनायी दी? शायद वह अपनी ही कुरलाहट को सुन रही हो। अगर मैं पूछता कि आवाज़ किसी खूबसूरत बुढ़िया की थी या किसी बदसूरत अधेड़ की तो वह नाराज हो जाती। उसे अब मेरे मज़ाक कोई मज़ा नहीं देते। कहती है, अब छेड़छाड़ छोड़ दो। अगर उसकी बात मान जाऊं तो जीना और दूभर हो जाए। वैसे अब छेड़छाड़ से मुझे भी कोई ऐसा आनन्द नहीं मिलता जिसके बग़ैर रहा

न जा सके। तर्क कहता है ऐसा आनन्द तो पहले भी कहां मिलता होगा, ऐसा आनन्द है कहा जिसके बगैर रहा न जा सके। यह तर्क कभी कभी माया की आवाज में भी बोलता है। मेरी अपनी आवाज़ तो निर्मम है ही। माया कहती है निर्ममता से कुछ नहीं होता, निर्ममता आहत ही करती है, निर्ममता से करुणा बेहतर। माया ठीक ही कहती है लेकिन मै निर्ममता का पक्ष लेता हुआ कहता हूं, निर्ममता और करुणा में कोई बैर नहीं। वह कहती है, ये बारीकियां बेकार हैं। अब माया से असहमति के बिन्दु बहुत कम, बहुत बारीक, हो गये है। अनवरत तलाश ने हमारे भेदो को बहा भगा दिया है। अब उन तमाम छोटी बड़ी असहमतियों पर अफ़सोस होता है जिनके कारण कभी कभी हम एक दूसरे के लिए कड़वे या फीके हो जाया करते थे। अब यही गनीमत जान पड़ता है कि हम एक दूसरे के साथ है—सारे अरमानों और अभावों के बावजूद। घर न सही, ठिकाना या डेरा तो कही न कही मिल ही जाता है। आनन्द न सही, ऐसा अजाब भी तो नहीं कि चला भी न जाए। वह मुड़ा तुड़ा आदमी अक्सर याद आ जाता है जिसने एक बार मुझे कही न जाने का रास्ता दिखाया था। अब अक्सर सारे रास्तों पर उसी रास्ते का गुमान होता है। इसीलिए अब कोई भी रास्ता अपना लेने में कोई तकलीफ़ नहीं होती। इधर मेरी कल्पना एक कमरे में बदल गयी महसूस होती है, जिसमे हर सोच, हर विचार, हर अनुमान, हर याद, हर कामना, हर अरमान—सब एक उजली तस्वीर की तरह टंगे दिखायी देते हैं।

यह सब सोचता सोचता मैं उस दरिया के किनारे जा खड़ा हुआ था। वह एक विशाल टब की तरह छलक रहा था। ऊपर तारों जड़ा आकाश, सामने लहलहाते हुए पानी की हलचल, पीछे डेरा जिसमें सोयी हुई माया घर के सपने देख रही होगी, मन में निर्ममता का कड़ा आलोक जिसमें करुणा के कण किसी किसी को ही दिखायी देते होगे—मुझे लगा मैं स्वर्ग में खड़ा था। उसी क्षण मुझे एक चीख सुनायी दी। पानी के शोर को चीरती हुई वह चीख कहीं इतने करीब से आती हुई महसूस हुई कि मुझे लगा जैसे यह चीख माया की हो। शायद जिस कुरलाहट को माया ने कुछ देर पहले सुना था वही अब इस चीख मे बदल गयी हो। तब मैंने माया को पानी के एक पालने में लेटे पड़े देखा, उसके नन्हे नन्हे हाथ पैर हिलते तिलमिलाते हुए देखे, उसकी मिची हुई आंखें देखीं, उसका खुला पोपला मुंह देखा, और उसमे से फटती हुई उस कच्ची करारी चीख को सुना। मेरे रौंगटे खड़े हो गये। अब मेरी आंखों के नीचे लहलहाते पानी पर एक ट्रे से में तीन बच्चे मुचड़े हुए से पडे थे। तीनों की टागें और बाहें कौंचे हुए चींटो की तरह कसमसा रही थीं। उनमे से एक पूरी पीड़ा से चीख रहा था।

मैंने उन तीनों को उठाने के लिए हाथ बढ़ाए तो लगा जैसे हाथों को किसी ने झटक दिया हो। मैं कुछ समझा नही। दोबारा हाथ बढ़ाने के बजाय मैंने चिल्लाना शुरू कर दिया—बच्चे! तीन बच्चे! किसी के तीन बच्चे! मैं ऐसे चिल्ला रहा था जैसे कोई फेरी वाला सदा लगा रहा हो। तभी मैंने देखा कुछ ही दूरी पर कुछ लड़के नंगे नहा और हस रहे थे। मैंने मुंह फेरा तो मुझे फलों से लदे तीन ठेले अपनी तरफ़ आते हुए दिखायी दिये। मैंने ठेले वालों को पुकार कर बताया—बच्चे बच्चे, तीन बच्चे, किसी की तीन...। उन ठेले वालो ने भी मुझ पर हंसना शुरू कर दिया तो मैं मुंह फेर फिर बच्चों पर झुक गया। एक बच्चा अभी तक

चीखे जा रहा था, दूसरे दोनों अब गुड़ियाओं में बदल गये थे। चीखने वाले बच्चे का चेहरा एक कसे हुए छोटे से मुक्के सा दिखायी दे रहा था। मेरे हाथ उसे उठा लेने के लिए हुमक रहे थे, मेरा मन मुझे सुझा रहा था कि अगर एक को उठाऊँगा तो दूसरे दोनों को भी उठाना होगा। तीनों को एक साथ उठा लेना मुझे ठीक नहीं लग रहा था। खतरा था उन्हें संभाल नहीं सकूंगा, कि उनमें से कोई न कोई मेरे हाथों से छूट पानी में जा गिरेगा। यह खयाल भी आया कि अगर चीखने वाले बच्चे ने चीखना बन्द न किया तो क्या करूंगा, अगर दूसरे दोनों सचमुच की गुड़िया में बदल गये तो क्या करूंगा। प्रतिकूल संभावनाओं की साफ़ सुथरी कल्पना अक्सर मुझे हर संकट में जड़ कर देती है। अगर माया मेरे साथ होती तो हमने अब तक कोई न कोई क़दम ज़रूर उठा लिया होता। माया को पुकारने की ख़्वाहिश हुई लेकिन मैं जानता था मेरी पुकार उस तक पहुंचेगी नहीं। मैंने आंखें मूंद कर उन बच्चों को माया के पेट पर लेटे हुए देखा, माया की ममता की तस्वीर देखी, उन बच्चों को बडे होते देखा, लेकिन उन्हें उठा कर अपने डेरे पर ले जाने की हिम्मत नहीं हुई। कुछ देर बाद जब मैं माया के साथ जा लेटा तो उसने सोये सोये कहा—तुम उन तीनों को वहीं छोड़ आए? मैं चौंक उठा लेकिन मेरे मुह से चीख नहीं निकली।

उस लड़के ने साइकल की तरफ़ इशारा करते हुए कहा—आप इस पर सवार हो जाइए, हम उन्हें और सामान को ले कर वहां पहुच जाएंगे, कार में।

मुझे कुछ मालूम नहीं था वह किनको और किस सामान को ले कर कहा पहुच जाने की बात कर रहा था लेकिन मैं अपनी लाइल्मी उस पर ज़ाहिर नहीं होने देना चाहता था। ख्वाहिश हुई इतना तो पूछ ही लूं कि वह मुझे भी अपने साथ कार में ही क्यों नहीं ले जाता लेकिन मैं यह सोच खामोश रहा कि उस सवाल से शायद मेरी लाइल्मी उस पर ज़ाहिर हो जाएगी। मैं उसे बता देना चाहता था कि साइकल चलाए मुझे एक जमाना हो गया है, कि उस जमाने में भी मैं बहुत बुरा साइकलसवार हुआ करता था, कि इतने ट्रैफ़िक में तो 'वहां' पहुचने से पहले ही मै साइकल समेत कुचल दिया जाऊँगा, लेकिन मैं चुप रहा। मुझे लगा सुरक्षा खामोशी मे ही है, बोलूंगा तो पकड़ा जाऊँगा, अगर साइकल न चलायी जा सकी तो उसे कहीं फेंक दूंगा। उस लडके का लहजा असल में इतना कसा हुआ था कि कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई। और मुझे यह डर तो था ही कि अगर आनाकानी की तो वहीं छोड़ दिया जाऊँगा। वहीं छूट जाने से 'वहां' पहुंचना मुझे कम अप्रिय लग रहा था हालांकि अन्दर ही अन्दर यह अन्देशा तो मुझे कुतर ही रहा था कि मैं शायद 'वहां' नहीं पहुंच सकूंगा। 'वहा' के बारे में कई अनुमान मेरे मन में बार बार उठ रहे थे। उनमें से एक यह भी था कि शायद उस साइकल में कोई ऐसा गुण हो कि उस पर सवार होते ही मैं अपने आप 'वहा' जा पहुंचूंगा। हो सकता है, मैं सोच रहा था, कि वह साइकल मुझे इसीलिए दी जा रही हो। आने को तो मुझे यह खयाल भी आया था कि इतने बरसों बाद इस उम्र में साइकल चलाने मे शायद मुझे मज़ा भी आए, पुरानी यादें जाग उठें।

जो हो साइकल मेरे या मुझे साइकल के हवाले कर वह लड़का ग़ायब हो गया तो मैं केरियर पर अपना सामान बाँधने में जुट गया। उस समय तक सामान की समस्या की तरफ़ मेरा ध्यान नहीं गया था। शायद मैंने समझा हो मेरा सामान भी बाक़ी सामान के साथ कार में ही रखवा लिया जाएगा। नहीं, यह ठीक नहीं क्योंकि उस लड़के के ग़ायब हो जाने के बाद ही मुझे अपना सामान नज़र आया था। वह सामान इतना बेढब सा था कि उसे केरियर पर बाँधने में मुझे बहुत मुश्किल हो रही थी। उस सामान को वहीं छोड़ देने का खयाल आना चाहिए था लेकिन नहीं आया। सामान को फेंक या छोड देना आसान नहीं। होता तो सब लोग बेकार का सामान इधर से उधर और उधर से इधर ढोते नजर न आते। सामान कितना

ही बेकार क्यो न हो हम आखिर तक उसे ढोने मे लगाए रहते है। उसी तरह जैसे जीवन को, वह कितना ही निस्सार क्यों न हो।

केरियर पर सामान बाधने की कला मुझे नहीं आती, इसलिए मैं केरियर से और सामान से कुश्ती सी किये जा रहा था और महसूस कर रहा था जैसे कोई अपने आप से लड़ झगड रहा हो। सामान सामान की पेरोडी सा दिखायी दे रहा था, इसीलिए बार बार खुल बिखर जाता था—एक लिहाफ में लिपटा हुआ कूड़ा . कागज़ो की मुचड़ी हुई गेंदें, एक टूटा हुआ छाता, एक कुबड़ी छड़ी, एक लोटा, पांच सात मुड़ी तुड़ी पुस्तकें, एक काली अंगिया, तीन खस्ता तस्वीरें, बालों का एक गुच्छा, दो खाली दवातें, अनेक गुत्थियां। मेरी कोशिश तो सही ही थी—मैं सारे कूडे को उस लिहाफ़ में लपेट लपूट कर एक बिस्तरबंद सा बना कर एक रस्सी में बाध एक और रस्सी से केरियर पर बाँध देना चाहता था लेकिन कभी वह बिस्तर ज्यादा लम्बूतरा हो जाता, कभी वे दोनो रस्सिया टूट जाती, कभी साइकल खिसक कर गिर जाती, कभी कोई चीज बिस्तर के बाहर छूट जाती। मैं पागल हुआ जा रहा था। जब रस्सियां बेकार हो गयीं तो मैंने पेटी उतार कर उस से रस्सी का काम लेना चाहा लेकिन एक तो पेटी छोटी थी, दूसरे उस के बगैर मेरी पतलून नीचे खिसक रही थी। पेटी बाँध कर मैं सामान के सरहाने यूं बैठ गया जैसे कोई बूढ़ा भिखारी अपनी दम तोड़ती बीवी के सरहाने। तमाशबीनों की खिल्ली ने मेरी तन्द्रा तोड़ी। वे सब न जाने कब कहां कहां से उड़ कर मेरे इर्दगिर्द जमा हो गये थे। जब वह लडका मुझे साइकल के हवाले कर रहा था तो आस पास कोई नहीं था। मन हुआ उन से कहूं वे लोग मुझ पर हंसने के बजाय मेरी मदद करें। मदद मांगना कभी कभी उतना ही मुश्किल हो जाता है जितना कि मदद करना। खयाल आया वे मदद करने के बजाय मुझे नसीहतें देना शुरू कर देंगे, तफ़्तीश शुरू कर देंगे, मुझ पर और मेरी नियत पर शक करने लगेंगे। मैंने उन्हें नज़रअन्दाज़ करने का फैसला कर लिया। खयाल आया कि अपनी पेटी और उन टूटी हुई रस्सियों को बांध बूंध कर बिस्तर बांधने और फिर उसे केरियर से बाँधने की एक और कोशिश करनी चाहिए। पतलून ढीली हो गयी तो मैंने उसे भी उतार कर उस से रस्से का काम लेने का फैसला कर लिया। पतलून उतारने के लिए बूट भी उतारने पड़े। बूटों के तस्में निकाल कर उन्हें भी रस्सियों की तरह इस्तेमाल करने लगा तो तमाशबीन लोट पोट होने लगे। मैं उनके बीच खड़ा तमाशा देख रहा होता तो मुझे भी हंसी आ जाती, यह सोच मैं उनके बीच जा खड़ा हुआ और मुझे उनकी जैसी हंसी आ गयी। मुझे हंसते देख कुछ लोगों ने हंसना बन्द कर दिया, बाक़ियों की हसी फीकी पड़ गयी। अब मुझे अपनी हसी की खोखली खिलखिलाहट सुनायी दे रही थी और लग रहा था जैसे मैंने उन पर विजय पा ली हो। तभी एक तमाशबीन ने एक लम्बी और कड़ी सी रस्सी मेरी तरफ़ फेंक दी। पहले तो मुझे उस रस्सी पर सांप का गुमान हुआ, फिर ध्यान से देखा तो हाथ उठा कर उस आदमी का शुक्रिया अदा कर दिया। अब मुझे खतरा था कि उन में से कोई या कई आगे बढ़ मेरी मदद करने लगेंगे। इस खतरे को टालने के लिए शायद मैंने बडबड़ाना शुरू कर दिया। मैं चाह रहा था वे समझें मैं पागल हूं। पागल आदमी से या तो लोग डरते हैं या उस पर हंसते हैं। उनकी हंसी भी उनके डर की ही एक सूरत होती है। उनकी हंसी ने अब शुद्ध डर का रूप ले लिया

था। कोई आगे नहीं बढ़ा। मैने अकेले ही जैसे तैसे बिस्तर को तमाशबीन की दी हुई रस्सी से बांध लिया। पेटी पतलून जूते भी मैंने उस बिस्तर में ही खोंस दिये थे, यह सोच कर कि उनके बगैर साइकल चलाना कम कठिन होगा। वैसे भी मै उनके सामने यह मानने के लिए तय्यार नहीं था कि पतलून और जूते मैंने गलती से या घबराहट मे उतार दिये थे और अब मुझे शर्म आ रही थी। मै उन्हे सकेत देना चाहता था कि मै शर्मोहया के घेरे मे बाहर निकल गया था।

केरियर पर यह लम्बूतरा बिस्तर टिकाने बाधने मे मेरी जान निकल गयी लेकिन न मैने किसी से मेरा हाथ बंटाने के लिए कहा न किसी की हिम्मत हुई कि वह अपने आप मेरा हाथ बंटाना शुरू कर दे। सारी जद्दोजहद के दौरान मैं बराबर बड़बड़ाता चला जा रहा था क्योंकि अब मुझे अपनी बड़बड़ाहट से बल मिलना शुरू हो गया था। उधर वे सब शायद अब यह देखना चाहते थे कि एक अनाथ पढ़ा लिखा बूढ़ा पागल अपनी मदद आप कर सकेगा या नहीं। उनमें से कुछ शायद इस इन्तज़ार मे भी हों कि मैं थक हार कर उनके सामने हाथ जोड़ कहूगा, मेरी मदद करो। उनमे से कुछ शायद यह भी सोचने लगे हों कि किसी दिन उन्हें भी किसी साइकल पर अपना सामान लाद कहीं से कूच करना पड़ेगा। उनमें से कुछ को शायद अपराध बोध की मार भी महसूस हो रही हो और कुछ को मेरे सामान की दरिद्रता पर आश्चर्यमिश्रित शर्म भी। मै अपनी आदत के अनुसार उनकी सोच समझ के बारे में अनुमान लगाने के बहाने अपने बारे में अपनी सोच को भुलाने फुसलाने की कोशिश भी कर रहा था और उस लड़के को भुलाए रखने की कोशिश भी जिसने मुझे उस साइकल पर सवार हो 'वहां' पहुंच जाने का आदेश दिया था और माया को भी जो शायद उस लड़के के साथ 'वहां' के लिए रवाना हो चुकी थी। मैं यह तो भुला रहना चाहता ही था कि मुझे 'वहां' के बारे में कुछ मालूम नहीं था, इतना भी नहीं जिसके सहारे मैं 'वहां' पहुच सकू, और यह भी नही कि 'वहां' पहुच जाने के बाद मैं करूंगा क्या, मुझ से करवाया क्या जाएगा। मै कई और बातें भी भुला रहना चाहता था। अगर वे तमाशबीन न होते तो मुझे बहुत मुश्किल होती, और बहुत मुश्किल होती। उस लम्बूतरे बिस्तर को केरियर पर टिका बांध कर मै साइकल को पकड़े कुछ देर यूं खड़ा रहा जैसे कोई किसी दौड़ में हिस्सा लेने वाला साइकल सवार। यह मुद्रा मैने तमाशबीनो पर रौब गांठने के लिए ही अपनायी होगी, क्योंकि अन्दर से मैं डर रहा था कि पेडल मारना शुरू करूंगा तो बिस्तर ढीला होना शुरू हो जाएगा और कुछ ही दूर जा कर वह गिर कर बिखर जाएगा, लेकिन वहां और खड़े रहना ठीक न समझ मैने उचक कर साइकल पर सवार हो जाना चाहा—उसी तरह जैसे मेरा एक स्कूली दोस्त सरकस के मसखरे की नक़ल करता हुआ अक्सर अपनी टूटी फूटी साइकल पर सवार हो अजीबोग़रीब करतब दिखा कर सारे स्कूल को चकित कर दिया करता था। मै अपनी उम्र और अक्षमताएं उस क्षण भूल गया था, जाहिर है, सो उचकते ही मै साइकल और सामान समेत धड़ाम से गिर गया।

बिस्तर खुल कर बिखर गया, मेरी नंगी टांगें गुलेल की तरह आसमान की तरफ़ उठ गयीं। अब आधी साइकल मेरे नीचे थी, आधी मेरे ऊपर। यह कमाल कैसे हुआ, मैं कह नहीं

मकता। तमाशबीन मब न जाने कहां गायब हो गये थे। अपने अपने कामों में जा डूबे होंगे या किमी नये तमाशे की तलाश में निकल गये होंगे या कही छिपे खड़े मब कुछ देख रहे होंगे, मैं कह नहीं सकता। सर मे लगी किमी चोट का चमत्कार था या किसी और चीज का, सारा माहौल मुझे बदला हुआ महमूम हुआ। इस एहसास को मैंने यह सोच कर टाल दिया कि अचानक गिर पड़े आदमी को सारा माहौल बदला हुआ ही दिखायी देता है। ऊपर पड़ी आधी माइकल को हटा कर मैं खुद तो उठ गया लेकिन सामान उठाने का मन नही हुआ। मन तो खैर खुद उठने का भी नहीं हुआ था। मन की मानता तो वहीं पड़ा अन्त तक आसमान को ही घूरता रहता, अपनी टांगों की गुलेल उस पर दाग़े हुए, इस इन्तज़ार में कि अभी उसमें मे कोई या कई ऐमे उत्तर फूट बरसेंगे जिनके बाद मुझे तलाश और तिलमिलाहट से मुक्ति मिल जाएगी। मन को मार कर मैं उठ तो खड़ा हुआ था लेकिन मन को मार कर सामान या माइकल उठाने की हिम्मत नहीं हुई। साइकल भी अब सामान में बदल गयी थी। मैं उम सारे कूड़े को वहीं छोड़ 'वहां' के लिए पैदल चल पड़ा।

वह बुढ़िया इतनी खुश नज़र आयी कि पहले मुझे लगा शायद वह पागल हो। हर गांव में कम अज़ कम एक पागल तो होता ही है। अक्सर वह बड़ी उम्र की कोई औरत ही होती है— लुटी पिटी सी, सूखे बिखरे बालों वाली, मैले चिथड़ों मे लदी फदी, लेकिन खुश यानी पोपली हंसी हंसती हुई, अपनी हालत से बेखबर, अपनी हरकतों और गालियों से सबको हंसाती हुई। अक्सर उसे सब के बारे में सब कुछ मालूम होता है। अक्सर वह सबको खरी खरी सुनाती रहती है। अक्सर उसका पागलपन उसकी बेलगामी का ही एक रूप होता है। उस रूप से गांव वाले डरते भी हैं उसका तमाशा भी देखते हैं।

वह बुढ़िया एक पेड़ तले बैठी हुई थी। पेड़ से रंगीन चिथड़े लटक रहे थे। वे चिथड़े मेरी यादों के भी हो सकते थे। पेड़ इस बीच और बूढ़ा हो गया था, चिथड़े साफ़ और रंगीन। मेरे ज़माने में वे चिथड़े सचमुच के चिथड़े हुआ करते थे, अब वे ऐसे लग रहे थे जैसे किसी कीमती दुकान से खरीद कर लाए गए हों। मुझे उनमें खोया हुआ देख उस बुढ़िया ने पूछा— किसे ढूंढ़ रहे हो?

मैं चौंका। फिर कुछ संभल कर बोला—अम्मा, हफ़ीज़ा के घर का रास्ता बता सकती हो?

—मैं सब रास्ते बता सकती हूं।

उसकी आवाज़ जवान थी। मैंने उसे पहचानने की कोशिश की लेकिन नाकाम रहा। एक उड़ता हुआ सा शक हुआ था कि शायद वह हफ़ीजा ही हो लेकिन फिर सोचा, नहीं, हफीजा होती तो मेरे दिल में से अनायास हूक सी उठ निकलती। उसने मुझे हफ़ीज़ा के घर का रास्ता बारीक सफ़ाई से बताया, हंसते हुए, जैसे उसने मुझे पहचान लिया हो। मन हुआ कि पूछ लूं लेकिन फिर सोचा, नहीं, इस बात को खामोशी से पेट में ही रहने देना ठीक होगा।

बुढ़िया के मुंह में एक भी दान्त नहीं था। उसकी खुशी का एक कारण शायद यह भी हो। कुछ बूढ़े दान्त झड़ जाने के बाद बेचारे नज़र आने के बजाए बच्चे नजर आते हैं। दान्तहीन बच्चे हमेशा ख़ुश नज़र आते हैं, और शैतान भी, और ज्ञानी भी।

—मैं इस गांव की ईची बीची जानती हूं।

उसके पोपले मुंह से 'ईची बीची' सुनकर मुझे हंसी आयी। उस हंसी मे मेरा बचपन भी खनक रहा था, मेरा बुढ़ापा भी। मैं एक उम्र इधर उधर गंवा कर उस रात न जाने कैसे किस जादू के कमाल से उस गांव जा पहुंचा था। अगर वह बुढ़िया उसी गांव की थी तो उसने

जरूर मुझे मेरे बचपन में देखा होगा। मैंने फैसला कर लिया था वह मुझ से काफ़ी बड़ी थी। उसे मुझे पहचान लेना चाहिए था। मुझे भी उसे पहचान लेना चाहिए था। शायद उसने मुझे पहचान ही लिया हो। शायद उसने भाप लिया हो मैं गुमनाम ही रहना चाहता था, इसीलिए उसने मुझ पर जाहिर न होने दिया हो कि उसने मुझे पहचान लिया था। एक मन हुआ उसे कहूं हफ़ीजा के घर तक मुझे छोड़ आए, फिर सोचा उसे मेरे साथ देख तमाशबीनों की भीड़ हमारे साथ हो लेगी। मैं तमाशा नहीं बनना चाहता था।

बुढ़िया बोली—बडे मिया, एक बार फिर बताऊ रास्ता? कहो तो साथ चलूं।

मुझे शर्म आ गयी। बुढ़िया की आखों में शरारत की चिंगारियां चमक रही थीं। मैं अब उससे हफ़ीज़ा के बारे में कुछ पूछना चाहता था लेकिन डर रहा था कि वह मेरे सवाल के जवाब में कुछ ऐसा वैसा न कह दे, यह न पूछ ले बड़े मिया तुम कौन हो, कहां से आए हो, हफ़ीज़ा के क्या लगते हो, लेकिन अगर उसने मुझे पहचान लिया था तो वह ऐसे सवाल क्यों पूछेगी। अगर पहचान लिया था तब तो और मुश्किल सवाल भी पूछ सकती थी : तुम यहा क्या करने आए हो आखिरी उम्र मे? एक पाव क़बर में लटक रहा है और हफ़ीज़ा के लिए तड़प अभी खत्म नहीं हुई। नहीं, बेहतरी इसी में होगी कि मैं कुछ न कहूं और उसके बताए हुए रास्ते पर चलता चलता हफ़ीजा के घर जा पहुंचूं। वहा पहुंच कर क्या करूं या कहूंगा? हफ़ीज़ा भी तो बूढ़ी हो चुकी होगी। शायद मुझ से भी ज्यादा। बूढ़ी प्रेमिकाओं के साथ बरसों बाद के मिलाप के जो क़िस्से मैंने कहानियों उपन्यासों में पढ़े हैं, उन से तो हमेशा मुझे गिलगिली सी बेचैनी ही हुई है, लेकिन शायद इसीलिए कि मैं उन के जादू से अछूता रहा, या शायद इसलिए कि उनमें से अधिकांश में जादू था ही नहीं, जादू की सभावना ही थी। अपने अनुभव पर किन्हीं दूसरों के बुने हुए क़िस्सों का अकुश मुझे मंज़ूर ही नहीं होना चाहिए।

मैं इन दिमागी धुन्धों में खोया खड़ा भूल गया कि वह बुढ़िया मुझे देख रही थी। उसका पोपला मुंह बराबर हिल रहा था, मानो वह किसी मनके को पपोल रही हो। शायद वह अपनी हंसी को ही पपोल रही थी। जब मैं चलने लगा तो बुढ़िया ने आंख मार कर कहा—खुदा हाफ़िज़!

बुढ़िया के डेरे से हफ़ीजा का घर ज्यादा दूर नहीं होगा। बुढ़िया को देख मेरा डर कुल मिला कर कुछ कम ही हुआ था, ज्यादा नहीं। मैं समझ नहीं पा रहा था मैं डर किस बात से रहा था। मुझे कुछ याद नहीं था कि मैं वहां पहुंच कैसे गया था। यह अनुभव अब मेरे लिए नया नहीं रहा। इधर मैं अक्सर निकट अतीत की यादों के बन्धनों से मुक्त हो गया हूं। अक्सर जिस क्षण में होता हूं उस से पहले के क्षणों में हुई घटनाओं को भूल जाता हूं या कहूं वे मेरे ज़ेहन से उड सी जाती हैं, जिस से लगातार स्वप्निल सी स्थिति में रहता हूं, जिसमें बरसों पहले की बातें तो बेतरतीब तरीक़े से याद पर झपटती रहती हैं, पास की बातें मानो पुंछ सी जाती हैं। सुनता हू मेरी उम्र के लोगों के लिए ऐसी मानसिक स्थिति असाधारण नहीं।

खैर। अब मैं हफीजा के घर की तरफ़ बढ़ता हुआ महसूस कर रहा था जैसे कोई बूढ़ा किसी पुराने मन्दिर की तरफ बढ़ रहा हो। बरसों पहले बेघर हो जाने के बाद मैं अभी तक बेघर

ही बना हुआ था। मै उस गांव में था जहां बरसों पहले मेरा घर हुआ करता था और मेरे पड़ोस में हफीजा नाम की एक सांवली लडकी रहा करती थी जिसे मै चोरी चोरी देखा करता था, जो मुझे चोरी चोरी देखा करती थी, और कभी कभी हम मुंह अंधेरे उठ कर गली मे चोरी चोरी और जल्दी जल्दी एक दूसरे को चूमचाट और नोचखसोट लिया करते थे। यह सोच कर मै सिहर रहा था—अपनी झुर्रियों और मुरझाहटों के बावजूद—और मेरी रफ्तार मे तेज़ सी उखड़न आती जा रही थी, जैसे कोई बच्चा उछलता हुआ चल रहा हो। उसकी देह की नमकीन महक अभी तक मेरे अन्दर अटकी हुई थी।

जब मैं बुढ़िया के डेरे और गांव के बीच के थोड़े से फासिले को तै करने के बाद गांव में दाखिल हुआ तो हफ़ीज़ा भी मेरे ज़ेहन से गायब हो गयी, वह बुढ़िया भी। अचानक मैंने गांव की चमक दमक को लक्ष किया और दंग रह गया। यकीन नहीं आ रहा था कि कभी इसी गांव में मेरा घर हुआ करता था। सब घर साफ़ सुथरे पुते सुते दिखायी दिये, सब लोग नहाए हुए से। मवेशी भी हृष्ट पुष्ट सन्तुष्ट नजर आए। धूल थी न धुआं। कुछ आगनों में कसी हुई करारी चारपाइयां बिछी हुई थीं, उन पर अकड़ी हुई दरियां या मोटे खेस बिछे हुए थ। सफ़ेद रंग की भरमार थी। सब लोग अपने अपने कामों में मस्त नज़र आए। किसी ने मुझे रोका न टोका। सब कुछ ऐसे तनावहीन तरीक़े से हो रहा था कि मुझे लगा जैसे किसी आदर्श गांव की खामोश फिल्म मुझे दिखायी जा रही हो। बीच बीच में अचानक महसूस होता कि मै स्पेन या यूनान के किसी गाव की सैर कर रहा था और यह भी कि वह सब जादू का खेल था जो किसी भी क्षण खत्म हो सकता था। मैं अपने आपको समझा रहा था, सोचो मत, न ही समझने की कोई कोशिश करो, जो सामने है उसमें रमो, अगर यह खेल है, जादू का खेल है, तो और भी अच्छा है, तर्क के चक्कर में मत पडो, आनन्द लो।

इस आत्मोपदेश का असर था या किसी और बात का, मैं सब कुछ भूल हफ़ीज़ा को याद करने लगा। उसकी कच्ची काली अंगुलियों का शीतल स्पर्श जिससे कोई कोई दिन शुरू होता था। उसकी आंखों का वह आ...ं जिसमें मैं अक्सर खो जाया करता था। उसका सीना जिसे छूते ही मेरी जान निकल जाया करती थी। उसके दान्त जिन पर मेरी जीभ बिच्छू की तरह लपका करती थी। उसके मुंह की महक जिसमें मुझे सारी दुनिया की खुशबूएं मिल जाया करती थीं। उसकी बांहों की बेबाक जकड। उसकी जांघो का झूठा सकोच। उसके पैरों की भाषा। यह सब और न जाने क्या क्या मेरी याद के अंधेरों में से उछल रहा था। मै उस बुढ़िया का बताया हुआ रास्ता भूल गया था लेकिन मुझे यक़ीन था कि अगर कैफ़ियत किसी ग़लत झटके या झौंके से टूट न गयी तो मै भूलता भटकता हफीज़ा तक जा ही पहुंचूंगा। फिर क्या होगा, मुझे मालूम नहीं था, न ही मैं उसके बारे में सोचना चाहता था।

हमारी एक दोस्त की दोस्त ने अपनी एक ऐसी विदेशी दोस्त के घर हमारी रिहाइश का इन्तजाम किया है जो खुद भी कहीं बाहर गयी हुई है, उसका पति भी। वह और उसका पति रहते तो एक ही घर में हैं लेकिन सोते अलग अलग हैं। उन्होंने अलग होने का फ़ैसला तो कर लिया है लेकिन अभी उस फैसले पर पूरा अमल करने के लिए तैयार नहीं, जब हो जाएंगे तो तलाक़ भी ले लेंगे, अलग अलग रहना भी शुरू कर देंगे। तलाक़ से भी उनकी दोस्ती में कोई फ़र्क़ नहीं आएगा। तलाक के बाद वे शायद फिर कभी कभी एक दूसरे के साथ सोना भी शुरू कर दें। वे दोनों अपने आपको खुशकिस्मत मानते हैं कि उनका कोई बच्चा नहीं, होता तो उन्हें अलग होने का फैसला करने में कठिनाई होती। वह पेशे से माडल है, उसका पति फोटोग्राफ़र।

यह सारी जानकारी हमारी दोस्त की दोस्त ने हमें यूं दी थी, गोया वह समझती हो कि इसके बगैर हम उस अजनबी घर में एक रात गुज़ारने से इन्कार कर देंगे। हमें उस के सुझाव पर कुछ संकोच तो हुआ था लेकिन इतना नहीं कि हम अड़ ही जाते कि हम होटल में ही रहेंगे। उसका अपना फ़्लैट सिर्फ़ एक कमरे का था जिसमें उसके इलावा उसकी बिल्ली भी रहती थी, उसका प्रेमी भी। समीरा ने हमें आश्वासन दिया था कि जोन का घर हमें पसंद आएगा, उसके बिस्तर में हमें अच्छी नींद आएगी, मीठे स्वप्न दिखायी देंगे। यह कहते हुए वह यूं मुस्करायी थी जैसे कह रही हो, मैं अपने अनुभव से यह कह रही हूं।

समीरा हमारी एक अच्छी दोस्त की अच्छी दोस्त है, इसलिए अपनी सुविधा के लिए हमने उसे भी अपने मन में अपनी दोस्त का ही दर्जा दे रखा है, हालांकि उसकी अनुपस्थिति में, उसकी सूरत हमारे ज़ेहन से ग़ायब हो जाती है, सिर्फ़ उसकी आवाज़ याद रह जाती है। हम आपस में इस विषय पर बात कर चुके हैं। शायद हमारी निगाह में उसकी सूरत में कोई ख़ास गुण नहीं। उसकी आवाज़ हमारी निगाह में निर्दोष है। सिर्फ़ उसकी आवाज़ से शायद उसकी सूरत का अन्दाज़ा नहीं लगाया जा सकता, सिर्फ़ उसकी सूरत से शायद उसकी आवाज़ का नहीं। जोन के घर में दाखिल होते ही हमने समीरा के बारे में यह सब सोचना-बोलना शुरू कर दिया था।

जोन का घर समीरा के फ़्लैट से बड़ा तो है ही, ज़्यादा साफ और सुरुचिपूर्ण भी है। माया का मुझे पता नहीं, मैं जोन के घर से उसकी सूरत और आवाज़ के बारे में अन्दाज़े लगा रहा हूं। उसकी उम्र के बारे में भी। वैसे हम जानते हैं कि जोन समीरा की ही तरह उम्र में हम दोनों

से केई बरस छोटी है। नहीं, हम जानते नहीं, लेकिन हमने माना हुआ कि जिन लोगों को हम जानते नहीं वे सब हम से कई बरस छोटे हैं।

माया इस वक़्त ग़ुसलख़ाने में है। उसे वहां काफ़ी देर लगेगी। पहले वह उस साफ़ सुथरे ग़ुसलखाने को और साफ़ सुथरा करेगी, फिर नहाएगी। निकलते ही मुझे नहाने पर मजबूर करना शुरू कर देगी, और जब मैं आखिर मजबूर हो जाऊंगा तो कहेगी, तौलिया अपना ही लेना। मैं ग़ुसलख़ाने में चला तो जाऊंगा लेकिन नहाऊंगा नहीं, हाथ-मुंह-पैर वग़ैरह धो लूंगा लेकिन पूरा नहाऊंगा नहीं। और जब मेरे बाहर निकलते ही वह मुझे कोसना शुरू कर देगी तो कह दूंगा—मैं पुराने असूलों का पाबन्द हूं, किसी अजनबी विदेशी औरत के गुसलखाने में नंगा नहीं हो सकता। माया को हंसी आ आएगी और मुझे महसूस होगा मेरा असली घर उसी हसी में है।

मैं यह सब सोच ही रहा होता हूं कि मेरी निगाह किताबों की एक अलमारी के सहारे खड़ी एक तस्वीर पर जा टिकती है। मेरी सांस रुक जाती है। तस्वीर एक नगी औरत की है। वह लचीली सी खड़ी एकटक मुझे देख रही है। उसके होंठ आधे खुले हैं, बाल सारे, टांगें एक दूसरी का सहारा सा लेती हुई महसूस होती है, उरोज चौकस हैं, नाभि पेट की आंख सी नज़र आती है, आंखें बादामों सी, पैर सकुचाए हुए, कन्धे आत्मविश्वास विभोर, बाज़ू उरोजों को थाम कर यूं बन्धे हुए जैसे गोगां की एक तस्वीर में एक ताहीतन युवती के। तस्वीर रंगीन नहीं। मैंने मान लिया है कि यह तस्वीर जोन की है और टॉम की खींची हुई है और जब वे अलग होंगे तो यह तस्वीर टॉम अपने साथ ले जाएगा। टॉम आजकल शायद इसी कमरे में इसी दीवान पर सोता होगा जिस पर अब बैठा मैं जोन की तस्वीर पर जान दे रहा हूं। वह भी इस तस्वीर को निहारता होगा। शायद घन्टों। शायद कभी कभी सारी सारी रात। कई बार उसने इसे फाड या फेंक देना भी चाहा होगा। शायद कई बार फाड़-फेंक भी चुका और अगले दिन नया प्रिंट निकाल लेता हो। नेगेटिव को वह कभी नष्ट नहीं करेगा। जोन से अलग हो जाने के बाद वह सोचा करेगा यह तस्वीर उसने क्यों खींची, क्यों वह इसे अपने साथ लिये फिरता है। लेकिन बुढ़ापे में यही तस्वीर उसकी आंखों का सहारा बन जाएगी।

मैं सोच तो टॉम के बारे में रहा था, सिहर जोन के उत्तेजक जिस्म के लिए।

जब माया नहा-निखर कर उस कमरे में आयी तो मैं पूरी तरह जोन के जिस्म में डूबा हुआ था।

माया ने शायद वह तस्वीर मुझ से पहले ही देख ली थी, गुसलखाने में जाने से पहले, क्योंकि मुझे उसमें मस्त देख वह हैरान नहीं हुई। मुस्करा कर बोली—पसंद आयी?

मैंने कहा—हां, बहुत!

वह सोने के कमरे में चली गयी, मैं तस्वीर के सामने बिछे दीवान पर ही दराज़ हो गया।

जब मेरी आंख खुली तो वह तस्वीर गायब थी और जोन मेरे साथ सटी सो रही थी। मेरे मुंह से अनायास आवाज़ निकल गयी—माया!

जोन ने आंखें खोल कर कहा—आज की रात मुझे ही माया मान लो।

वह आवाज़ माया की ही थी।

मैं मुरझा गया।

जोन ने कहा—क्यों, क्या हुआ ? सिर्फ़ देखना ही चाहते थे ? तो मैं लौट जाऊं तस्वीर में ?

मैंने आंखें मींच कर कहा—नहीं!

मैंने फिर खिलना शुरू कर दिया लेकिन मैंने आंखें नहीं खोलीं।

जब हम लकड़ी का लाल जंगला धकेल कर उस आंगनबाग मे दाखिल हुए तो हमारे साथ एक माई भी अन्दर चली आयी। वह शायद चढ़ाई चढ़ते समय भी हमारे पीछे पीछे आ रही थी। मुझे उसका आभास तो हुआ था लेकिन मैंने मुड़ कर देखा नहीं था। अब उसकी तरफ देखा तो वह मुस्करा दी, और मुझे अपनी बड़ी बहन याद आ गयी जिसे गये दस बारह साल बीत चुके हैं। इस याद से मेरा चेहरा चूर चूर हो गया होगा क्योंकि मैंने देखा वह माई चुपके से मुझे पुचकार रही थी। मैं मोम हो गया। माया ने भी कुछ तो देख ही लिया होगा क्योंकि वह भी अब यूं चल रही थी जैसे वह माई भी हमारे साथ ही हो। हम कुछ ही क़दम आगे बढ़े होंगे कि एक झूलते हुए खम्बे सा एक स्वामी हमारे सामने आ खड़ा हुआ। मुझे लगा मानो वह उस आश्रम का कोई कड़ा अधिकारी हो और हम से पूछ रहा हो हम किसकी इजाज़त से अन्दर आए थे। हम ने उसे प्रणाम किया तो उसने कोई जवाब दिया न हाथ उठा कर हमारा स्वागत किया। माया का मैं कह नहीं सकता, मैंने महसूस किया जैसे हम कोई गलती करते पकड़ लिये गये हों। स्वामी की आंखें इस बीच माया पर यूं टिक गयी थीं जैसे वह उसे मन्त्रमुग्ध कर रहा या खुद मन्त्रमुग्ध हो गया हो। उसकी टकटकी को तोड़ने के लिए मैंने कहा—स्वामी जी, हम माई को लाए हैं, आश्रम में भरती करवाने। स्वामी का ध्यान मेरी बात से नहीं बदला तो मैंने माया की तरफ़ देखा। वह बुत सी बनी खड़ी दिखायी दी तो मैं घबराया। साधु-स्वामियों के बारे मे मेरे सारे सोये हुए पूर्वग्रह फिर जाग उठे। माया के अनुरोध पर ही मैं उस आश्रम को एक बार देख लेने पर राजी हो गया था। सिर्फ़ अनुरोध पर ही नहीं बल्कि उसकी धीमी सी धमकी पर कि अगर मैं न माना तो वह किसी दिन अकेली ही चल देगी क्योंकि उसका जी घर और घर की तलाश से उचाट हो गया था। वहां खड़े खड़े कई उल्टे सीधे अनुमान और विकल्प मेरे मन में उठे और मैंने उन सब को मसल दिया। आखिर मैंने वही किया जो मैं ऐसे अवसरों पर अक्सर किया करता हूं . मैंने मान लिया कि सारा दोष मेरी ही दृष्टि का था, मैं ही गलत सोच समझ रहा था, मुझे मन ही मन स्वामी और माया से मुआफ़ी मांग लेनी चाहिए।

इस खामोश फ़ैसले के बाद भी यह समस्या तो तनी ही रही कि उन दोनों को एक दूसरे से अलग कैसे किया जाए, स्वामी की टकटकी को तोड़ा कैसे जाए। मैंने माई की तरफ़ देखा। वह अब भी निर्विकार भाव से मुस्करा रही थी और मेरी बड़ी बहन सी नज़र आ रही थी। फिर मैंने इधर उधर देखा। हमारे और फूलों पौधों पेड़ों के सिवा कुछ वहां नज़र नहीं आया। खयाल आया सब लोग उस समय प्रार्थनारत होंगे, इसीलिए उस स्वामी ने हमें वहां रोक

लिया होगा, और माया और माई ने यह बात समझ ली होगी, इसीलिए वे दोनों सहज थीं, मैं असहज। इस अन्दाज़े से कुछ आराम मिलने ही वाला था कि फिर खयाल आया कि अगर इतनी सी ही बात होती तो स्वामी की आखें बन्द होतीं, माया को मूर्छित कर देने की कोशिश न कर रही होतीं, और माया खुद इस तरह बेखुद न हो गयी होती। मै फिर अपने सन्देह के मकड़जाल में फंसने जा रहा था। इस इन्तहा पर मुझे कम से कम इस तुच्छता से तो ऊपर उठ ही जाना चाहिए। माया ने अपनी बेख़ुदी के बावजूद मेरी घबराहट देख ली होगी और वह उस पर अन्दर ही अन्दर मुस्करा भी रही होगी। मैंने फिर मकड़जाल से बचने के लिए मुंह खोला—स्वामी जी, हम...।

स्वामी ने हाथ यों उठाया जैसे मुझे थप्पड़ मारना चाहता हो लेकिन असल में वह मुझे खामोश रहने का आदेश ही दे रहा था, मानो वह डाक्टर हो, किसी मरीज का मुआइना कर रहा हो, और मैं मरीज़ का बातूनी पिता या पति। इस अटपटी कल्पना के आलोक में मैंने देखा वह सचमुच एक तरह से अपने तरीक़े से माया का मुआइना ही कर रहा था, उसके तन का ही नहीं मन का भी, और माया एक अच्छी आस्थावान मरीज की तरह प्रस्तुत खड़ी थी, जैसे अकेली ही आयी हो और मुआइना करवाने के लिए ही। मन हुआ उसे कुहनी मार कर याद दिलाऊं कि मैं भी उसके साथ आया था और अब वह माई भी हमारे साथ थी। कुहनी मारने की बात बचकाना लगी, लगा जैसे वैसी बात उस आध्यात्मिक माहौल में मुझ जैसे नास्तिक को ही सूझ सकती थी। मेरा सर झुक गया। मैं अपनी सारी उथल पुथल के बावजूद या कारण खुद प्रार्थना करने के लिए तैयार हो गया था, भले ही यह साफ नहीं था कि किस से क्या प्रार्थना करूंगा।

प्रार्थना तो खैर मैं नहीं कर सका लेकिन आंखें बन्द कर लेने के बाद कुछ संभल ज़रूर गया। आख़िर मुझे क्या फ़र्क़ पड़ता है। मुझे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ना चाहिए। हो सकता है इसमें भी कोई भलाई छिपी हुई हो। हो सकता है माया को ऐसे ही किसी आध्यात्मिक मुआइने की ज़रूरत हो, यहां आना वह इसीलिए चाहती रही हो। हो सकता है उसने इस स्वामी को या इस स्वामी ने उसको किसी रूहानी स्वप्न में देखा हो। मैं खुद आजकल स्वप्नों के सहारे ही चल रहा हूं, अगर माया ने भी यही करना शुरू कर दिया हो तो मुझे एतराज़ क्यों? हो सकता है इस मुआइने के बाद यह स्वामी हम दोनों से कह दे : जाओ अब तुम्हें तुम्हारा घर काटेगा नहीं, तुम्हें बार बार घर का रास्ता नहीं ढूंढ़ना पड़ेगा, घर की तलाश नहीं करनी पड़ेगी, जाओ अब जहां चाहोगे घर बना सकोगे, अब तुम्हारे घर के अंधेरे में अशान्ति का धुआ नहीं होगा, अपूर्णता की घुटन नहीं होगी, जाओ अब आखिर तक तुम एक दूसरे के साथ खुश रहोगे, तुम्हारे जी कहीं से उचाट नहीं होंगे।

अंधेरे में आंखें बन्द किये खड़ा मैं इन्तज़ार कर रहा था कि स्वामी के खांसने या हंसने की आवाज़ आएगी तो मैं आंखें खोल दूंगा, और डर रहा था कि स्वामी और माया मुझे वहीं छोड उस विशाल आश्रम में गायब हो जाएंगे और मैं किसी से कोई शिकायत या पूछताछ नहीं कर सकूगा। इस डर से पीछा छुड़ाने के लिए मैंने आंखे खोल दीं और देखा स्वामी उसी तरह टकटकी बान्धे खड़ा था, माया उसी तरह बुत बनी, और हमारे पीछे खड़ी वह माई उसी

तरह मुस्करा रही थी और मुझे मेरी बड़ी बहन सी दिख रही थी। स्वामी की लम्बाई और उसकी टकटकी की लम्बाई में कोई सम्बन्ध खोजता खोजता मैं इस अनुमान पर पहुंचा कि माया भी एक तरह से एक तरीक़े से स्वामी का मुआइना ही कर रही थी। इस अनुमान के बाद मैं अपनी नज़र में भी अनावश्यक हो गया, कुछ क़दम पीछे हट माई के पास जा खड़ा हुआ। माई खड़ी खड़ी सो गयी दिखायी दी। मैं उसके और पास सरक गया ताकि अगर वह गिरे तो मैं उसे संभाल सकूं। हो सकता है माई के पास खड़े खड़े मुझे भी ऊंघ आ गयी हो लेकिन जब मैंने स्वामी को लम्बे लम्बे डग भरते अपनी तरफ़ आते हुए देखा तो मैं सजग और सीधा हो गया। माया का रुख भी अब हमारी तरफ़ था। उसके चेहरे पर स्वामी का कोई साया मुझे दिखायी नहीं दिया। स्वामी ने झुक कर माई के चरण छूए तो मुझे लगा जैसे सरकस का कोई कलाबाज़ अपने करतब दिखा रहा हो। इस बेतुकी उपमा पर भी मुझे हैरानी हुई और स्वामी की चरणवन्दना पर भी। इस भाव को मज़ाक में लपेट कर मैंने कहा —स्वामीजी, मैं भी हूं। स्वामी ने मुझे यों देखा जेसे कह रहा हो, तुम्हारा होना न होने के बराबर है क्योंकि तुम नास्तिक हो। मेरे प्रति उसकी बेरुखी मेरी समझ में तो आ गयी, मुझे सुहायी नहीं। मेरा मन रो देने को हुआ। मेरा खयाल था माया मेरे पक्ष में कुछ कहेगी। वह खामोश रही। माई ने शायद मेरी खिन्नता को भाँप लिया था। वह मुझे सहारा देने के लिए या मुझ से सहारा मांगने के लिए मेरे साथ सट गयी थी। मैं कह नहीं सकता लेकिन उसके ढीले से स्पर्श से मुझे स्वामी की उपेक्षा सहने की शक्ति मिली। मैंने माई के कन्धे पर हाथ रख कर कहा—चलो अब आश्रम को देखने चलते है। उसी क्षण मुझे यकीन सा हो गया कि माया और मैं तो वहां सिर्फ़ सैर करने के लिए ही आए थे, माई ज़रूर वहीं रह जाना चाहती होगी। मैंने उसकी सहायता करने का फैसला मन ही मन कर लिया।

इस बीच वह स्वामी वहां से ग़ायब हो गया था। मैंने माया से नहीं पूछा वह कहां गया था। उसे भी शायद ही मालूम होता लेकिन मुझे यह बात अखर रही थी कि जब स्वामी उसे घूर रहा था तो वह बुत बनी खड़ी रही थी। कोई और उसे उस तरह उतनी देर घूरता तो वह ज़रूर उबल पड़ती, अगर मैंने वैसा किया होता तो भी। मुझे नर्माने के लिए ही मानो माया ने माई के दूसरे कन्धे को थाम लिया था। अब माई क़दम क़दम हमारे साथ आश्रम के दफ़्तर की तरफ़ बढ़ रही थी। उस दफ़्तर को मैंने पहले नहीं देखा था। वह स्वामी अगर वहां बैठा नज़र आया तो मैं फिर सोच और सन्देह के भंवर में जा गिरूंगा। मैंने सुझाव दिया क्यों न अन्दर जाने से पहले थोड़ी देर गंगा किनारे घूम आएं। अन्दर से मेरा मतलब आश्रम की किसी इमारत से था—आश्रम कई छोटी बड़ी इमारतों में बंटा हुआ था जो सब बाहर से सादा और सुन्दर नज़र आ रही थीं। माया और माई ने मेरे सुझाव पर कोई एतराज न उठाया तो हम गंगा की तरफ़ मुड़ गये जो वहा से ज्यादा दूर नहीं थी, आश्रम के ही एक सरसराते हुए अंगसरीखी थी।

गंगा किनारे चलते चलते कुछ देर के लिए मैं सब कुछ भूला रहा, हवा और पानी और आकाश में मस्त रहा, फिर मैंने माई से पूछा उसे कैसा लग रहा था। माई खामोश रही तो मुझे अच्छा लगा। माया बोली, देर हो रही है, अब अन्दर चलना चाहिए। जब हम वापस

आगन मे पहुंचे तो माई ने कहा, मुझे गगा किनारे चलना बहुत अच्छा लगा। माया का मुझे मालूम नहीं, मैं माई की आवाज सुन चौका—उमकी आवाज मे मुझे अपनी बड़ी बहन की आवाज सुनायी दी। जाने मे पहले वह गंगा में डुबकी लगाने की बात कई दिनों तक यों करती रही थी जैसे यही उमकी आखिरी कामना हो। तब वह अस्पताल में थी, हर वक्त गुनगुनाती रहती थी—रामायण की चोपाइयां, मीरा के भजन, फिल्मी गीतों के टुकड़े, और अपनी कच्ची कविताएं जिन में मे उसका लुटापिटा जीवन यों झिलमिलाता था जैसे चिथड़ो में से किसी भिखारिन का जरा हुआ जिस्म। उसकी आंखों से पहचान तब उड चुकी थी। उसके चेहरे पर किसी मुर्दे के चेहरे जैसा कोरापन कब्जा जमा चुका था। उसकी आवाज़ उस पार से आती सुनायी देती थी। मुझे मालूम था वह मर रही थी। शायद उसे भी। औरों का मुझे पता नहीं। डाक्टर आखिर तक कहता रहा था—बहन जी ठीक हो जाएंगी।

मुझे खोया हुआ देख माया ने कहा, अब अपने लिये कमरा देख ले। यह कह कर वह एक इमारत की तरफ चल दी। शायद उसी में आश्रम का दफ़्तर था। मैंने माई से कहा, थोड़ी देर यहीं बैठ जाते है, थकावट हो गयी होगी। मैं बोल ही रहा था कि माई ढेर होती दिखायी दी। मैंने जल्दी से झुक कर उसे थाम लिया और उसके सर को अपनी गोद में ले बैठ गया। उसकी आंखें खुली थीं, होंठो पर मुस्कराहट खिली हुई थी। मुझे लगा वह कह रही थी, घबराओ नहीं, जो हो रहा है ठीक ही हो रहा है। मैं घबरा तो नहीं रहा था लेकिन हैरान जरूर हो रहा था—माई के चेहरे में मुझे अपनी बड़ी बहन का चेहरा साफ़ दिखायी दे रहा था। माया को शायद उसी स्वामी ने अन्दर कहीं फिर बुत बना दिया था। मैंने माई को माथे पर चूम लिया और कहा, थोडी देर के लिए सो जाओ। उसने आंखें बन्द कर लीं। उसकी मुस्कराहट कुछ देर तक खिली रही फिर वह भी बन्द हो गयी। मुझे महसूस हुआ जैसे मेरी बड़ी बहन दोबारा मर रही हो—अबकी बार अपनी मर्ज़ी से, अपने तरीक़े से, गंगा के किनारे, मेरी गोद में सर डाले।

हवा थी, आकाश था, कुछ आलोक भी था, सूरज चांद सितारे नहीं थे, पेड़ थे, परिन्दे नहीं थे, वह थी, साफ़ नहीं थी, मैं उसे पहचानने की कोशिश कर रहा था, नाकाम हो रहा था, सोच रहा था अब सूरतें भी स्मृति से फिसलने लगीं, वह कुछ दूर खड़ी थी, दुलार रही थी, किसी नटखट नर्तकी की तरह, अवस्त्रा, मै सोच रहा था हिन्दुस्तानी नर्तकी अवस्त्रा होती है तो भी अवस्त्रा नहीं होती, हया का पारदर्शी चोला पहन लेती है, मेरी आखें तरल हो गयी थीं, मैं उन्हें बन्द कर लेता तो मेरे गाल भीग जाते, मैं सोच रहा था इस साफ़ सन्नाटे को अगर किसी आवाज ने तोड़ दिया तो अनर्थ हो जाएगा, फिर मुझे कुछ हुआ और मैंने एक कुलांच सी मार कर उसे पकड़ लेना चाहा, शायद मैं उसे छू कर छोड़ देना चाहता था, शायद मैं उसे मार डालना चाहता था, शायद मैं उसमें गुम हो जाना चाहता था, शायद मैं यह देखना चाहता था कि वह है भी या नहीं, शायद मैं उससे पूछना चाहता था वह थी कौन, शायद मैं उसे बताना चाहता था मैं नही जानता मैं कौन हूं, शायद मैं उसे अपना कोई ऐसा रूप दिखा देना चाहता था जो खुद मैंने कभी नहीं देखा था, शायद मैं यूंही उखड़ गया था, शायद मेरी कुलांच अकारण थी, लेकिन वह मेरी पकड़ में नहीं आयी, महसूस हुआ जैसे उसने उस दृश्य को किसी घटिया रूमानी फिल्म की प्रणयलीला में बदल दिया हो, मुझे निराशा हुई, मैं मुह फेर कर बैठ गया, काफी देर बैठा रहा, आवाज़ आयी, आंखें बन्द कर लो और मुंह खोल दो, उस आवाज से कोई अनर्थ नहीं हुआ था, मैंने आंखे बन्द कर लीं और मुंह खोल दिया, दूध की धार पहले मेरी एक आंख पर पड़ी, मेरी दोनों आखें खुल गयी लेकिन मुंह बन्द नहीं हुआ, दूध पर अमृत का गुमान हुआ, धार पर सूई का, मुझे धार की आवाज़ सुनायी दे रही थी, उसे शायद मेरे दूध निगलने की, वह अब मुझ से एक हाथ की दूरी पर खड़ी मुस्करा रही थी, उसकी मुस्कराहट में वैसा ही माधुर्य था जैसा दूध पिलाती किसी भी औरत की मुस्कराहट में होता है, मेरे चेहरे पर शायद वैसी ही तृप्ति जो दूध पीते किसी भी मर्द के चेहरे पर, उसका वक्ष मुझे चुन्धिया रहा था, उसका दूध मुझे मदहोश कर रहा था, माया का यह रूप तो मैं घर की तलाश में खोए रहने के कारण भूल ही गया था।

उस पराए शहर के पराए शोर और अन्धेरे में मैं उसकी तलाश में मारा हारा भटक रहा था और महसूस कर रहा था जैसे कोई शरीर अपनी आत्मा को ढूंढ़ रहा हो।

आस पास बिखरी खड़ी अनेक अजनबी इमारतें थीं, अपरिचित इनसान थे, सुन्दर सड़कें थीं, असंख्य सम्भावनाएं थीं, अदृश्य संयोग थे लेकिन मेरी आंखें कहीं टिक रही थीं न मन।

किसी से उसके बारे में कोई बात करने का खयाल बार बार आता और चला जाता, क्योंकि मैं जानता था कोई उसके बारे में कोई भी बात सुनने के लिए राज़ी नहीं होगा।

घबराहट और थकान के कारण मैं निढाल हो चुका था। ख़ुद मुझे अपने आप से बेहद बू आ रही थी, वैसी जैसी खोये हुए लोगों से ही आती हैं, उन से जिन्हें उनका कोई अजीज़ किसी अजनबी भीड़ में अकेला छोड़ ख़ुद कहीं और भाग गया हो, उन से जिनकी लाचारी उनकी आंखों से रिस रही हो, उनसे जिन्हें देखते ही पता चल जाए कि उनका कोई अता पता नहीं, कि उन्हें मालूम है उनका कोई अता पता नहीं। उस बू में पसीने और पराजय की बू भी शामिल थी।

मुझे यह डर भी था कि कोई क़ानूनपरस्त शक्की अजनबी मुझे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर देगा। मेरे पास सारे काग़ज़ात थे न ज़्यादा पैसे। किसी को मेरी किसी बात पर यक़ीन शायद ही आता। ख़ुद मुझे अपनी हालत पर तरस तो आ रहा था, यक़ीन नहीं। मेरी सूरत देख किसी को भी मुझ पर कई शुबहे हो सकते थे। लेकिन वहां किसी को मेरी सूरत देखने की फ़ुरसत नहीं थी। सब अपने अपने ख़यालों और साथियों में डूबे नज़र आते थे। मुझे सुरक्षित महसूस करना चाहिए था, ख़ुश होना चाहिए था, लेकिन मैं बेचारा महसूस कर रहा था, चाह रहा था कोई मुझ से पूछे मैं क्यों इतना बेचारा महसूस कर रहा था, पूछने के बाद भले ही मुझ पर शुबह करे, मुझे पुलिस के हवाले कर दे।

अगर वह मेरे साथ होती तो हम उस शहर की सैर कर रहे होते, तस्वीरें खीच रहे होते, कहीं बैठे कुछ खा पी रहे होते, अपने शहर को याद कर रहे होते, सोच रहे होते फिर कभी शायद ही हमें उस शहर की सैर का अवसर मिले।

अगर मुझ से कोई संगीन भूल न हुई होती तो वह गुम न हो गयी होती। वह गुम नहीं हुई थी, मुझे छोड़ कर चली गयी थी। उसने मुझे बताया तो नहीं था, संकेत कई दिये थे। इसलिए भी मैं किसी से उसके बारे में कोई बात करने को तैयार नहीं हो पा रहा था। क्या कहूंगा? वह मुझे छोड़ कर चली गयी है? तो क्या हुआ! दुनिया तो नहीं छोड़ी उसने!

इतनी समस्याएं हैं संसार में—भूख, शोषण, अकाल, एड्ज, मूल्यो का विघटन, कालों गोरों की लड़ाई, सोवियत संघ का टूटना, साम्यवाद का पतन, विचारधारा का अन्त, उत्तराधुनिकता का आतंक, तीसरी दुनिया की अंगड़ाइयां—और मै एक औरत के लिए रो रहा हूं। आत्मरत बूर्यवा बीमारों से हमें कोई हमदर्दी नहीं।

जिसको कोई छोड़ जाए उस पर लोग जिस क़िस्म का तरस खाते है उसमें तिरस्कार की मात्रा बहुत ज़्यादा होती है। और फिर वहा तो वैसे भी सब पराए थे, उन्हें क्या दिलचस्पी हो सकती थी एक हारे हुए बदबूदार इनसान में! उन्हें तो शायद गुस्सा ही आता, नहीं, झुंझलाहट ही होती, नहीं, घृणा ही होती।

मुझे उनके गुस्से या झुंझलाहट या घृणा की चिन्ता नहीं होनी चाहिए थी, लेकिन हो रही थी, जैसे किसी का घर जल रहा हो और उसके पांव मे काच कांटा चुभ जाए और उसे घर जल जाने के बड़े दुख के साथ वह छोटी चुभन भी महसूस हो रही हो।

हम उस शहर में भी शायद घर ढूंढ़ने के लिए ही गये थे। शायद वह मुझे छोड़ न गयी हो, सिर्फ गुम हो गयी हो, या शायद अकेली घर ढूंढ़ने निकल गयी हो। मैं अपने आपको तिकल-तसल्लियों से बहाल करने की बेकार कोशिश कर रहा था।

कभी कभी तो यूं महसूस होता जैसे वह कभी मेरे साथ थी ही नही, या उसने तो न जाने कब से मुझे छोड दिया था, और मैं ही अपनी किन्हीं कमजोरियो के कारण उसके साथ चिपका हुआ था।

कभी कभी तो मैं अपने आपको समझाता कि उसने मुझे छोड कर मुझे आत्मनिर्भर होने का मौका दे दिया था, इसलिए मुझे खुश होना चाहिए था। लेकिन मैं खुश नहीं था, शुक्रगुजार नहीं था, मुझे आत्मनिर्भरता मन्ज़ूर नहीं थी, मुझे कोई मौक़ा नहीं चाहिए था, मुझे वही चाहिए थी जो मुझे छोड़ गयी थी और जिसकी सूरत भी मेरी याद से फिसली जा रही थी।

सब से ज़्यादा परेशान मैं इस खयाल से हो रहा था कि अगर मुझे उसका हुलिया बयान करना पड़ जाए तो मैं हाथों के तोते बनाता उड़ाता रह जाऊंगा, बयान कुछ नहीं कर सकूंगा, या जो बयान करूंगा उसमें से उसका तो क्या, किसी भी औरत का हुलिया नहीं उभरेगा, और सुनने वाला समझेगा कि मै किसी मनघड़न्त मूर्ति को साकार करने की बेकार कोशिश कर रहा हूं। और अगर किसी को उसके साथ अपने सम्बन्ध का संक्षिप्त सार देना पड़ता तो भी मेरे मुंह से अनाप शनाप ही निकलता जिस से हमारे सम्बन्ध की कोई तस्वीर न उभरती।

साधारण स्थिति में भी मैं साफ़ साफ़ कुछ बयान नहीं कर पाता, उस वक़्त तो स्थिति भी असाधारण थी, मेरी हालत भी।

अगर किसी को बताना पड़ता कि हमारा घर कहा था और हम उस शहर मे कितने दिनो के लिए क्या करने आए थे तो भी बग़लें झांकने और हकलाने के सिवा कुछ कह या कर न पाता।

खुद मुझे अगर अपने ऊपर ग़ुस्सा आ रहा था, अपने से शर्म आ रही थी, तो परायों से मुझे हमदर्दी और मदद की उम्मीद कैसे हो सकती थी। मुझे किसी से कोई उम्मीद नहीं थी इसीलिए मेरी हालत खराब थी, मेरा दिल डूब रहा था, दिमाग़ निकम्मा हो गया था। मुझे अपने अलावा अगर शिकायत थी तो सिर्फ उससे जो मुझे उस अजनबी भीड़ में अकेला छोड़ खुद कहीं और जा छिपी थी। यह मुझ से पहली बार नहीं हुआ था। मुझे खतरा था कहीं आखिरी बार न हो रहा हो, कहीं वह सचमुच गुम न हो गयी हो, अग़वा न कर ली गयी हो, कुचल न दी गयी हो। हर क़िस्म की काली कुसम्भावनाएँ मुझे काट रही थीं। मैं खुद भी सायास कोशिश कर रहा था कि मेरा ध्यान अपनी हालत के बजाए उसकी हालत पर रहे—अगर वह मुझे छोड़ गयी थी तो भी उसकी हालत मेरे बगैर उतनी ही खराब हो सकती थी जितनी मेरी उसके बगैर—ताकि मेरी छटपटाहट को कोई दिशा मिले, मेरी शिकायतें शिथिल पड़ जाएं, मुझ में किसी से मदद मांगने की हिम्मत आए।

बीच बीच में बिजली की कौंध की तरह यह आशंका मुझे कपकपा जाती थी कि उसके ग़ायब हो या खो जाने के बाद ही वह शहर सहसा मुझे पराया दिखने लगा था। तब मैं दूसरे तमाम खतरे और ख्याल दबा कर आंखें फाड फाड़ कर इधर उधर देखना शुरू कर देता—शायद कोई इमारत या सूरत या इबारत या कचरा या पेड़ या गायें या गदागर परिचित नजर आ जाए लेकिन मेरी आंखों को हर तरफ अजनबियत ही पसरी दिखायी देती।

अब मेरी घबराहट इतनी बढ़ गयी थी कि मुझे खतरा होने लगा मैं बिलबिलाना शुरू कर दूंगा, मेरी थकान इतनी कि मुझे यकीन था मैं बिलबिला भी नहीं सकूंगा। अगर शहर बेगाना न होता या नजर न आता तो भी मैं शायद ही आसानी से किसी को अपनी बिपता के बारे में कुछ बता सकता, किसी से कोई मदद मांग सकता—अपने शहर वालों से जो शर्म आती है, जो डर लगता है, वह कम कठिन नहीं होते—लेकिन तब शायद इतनी जल्दी मेरे मन मे इतना बड़ा खतरा न उठ खड़ा हुआ होता कि वह मुझे छोड गयी थी कि वह मुझे कभी नहीं मिलेगी, तब शायद बहुत दिनों तक मै यही सोचता रहता कि वह मुझ से कोई छेड़छाड़ कर रही थी, कोई इम्तहान ले रही थी, कोई तमाशा दिखा रही थी, और जब देखेगी मेरी हालत दिगरगूँ हो रही है तो कहीं से, किसी पेड़ या पशु की ओट से, उछल कर मेरे सामने आ जाएगी, मेरी आंखों में आँसू उतर आएँगे, उसकी हंसी पीली पड जाएगी, और हमारी लीला फिर शुरू हो जाएगी।

आखिर जब मैं बिलकुल टूट गया तो एक दीवार के सहारे खडा हो याद करने लगा कि मेरी किस खता पर वह इतनी खफा हो गयी होगी कि उसने मुझे छोड़ देने का फैसला कर लिया—अब मैंने मान लिया था कि वह मुझे छोड़ गयी थी, उसी तरह जैसे कुछ लोग तंग आकर दुनिया छोड़ जाते हैं, किसी आश्रम या गुफा में जा बैठते हैं, कोई और लौ लगा लेते हैं, या किसी कुएँ में छलांग लगा देते हैं। तब मुझे याद तो कुछ नहीं आया—टूटे हुए आदमी को याद कुछ नही आता—लेकिन अपनी खामियों का एक ढेर सा जरूर नजर आ गया, और हैरानी हुई कि कैसे उसने मुझे बरदाश्त किया था, अब तक, इतने बरस, कि उसकी जगह कोई और होती तो कब की कहीं और जा बसी होती। फिर बचाव और बदले

की भावना ने अपना रंग दिखाया और मन हुआ उसकी खामियों को भी क्यों न आंक लूं, लेकिन फिर यह कामना कमीनी नजर आयी—यह वक्त अपने बचाव या उससे बदला लेने का नहीं, उसका पीछा करने का है। मैंने उस दीवार का सहारा छोड़ दिया।

अब मै उसकी तलाश में उस बेगाने शहर में भटक रहा था और उसके साथ बिताए हुए जीवन की तलाशी लेने की कोशिश कर रहा था। वह मिल रही थी न उसके साथ बिताए हुए जीवन का मर्म। कभी उसके जिस्म का कोई तिल झिलमिला उठता, कभी उसकी जली कटी का कोई जुमला, कभी किसी क्षण की कोई काली नीली खीझ, कभी उसकी आखों से फूटते हुए नूर की कोई किरण।

और आखिर—यह आखिर आखिरी है—मै एक बार के नीले अन्धेरे मे जा बैठा। अगर इस वक्त वह मुझे यहां देख ले तो नाराज भी हो सकती है, मुस्करा कर मुझे निहत्था भी कर सकती है। उसकी परस्पर विपरीत प्रतिक्रियाओं की कल्पना करता हुआ मैं पी रहा था और प्रतीक्षा कर रहा था कि पीते पीते मै उस मुक़ाम पर पहुच जाऊंगा जहां से मुझे सब कुछ साफ नज़र आने लगेगा—उसके साथ बिताया हुआ जीवन, उस जीवन का मर्म, बाक़ी बचे जीवन का जंजाल, उसके चले जाने का कारण, उसे पा लेने का उपाय। लेकिन अन्देशा यही था कि पीते पीते मैं और पिलपिला हो जाऊँगा, उसे पुकारना शुरू कर दूंगा, फिर मेज़ पर सर रख रोना शुरू कर दूंगा, और कोई नर्मदिल अजनबी औरत मेरे पास आ बैठेगी।

वह गली इतनी तंग थी कि मैं दोनों तरफ़ की खुरदरी दीवारों को बीच बीच में छूता हुआ चल रहा था। दीवारों में मानो काच और कांटे जड़े हुए हों, फिर भी उन पर हाथ फेरने में मुझे वैसा ही मज़ा आ रहा था जैसा बच्चों को कीचड़ या झाड़ियों मे हाथ मारने मे आता है। अंगुलियां छिली जा रही थीं। उन से फूटते हुए ख़ून को चूसते ममय बचपन की बेशुमार यादें चटख उठती थीं। पैरों तले गली का नाहमवार पत्थरीला फ़र्श बहुत ठंडा और नर्म महसूस हो रहा था। मकान इतने ऊंचे थे कि उनके सर झूलते हुए महसूस हो रहे थे। उन से परे आकाश की हल्की नीली सड़क उस गली से ज़्यादा तंग दिखायी दे रही थी। मैं वहां किसी शख़्स या शै की तलाश में तो नहीं भटक रहा था लेकिन क्यों भटक रहा था, मैं नहीं जानता था। भटकने की आदत बहुत पुरानी है, भटकने का अनुभव बहुत गहरा। बरसों दिन रात हर हौल की भटकन के अनुभव के बाद भी इसकी थाह मैं नहीं पा सका। इसीलिए हैरानी अभी बाक़ी है, भटकन अभी जारी है। उस गली में मैं शायद भटकने के लिए ही भटक रहा था। बेचैनी तो थी लेकिन इतनी नहीं कि बिलबिलाने की नौबत आ जाती या किसी दीवार से सर फोड़ने की। यह अन्देशा रुक रुक कर उमेठ लेता था कि कोई मकान अचानक मुझे कुचल डालेगा लेकिन इसके बावजूद मैं डगमगाता हुआ चलता जा रहा था। गली वीरान थी, मकान सब ख़ाली और बन्द। किरिको की कुछ तस्वीरों की कटी फटी यादें मुझे भरमा रही थीं। मैं रह रह कर अपना मन टटोल रहा था कि कहीं उसमें उस गली के किसी मकान में अपना घर बना लेने की कामना या किसी मकान की किसी खुली खिड़की में अदृश्य खड़ी किसी को एक नज़र देख लेने की कमजोरी तो नहीं छिपी बैठी थी। मन का अन्धेरा इतना घना था कि कुछ सुझाई नहीं दे रहा था लेकिन मैं लड़खड़ाती लौ सा उसमें भी भटक रहा था और उस तंग गली को भी नाप रहा था। महसूस यूं हो रहा था कि ज्यों ज्यों मैं आगे बढ़ रहा था, कोई और, कोई दूसरा अदृश्य, पीछे हटता जा रहा हो। भटकने वाले इस कैफ़ियत को समझ सकते हैं। गली अब मुझे एक आन्त सी लग रही थी और मैं खुद उसमें गुम हो जाने की कोशिश में जुटा हुआ एक कीड़े सा। आभास हो रहा था कि बाहर निकलूंगा तो किसी और रूप में। इस आभास पर मितिली भी आ रही थी हंसी भी।

अब कुछ अन्दाजा नहीं कि कितनी देर तक हंसते मितिलाते डगमगाते रहने के बाद मैं उस तंग गली में से निकल एक कुशादा चौक में पहुंच गया। चौक भी ऊंचे मकानों मे घिरा हुआ था लेकिन उनके मर झूलते हुए नज़र नहीं आते थे। उस चौक के आगे कुछ नहीं था। मुझे निराशा हुई। मैं दोबारा उस गली को नापना नहीं चाहता था। मेरा ख़याल था वह

गली मुझे कहीं और ले जाएगी। मुझे वह कुशादा चौक नहीं चाहिए। मुझे लगा जैसे मुझे कोई धोखा दे दिया गया हो। मैं शिकायत करना चाहता था। तभी मेरी निगाह एक मैली हरी बेंच पर जा पड़ी। मन हुआ वहीं जा बैठूं और बेंच पर बैठे किसी बेघर बूढ़े की तरह अपनी शिकायत बड़बड़ाना शुरू कर दूं। मुझे बड़बड़ाते हुए बूढ़ों से डर भी लगता है, ईर्ष्या भी होती है। मेरी बेशुमार दबी हुई दिली ख्वाहिशों में से एक यह भी है कि मैं कुछ देर के लिए पागल हो जाऊं, ऐसा पागल जो आस पास से बिलकुल बेनयाज हो, अपने में डूबा हुआ अपने से अपनी शिकायतें कर रहा हो, किसी दूसरे की हस्ती या मस्ती से आगाह न हो, अपने पागलपन से शर्म महसूस करता हो न उस पर गर्व, खतरनाक न हो लेकिन खौफ़नाक हो। मैं जानता हूं मेरी यह ख़्वाहिश कभी पूरी नहीं होगी, कि यह जल्द ही एक खास खलिश में बदल जाएगी, मेरी कई और ऐसी ख्वाहिशों की ही तरह। काश मैं यह न जानता होता। तब शायद आख़िर तक इस आशा का आसरा रहता कि कभी न कभी यह ख्वाहिश पूरी हो जाएगी। मेरी एक दबी हुई ख्वाहिश यह भी है कि मेरा जानना कम नहीं खत्म हो जाए।

खैर तो जब मैं उस बेंच के पास पहुंचा तो मुझे वहां एक भरी पूरी औरत बैठी दिखायी दी। मुझे चौंक उठना चाहिए था लेकिन मैं चुप रहा। जब मैंने उस बेंच को देखा था तब उस औरत को नहीं देखा था। अब मैं इस चक्कर में नहीं फंसना चाहता कि वह उस वक्त वहां बैठी हुई थी या नहीं, अगर बैठी हुई थी तो मुझे दिखायी क्यों नहीं दी, अगर नहीं तो अब कहां से उतर आयी। मैं यह मान लेना चाहता हूं कि मैने उसे नहीं देखा होगा लेकिन वह वहां थी। उसने इशारे से मुझे बैठने के लिए कहा तो मैं शर्माता हुआ बैठ गया। मैं सिकुड़ा हुआ सा बैठा था क्योंकि वह भरी पूरी थी और पसरी हुई बैठी थी, जैसे बाहर उस चौक में एक बेंच पर नहीं अपने घर एक सोफ़े में धंसी फैली बैठी हो, पान चबाती या शराब पीती या मालिश करवाती हुई, दरबार सा लगाए हुए, बिगड़ी हुई रईसाना शान वाली लच्छेदार औरत। उसने मेरी सिकुड़न में अपना फैलाव देख लिया होगा क्योंकि अचानक उसने हंसना शुरू कर दिया। भरी पूरी औरतें जब हंसती हैं तो उनका सारा भरा पूरा शरीर हंसता है, हिलता है, थरथराता है, छलकता है। उसकी हंसी बेआवाज़ थी लेकिन इतनी भरपूर कि उसकी आंखें पहले बन्द हुईं फिर एकदम गुम, कुछ इस तरह से कि मैं घबरा गया। खड़े होकर मैंने इधर उधर देखा। अगर कोई आसपास नज़र आ गया होता तो मैंने ज़रूर उसे आवाज़ दे कर बुला लिया होता। उसके बाद क्या हुआ, मुझे याद नहीं। शायद उसकी आंखों की तरह मैं भी उसकी हंसी में गुम हो गया। शायद उसने मुझे बेहोश कर डाला और फिर वह मुझे उठा कर उस सड़क पर छोड़ गयी जिस पर चलता हुआ मै अब मुड़ मुड़ कर पीछे देख रहा था, जहां कुछ दूरी पर एक लड़की एक बच्ची को अंगुली से पकड़े चली आ रही थी। मुझे ख़याल आया कि उसी औरत ने हंसते हंसते उन दोनों को जन्म दे कर मेरे पीछे लगा दिया होगा और खुद किसी और के पीछे पड़ गयी होगी। इस खयाल पर मुझे हंसी आ जानी चाहिए थी पर नहीं आयी बल्कि यह खयाल सही और तर्कसंगत लगा। उस लड़की से बात करने की ख़्वाहिश हुई। मैं रुक गया। जब वे करीब आयी तो मैंने लड़की से पूछा—यह बच्ची तुम्हारी है?

सवाल अनावश्यक था। वह चाहती तो मुझे झिड़क झटक सकती थी लेकिन उसने नर्म आवाज़ में कह दिया—हां।

—कितने बरस की है?

यह सवाल भी अनावश्यक था। मै अनुमान लगा सकता था कि वह पाच साल की होगी। लड़की ने फिर पहले जैसी आवाज में कहा—पांच बरस की।

—इसके पिता?

यह सवाल क्रूर और अनुचित था। वह बच्ची सब सुन रही थी।

—नहीं है।

लड़की की आवाज इस बार बहुत धीमी थी। मैं खामोश रहा। फिर झुक कर मैंने बच्ची के गाल थपथपा दिये। बच्ची के चेहरे पर कोई असर नहीं उभरा तो मैंने समझ लिया वह मुझ से खफ़ा थी, अपनी मां से भी, अपने अनुपस्थित पिता से भी। अब हम तीनों यूं चल रहे थे जैसे एक परिवार सैर कर रहा हो। उस लड़की का सर बीच बीच में मेरे कन्धो से न जाने कैसे छू जाता था, बच्ची बीच बीच में सर उठा मुझे देख लेती थी, मैं चलते चलते उस लड़की का हाथ पकड़ कर यूं दबा देता था जैसे उसे कोई आश्वासन दे दिया हो। कुछ ही देर बाद हम एक दरवाजे के सामने रुक गये। लड़की ने दरवाज़े को धकेला तो बच्ची दौड़ कर अन्दर चली गयी। दरवाजा अपने आप बन्द हो गया। लड़की अब मेरे सामने खड़ी थी, मेरी ठोड़ी उसके सर पर टिकी हुई थी, मेरी आंखें उस दरवाज़े पर। कुछ देर बाद लड़की ने फिर दरवाज़ा धकेला तो मैं ढीले क़दमों से अन्दर चला गया। लड़की अन्दर आयी तो मैंने पूछा—यह तुम्हारा घर है?

उसने कहा—यह घर नहीं।

अब मैंने देखा कि हम एक छोटे से बार में थे। वैसे बार मैंने पेरिस और बारसेलोना मे देखे हैं। मैं कुछ हैरान तो हुआ लेकिन ऊपर से मैं सहज ही रहा।

—वह कोने वाली मेज मेरी है।

हम उस मेज़ पर जा बैठे। कुछ देर बाद एक बासी सी लड़की आर्डर लेने आयी तो लड़की ने दो गिलास लाल शराब के लिए कहा। अगर मैंने आर्डर दिया होता तो मैं उस से ज़रूर पूछता वह क्या पीना चाहेगी।

उस बार मे बैठते ही मैं उदास हो गया था। उस तंग गली में चलते हुए और उस कुशादा चौक में उस भरी पूरी औरत के साथ उस हरी बेंच पर मैं बेचैन और हैरान तो था लेकिन उदास नहीं था। वह लड़की पहले ही उदास थी, बैठते ही वह और उदास दिखने लगी। लाल शराब पानी मिले खून सी लग रही थी।

—बच्ची कहां गयी?

लड़की ने एक घूंट लिया और कहा—ऊपर।

मैने नहीं पूछा ऊपर क्या था। सोचा शायद ऊपर उस लड़की का फ्लैट हो जहां कुछ पी लेने के बाद वह मुझे खाने के लिए ले जाएगी। मैं शराब खत्म किये बगैर वहा से उठ जाना चाहता था। मैं वापस उसी तग गली मे जा भटकना शुरू कर देना चाहता था। वह लडकी मेरे सामने बैठी थी। उस में भी भटका जा सकता था। अगर मै उठ कर चल दिया तो यह लडकी दोबारा मुझे नहीं मिलेगी। अचानक मुझे यह वहम सा हो गया कि वह रात इस दुनिया में मेरी आखिरी रात और वह लड़की मेरी आखिरी साथिन थी। एक साथ असह्य अवसाद और आनन्द का अनुभव हुआ। आंखों मे आंसू आ गये, होंठों पर मुस्कराहट।

—मै ऊपर जा रही हूं।

मैं उसे जाते देखता रहा। उसकी स्कर्ट के साथ मेल न खाती हुई पीली लबी जुराबो के ऊपर उसकी जाघो का निरीह पीला आलोक था। उसकी वापसी की प्रतीक्षा मे बैठा बैठा मैं वहीं मेज पर सर रख सो गया। मेरे उजड़े उखड़े स्वप्नों मे वह तंग गली तो आयी लेकिन वह लड़की आयी न उसकी बच्ची।

सफ़र जफ़र में बदल गया महसूस हो रहा था, मफ़र के साथी दुश्मनों में, गाड़ी यातना देने वाली एक मशीन में। मेरे पास सामान के नाम पर एक ढीला बन्द झोला ही था लेकिन कुछ लोग किसी न किसी बहाने से उस झोले को बार बार इधर उधर लुढ़का या फेंक देते थे और मैं गुस्सा पी कर रह जाता था क्योंकि वे सब शायद कुछ और पिये हुए थे और उन से कोई तकरार करने की ख्वाहिश या हिम्मत मुझ में नहीं थी। वैसे भी मैं अपनी एक पुरानी उलझन में फंसा हुआ था। मैं यह याद करने समझने की कोशिश कर रहा था कि मैं उस गाड़ी में बैठा जा कहां और क्यों रहा था और माया मेरे साथ क्यों नहीं थी। ऐसे सफ़र आजकल हम अक्सर इकट्ठे ही करते हैं। वह साथ होती तो हम चिन्ता कर रहे होते हम सो जाएंगे और अपने स्टेशन से आगे निकल जाएंगे, कोई हमारा सामान ले कर चम्पत हो जाएगा, हमारे टिकिट गुम हो जाएंगे, मैं टांगें सीधी करने के लिए किसी स्टेशन पर उतरूंगा और गाड़ी मुझे वहीं छोड़ कर भाग जाएगी। माया के न होने का ही असर था कि मेरा मुंह कसा हुआ था। वे लोग शायद मेरा मुंह ढीला करने के लिए ही मेरे झोले से खेल रहे थे। उस झोले में मेरे कुछ काग़ज़ और कपड़े ठुंसे हुए थे। झोले को जिप्पर न लगा हुआ होता तो सब कुछ बिखर गया होता और वे लोग शायद मेरे काग़जों को पढ़ रहे होते, मेरे कपड़ों को सूंघ रहे होते। माया साथ होती तो एक झोला और होता। वह होती तो लोग शायद ऐसी हरकतें करने की हिम्मत न कर पाते। अगर करते भी तो हम उन्हे मना कर देते। अगर वे बाज न आते तो हम मिल कर उनका मुक़ाबला करते, किसी चाल चालाकी से उनमें फूट डाल कर उनमें से कुछ को अपनी तरफ़ कर लेते, बाक़ियों के सामान पर थूकना शुरू कर देते, जंजीर खींच कर गाड़ी को खड़ा कर देने की धमकी देते, और अगर कोई तरकीब कारगर न होती तो शायद चलती गाड़ी में से कूद पड़ने की धमकी दे कर सारे डब्बे में दहशत फैला देते।

माया इतनी याद आयी कि कुछ देर के लिए मैं वियोग मे अन्धा सा हो सब कुछ भूल सा गया। लेकिन यह झूठ है। सब कुछ मैं कभी एक क्षण के लिए भी नहीं भूल पाया। माया को याद करते हुए भी मैं अपने सफ़र और अपनी मन्जिल के बारे में अपने अनुमानों की भूलभुलेय्यों में गुम होता रहा। आखिर जब बाहर आया तो मेरी निगाह एक कोने में बैठी एक कोमल औरत पर जा टिकी जिसमे मुझे माया दिखायी दे गयी और जो मुझे माया की सी नज़रों से देख रही थी। उस वक़्त भी कुछ लोग मेरे झोले को तंग कर रहे थे और मुझे सुना कर शिकायत कर रहे थे, कुछ लोगों को अपना सामान संभालने का सलीका भी नहीं आता। उस औरत ने अचानक अपनी आंखों से मेरी आंखों को चूम लिया। मेरी चिन्ता और

बेचैनी दूर होती महसूस हुई, उन लोगों की हरकतों पर हंसी आने लगी, और मैं अपनी जगह से उठ गिरता पड़ता उस औरत के पास जा खड़ा हुआ। वहां बैठने की जगह तो नहीं थी लेकिन टेक लगा कर खड़ा होने की जगह थी। उस औरत ने मेरा हाथ छू लिया तो मुझे लगा जैसे उसने मुझे अपने बदन में पनाह देने की पेशकश कर दी हो। उसका बदन मुझे एक साफ़ सुथरे घर सा जान पड़ा। मेरी आंखें अनायास मुन्दने लगीं, माया की अनुपस्थिति उस औरत की उपस्थिति में लीन होने लगी। अब यह हिसाब लगाना या देना मेरे लिए नामुमकिन है कि कितनी देर तक मैं सफ़र और हमसफ़रो को, उनकी दी हुई जहमतो को, सामान आराम मन्जिल वग़ैरह को भूल उस आलम में मस्त रहा जहां वह औरत मुझे उड़ा ले गयी थी, लेकिन जब वह तिलिस्म टूटा तो कोई कहीं से चिल्ला रहा था : किसी मुसाफ़िर का गोगो नामी पिल्ला उसे ढूंढ रहा है! मैं गोगो का नाम सुन चौंका। वह औरत अपनी जगह पर नही थी। गाड़ी रुकी हुई थी। लोग गाड़ी के आस पास इधर उधर खड़े बैठे पेशाब कर रहे थे। वह आवाज़ फिर आयी तो मैं दरवाज़े की तरफ़ लपका। गाडी एक तालाब के पास खडी थी। तालाब के चारों किनारों पर काले पिल्ले कव्वों की तरह खड़े थे। उनमे गोगो को पहचानना नामुमकिन था। फिर भी मैं गाड़ी से उतर गया, इस आशा से कि गोगो मुझे सूंघ कर दौड़ आएगा। पहले तो एक भी पिल्ला नहीं हिला फिर सब एक साथ मेरी तरफ़ यूं लपके जैसे मुझे खा ही जाएगे। मै घबराया तो बहुत लेकिन यह सोच कर कि वह औरत कही खडी सब देख रही होगी मैंने घबराहट को बाहर नहीं आने दिया। फिर मैंने गोगो गोगो पुकारना शुरू कर दिया। मेरी पुकार का असर था या मेरी नजर के धोखे का, मैंने देखा कि सब पिल्ले कव्वों में बदल उड़ने लगे थे। सब लोगों ने तालिया पीटनी शुरू कर दीं तो मै गाड़ी की तरफ भागा। गाड़ी मुझ से कई गुना तेज़ भाग रही थी।

पहली नजर में मुझे पता नहीं चलता कि मैं किसी बड़े से बेढ़ब मकान के आंगन मे खड़ा हूं या किसी छोटे से बेढ़ब झौंपड़े के सामने। धुएं और गोबर और सिकती हुई रोटियो की महक में सामूहिक भय की गन्ध भी घुलीमिली महसूस होती है। कुछ ढीली ढाली कायाएं इधर उधर डोल रही हैं, कुछ आवाज़ें इधर उधर रेंग रही हैं, अधेरा हवा के साथ इधर उधर भटक रहा है। कोई बच्चा रोता हुआ सुनायी नहीं देता। कुत्ते अगर है तो खामोश हैं। अचानक मुझे बोध सा हो जाता है कि जिस जगह में खडा हूं उस पर कहीं से कोई हमला होने वाला है। यह बोध मेरे मन के उसी काले कोने से फूटा है जिसमें से कभी कभी कुछ ऐसा ही अचानक फूट निकलता है। मेरे कान गर्म हो जाते हैं, नाखूनों से धुआं निकलता महसूस होता है, दिल दो तीन बार फड़फड़ा कर बैठ जाता है। मुझे इस वक्त अपने बिस्तर में होना चाहिए था, माया के साथ, वह परेशान हो रही होगी या शायद वह भी मेरी तरह कहीं और खड़ी ऐसे ही किसी अनुभव में से गुज़र रही होगी। उसके खयाल को दबा कर मैं फिर होने वाले हमले के बारे में सोचना शुरू कर देता हूं। अब मुझे पता चल गया है, न जाने कैसे, कि कुछ लोग इस जगह को जलाने के लिए आ रहे हैं, किसी और जगह से। वे चोरों की तरह दबे पांव आएंगे। उनके कपड़े और नक़ाब काले होंगे। दूर से वे मुझे लोक नर्तक नज़र आएंगे। उनकी बग़लों में छुरे और खंजर दबे हुए होंगे, हाथों में आग लगाने का सामान होगा, सांसों में सांप लहरा रहे होंगे।

तभी एक आदमी मेरे पास आ खड़ा होता है। अब उसके बारे में कुछ याद नहीं आ रहा, उस वक़्त वह अपना एक नौजवान अज़ीज़ नज़र आया था। हम दोनों हमलावरों से निबटने के लिए तैयारियां शुरू कर देते हैं। हमारी तैयारियां किन्हीं असली तैयारियों की नकल से ज़्यादा नहीं। हम इशारों से दूसरे आदमियों को इधर उधर भेज रहे हैं, औरतों को इधर उधर छिप जाने के लिए कह रहे हैं। बच्चे शायद पहले ही कहीं जा छिपे है। आग बुझाने के लिए पानी चाहिए होगा। मैं कहता हूं, एक कुएं से काम नहीं चलेगा, एक कुआं और चाहिए, खोदना शुरू कर दो। सब इस पर हंसना शुरू कर देते हैं, कुछ देर बाद मैं भी। अब मुझे लगता है जैसे हम हमलावरों का मुक़ाबला करने के लिए नहीं, स्वागत करने के लिए तैयार हो रहे हों। माहौल में तो आतंक का रचाव है लेकिन हमारी हरकतों से यह पता नहीं चलता कि हमें किसी से कोई खास खतरा है।

हम सब ने ढीले चोग़े से पहने हुए हैं, हमारे हाथों में एक एक मशाल के सिवा कुछ नहीं, किसी के पास कोई हथियार नहीं। हम सब यूं झुके झुके से खडे हैं जैसे किसी नाटक में

दरबारियों या दरबानों की भूमिका कर रहे हों। हम किसी का मुकाबला करने के क़ाबिल नहीं। वे लोग हमारे ही हाथों से मशालें छीन छीन कर इस जगह को आग लगा देंगे, हमें जला देंगे। शायद हम उन से मिल कर आग तापना शुरू कर दें, शायद हम अन्दर से उनके साथ मिले हुए हैं, शायद हम ही हमलावर हैं, वर्ना हम हथियारों से लैस होते, शोर मचा रहे होते, भाले और बल्लियां हवा में उछाल रहे होते, ईसाई भिक्षुओं की तरह चोग़े पहने और मशालें पकड़े एक दूसरे का मुंह न देख रहे होते! वैसे जहां तक मुझे याद आता है मुंह किसी का किसी को दिखायी नहीं दे रहा था, शायद सब अपना अपना मुंह ही देख रहे थे।

मैं सब दरवाज़े और खिड़कियां बन्द कर चुका था और सोच रहा था इस मकान में इतने दरवाजे और खिड़कियां क्यों हैं, हर रात सोने से पहले इन्हें बन्द और हर सुबह जागने से पहले इन्हें खोलना पड़ेगा तो मेरी तो अगुलियां घायल हो जाएंगी। दाहिने हाथ की अंगुलिया छिल चुकी थीं, अंगूठे का नाखून टूट गया था। इन दरवाज़ों और खिड़कियों के लिए मुझे कोई मुलाज़िम रखना पड़ेगा। मकान इतना बड़ा था कि मैं उसमें गुम हुआ जा रहा था। रौशनी नहीं थी। अगर यहां रहूंगा तो अन्धेरे में ही रहना पड़ेगा लेकिन जरूरी नहीं, रौशनी का कोई न कोई इन्तज़ाम तो होगा ही, न होगा तो किया जा सकेगा, कर लूंगा, अन्धेरे में क्यों रहूंगा, अन्धेरे में नहीं रहूंगा, इतने बड़े मकान में रौशनी के बग़ैर रहना नामुमकिन होगा। वैसे सब दरवाजों और खिड़कियों को हर रोज़ बन्द करना खोलना ज़रूरी नहीं होगा। कल फ़ैसला कर लूंगा किन्हें हर वक़्त बन्द रहने दिया जा सकता है किन्हें हर वक़्त खुला। हो सकता है दो चार को हर वक़्त खुला रखने से काम चल जाए। तब मुलाजिम की ज़रूरत नहीं पड़ेगी, अंगुलियां भी नहीं छिलेंगी, शायद रौशनी का इन्तज़ाम भी न करना पड़े, अन्दर की बू और अन्धेरा बाहर जाते रहेंगे, बाहर की हवा और रौशनी अन्दर आती रहेगी। लेकिन मैं इस मकान में आया या लाया क्यों गया? मैंने शोर क्यों नहीं मचाया? अब क्यों नहीं मचा रहा? माया मेरे साथ क्यों नहीं आयी, क्यों नहीं लायी गयी? अगर यह मकान अब मेरा हो गया है तो मैं उन चीज़ों और भूतों का क्या करूंगा जो शायद इसमें हों?

इन सवालों खयालों से पीछा छुड़ाने के लिए मैंने फिर खिड़कियों और दरवाज़ों के बारे मे सोचना शुरू कर दिया। आज मेरी यहां पहली रात है, आज तो सब खिड़कियो दरवाजों को बन्द ही रहने देना चाहिए, शायद एक बार सब को टटोल धकेल कर देख लेना चाहिए कि सब बन्द तो हैं, लेकिन अब अन्धेरा इतना घना हो गया है, अंगुलियां इतनी थक छिल चुकी हैं कि इस वहम में न ही पडूं तो बेहतर होगा, नहीं तो नींद नहीं आएगी। नींद तो शायद यूं भी न आए। इतने बड़े बेगाने मकान में अकेला हूं, नींद नहीं आएगी, लेकिन रात भर अन्धेरे में करूंगा क्या! शायद सदर दरवाज़ा खोल कर बाहर भाग जाना चाहिए लेकिन बाहर न जाने इस वक़्त क्या हो, क्या क्या हो। बाहर की असुरक्षा भीतर के अन्धेरे से और ज़्यादा ख़तरनाक जान पड़ी। एक बार सदर दरवाज़े को तो फिर से देख ही लेना चाहिए क्योंकि अगर वह ठीक तरह से बन्द न हुआ तो कोई भी बला अन्दर आ जाएगी। लेकिन सदर दरवाज़े तक पहुंचूंगा कैसे? अब सवाल उठा कि सोऊं किस कमरे में और उसको चुनूं किस आधार पर। कमरे का चुनाव इस अन्धेरे में असम्भव है, सब कमरों में मुझे एक सा डर

महसूस होगा, एक सी घबराहट होगी—यह सोच कर फैसला कर लिया कि जिस कमरे में मै उस क्षण खड़ा था वहीं पड़ रहूंगा, सुबह होने तक, चुप मार कर, आंखे मूंद कर, नींद आए न आए, नींद न ही आए तो बेहतर होगा, नीद आएगी तो दुःस्वप्न भी आएंगे, लेकिन नींद अगर नही आएगी तो ऐसे ऐसे खयाल आएंगे जो शायद दुःस्वप्नों से भी ज़्यादा खौफ़नाक हों, मगर अब किया कुछ नहीं जा सकता—यह सोच कर मैं जहा था वहीं ढेर हो गया, कुछ देर बैठा रहा, जब बैठे रहना मुश्किल हो गया तो लेट गया, यह सोच कर कि जब लेटे रहना मुश्किल हो जाएगा तो फिर बैठ जाऊंगा। फ़र्श नगा और ठडा था, सीलन जानी पहचानी थी। कुछ देर बाद अन्धेरे में एक काया डोलती हुई महसूस हुई। अन्धेरे के बावजूद मैंने उसे पहचान लिया और पहचानते ही मैं सहम गया। अब वह मेरी तरफ़ आ रही थी, कुछ इस तरह से कि मुझे लगा वह मेरे साथ सट कर लेट जाएगी। मैं उसे आगे बढ़ने से मना करना चाहता था लेकिन मेरी आवाज़ मेरे अन्दर ही फड़फड़ा कर रह गयी। मैंने आंखें बन्द कर लीं और उसके स्पर्श की प्रतीक्षा करने लगा। कुछ देर बाद आखें खोलीं तो वह सामने खड़ी मुस्कराती दिखायी दी।

उसकी मुस्कराहट में वही याचना और ममता थी जिनके कारण मैं उसके जीवन काल में हमेशा उस पर झुंझलाता रहा। मैंने आंखें फिर बन्द कर लीं। उसने मेरी आंखों को सहलाना शुरू कर दिया तो मै समझ गया वह बैठ गयी थी। उसके हाथ में वही खुरदरी हरारत थी जिस से मैं परहेज किया करता था, वही घरेलू गन्ध थी जिस से मुझे घृणा आया करती थी। मैंने उसके हाथ को झटक कर अपना चेहरा अपने हाथों में छिपा लिया, मानो मुझे अपनी हरकत पर अपने आप से ही शर्म आ रही हो। अब मुझे उसके रोने की आवाज़ सुनायी दी। उस आवाज में वही जानवराना पीड़ा बोल रही थी जो मुझे पागल कर दिया करती थी। मैंने लेटे लेटे ही पूरी ताक़त से तड़ातड़ अपना माथा पीट लिया। कुछ देर बाद मुझे लगा वह गायब हो गयी थी। मैंने आंखें खोलीं तो एक और काया सामने खड़ी दिखायी दी। मैंने उसे भी पहचान लिया। महसूस हुआ मैंने माथा पीट कर पहली काया को दूसरी में बदल दिया हो। उसकी आंखें लबालब थीं, उसके हाथ मेरी तरफ़ यूं बढ़े हुए थे जैसे वह मुझे गोद में उठा लेना चाहती हो। मैं मिमिला उठा। उसकी सूखी हुई छातियां और अपने मुरझाए हुए होठ एक साथ मेरी आंखों के सामने कौंध गये। मैंने आखें फिर बन्द कर लीं तो उसके रोने की आवाज़ मेरे कानों में खौलते हुए तेल की तरह गिरनी शुरू हो गयी और मैंने पूरे ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। कुछ देर बाद लगा जैसे दूसरी काया भी ग़ायब हो गयी हो। आंखें खोलीं तो एक और काया सामने खड़ी दिखायी दी। उसे पहचानते ही मैंने चीखना शुरू कर दिया। मेरी चीख किसी दूध पीते बच्चे की चीख की तरह तेज थी और कई तरह के डरों से अटी हुई थी।

कुछ सामान गाड़ी में रखवा कर मै कुली के साथ प्लेटफ़ार्म पर उतरता हूं तो माया बाकी सामान के पास खड़ी दिखायी नहीं देती। मैं यूं घबरा जाता हूं जैसे माया मेरा साथ छोड़ गयी हो या कोई उसे वर्ग़ला या अगवा कर ले गया हो। कुली ने मेरी परेशानी पढ़ ली है लेकिन वर्ग रेखा के कारण कुछ कह पूछ नहीं सकता। हमारे सामान के पास अब एक और औरत खड़ी दिखायी देती है। मैंने पहले उसे देखा नहीं था या वह पहले वहां थी ही नहीं, कह नहीं सकता, लेकिन उसे देख खयाल आता है माया सामान उसकी देखरेख में छोड़ कोई मैग्जीन वग़ैरह लेने चली गयी होगी। उस औरत से कुछ पूछना मुझे ठीक नहीं लगता। वह मुस्करा रही है। कुली धीरे से कहता है, साब गाड़ी छूट जाएगी। यह कह कर वह सामान की तरफ़ बढ़ता है तो मैं उसे रुक जाने का आदेश देता हूं। उस औरत की मुस्कराहट में छिपा संकेत मेरी समझ में नहीं आता। मुझे लगता है उसे मालूम है मैं माया को ग़ायब पा कर परेशान हूं और उस से कुछ पूछने में संकोच कर रहा हूं। मन होता है कुली को पास बुला कर पूछूं वह औरत कौन है। यह खयाल भी आता है कि स्टेशन के शोर शराबे के कारण मेरा ही दिमाग़ खराब हो गया है, वह औरत असल में माया ही है, इसीलिए मुस्करा रही है, मेरी परेशानी का तमाशा देख रही है, अगर कुछ देर और मैं इसी तरह खड़ा रहा तो वह खिलखिला उठेगी। कुली फिर कहता है, साब गाड़ी छूट जाएगी, फिर न कहना। उसी वक़्त गाड़ी चीख़ उठती है, मैं चौंक जाता हूं, वह औरत उसी तरह मुस्कराती रहती है, कुली सामान की तरफ़ लपकता है, मैं चिल्लाता हूं, रुक जाओ। ग़ौर से उस औरत के क़दमों में पड़े उन दो सूटकेसों की तरफ देखता हूं क्योंकि अब मेरे मन में यह शक उठ खड़ा है कि शायद वे सूटकेस उस औरत के ही हों लेकिन सूटकेस हमारे ही हैं। उनके पास जा कर एक सूटकेस की तरफ़ हाथ बढ़ाता हूं तो वह औरत झुक कर मेरा हाथ पकड़ लेती है। महसूस होता है उसने मेरे हाथ में हथकड़ी डाल दी हो। उधर गाड़ी ने सरकना शुरू कर दिया है। कुली न जाने क्या बोले जा रहा है, कभी गाडी की तरफ हाथ फैलाता है, कभी उन सूटकेसों की तरफ़, कभी आसमान की तरफ। मैं गाडी में पड़े सामान के बारे में सोच रहा हूं। खयाल आता है शायद माया गाडी में जा बैठी हो। हाथ छुडाने की कोशिश करता हूं तो वह औरत हंसती सुनायी देती है। मैं सुन्न हो जाता हूं। कुली मज़दूरी मांग रहा है। वह औरत उसके हाथ पर बीस का एक नोट रख देती है।

अब हम किसी हिल स्टेशन के एक बंगले के बरामदे में खड़े है। अन्धेरा उतर रहा है, बारिश बरस रही है, महसूस होता है अन्धेरा बरस रहा हो, बारिश उतर रही हो। हम

अन्धेरे में गुम होते पहाडों को पकड़ रहे हैं। बंगला हमारा नहीं लेकिन हम अक्सर बारिश से बचने के लिए इस बरामदे मे रुक जाते हैं, या शायद बारिश से बचने के बहाने हम यहां खड़े हो कर अन्धेरे में गुम होते हुए पहाडों को पकड़ने का खेल खेलते है। किसी ने कभी हमे रोका नहीं। किसी को कभी हमने यहां देखा नहीं। हमारा खयाल है बंगला खाली है। हमारी ख्वाहिश है बंगला खाली हो, खाली रहे। आस पास दूर दूर तक कोई बंगला नहीं, कई पहाड़ है, उन में निहित असंख्य सम्भावनाएं हैं। जब हम इस बरामदे मे होते हैं हमें महसूस होता है हम अपने घर में हैं, लेकिन हम जानते हैं दरअसल हम अपने घर मे नहीं, किसी के घर के बरामदे में हैं, लेकिन वह कोई इस बंगले को अपना घर नहीं समझता या वह इस घर को छोड़ गया है। इस बरामदे में खड़े खड़े हम इस बंगले को बनवाने वाले के बारे में अक्सर सोचते रहते हैं, कभी कभी बात भी करते हैं, लेकिन सोच ज्यादा दूर तक जाती है न बात। मेरा खयाल है इस बरामदे मे खड़े हो हम खाली हो जाते है, कमोबेश, कभी कभी इतने कि लगता है उड़ जाने को हों, इसीलिए शायद हम एक दूसरे का हाथ पकड़े रहते है। कुछ दूर से देखने वाले को हम प्रेमी नज़र आते होंगे, ज़्यादा दूर से देखने वाले को नजर ही नहीं आते होंगे। किसी ने आज तक हमें यहां खड़े देखा नहीं। न ही हम ने किसी को। इसीलिए कभी कभी हमें इस बंगले की असलियत पर भी शक होने लगता, इस बरामदे में अपनी उपस्थिति की असलियत पर भी, अन्धेरे में गुम होते हुए पहाड़ों की असलियत पर भी, असलियत की असलियत पर भी, असलियत पर भी। जब कभी ऐसी कैफ़ियत पैदा हो जाती है तो हम यहा से चल देते हैं, वैसे महसूस यही होता है किसी ने हमें यहा से चल देने का आदेश दे दिया हो।

आज हम चल देने को हो ही रहे थे कि दो आकृतियां दिखायी दीं। हम ने उन्हें आते नहीं देखा था, न ही उनकी आहट सुनी थी, इसलिए जब वह दिखायी दीं तो लगा जैसे उसी क्षण वे प्रगट हो गयी हों। औरत विदेशी नज़र आयी, मर्द अपने ही देश का।

—आपके बंगले में दो कमरे हमें किराए पर मिल सकते हैं?

मर्द की आवाज़ पिघलते हुए मोम जैसी महसूस हुई, औरत की आखें दो आशाकुंज।

वे दोनों हमारे जवाब का इन्तजार कर रहे थे, हम दोनों एक दूसरे की आखो मे शायद उसी जवाब की तलाश।

यह स्थिति न जाने कितनी देर तक रही।

कल रात में कहीं विदेश में था और खुले में खड़ा तहमद बांधने की कोशिशों में नाकाम हो रहा था और नाकामी का इल्जाम उस तहमद को भी दे रहा था, हवा और अंधेरे को भी। तहमद के सिवा उस वक़्त मेरे बदन पर कुछ था न मेरे पास, और तहमद कमर पर टिक नहीं रही थी, ज्योंही मैं हाथ हटाता वह खुल कर नीचे फिसलने लगती, और मुझे महसूस होता मानो कोई अदृश्य मसखरा मेरे साथ अश्लील मजाक कर रहा हो। हवा ज़्यादा तेज़ नहीं थी, अंधेरा घना था लेकिन उसका उस मज़ाक़ में कोई हाथ नहीं हो सकता था, बल्कि उस अंधेरे को मुझे एक नेमत समझना चाहिए था क्योंकि अंधेरा मेरे लिए एक चादर का काम कर रहा था। अगर अंधेरा न होता या झीना होता तो मै कई बार बिलकुल नंगा दिखायी दे चुका होता। वैसे मुझे देखने वाला उस वक़्त वहां कोई नहीं था, मुझे नज़र नहीं आ रहा था, फिर भी मेरा यह अंदेशा वाजिब था कि घरों और सड़कों और कारों की टिमटिमाती रौशनियों की ओट में से कोई न कोई या शायद कई मुझे देख रहे होंगे, मेरी परेशानी पर हंस रहे होंगे, सोच रहे होंगे यह बांगडू यहा आ कहां से गया, इतनी रात गये बाहर खड़ा कर क्या रहा है, इसके कपड़ों को क्या हुआ।

मैंने अब हवा और अंधेरे के अलावा अपने आपको भी कोसना शुरू कर दिया था। मुझे यहां आना ही नहीं चाहिए था। अगर आना ही था तो यहां का लिबास तो साथ ले आता। और फिर तहमद तो मैं अब अपने देश में भी नहीं पहनता। फिर याद आया कि अपने देश में अब भी गर्मियों में कभी कभी रात को या फिर किसी भी मौसम में अपने कोटे से ज्यादा पी लेने के बाद तहमद बांध कर अपने घर में ही इधर उधर गुन्डा चाल से टहलने का जुनून मुझ पर सवार हो जाता है। अपने कोटे से ज़्यादा पी लेने पर हमेशा मुझे गुज़रा हुआ ज़माना याद आने लगता है, जब आस पास क़रीब क़रीब सभी लोग तहमद बांधा करते थे, और जल्द ही मैं उस ज़माने की यादों में भटकता भटकता दीवानगी के ऐसे आलम में दाखिल हो जाता हूं जहां दूर दूर तक कोई अपना नज़र आता है न बेगाना, जहां भूत से कोई सहारा मिलता है न भविष्य से, जहा अपने कपडे किसी क़ैदी की वर्दी से दिखायी देते हैं और जी चाहता है उन्हें तार तार कर के आज़ाद हो जाऊं, और तब मुझ से कई बेहूदा हरकतें होना शुरू हो जाती हैं।

मैंने सोचा शायद इस वक़्त मैं दीवानगी के उसी आलम में हूं, और मेरा घर दश्त में बदल गया है, देश विदेश में, कपडे इस तहमद में, जिसे मैं ठीक तरह से बांध नहीं पा रहा। कभी वह आगे से इतनी उठी हुई नज़र आती है कि मैं खुद उसे खोल देता हूं, कभी एक सिरा

इतना लंबा हो जाता है कि दूसरे को खोंसना नामुमकिन हो जाता है, कभी जब और सब बराबर हो जाता है तो वह अपने आप यूं खुल जाती है जैसे किसी कमीने ने उसे खींच कर खोल दिया हो। कोई न कोई कहीं से ज़रूर मुझे देख रहा होगा और पुलिस को फोन कर देगा। अगर यह सचमुच विदेश है तो पुलिस की गाड़ी सायरन बजाती और बत्तियां झपकाती आ जाएगी और मुझे उठा ले जाएगी—आवारागर्दी और अश्लील आत्मप्रदर्शन के आरोप में। पुलिस वालों को कोई सफाई दे कर अपनी जान छुड़ाना मेरे लिए नामुमकिन होगा। सरकारी अफ़सरों और दफ़्तरों और कार्रवाइयों से तो मेरा खून दिन में भी एकदम खुश्क हो जाता है, रात की तो बात ही और है, रात को तो यूं भी मेरा हर अनुभव दु:स्वप्निल हो जाता है।

तभी सहसा मुझे ज्ञान सा हो गया कि मैं किसी दु:स्वप्न के शिकंजे में था और जब तक मैं चीखूं चिल्लाऊंगा नहीं वह शिकंजा ढीला नहीं होगा। वह तहमद उस ज्ञान के आलोक में मुझे एक साक्षात् रूपक सरीखी नजर आयी। मैंने चीखने चिल्लाने के लिए तय्यार होना शुरू किया ही था कि वह तहमद मेरे गले में किसी फंदे की तरह कसने लगी। उसी क्षण मुझे एक सिख नौजवान नजर आया। उस घटाटोप अंधियारे में उसका उतनी सफाई से नज़र आ जाना मुझे एक गैबी इशारे या पैग़ाम सा जान पड़ा। उसकी दाढ़ी में उसकी आंखें और होंठ खिले फूलों से नज़र आए। उसकी दोनों टांगें कटी हुई थीं और वह एक तिपहिया साइकल में बैठा मुस्कराता हुआ मेरी तरफ़ आ रहा था। मुझे खयाल आया, अगर यह इस वीरान विदेशी अंधेरे में अपने अपूर्ण शरीर के बावजूद इतना आलोकित रह सकता है तो मैं क्यों एक छोटी सी तकलीफ़ पर इतना तिलमिला रहा हूं। मैंने गले से तहमद का फंदा खोला, एक बार उसे हवा में पटखा और फिर आसानी से उसे बांध लिया। वह सिख फरिश्ता सर्र से मेरे पास से गुज़रता हुआ ग़ायब हो गया।

बस से उतरते ही मैंने अपने सामान के लिए तड़पना शुरू कर दिया। हड़बड़ी में मैं अपना हथैला उठाना भूल गया था। बस अभी खड़ी थी लेकिन मैं दोबारा उसके अन्दर जाना चाहता था न किसी मुसाफ़िर से कहना चाहता था कि वह मेरा हथैला मुझे पकड़ा दे। मुझे डर था कि मैं खुद पकड़ लिया जाऊँगा।

जब तक मैं उस बस में बैठा रहा था डरता रहा था कि पहचान लिया जाऊँगा और मार डाला जाऊँगा। इस डर के साथ यह कामना भी लिपटी हुई थी कि पहचान लिया जाऊँ और मार डाला जाऊँ। इस कामना के पीछे एक पेचीदा अपराधबोध काम कर रहा था। मैंने कोई जुर्म नहीं किया था, वैसा करने के लिए मुझ में हिम्मत ही नहीं थी। मेरे अधिकतर जुर्म मेरे मन में ही होते हैं। मेरा अपराधबोध इसीलिए बहुत गहरा होता है, मुझ से तरह तरह के बेहूदा काम करवाता है, मुझे कई क़िस्म के कड़े अज़ाब देता है, कहीं भी चैन से बैठने नहीं देता।

बस में बैठा बैठा डर के बावजूद मैं मन ही मन उन लोगों को गालियाँ देता और गोलियाँ मारता रहा था जिन्होंने पिछले कई दिनों से शहर में दहशत फैला रखी थी। वे चुन चुन कर अपने दुश्मनों को मार रहे थे, उनके घरों को जला रहे थे, उनकी औरतों से बलात्कार कर रहे थे। उन्होंने फ़ैसला कर लिया था, एलान कर दिया था, कि एक खास धर्म के अनुयायी उनके दुश्मन थे और उन्हें अज़ाब दे दे कर शहर से भगा देना या नेस्तोनाबूद कर देना ही उनका अपना धर्म था। ऊपर से मैं उन्हीं जैसा था, उन्हीं के धर्म का अनुयायी नज़र आता था, लेकिन अन्दर से मैं भी उनका दुश्मन ही था, क्योंकि मैं उनके साथ नहीं था, उनसे सहमत नहीं था, उनके दुश्मनों को अपना दुश्मन नहीं मानता था, लेकिन मैं कायर था, खुल कर उनका सामना करने की हिम्मत मुझ में नहीं थी। इसीलिए मुझे डर था कि उनमें से कोई मेरा मन पढ़ लेगा, मुझे पहचान लेगा। मैं चाहता था उनमें से कोई मुझे पहचान ले और मार डाले ताकि मुझे मेरी कायरता की सज़ा भी मिल जाए और एक छोटी सी, घटिया सी, शहादत भी।

मेरे पेचीदा अपराधबोध में यह सब और बहुत कुछ और ऐसे घुलामिला हुआ था कि मुझे पूरी ख़बर नहीं थी कि मेरा असली अपराध क्या था। सीधी सादी कायरता को मैं अपराध नहीं मानता। शायद मेरी कायरता सीधी सादी नहीं थी। शायद कोई भी असली कायरता सीधी सादी नहीं होती। शायद कुछ भी कभी सीधा सादा नहीं होता। या शायद मैं खुद इतना टेढ़ा हूं कि मुझे हर बात टेढ़ी नज़र आती है।

जो हो मै बस में बैठा बैठा सोचता रहा था कि उनके जासूस चारो तरफ फैले हुए होंगे, बसो मे तो खास तौर पर, क्योंकि उन्हे बताया गया होगा कि बसों मे सफर करने वाले अपने मन के चोर को छिपाए रखने में कामयाब हो जाते हैं। मैं नहीं कह सकता उनके बारे मे मेरे इस अनुमान का आधार क्या था। वैसे मैं उनके प्रचार से अपरिचित नहीं था, चोरी चोरी उनके इश्तहार वग़ैरह पढ़ता रहता था। चोरी चोरी इसलिए ताकि किसी को यह शक न हो जाए कि मैं भी उन लोगों के ही धर्म का ही अनुयायी था। खुद मुझे कभी कभी शक हो जाता था कि कहीं कायरता की आड में मैंने कुछ और न छिपा रखा हो, कुछ ऐसा जिसे मैं खुद देखना नहीं चाहता था, क्योंकि उस से मुझे शर्म आती थी, क्योंकि उसमे और मारकाट करने वालो की हिंसक हरकतो में ज़्यादा अन्तर नही था।

मैं अपनी अन्दरूनी उलझनों से तग आया हुआ था, अपनी कायरता पर शर्मिन्दा था, अपने अपराधबोध की सच्चाई पर अपने सन्देह से परेशान था, और उनकी बर्बरता से इतना सहमा हुआ था कि सास भी रुक रुक कर लेने लगा था। इसीलिए गयी रात तक बसो में घूमता रहता था, इधर से उधर, यहां वहां, जरूरी सामान का एक हथैला उठाए, हैरान होता हुआ कि बसो का चलना बन्द क्यों नहीं कर दिया गया, डरता हुआ, माया को याद करता हुआ, सोचता हुआ वह यहां होती तो और मुश्किल होती, चाहता हुआ कि उनका कोई जासूस मेरा मन पढ़ ले, मुझे पहचान ले, मार डाले ताकि मुझे दहशत से भी मुक्ति मिल जाए और अपनी उलझनों वग़ैरह से भी।

तो बस से उतरते ही मैंने देखा मेरे हाथ खाली थे और मैने अपने हथैले के लिए तड़पना शुरू कर दिया। तड़प ही रहा था कि किसी ने चलती बस में से मेरा हथैला बाहर फेंक दिया। हथैला मेरे सर पर गिरता तो सर फूट जाता। पैरो पर गिरा, चोट तो आयी लेकिन बूटों ने बचा लिया। हथैले में एक मोटा शब्दकोश और दो पत्थर तो थे ही, कुछ और चीजें भी थीं जो हथैलो में होती हैं। उनका ज़िक्र ज़रूरी नहीं। शब्दकोश और पत्थर ही मेरे हथैले को वज़न और विशेषता दे रहे थे। मै नहीं जानता मैने क्यों उन्हें वहां ठूंस रखा था, शायद इस आशा से कि अगर कोई मुझ पर टूट पड़ा तो मैं वह हथैला उसके सर या सीने पर दे मारूंगा। हर कमजोर और कायर व्यक्ति की तरह मैं भी अनायास जाबर हो जाने के सपने देखता रहता हू।

मेरे हथैले में टूटने या खराब होने वाली कोई चीज नहीं थी। हा, खाने का कुछ ऐसा सामान था जो खराब होता है न खत्म। मैं उसका जिक्र नहीं करना चाहता था लेकिन कर रहा हू, न जाने क्यों, शायद फूक लेने के लिए ही, यह जतलाने के लिए कि मुझे जीवन से नफरत नहीं। खाने के लिए मैंने एक माजून सी बना रखी थी —बस चुटकी भर खा लेने से भूख प्यास काफी देर के लिए बुझ जाती थी। जब से उन लोगों ने शहर में आतक सा मचाया हुआ था मैं किसी जगह आराम से बैठ नहीं पाता था, घर में तो बिलकुल नहीं। माया उन दिनों कहीं गयी खोयी हुई थी। मैं खुल कर उनका मुक़ाबिला तो नहीं कर सकता था लेकिन डरते डरते ही सही उनका शिकार हो जाने की कोशिश तो कर ही सकता था। बसो मे भटकता हुआ मै यही कर रहा था। शिकार और शहीद में अन्तर है, मैं जानता हूं, लेकिन हर शिकार किसी

न किसी हद तक शहीद होना है, हर शहीद किसी न किसी हद तक शिकार। मैं उस हद पर खत्म हो जाने या कर दिये जाने के लिए ही पिछली कई रातों से बसों में घूम भटक रहा था।

हथैला घसीटता हुआ मैं बादिलेनाख्वास्ता घर की तरफ़ चल तो दिया लेकिन हताशा के मारे मेरे पैर बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे। शायद मन ही मन मैं उन्हें जो गालियाँ देता रहा था, गोलियाँ मारता रहा था वे काफी नहीं थीं—पहचाने और पकड़ लिये जाने के लिए। शायद मुझे बड़बड़ाना शुरू कर देना चाहिए। उनमें से ज्यादा लोग तो शायद यही समझेंगे कि मैं गर्मी और गरदिश की वजह से पागल हो गया हूं लेकिन कुछ लोगों को तो यह शक भी होगा ही कि मैं पागल होने का बहाना कर रहा हूं और मेरी बड़बड़ाहट मेरी असहमति और बग़ावत का ही एक रूप है, और फिर वे मेरी बड़बड़ाहट की छानबीन करनी शुरू कर देंगे, मुझे खत्म कर देने का फैसला कर लेंगे। लेकिन बड़बड़ाने के लिए भी हिम्मत तो चाहिए ही, भीतर से बाहर आने की हिम्मत, जो मुझ में नहीं, कितनी बार मान चुका हूं। यही ग़नीमत है कि मेरा ग़ुस्सा नहीं मरा, उस ग़ुस्से की बदौलत मन ही मन मैं उनको गोलियाँ दागता रहता हूं, गालियां देता रहता हूं। मुझे गर्व होना चाहिए कि मारधाड़ के इस माहौल में दुबक कर घर बैठे रहने के बजाए मैं अपनी जान मुट्ठी में लिये शहर में घूमता रहता हूं। यह भी एक तरह का प्रतिशोध तो है ही।

इन्हीं ख़यालों की खाक छानता हुआ मैं घर की तरफ़ बढ़ रहा था और दुआ मांग रहा था कि उनका कोई जासूस अन्धेरे में मुझ पर झपट पड़े और मेरे हथैले से ही मुझे हलाक कर दे। मेरे बाद मेरे हथैले से बरामद हुए सामान—शब्दकोश, पत्थर, माजून वग़ैरह—से मेरे और मेरे मर्म के बारे में तरह तरह के अनुमान लगाए जाएँ, और उन अनुमानों में से एक यह भी हो कि वे पत्थर मैंने किसी पुराने मन्दिर या मस्जिद से चुराए थे और वह शब्दकोश किसी मज़हबी पुस्तकालय से और उस माजून में कई वर्जित पदार्थों का रस सूखा हुआ था और उन्हें कहीं छिपाने दफनाने के लिए ही मैं पिछली कई रातों से बसों में भटक रहा था।

उसने अचानक कार रोकी तो हम दोनों के सर सामने के शीशे से टकराते टकराते बचे। कार उसकी थी, इसलिए मैं उस पर बिगड़ा न मैंने उस से पूछा वह वहां रुक क्यों गया था। अब तक के सफर के दौरान हम दोनों खामोश रहे थे। उसका मुझे पता नहीं मेरी खामोशी का कारण मेरा खौफ था। मैं उसके कहने पर उसकी कार मे बैठ तो गया था लेकिन मन ही मन पछता रहा था। उसने मुझ से नहीं पूछा था मुझे कहां तक जाना था, मैंने उस से नहीं पूछा था वह कहां तक जा रहा था। दरअसल मैं सड़क के किनारे यूंही खड़ा था, कहीं जाने के लिए नहीं, शायद दम लेने के लिए ही। अगर उसने कार रोक कर अगुली के अश्लील से इशारे से मुझे अपने पास बुला कर कार में बैठ जाने का आदेश सा न दे दिया होता तो मैं दम ले लेने के बाद शायद फिर इधर उधर भटकना शुरू कर देता, रास्ते की तलाश मे, इस उम्मीद से कि माया भी भटकती घूमती उसी तरफ़ आ निकलेगी और हम एक दूसरे को थामे अपने डेरे की तरफ लौट जाएगे। मैं उस से कह सकता था मुझे लिफ़्ट नहीं चाहिए लेकिन उसकी सूरत में कोई ऐसी सख्ती थी कि मैंने कुछ नहीं कहा। शायद मैंने सोचा हो थोड़ी दूर जा कर कह दूंगा मुझे बस यहीं उतार दीजिए। शायद यह अन्देशा भी रहा हो कि वह मुझे अग़वा कर रहा था और अगर मैंने आनाकानी की तो वह मुझे गोली मार देगा। शायद मैंने सोचा हो कि उसने मुझे पहचान लिया था और उसकी कार में बैठ जाने के बाद मै भी उसे पहचान लूंगा। लेकिन मेरा खयाल है मैंने सोचा कुछ नहीं था, सोचा होता तो जरूर उसके साथ बैठने से इनकार कर दिया होता। मैं तो जाने पहचाने लोगों से भी अक्सर कतराता ही रहता हूं, इसलिए नहीं कि मैं अपने आपको उन से बेहतर या ऊपर समझता हूं बल्कि इसलिए कि मुझे किसी के साथ कोई भी बात करने में घोर संकोच होता है। संकोच का मूल कारण मेरा यह विश्वास है कि बहुत ही कम बातें ऐसी होती हैं जिन्हें किये बग़ैर हम रह न सकें।

खैर तो जब उसने कार रोकी तो मैंने सोचा शायद वह मेरी खामोशी पर ख़फ़ा हो गया था और मुझे वहां उतार देना चाहता था। मैं दरवाज़ा खोल कर उतरने के लिए तय्यार हो ही रहा था कि मेरी निगाह पास के एक पेड़ के नीचे बैठे एक बूढ़े पर पड़ी और मैं समझ गया उसने कार मुझे उतारने के लिए नहीं उस आदमी से कुछ पूछने के लिए रोकी थी। उस बूढ़े ने हमें सलाम किया तो मेरे साथी—सुविधा के लिए उसे साथी ही कहूंगा—ने कहा, मुझे इस से कुछ पूछना है, उतरो। वह बूढ़ा यूं बैठा था जैसे देहाती बूढ़े अक्सर यूंही बैठ जाते हैं पेड़ों के नीचे, धूप से बचने और वक़्त काटने के लिए। पहले मैंने सोचा था शायद भिखारी

हो या राहगुज़रों को पानी वानी पिलाता हो या मोंगफली सिग्रेट वगैरा बेच रहा हो लेकिन वह वैसे ही बैठा था। बैठे बैठे ही उसने हमें दोबारा सलाम किया तो मुझे कुछ अजीब लगा क्योंकि या तो उसे हमें सलाम करना ही नहीं चाहिए था या उठ कर करना चाहिए था। मेरे साथी को शायद उसकी हरकत अजीब ही नहीं गलत भी लगी। उसने उसे डांटते हुए पूछा—जानते हो हम कौन हैं?

वह 'हम' का इस्तेमाल अपने लिए ही कर रहा था या मेरे लिए भी, मैं नहीं जानता, लेकिन मुझे उसका सवाल उस बूढ़े की हरकत से कहीं ज्यादा अजीब लगा।

बूढ़ा मुस्कराते हुए बोला—जानना जरूरी नहीं, मेरा काम अजनबियों को सलाम करना और सही रास्ते पर डालना है, उन्हें जानना नहीं।

मेरे साथी ने अपनी आवाज को और सख्त बना कर पूछा—जरूरी हो न हो, बताओ हमें जानते हो?

बूढ़े ने बगैर डरे जवाब दिया—नहीं।

मेरा साथी न जाने क्यों यह सुनते ही कुछ कम सख्त हो गया हालांकि मै सोच रहा था वह और खफ़ा हो जाएगा। अब वह इधर उधर यूं देख रहा था जैसे उसे किसी ऐसे शख्स की तलाश हो जो उसे जानता हो। मेरी आखें बूढ़े के उड़े हुए चेहरे पर टिकी हुई थीं। अगर मुझे अपने साथी का डर न होता तो मैंने बूढ़े के पास बैठ इल्तिजा की होती कि वह मुझे सीधे रास्ते पर डाल दे। मैं न जाने क्यो उस शख्स से डर रहा था जिसे सुविधा के लिए अपना साथी कह रहा हू। मुझे उस बूढ़े से निडरता की प्रेरणा लेनी चाहिए थी।

—आप लोग शायद उन्हें मिलने आए हैं?

मेरा साथी यह सुन चौंका, फिर संभल कर बोला—तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

—मुझे मालूम नहीं हुआ, मैंने यूंही अनुमान लगाया है।

मुझे कुछ मालूम नहीं था वे किसके बारे में बोल रहे थे लेकिन मैं उन्हें मालूम नहीं होने देना चाहता था मुझे मालूम नहीं, सो मैंने अपना चेहरा कसे रखा, कान खुले। उन दोनों के बारे में मेरे मन में अनेक नये सवाल उठ खड़े हुए थे।

—तो बताओ उन तक पहुंचने का रास्ता किधर से है।

बूढ़े ने अपनी अगुली एक दिशा में दाग दी और कहा—उधर से।

उधर कोई रास्ता मुझे नज़र नहीं आया, लेकिन आजकल अक्सर मुझे कोई रास्ता किसी तरफ़ नज़र नही आता। बूढ़े ने अब सर ऐसे झुका लिया था जैसे कह रहा हो, अब तुम लोग जाओ।

—कार वहां तक जा सकती है?

—नहीं। बूढ़े ने सर उठाए बग़ैर कह दिया।

कार वहीं छोड हम बूढ़े की दी हुई दिशा की ओर चल दिये। मेरा खयाल था पीछे से बूढ़ा आवाज देगा। रास्ते बताने वाले अक्सर पीछे से आवाज़ दिया करते हैं, उन्हें अचानक कुछ और याद आ जाता है, या वे एक बार फिर रास्ता पूछने वाले की सूरत देख लेना चाहते हैं, या सहसा उन्हें शक हो जाता है कि उन्होंने रास्ता बता कर ग़लती की या ग़लत रास्ता बता दिया। लेकिन पीछे से कोई आवाज़ नहीं आयी। मुझे यह खतरा भी था कि मेरा साथी कह देगा, तुम क्यों साथ चिपक गये हो, जाओ उस बूढ़े के पास बैठ मेरी कार का खयाल रखो। मैं सोच रहा था उस बूढ़े ने शायद मेरे साथी की क्रूरता से खफा हो कर हमें गलत रास्ते पर डाल दिया हो। मैं अपने साथी से पूछना चाहता था, वह किसे मिलना चाहता था और क्यों। अचानक मैंने मन ही मन उस शख़्स और उस की हरकतों में दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी और अपने आपको भूलना शुरू कर दिया था। मेरा साथी मुझ से बेखबर सर डाले डोलता हुआ सा उस रास्ते पर चल रहा था जिसे मैं रास्ते का दर्जा नहीं देना चाहता था।

मै अकेला तो था, अकुलाया हुआ नहीं था। रात रौशन थी, घास घनी और सब्ज। मैं उछलता हुआ सा चल रहा था—इधर उधर देखता हुआ, मुस्कराता हुआ, बांहें फैलाए, उन्मुक्त, जैसे कोई किशोर किसी फिल्म मे किसी किशोरी के इर्दगिर्द नाच रहा हो। बरसों पहले जिस विदेशी क़स्बे में मैं बरसों तड़पा था उसी में उस रात मैं फिर कैसे जा पहुंचा था, यह मुझे मालूम था न मालूम करने की कामना। मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी कि उस ठंडे विदेशी क़स्बे में लौटने पर मुझे वैसे स्वच्छ सरूर का अनुभव होगा। किसी रात अनायास वहां जा कर भूत की तरह अपने भूत से साक्षात्कार करने की तमन्ना बरसों से मेरे मन मे समाधि लगाए बैठी थी। किसी किसी रात आंखें मूंद कर यह दुआ भी मांग लेता रहा हूं कि यह मुराद किसी रात पूरी हो जाए। लेकिन दुआएं तो और भी कई अक्सर मांगता रहता हूं, पूरी कहां होती हैं। उस रात भी शायद उस विदेशी क़स्बे की कोई कैफ़ियत याद आ गयी हो और मैंने फिर दुआ मांग ली हो, लेकिन उस दुआ में यह मांग तो कभी भी शामिल नहीं रही थी कि वहां लौट कर मुझे संतापरहित आनद मिले, क्योंकि मैंने मन से माना हुआ है कि वैसा आनंद मुझे कभी किसी आलम में नहीं मिलेगा। और शायद यह भी कि वैसा आनंद मेरा अभीष्ट नहीं, कि मैं अनुभव के घेरे में ही रहना चाहता हू, आनंद के आकाश में उड़ना नहीं चाहता। सच तो यह है कि मैं किसी रात वहां लौट बरसों पहले वहां बिताए बरसो की बेपनाह बेगानगी में पनाह लेने की ही कोशिश करना चाहता था, उसमें आनंद खोजने की मूर्खता नहीं। लेकिन उस रात उस कस्बे में अपने पुराने घर से कुछ ही दूर बहते उस खामोश दरिया के किनारे वाले पार्क में मैं उड़ सा रहा था, महसूस कर रहा था जैसे किसी पिछले जन्म का कोई अनुपम अनुभव मुझे फिर से हो रहा हो। आस पास कोई नहीं था, आस पास किसी का न होना भी मेरी उस उड़ान में शामिल था। मै किसी को कुछ दिखाने के इरादे से नहीं, वैसे ही मस्ती मार रहा था, जैसे कोई कुछ क्षणों के लिए सारी चिन्ताओं और बाधाओं और मान्यताओ का आवरण उतार कर सारी आलाइशों से आजाद हो गया हो।

मैं जल्दी में तो हू लेकिन यह नहीं जानता कि क्यों जल्दी में हू, इसीलिए शायद जल्दी में होने के बावजूद मुझ से तेज तेज चला नही जा रहा। इसीलिए नहीं, इसलिए भी। तेज तेज़ न चल सकने के और कई कारण भी हैं, सब से बड़ा यह कि अब तेज तेज चलने का कोई कारण मुझे नजर नहीं आता, असली कारण नज़र नहीं आता। इस से कुछ ही कम बड़ा कारण यह भी है कि अब तेज चलने की सकत मुझ में बाक़ी नहीं बची।

वैसे कहीं पहुंचने की जल्दी हो न हो, तेज तेज़ चलना मुझे पसद है। कहीं पहुंचने की जल्दी हो तो भी उस जल्दी के साथ इस सवाल की जौंक चिपकी रहती है कि वहा पहुंच कर भी आखिर होगा क्या?

फिर भी तेज़ तेज चलने वाले लोगों से मुझे ईर्ष्या होती है। मैं समझता हू उनके मन में उनकी मन्जिल के बारे में किसी संकोच या आशंका की मैल नहीं होती। मैं सोचता हू शायद तेज़ तेज चलने से ही मुझे मेरी मन्ज़िल मिल जाएगी और उसके बारे में मेरे मन की मैल धुल जाएगी, लेकिन यह सोच समझ ज़्यादा दूर तक मेरा साथ नहीं देती।

तेज़ तेज़ चलने वालों से मुझे इसलिए भी रश्क होता है कि उनकी कोई मन्ज़िल हो या न हो, कि उन्हें यह मालूम हो या न हो कि उनकी मन्जिल है या नही, या कि उनकी मन्जिल क्या है, कहां है, उनकी तेज़ चाल से देखने वालो को और शायद खुद उन्हें यह भ्रम हो जाता है कि उनकी मन्जिल है, कि उसके बारे में उनके मन में किसी संकोच या आशंका की मैल नहीं, कि अगर वह तेज़ तेज चलते रहे तो देर सवेर उस मन्ज़िल तक पहुच जाएगे, कि वहां पहुंच कर उन्हें निराशा नहीं होगी।

कुछ तेज़ तेज़ चलने वालों को देख कभी कभी मुझे डण्डी मार्च वाले गान्धी जी याद आ जाते हैं और ख़्वाहिश होती है कि उनके साथ हो लूं, उन से पूछूं वे इतने तेज़ तेज जा कहां रहे हैं, क्या उन्हें भी गान्धी जी याद आ रहे हैं, लेकिन डरता हू वे हंस देंगे, कहेगे—बाबा, हमें गान्धी जी याद नहीं आ रहे, हम तो अपने घर पहुंचने की जल्दी मे हैं, अन्धेरे से पहले हम घर पहुंच जाना चाहते हैं, दिन भर के थके मांदे हैं, घर पहुंच कर आराम करना चाहते हैं, घर वालो को अपने दिन की दौड़ धूप के बारे में बताना चाहते हैं...।

मेरा घर मेरी मन्जिल कभी नहीं रहा। मेरा घर मुझे मेरा असली घर कभी महसूस नहीं हुआ। मुझे उन लोगो से ईर्ष्या होती है, विडम्बनाहीन ईर्ष्या होती है, जिन्हें अपने घर की असलियत पर कभी कोई सन्देह नहीं हुआ, कभी कोई ऐसा सन्देह नहीं हुआ जिसे वे दूर न

कर सकें। इस ईर्ष्या के बावजूद 'घर' से मिलने वाली सुरक्षा मुझे संकीर्णता का ही पर्याय नज़र आती है, इसीलिए शायद मैं बरसों से घर से भाग भी रहा हू, घर की तलाश में इधर उधर भटक भी रहा हूं, घर की अवधारणा को बदल देने की कोशिश में घर को ही अपनी मन्ज़िल मान लेने से इनकार कर रहा हू, इसीलिए शायद घर लौटते समय मेरी चाल हमेशा सुस्त रहती है, इसीलिए शायद अपना कोई घर मुझे अपना असली घर नज़र नहीं आता। लेकिन इस सब के बावजूद घर की सुरक्षा का सुख भोगने के लिए घर की तरफ़ तेज़ तेज़ लपकने वालों को मैं खुशकिस्मत मानता हू। मेरे दिल में यह कामना किसी कील की तरह ठुकी हुई है कि मुझे भी वैसी सुरक्षा का सुख मिले, कि मैं भी तेज़ तेज किसी घर की तरफ़ लपकूं।

यह कामना पूरी नहीं होगी, मैं जानता हू।

आखिर तक मैं जल्दी में ही रहूंगा, मैं जानता हूं।

आख़िर तक मुझे पता नहीं चलेगा कि मैं क्यों जल्दी में हूं, मैं जानता हूं।

मेरी इस उलझन में नया कुछ भी नहीं, मै जानता हूं।

उस तरफ़ जाने की, जा कर देख और लौट आने की, लौट कर फिर उस तरफ़ के लिए तड़पने की ख़्वाहिश बहुत पुरानी है शायद पैदाइश से ही है और जब कभी नींद या नशे या बेहोशी के आलम मे यह ख़्वाहिश पूरी होती नज़र आती है तो होश आ जाने या आंखें खुल जाने पर उस तरफ़ का देखा भोगा सब भुर बिखर उलझ जाता है क्योंकि उस तरफ़ जा कर भी, चले जाने के बाद भी, मैं इस तरफ़ से आज़ाद नहीं हो पाता, उस तरफ़ डूबा हुआ भी मैं इस तरफ़ के तिनकों का ही सहारा लेता रहता हूं क्योंकि उस तरफ़ का सब कुछ ओर सब कुछ नहीं भी मुझे इसी तरफ़ के सब कुछ और सब कुछ नहीं का कटा फटा अक्स नज़र आता है और मैं समझ लेता हूं मैं फिर विफल रहा, कि मैं हमेशा विफल रहूंगा, कि मैं कभी इस तरफ़ से मुक्त हो उस तरफ़ का असली दर्शन नहीं कर सकूंगा, लेकिन इस हारी हुई सोच के दौरान भी फिर उस तरफ़ जाने की, जा कर देख और लौट आने, लौट कर फिर उस तरफ़ के लिए तड़पने की ख़्वाहिश मरती नहीं।

हम कई घन्टों तक रात को रौंद लेने के बाद घर लौट रहे थे और खुश थे कि हम एक दूसरे को खफ़ा किये बग़ैर, रास्ते की तलाश के दौरान निलमिलाए बग़ैर, एक दूसरे की याददाश्त की कमज़ोरी पर झुंझलाए बगैर, खामोश और कमोबेश खुश घर लौट रहे थे। हमें हासिल उस रात भी कुछ नहीं हुआ था। हम लौट उस रात भी उसी घर को रहे थे जिसमें हमें चैन नहीं मिलता था, जो हमें हमारा घर नहीं महसूस होता था, जिसे त्याग देने के लिए हम एक अर्से से छटपटा रहे थे, जिसे छोड़ देने के लिए हम रात रात भर इधर उधर भटकते रहते थे—कभी साथ साथ, कभी अलग अलग—जिसे हम घर के बजाय घेरा कहा करते थे, मैले काले मज़ाक़ में। हम उसी घर लौट रहे थे जिसमें थोड़ी देर सुस्ता लेने के बाद हम फिर बेघर महसूस करना शुरू कर देंगे।

जब हम रास्ते के आख़िरी मोड़ पर पहुंचे तो हम ने घर को गंदले गाढ़े पानी मे घिरा हुआ देखा। हम उस पानी को तैर कर पार कर सकते थे न चल कर। हम ने एक दूसरे की तरफ देखा। हमारी निगाहों में अनेक आरोप थे। मैं माया को दोषी ठहरा रहा था, वह मुझे। उधर हमारा घर उस गाढ़े गंदले पानी में डूबा जा रहा था, धीरे धीरे, जैसे अन्धेरे मे सूरज।

कल रात फिर माया ने घर बनाना शुरू कर दिया तो मुझे बहुत कोफ़्त हुई, महसूस हुआ वह फिर निराश होगी और मुझे उसे उबारने के लिए न जाने क्या क्या करना पडेगा। मैंने अपने आपको बहुत समझाया कि मुझे तटस्थ रह कर तमाशा देखना चाहिए, कोई एतराज नहीं उठाना चाहिए, कोई बहस नहीं छेडनी चाहिए, चुपचाप सुबह के इंतज़ार में पडे रहना चाहिए, सुबह होते ही माया रात के भूत को भूल सीधे रास्ते पर आ जाएगी और घर बनाने के बजाय किसी बने बनाए घर की तलाश मे जुट जाएगी, मुझे साथ ले कर, यह जानते हुए, मेरी ही तरह, कि हमें जीते जी कोई ऐसा घर नहीं मिलेगा जिसे हम अपना मान सकें, असली मान सकें, जिसमें हम पूरी तरह रम सकें, जिस मे हमें कभी कोई असंतोष न हो। मैंने अपने आपको बहुत समझाया लेकिन अपनी कोफ़्त को दूर न कर सका। सो मैंने अपने आपको समझाना बंद कर दिया। अब मैं उसे रोकने की कोशिश भी कर रहा था, उसे समझने की भी, और दोनो कोशिशो मे नाकाम हो रहा था। उधर वह जिन कोशिशों में जुटी हुई थी वे मुझे किसी दिशाहीन अंधे की सी दिखायी दे रही थीं या किसी ऐसी बच्ची की सी जो अपने लिए नही अपनी गुड़िया या चिड़िया के लिए घर बनाने में जुटी हुई हो।

हम किसी गुफा में थे लेकिन मुझे महसूस यूं हो रहा था जैसे मैं माया के भीतर बैठा उसकी दौड़धूप मे शरीक हो रहा था, और वह गुफ़ा ऊपर आकाश में किसी बादल के बतन मे थी। मुझे माया की हरकते बेकार लग रही थी, अपनी प्रतिक्रियाएं बेहूदा। कोई तीसरा अगर होता तो हम दोनों को भूत समझ भाग जाता। जो हो रहा था असम्पूर्ण सन्नाटे में हो रहा था। मैं माया का ध्यान बदलने के लिए बार बार उस सन्नाटे की सुन्दरता की सांकेतिक प्रशंसा कर रहा था लेकिन माया मेरे सकेतों को समझ नहीं पा रही थी। उसे शायद यही लग रहा हो कि मैं उसकी तन्मयता का मजाक उडा रहा था, उसे सुझा रहा था कि वह घर बनाने की बेवकूफ़ी से बाज आ जाए।

उधर रात गहरी होती जा रही थी, जमीन से दूरी का एहसास बढ़ता जा रहा था, और मेरा यह खतरा भी कि किसी भी क्षण हम नीचे गिरना शुरू कर देंगे। मैं हम दोनों को चकनाचूर होते देख दहल रहा था। अब यह हिसाब लगाना मेरे लिए मुमकिन नहीं कि कब और कैसे मैंने माया से बात करनी शुरू की लेकिन इतना साफ याद है कि उस वक़्त वह गुफा किसी बादल के बतन में बैठी महसूस नहीं हुई थी, कि माया उस गुफ़ा में पड़े कूडे में अपने घर का सामान खोज रही थी और मैं कह रहा था वह गुफा हमारी नहीं थी, वह कूड़ा हमारा नहीं था। फिर उसे उस कूडे में कुछ टूटे फूटे औज़ार मिल गये थे जिन्हें उसने अपने सीने से यूं

लगा लिया था जैसे कोई बच्ची अपने टूटे फूटे खिलौनों को। मुझे हंसी भी आ रही थी, करुणा भी। मन हो रहा था कि वे टूटे फूटे औजार—बगैर दस्ते का बेल्चा और हथोड़, गिरमाला, कूची—छीन कर बाहर फेंक दूं, लेकिन उसकी मुखमुद्रा उस वक़्त इतनी सख्त थी कि मुझे डर लग रहा था कि वह उन औजारों से मुझे मारना शुरू कर देगी। मैं उसे बार बार यही कहे जा रहा था कि वह गुफ़ा हमारी नहीं थी, वह कूड़ा हमारा नहीं था। मैं उम्मीद कर रहा था कि उस गुफा का मालिक अचानक गुफ़ा में घुस आएगा, माया उन औज़ारों को उसके हवाले कर देगी, और हम कोई सफ़ाई पेश करते करते गुफ़ा से बाहर निकल जाएंगे। उसके बाद हमारा क्या होगा, मैं कल्पना नहीं कर पा रहा था। गुफ़ा का मालिक तो नमूदार नहीं हुआ लेकिन मेरी बातों का असर आखिरकार माया पर हो ही गया—उसने वे औज़ार वहीं फेंक दिये, हम गुफ़ा से बाहर निकल फिर घर की तलाश में गुम हो गये।

झौंपड़ों के उस उजड़े हुए से शहर मे मैं अपने आबाई झौपड़े की तलाश में मारा हारा भटक रहा था। कई लोगों से पूछताछ कर चुका था, कई झोंपड़ों में झांक कर देख चुका था, कई गन्धों को सूंघ चुका था लेकिन कोई सुराग़ मिला था न कोई सोयी हुई याद जागी थी। आख़िर एक आखिरी कोशिश के तौर पर मैंने एक बड़े से झौंपड़े में क़दम रखा तो मुझे एक बुज़ुर्ग दिखायी दिया। उसकी सूरत आइनस्टाइन की सी थी। मुझे देखते ही वह बोला—मैं वह नहीं जो दिखाई देता हूं। मैंने पूछा—तो आप कौन हैं? वह खामोश रहा। मैंने उसकी खामोशी की तलाशी लेनी शुरू कर दी तो वह बोला—क्या ढूंढ़ रहे हो? अब शायद मुझे खामोश रहना चाहिए था ताकि वह मेरी खामोशी की तलाशी ले सकता लेकिन मेरे मुह से निकल गया—अपना झौपड़ा। वह खामोश रहा। मैने कहा—आप मेरी मदद नहीं करेंगे? उसने जवाब दिया—कोई किसी की कोई मदद नहीं कर सकता। मुझे खामोश रहना चाहिए था लेकिन मेरे मुंह से निकल गया—फिर भी...। उसने मेरा फ़िक़रा पूरा करते हुए कहा—आप मुझे पानी तो पिला सकते हैं, यही ना? मुझे मायूसी हुई। मैं समझ नहीं पाया कि वह नाराज़ हो गया था या मुझे नाराज़ होने से मना कर रहा था। अबकी बार मेरे मुंह से कुछ नहीं निकला। वह मेरी खामोशी की तलाशी लेता रहा, मैं उसकी खामोशी की। उसका मुझे पता नहीं, मैं कुछ देर बाद उसकी खामोशी में इतना खो गया कि अपने आबाई झौंपड़े की तलाश से आज़ाद सा हो गया। अब वह बुज़ुर्ग मुझे किसी बादशाह या बैरागी सा दिखायी दे रहा था, उसका झौंपड़ा किसी महल या मकबरे सा। मैं जहां खड़ा था वहीं बैठ गया और मेरी आंखें मुंद गयीं।

मै वहा अकेला खड़ा था और माया के बारे में सोच रहा था। माया वहा होती तो मै अपने बारे में सोच रहा होता। मैं सोच रहा था माया मुझे उस अन्धेरे में अकेला छोड़ खुद क्यों कहीं और जा गुम हो गयी। मुझे इतना आश्वासन तो था कि वह जहां कहीं भी थी अन्धेरे में ही थी और मेरी ही तरह अकेली खड़ी मेरे बारे में सोच रही थी। इस आश्वासन का मेरे पास कोई आधार नहीं था। शायद यह आश्वासन नहीं था, मेरी मनोकामना ही थी। अगर माया उस अन्धेरे में मेरे साथ खड़ी होती तो मैं उसे वहीं अकेली छोड खुद कहीं और जा खड़े होने के लिए अकुलाना शुरू कर देता, यह मेरी मनोकामना नहीं थी, अन्देशा ही था।

मैंने आंखें उधेड़ कर उस अन्धेरे की तलाशी ली लेकिन कहीं कोई दूसरा छिपा खड़ा नहीं मिला। तब मैंने सोचा शायद वह मेरे साथ वहा आयी ही न हो लेकिन वैसे अन्धेरे में मैं अकेला शायद ही आता। याद करने की कोशिश की तो सिर्फ़ सर भारी हो कर रह गया, याद कुछ नहीं आया। रात को आजकल मेरी याद को सांप सूंघ जाता है। ज़रूर माया मुझे दग़ा दे कर वहां से ग़ायब हो गयी होगी। दग़ा दिये जाने के खयाल से जो खराश होती है हमेशा मुझे मैला सा मज़ा देती है। मैं उस मजे के लिए भी शायद यह सोच रहा था कि वह मुझे उस अन्धेरे में छोड़ खुद किसी खूबसूरत अन्धेरे में जा खड़ी हुई थी।

मेरी आंखें अन्धेरों में ज़्यादा तेज़ हो जाती हैं, ज़्यादा दूर तक ज़्यादा सफ़ाई से देख लेती हैं, ऐसी ऐसी सम्भावनाएं और सूरतें भी जो दूसरों को दिखाई नहीं देतीं। वह अगर वहां उस अन्धेरे की किसी सिलवट की ओट में खड़ी होती तो मेरी आंखें उसे खोज निकालतीं। वैसे मैंने देखा है कि जो न हों, या न होने के बराबर हों, या मुझे दग़ा दे कर कहीं और जा खड़े हुए हों, वे सब भी किसी किसी अन्धेरे में मुझे नज़र आ जाते हैं—कभी कभी अनायास, कभी कभी कोशिश करने पर। कोशिश करने से मुराद आखें खोल या मूद कर उन पर ध्यान लगाने से ही है, कोई और अनुष्ठान करने से नहीं। इस तरह नजर आ जाने के बाद बेशक टिकते नहीं, बस एक झलक दिखा कर ओझल हो जाते हैं। उस झलक की खराश से भी मुझे मैला सा मजा मिलता है, इसलिए वे अगर टिकना चाहें तो भी मैं उन्हें टिकने नहीं देता।

लेकिन कल ध्यान लगाने के बाद भी जब माया की कोई कौन्ध नहीं फूटी तो मैंने मान लिया मै एकदम वहां अकेला था। मुझे मालूम है कोई कभी कहीं भी एकदम अकेला नहीं होता, कम से कम मैं तो नहीं होता, और आस पास न भी हों तो उनके भूत मुझ से चिपके रहते हैं, और यह मेरे लिए अच्छा ही है, क्योंकि जब कभी कुछ देर के लिए यह गुमान हो जाता है

कि मैं एकदम अकेला हो गया हू तो मैं औरों के लिए अकुलाना शुरू कर देता हूं, जैसे कि कल रात। वैसे कल रात अकुलाहट कुछ कम हुई थी क्योंकि मै खुले अन्धेरे में खड़ा था, काले आकाश तले। अगर घर या घर जैसी किसी घिरी हुई जगह के घुटे हुए अन्धेरे में खड़ा होता तो अकुलाहट और प्रकार की होती। अगर लेटा हुआ होता तो भी अकुलाहट और प्रकार की होती, क्योंकि लेटते ही मुझे महसूस होने लगता है कि मैं घर या घर जैसी किसी घिरी हुई जगह के घुटे हुए अन्धेरे में हू। तब अक्सर अचानक मेरे तनमन मे ऐसा हौल उठ खड़ा होता है कि मैं उखड़ जाता हूं और इधर उधर भटकना बिखरना शुरू कर देता हूं—किसी ऐसे घर की तलाश मे जिसके अन्धेरे में घुटन न हो। चीखने चिल्लाने की ख्वाहिश होती है, रोने दहाड़ने की भी, हंसने की भी, आखें और बाल नोच लेने की भी। तब मन होता है कोई साथ हो, किसी का साया या भूत नहीं कोई खुद, ठोस, जिसे ठोकर मारी जा सके, सहलाया जा सके, झिझोड कर पूछा जा सके कि उसे क्यों कभी वैसा हौल नहीं उठता, वह क्यों शान्त है, वह क्यों मेरी तरह हर वक्त किसी ऐसे घर के लिए नहीं तडपता जिसके अन्धेरे में घुटन न हो, धुआं न हो।

वैसे मैंने देखा है कोई कभी यह मान के नहीं देता कि उसे कभी हौल नहीं उठता, कि वह शान्त है, सब लोग शान्ति की आराधना करते हुए भी अशान्ति को ही अपनी नियति भी मानते हैं और शायद अपना ध्येय भी। यह मैं न जाने क्यों कह गया।

जब साथ कोई लेटी हुई हो—हकीक़त मे या कल्पना मे—तो यह एहसास और तीव्र हो जाता है कि मैं किसी घर या घर जैसी घिरी हुई जगह में बन्द हूं, और वह घर मेरा नहीं, लेकिन तब वैसा हौल नहीं उठता कि चुप मार कर पडे रहना असम्भव हो जाए। तब भी रोने चिल्लाने दहाड़ने हंसने बाल आख नोचने और साथ लेटी हुई को झिंझोडने की तमन्ना तो होती है लेकिन उसे कुचल देना असम्भव नही लगता। वैसे अब अवस्था ऐसी आ गयी है कि खुद माया के साथ लेटने का अवसर भी कम ही मिलता है, फिर भी यह वहम जब तब जकड लेता है कि साथ कोई लेटी हुई है, बल्कि चिपकी हुई है। कई बार इस चिपकाहट को छील कर परे फेंक देने के प्रयास में अपनी चमड़ी को खरौंच देने की नौबत भी आ चुकी है। इस वहम से बचे रहने के लिए भी कोशिश करता हू कि रात को लेटूं ही नहीं, या पूरी तरह न लेटूं, लेटा लेटा भी उठा रहूं, पीठ के नीचे कील कांटे बिछे रहें।

तो कल उस अन्धेरे में निपट अकेला खड़ा मैं माया घर और घर जैसी घिरी हुई जगहों के बारे में सोच रहा था और किसी ऐसे घर के लिए तड़प रहा था जिसके अन्धेरे में घुटन न हो, धुआं न हो, कि अचानक क्षितिज पर हर तरफ मुझे जगमगाते हुए चित्र दिखायी दिये और अबाध का ऐसा अनुभव हुआ जिसे मैं बयान तो नहीं कर सकता लेकिन जो एक क्षण के लिए ही सही मुझे लील गया, मुझे अपने आप से दूर, अपनी सोचों की सीमाओं से परे, एक ऐसे आलम मे ले गया जहां वे अलौकिक चित्र जगमगा रहे थे और और कुछ नहीं था। एक क्षण के लिए ही सही मुझे घर मिल गया था, नहीं, मिला नहीं था, दिखायी दे गया था, नहीं, इस तरह दिखायी दे गया था कि महसूस हुआ था मिल गया हो।

नींद किसी सूखी टहनी की तरह अचानक तिड़क जाती है, मैं जंगल की तरह जाग उठता हूं। माया की आंखें छत पर टिकी हुई हैं, मेरी सामने की दीवार पर जा टिकती हैं। उसकी छटपटाहट छत को घूरने से कम होती है, मेरी दीवार को घूरने से। छत और दीवार को घूरते समय असल में हम अपने आपको ही घूर रहे होते हैं, अपने अन्दर को ही आंक रहे होते हैं। उसकी वह कहे, मुझे अन्दर से अब भी वैसा ही धुआँ और अन्धेरा उठता हुआ महसूस होता है जैसा बचपन में। तब भी नींद अक्सर किसी सूखी हुई टहनी की तरह अचानक टूट जाती थी। अगर छत पर सो रहा होता तो आकाश गंगा में डुबकी लगा अपने अन्दर के धुएँ और अन्धेरे में जा बैठता, अगर छत के नीचे सो रहा होता तो सामने की दीवार पर ध्यान जमा कर। तब से अब तक नींद टूट जाने पर पनाह अपने अन्दर के धुएँ और अन्धेरे में ही मिलती रही है, कुछ देर के लिए, क्योंकि ज़्यादा देर तक उस ज़हरीले आलम में रहना मुमकिन नहीं होता।

—फिर अन्दर झांक रही हो?

—हाँ।

मेरे सवाल में कोई सिलवट थी न माया के जवाब में।

— कभी मेरे अन्दर भी झांक लिया करो।

— और तुम कभी मेरे अन्दर।

— ठीक है। अभी से यह कोशिश शुरू। तुम दीवार को घूरो, मैं छत को घूरूंगा।

— ठीक है।

उसने दीवार को घूरना शुरू कर दिया, मैंने छत को। कुछ देर बाद मैं बोला।

— क्या दिखायी दिया?

— कुछ नहीं।

— धुआँ और अन्धेरा भी नहीं?

— कुछ भी नहीं। तुम्हें?

— कुछ नहीं।

— आग और आँसू भी नहीं?

— कुछ भी नहीं।

— यह प्रयोग भी विफल।

— हाँ।

कुछ देर हम खामोश पड़े रहे, फिर दोनो ने एक साथ सदा लगायी।

— अब क्या करें!

कुछ देर तक फिर हम खामोश रहे।

— चलो, कहीं चलते हैं, माया।

— कहां?

— कहीं भी।

— कहीं भी जाने से क्या होगा?

— शायद इसी तरह घर मिल जाए।

— घर!

कुछ देर फिर हम खामोश पड़े रहे। फिर मैं उठ खड़ा हुआ।

— कहां जा रहे हो?

— टिकिट कटवाने।

— कहां का?

— कहीं का भी।

वह खामोश पड़ी रही।

टिकिट बेचने वाले ने पूछा।

— कहां जाएंगे आप और कब?

मैं ख़ामोश रहा।

— कहां जाएँगे आप और कब?

मैं फिर कुछ न कह सका। मेरा खयाल था वह खफा हो जाएगा और मैं खिसिया कर वहां से खिसक लूंगा, लेकिन वह शख्स खफ़ा हुआ न हंसा।

— शायद आप अपनी मन्ज़िल मुझ से तै करवाना चाहते हैं?

उसके लहजे में कोई चोट नहीं थी। मैं खामोश रहा।

— एक चुप हज़ार सुख।

मैं उसकी हंसी में शामिल नहीं हो सका।

— लो आपकी वह भी आ गयीं।

मैंने मुड़ कर देखा। माया मेरे पीछे खड़ी थी।

— अब कटवा क्यों नहीं लेते?

— कहां के?

— जहां कहीं के मिल जाएं।

— कब के?

— जब कभी के मिल जाएं।

मैंने मुड़ कर टिकिट वाले से कहा

— दो। कहीं के। जब कभी के।

— यह हुई न बात!

टिकिट वाले की हंसी में हमारी हंसी शामिल तो हो गयी लेकिन उससे अलग चलती हुई सी। उसकी हंसी पहुंचे हुए व्यक्ति की सी थी, हमारी न पहुंचे हुए व्यथितों की सी।

हम अपने अन्धेरे के बाग़ मे बैठे एक दूसरे का मुह देख रहे थे। जब हम हार जाते हैं तो यही करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से हम कुछ देर बाद फिर कोशिश और तलाश के लिए तडपना शुरू कर देते है, अपनी ताज़ातरीन हार को भूल कर, अन्धेरे के बाग में बैठे रहने की कामना को कुचल कर।

उसकी वह जाने, मैं पछता रहा था। अपने अन्धेरे के बाग मे बैठते ही मैं पछताना शुरू कर देता हूं। बैठते ही मैं अपने अन्धेरे के बाग़ से घिर जाता हूं। बैठना मुझे मना होना चाहिए। मना है, इसीलिए मैं बैठने से बाज नहीं आता, क्योंकि पछताने की पीड़ा का आनन्द लेने की मुझे बीमारी है। और कई बीमारियों भी मुझे हैं। उनका जिक्र और कहीं हो चुका है, होता रहेगा, बार बार। मुझे वहम है कि अपनी बीमारियों का जिक्र करते रहो तो उनका इलाज होता रहता है, होता नहीं, महसूस होता है हो रहा है।

मेरे पछतावे की कई परतें थीं। परतें नहीं पत्तिया। हर पत्ती की अपनी महक थी, हर महक का अपना उलझा हुआ इतिहास था।

माया मुस्करा रही थी, मुझ पर नहीं, अपनी ही किसी उड़ान पर, मुझ से इतनी अलग कि मुझे लगा वह किसी और बाग़ मे जा बैठी हो। उस मे पूछने की हिम्मत नहीं हुई कि वह कहां थी, किस याद या यन्त्रणा पर मुस्करा रही थी।

मैं पछताता रहा, वह मुस्कराती रही, समय बहता रहा, अन्धेरा गहराता रहा, बाग घर मे बदल गया, और हमारा एक पुराना दोस्त पिचका सा मुह लेकर पास आ बैठा। उसके साथ उसकी साफ़ सुथरी बीवी थी, जो अन्धेरे मे उसकी बहन लग रही थी। उनके आ जाने से हम उखड़ गये। अब मेरा पछतावा धीमे दिये की तरह लड़खड़ा रहा था। उसकी कांपती हुई रोशनी में वह दोस्त मुझे बहुत दीन नजर आया, उसकी बीवी बहुत अधीर। मुझे लगा वह उसे पकड कर हमारे पास खींच लायी थी और अब उसे संकेत दे रही थी कि वह बोले। वह मुंह कसे बैठा था जैसे दोस्त न हो, अजनबी हो।

माया मुस्कराए जा रही थी, मैंने पछतावा स्थगित कर दिया था। किसी दोस्त की परेशानी से जो घटिया सी राहत मिलती है मैं उसको ममलने की कोशिश कर रहा था। माया की मुस्कराहट में वह मैल नहीं थी जो मेरी हमदर्दी मे। अब हमारे अन्धेरे में माया की मुस्कराहट का आलोक था या हमारे दोस्त की बीवी की अधीरता का। उसके साथ हमारा कोई सीधा सम्बन्ध नहीं बना था लेकिन वह हम मे कोई खास बात करने के लिए आयी थी

और चाह रही थी कि शुरूआत हमारा दोस्त करे। उसकी न जाने किस अदा के आधार पर मैंने यह मान लिया था कि वह हम से मदद मागने आयी थी और हमारे दोस्त को यह मन्ज़ूर नहीं था। कोई हम से मदद मागने नहीं आता। अन्धेरे में बैठे मुस्कराते पछताते लोगों से कोई मदद मागता है न उन्हें कोई मदद देता है, इसलिए मुझे कुछ हैरानी भी हो रही थी, ख़ुशी भी।

जब काफ़ी देर तक हमारे दोस्त के मुंह का कुप्पा नहीं खुला तो उसकी बीवी ने बोलना शुरू कर दिया . हम अब उस घर में नहीं रह सकते, उसकी बू मुझ से बरदाश्त नहीं होती, उसमे भूतों का बसेरा है. मैं इन से कई बार कह चुकी हूं, हमे कोई नया घर चाहिए, अगर हम वहां से निकले नहीं तो वह घर हम दोनों को खा जाएगा या हम एक दूसरे को।

उस की आवाज़ मे धमकी नहीं थी, शिकायत नहीं थी, सिर्फ़ दुःख था।

हमारा दोस्त पहले की ही तरह कसा कोरा बैठा रहा।

माया मुस्कराती रही।

मैं इन्तज़ार करता रहा।

अगर उसकी आवाज़ में धमकी या शिकायत होती तो मैं उस के ख़िलाफ़ हो जाता। उस के दुःख ने मुझे उसकी तरफ़ खींच लिया था। वह समझती होगी हम घर ढूंढने में माहिर हैं, इसलिए वह अपने पति को पकड़ कर हमारे पास ले आयी थी। अपने आप वह नहीं आता। वह हमारी असलियत जानता है। वह जानता है हम माहिर नहीं, मजबूर हैं, घर ढूंढते रहने पर, क्योंकि हमें अभी तक घर नहीं मिला, अपना घर नहीं मिला, ऐसा घर नहीं मिला जिसके बाद घर की तलाश खत्म हो जाए। लेकिन वह चुप था, उसकी बीवी चाह रही थी हम कुछ कहें। मै भी चुप ही रहना चाहता था। इसीलिए शायद माया ने मौके को सभालते हुए कहा—अगर ऐसी बात है तो आप लोग यहां क्यों नहीं चले आते हमारे पास, हमारे अन्धेरे में, हम सब आसानी से यहां समा सकते हैं, मुस्करा सकते है, पछता सकते हैं, अलग अलग, पागल हुए बग़ैर, एक दूसरे को खाये बगैर।

माया की आवाज़ में तपाक था न तन्ज़, बस एक सीधी सी दावत थी, जिसे स्वीकार करने के बजाए वे दोनो उठे और कुछ कहे बग़ैर चले गये।

उन के जाने के बाद माया ने फिर मुस्कराना शुरू कर दिया, मैंने फिर पछताना। उसकी मुस्कराहट मे पछताने का पीला आलोक था, मेरे पछताने में मुस्कराहट का नीला।

उस घर के आंगन में वह काले मांस की मुट्ठी सी बनी बैठी थी। मैंने मास की मुट्ठियों के कई रूप कई बार देखे हैं—मन्दिरों और मस्जिदो की सीढ़ियो पर, सड़कों के किनारे, रेल के पुलो पर, बसों के अड्डों पर, गलियो बाज़ारो मे, हनुमान मन्दिर के आस-पास, मकबरो और खानकाहों में, अपने दु:स्वप्नों में, और न जाने कहा कहां—लेकिन वैसी सिर-मुंह-पैर हीन मुट्ठी मैंने पहले कभी कहीं नहीं देखी थी। मुझे लगा वह वहां बैठी परमात्मा का मौन भजन कर रही थी। मुझे उस पर दया आयी न परमात्मा से भय महसूस हुआ लेकिन उस दृश्य का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा मेरे बयान के बस का नहीं। शोर मचा कर उस मुट्ठी को खोल देने की ख्वाहिश को इस खतरे ने खा लिया कि खुल कर शायद वह और भयकर नजर आए। वह घर अगर उसका था तो मुझे उसका ध्यान भंग करने या उसे वहां से भगा देने की कोई कोशिश करने का कोई अधिकार नहीं था। मैं उस आंगन में अपने मतलब से, अपनी मजबूरी से, दाखिल हुआ था। अगर वहां से हांक दिया गया तो कहा जाऊंगा। मै टूटा हुआ था। और कही जाने की स्थिति में नहीं था। यह तो गनीमत थी कि उस आंगन में उस के इलावा और कोई नहीं था, था तो सोया खोया हुआ था, कि वह खुद मुट्ठी सी बनी बैठी थी, उसने मुझे देखा या सुना नहीं था, देखा या सुना था तो शायद उसने चुपचाप बैठी रहने का फैसला कर लिया था, मेरे डर से शायद नहीं, परमात्मा के डर से ही, कि उसने शायद मुझे पनाह देने का फ़ैसला कर लिया था, सो मुझे उस आंगन के किसी कोने में पड़ सो जाना चाहिए, नींद खुलने पर जो होगा देखा जाएगा, कुछ न हुआ तो मै फिर माया की तलाश मे निकल पड़ूगा। मैंने उस पर से नजर हटा कर देखा तो कोई कोठरी नज़र न आयी, घर के नाम पर उस आंगन के सिवा कुछ नहीं था। अगर ऊपर पूरा चांद न होता तो शायद वह मुझे दिखायी ही न देती। यह खयाल भी आया कि जिसे मैंने काले मांस की मुट्ठी सी बनी बैठी कोई विरूपा समझ लिया था वह कोई और बला ही न हो। यह खयाल भी आया कि कहीं माया ने ही वह रूप न ले लिया हो। उसे भेस बदलने का शौक है। ग़ायब होने से पहले उसने कहा था वह मेरा इम्तहान लेने जा रही थी। मैंने हाथ जोड़ कर याचना की थी कि वह मेरा इम्तहान न ले क्योंकि मैं कभी किसी इम्तहान में पूरी तरह पास नहीं हुआ, कि वह मुझे वैसे ही फ़ेल मान ले। याचना करते समय मेरी आंखें बन्द हो गयी होंगी और माया गायब हो गयी होगी क्योंकि जब मैंने उसे गले लगाने के लिए बांहें फैलाई तो मेरे आलिंगन में हवा और अन्धेरे के सिवा कुछ भी नहीं आया था। तब से मैं उसके लिए तड़प भटक रहा था। अब खयाल आया शायद उस आंगन में बैठी काले मास की मुट्ठी भी मेरे इम्तहान का ही एक हिस्सा हो। इस खयाल

का ही कमाल रहा होगा कि मैं मन्त्रमुग्ध सा उस मूर्ती की तरफ बढ़ने लगा। पास पहुंच कर मैं यूं बैठ गया जैसे कोई भक्त किसी मूर्ति के सामने। मेरी आंखें बन्द हो गयीं। अन्दर के अन्धेरे से आवाज़ आयी—तुम परमात्मा के सामने बैठे हो। मेरी तो रूह तक कांप गयी। अभी तक कांप रही है।

यह माफ़ नहीं कि हम किसी आश्रम में हैं या किसी डाक बगले मे जो अन्धेरे और हवा और एकान्त के कारण किसी आश्रम सा नज़र आ रहा है।

यह याद नहीं कि हम यहां कब आए थे और कहा से।

माया का मुझे मालूम नहीं मैं इस आलम मे अटपटा महसूस कर रहा हूं।

घर की तलाश में यह जगह शायद एक पड़ाव भी है जिसमें कुछ देर सुस्ता लेने के बाद हम फिर तलाश पर निकल जाएंगे।

हम दोनों थक तो गये हैं लेकिन हारे नहीं। जब हार जाएँगे तो भी शायद मानेंगे नहीं कि हम हार गये हैं।

हमारे कमरे की खिड़की के बाहर दो लड़के हमें देख हस रहे हैं। माया मुझ से कहती है, उठ कर खिडकी बन्द कर दो। मैं माया के कान में कहता हूं खिड़की बन्द करने के लिए उठूंगा तो लड़के मुझे नंगा देख और हंसेंगे।

एक लड़का बोल उठता है, इस इलाके में रात को सभी नंगे हो जाते हैं, हमें ही देखो।

हम कुहनियों के बल उठ कर उन्हें देखते हैं तो हमारी चादर फिसल जाती है और लड़के ताली पीट कर लोटपोट हो जाते हैं। वे खुद नंगे नहीं।

माया कहती है, इन से कहो ये बहुत बदतमीज हैं।

वही लड़का जो पहले बोला था कहता है, आन्टी जी, जो कहना हो सीधे कहिए, अंकल जी के कन्धों पर बन्दूक मत रखिये।

माया का मूड बदल जाता है, मेरा बिगड़। उसे हंसी आ जाती है, मुझे ग़ुस्सा। मैं चादर ठीक कर लेता हूं लेकिन माया अब भी कुहनियों पर उचकी हुई है। चादर उसके वक्ष से खिसक खिसक जाती है लेकिन वह बेखबर सी उन लड़कों को यों देखती रहती है जैसे वे फ़रिश्ते हो। जब मैं माया के वक्ष पर से खिसकती चादर को ठीक कर रहा होता हूं तो लड़के एक दूसरे को कुहनी मार हमारी तरफ़ अंगुलियां उठा हंसते हैं।

मैं सोचता हूं अब इन बदमाशों ने सब देख तो लिया अब इन से झेप क्यों?

अपने चेहरे को बदल कर मैं पूछता हूं, अच्छा लड़को यह तो बताओ यह आश्रम है या डाक बंगला?

एक लड़का—वही जो पहले बोला था, दूसरा शायद गूंगा है—जवाब देता है, अंकल जी, चेहरा बेशक बदल लो, बात मत बदलो।

माया की हंसी फिर छूट निकलती है। झुंझलाहट को छिपाने के लिए मैं भी खिसयाना शुरू कर देता हूं और मेरी आंखें कड़वे पानी से भर जाती हैं।

माया लड़कों से पूछती है, तुम इस आश्रम या डाक बंगले में मेहमानों के कमरों में ताकने झांकने, उन पर हंसने, और उन्हें हंसाने के अलावा क्या करते हो?

वही लड़का जवाब देता है, आन्टी जी, हम कमरों की खिड़कियों के बाहर खड़े हो इन्तज़ार करते हैं कि उनकी चादरें फिसलें ताकि हम देख सकें वे उनके नीचे नंगे पड़े हैं या नहीं।

उसकी आवाज में कोई लड़खड़ाहट है न लाग-लपेट। वह अब हंस भी नहीं रहा। उसका गूंगा साथी भी बड़ा गम्भीर दिखायी दे रहा है।

माया पूछती है, तुम्हें शर्म नहीं आती?

वही लड़का जवाब देता है, नहीं।

माया कहती है, तुम जानते नहीं कि चादर के नीचे सब नंगे होते हैं?

वही लड़का जवाब देता है, आन्टी जी, आपका मुहावरा ठीक नहीं, चादर की जगह धोती होनी चाहिए।

मुझ से रहा नहीं जाता। मैं नर्म आवाज़ में पूछता हूं, तुम्हारा साथी क्या गूंगा है?

वही लड़का जवाब देता है, अंकल जी, आवाज़ बेशक बदल लो, बात मत बदलो।

माया फिर खिलखिला उठती है, मैं फिर खिसियाना शुरू कर देता हूं और मेरी आंखें छलकना। माया को यह आश्रम या डाक बंगला रास आ गया है, मुझे नहीं।

मैं उन्हें परियों की कहानियां सुनाते सुनाते बीच बीच में भूल जाता था कि मै उन्हे परियों की कहानिया सुना रहा था। मेरी आंखें बन्द थी, जैसे कुछ शास्त्रीय संगीतकारों की गाते बजाते समय हो जाती हैं। मेरे स्वर में प्रखर आत्मविश्वास की खनक थी जो उजाले में उसमे नही होती, श्रोताओं के सामने तो बिलकुल नही। मै श्रोताओ से घबराता हू, उनका सामना करने से परहेज करता हूं, और जब कभी किसी दबाव या लालच मे आ कर उनके सामने खड़ा होना अनिवार्य हो जाए तो मुझे नारकीय अनुभव में से गुज़रना पड़ता है। मुझे उन लोगों से ईर्ष्या और घृणा होती है जो हर आकार की सभा में हर प्रकार के विषय पर फर फ़र बोल लेते हैं, चकाचौंध रौशनी में, और बाद मे लोगों से पूछते फिरते हैं हम कैसा बोले।

मै उन्हें परियों की कहानियां सुना रहा था और सुरक्षित और स्थिर महसूस कर रहा था क्योंकि मेरी आंखें बन्द थीं और हम अन्धेरे में बैठे थे और वे सब खामोश थे, शायद उनकी आखे भी बन्द थीं। माया वहा नहीं थी, होती तो शायद उसे मेरी भावना विभोर अन्धी सूरत पर हंसी आ जाती और सारी कैफ़ियत किरकिरी हो जाती। माया की हंसी के खयाल से भी मेरे स्वर में कोई खराश नहीं आयी थी बल्कि सन्तोष का अनुभव हुआ था, माया को अपनी मूर्खता पर हसा सकने के सन्तोष का। न जाने क्यों लेकिन मुझे लग रहा था कि बच्चे मेरे स्वर पर झूम रहे होंगे, घर और खेल कूद और माया को भूल चुके होंगे, मेरी कहानियों की परियों को चूम रहे होंगे। जो कहानियां मैं उन्हें सुना रहा था वे मैंने पहले किसी से सुनी थीं न किसी को सुनायी थी, उन्हें मैं उसी वक़्त बुन रहा था, इसीलिए मैं सरूर महसूस कर रहा था और कई कहानियां एक साथ सुना रहा था, जैसे कोई मदारी कई रंगबिरंगे गेंद एक साथ हवा मे उछाल रहा हो और किसी को गिरने न दे रहा हो। मेरी आखें ता बन्द थीं लेकिन मै बच्चों की उपस्थिति से बेखबर नहीं था। मेरे खुमार में उनकी मस्ती की कल्पना भी शामिल थी, उनकी अपेक्षाओं की आगाही भी, उन्हें मोहित करने की ख्वाहिश भी। यह शायद उस अन्धेरे का ही कमाल रहा हो, लेकिन अगर बच्चों की जगह बड़े होते और कहानियां परियों की न होती तो मेरा स्वर रूखा होता, मेरी आवाज आत्मसीमित होती, मुझे सुनने वालों से भय महसूस होता, मेरी कोशिश होती कि मै उनकी उपस्थिति से ऊपर उड़ जाऊं, भूल जाऊं कि मै किसी को कुछ सुना रहा हूं।

मेरी कहानियों में कई लक्कडहारे थे, फूल थे, परिन्दे थे, तितलियां थीं. बन्दर और सांप थे, कहारने थीं, झीलें और नदियां थीं, महल थे, मन्दिर और मस्जिदें थी. रानियां और राजे थे, परियां तो थीं ही, सौतेली माएं नहीं थी, जादूगर थे, गुफाएं थी, बादल थे, धूप थी, खेत थे,

पहाड़ और पेड़ थे, गाने थे, बच्चे थे, हिरन थे, सपने थे, सोना था, राक्षस थे, कामनाएं थीं, कामुकता थी, मौन था, सुख था, दुख था, मौत थी।

कहानियां सुनाते सुनाते कब मुझे क्या हुआ मैं नहीं जानता लेकिन इतना याद है कि कुछ या काफ़ी देर के लिए मैं बच्चों को भूला रहा और न जाने किस किस आलम की सैर करता रहा। उसी सैर के दौरान मैंने एक कासिदनुमा अजनबी को अपनी तरफ़ आते हुए देखा। उसके एक हाथ में एक टेढ़ी सी छड़ी थी, दूसरे में एक फटा पुराना परवाना। वह किसी कचहरी का हरकारा भी हो सकता था, किसी साहूकार का मुन्शी भी, किसी प्राइमरी स्कूल का चपरासी भी, कोई नाकाम नीम हकीम भी, मेरा ही कोई मामा मौसा भी, मेरा ही कोई बिगड़ा हुआ रूप भी, किसी भूत का क़ासिद भी, कोई अन्धा गदागर या कारीगर भी। उसे देखते ही मेरे होंठ बन्द हो गये थे। मैंने देखा कि बच्चे गायब थे। मेरे हाथ में वह परवाना थमा कर वह आदमी कुछ कहे सुने बगैर मुंह फेर कर भाग गया। भागता हुआ वह किसी बूढ़े चोर सा नज़र आ रहा था। वह परवाना पढ़ने की मेरी हिम्मत नहीं हुई। उसे मैंने मरोड़ कर जेब में ठूंस लिया और बच्चों के लिए चिन्तित होना शुरू कर दिया। मेरी चिन्ता में आक्रोश का अंश भी था। आक्रोश बच्चों पर भी था, अपने आप पर भी। अपने आप पर इसलिए था कि बच्चों पर क्यों था, बच्चों पर इसलिए था कि वे मेरी आंखें बन्द देख मुझे धोखा दे गये। उन्हें साफ़ कह देना चाहिए था कि वे मेरी कहानियों से ऊब गये थे और घर जा रहे थे। तकलीफ़ मुझे तब भी होती लेकिन चिन्ता तो न होती। अब मुझे सिर्फ चिन्ता होनी चाहिए थी लेकिन मुझे शर्म आ रही थी कि मुझे तकलीफ भी हो रही थी।

तकलीफ़ को दबा कर मैं उठ खड़ा हुआ। बच्चों का कोई भरोसा नहीं था, न जाने कहां चले जाएँ, क्या कर बैठें। उस परवाने में शायद उनके बारे में ही कोई सूचना हो। इस खयाल को मार डालने के लिए मैने उस परवाने को पुर्ज़े पुर्ज़े कर दिया और पुर्ज़ों को हवा में उड़ा दिया। यह मेरी बेवकूफी भी थी, बुज़दिली भी, लेकिन मैं उस परवाने के किसी भी पैग़ाम का सामना करने की स्थिति में नहीं था, और अगर उसमें बच्चों के बारे में कोई बुरी खबर या धमकी थी तब तो बिलकुल नहीं। परवाने को फाड़ फेंक देने के बाद मैं बच्चो की तलाश में निकल पडा। आस पास कोई नज़र नहीं आया। आ भी जाता तो मैं मारे शर्म के उस से कुछ कह या पूछ न पाता। आस पास कोई मकान भी नज़र नहीं आया। आ जाता तो शायद शर्म के बावजूद मैं उसके दरवाज़े पर जा खड़ा होता, इस उम्मीद पर कि बच्चे अगर वहां छिपे हुए होंगे तो मेरी आवाज सुन कर बाहर आ मेरी टांगों से लिपट जाएँगे, मेरी परियो की कहानियों के बच्चों की तरह, जिनकी शरारतों की नक़ल करते करते ही शायद वे कुछ देर के लिए कहीं ग़ायब हो या खो गये थे। उन्हें आवाज़ देने की ख़्वाहिश इस खतरे के नीचे दब गयी कि मेरी घबरायी हुई आवाज़ सुन कर तमाशाई और हमदर्द जमा हो जाएंगे और मुझे उनके सवालों के जवाब देने पडेंगे, सुझाव सुनने पड़ेंगे, लानत-मलामत सहनी पड़ेगी। आस पास कोई नज़र तो नहीं आ रहा था लेकिन क्या पता अन्धेरे के पेट में कई छिपे बैठे हों, मौक़े की ताक में। बार बार यह खयाल आता कि बच्चे घर लौट गये होंगे, हर बार यह खयाल गलत लगता क्योंकि खुद मुझे घर का रास्ता उस वक़्त भूला हुआ था, बच्चों बेचारों को वह कैसे याद रह सका होगा।

मदद की ज़रूरत मुझे थी लेकिन मैं चाहता यह था कि कोई मददगार मुझे न मिले, क्योंकि सब से पहले वह मुझे यही सुझाएगा कि मैं सब से पहले घर जा कर तो देख लूं, और फिर वह मेरे साथ चलने को तैयार हो जाएगा। अगर बच्चे किसी तरह घर लौट गये होंगे तो माया मुझे कोस रही होगी और शायद बच्चों को साथ ले मेरी तलाश मे निकल पड़ी हो, बच्चों से पूछ रही हो कि मैं उन्हें कहां कहा घुमाता रहा, और बच्चे उसे ठीक ठीक कुछ भी बता नहीं पा रहे होंगे, और वह मन ही मन कह रही होगी, जैसा बाप वैसे बच्चे। यह सब सोचता हुआ मैं गिरता पड़ता चल रहा था, अन्धेरे और अन्देशों के बावजूद, कभी इस तरफ कभी उस तरफ़, क्योंकि मेरी घबराहट हर क्षण बढ़ती चली जा रही थी और चलते रहना ही एक ऐसा उपाय था जो कमोबेश मेरे बस का था। चलता भटकता आखिर मैं एक अस्पताल से के सामने जा रुका। अन्दर गया तो पता चला वह अस्पताल नहीं था, कोई दफ्तर था, जिसका काम किसी कारण रात को ही होता था। जिस कमरे में मैं खड़ा था वहा एक औरत और दो आदमी बैठे बातें कर रहे थे। किसी ने मेरी तरफ देखा न मुझ से पूछा मुझे क्या चाहिए। मन हुआ चिल्ला कर कहूं, तुम सब कामचोर हो, इसीलिए देश की हालत इतनी खराब है, तुम्हें शर्म आनी चाहिए...। लेकिन जल्द ही मुझे होश आ गया कि भाषण देने के बजाय उन से याचना करनी चाहिए कि वे मेरी मदद करें, मुझे सुझाएँ मैं क्या करूं। मैंने बारी बारी सबकी तरफ देखा, यह देखने के लिए कि उनमें से नर्मदिल कौन था, कोई मुझे नर्मदिल दिखायी नहीं दिया, सबकी आंखें और आवाज़ें सख्त थीं। अपनी बातों में मस्त होने के बावजूद उन सब ने मुझे देख तो लिया ही होगा, यह भी देख लिया होगा कि मैं मुसीबत में था लेकिन किसी ने कोई ऐसा संकेत नहीं दिया जिस से मुझे कोई सहारा मिलता। यही गनीमत था कि किसी ने मुझे दुत्कारा नहीं था, शोर नहीं मचाया था कि मुझ जैसे गये गुज़रे आवारा आदमी को अन्दर किस ने आने दिया, धक्के दे कर मुझे दफ़्तर से बाहर निकालने का आदेश नहीं दिया था। इसी ग़नीमत को सहारा समझ मैं औरत की तरफ़ बढ़ा। उसकी गर्दन लम्बी थी और गालों की हड्डियाँ ऊची थीं। इस काट की औरतें मुझे अच्छी लगती हैं लेकिन वे हमेशा अच्छी होती नहीं। सपनों में भी मैं ऐसी औरतों पर ही मरता तो हूं, उन्हें अपनी तरफ़ मायिल करने में अक्सर नाकाम रहता हूं, लेकिन कोशिश से बाज़ नहीं आता। अब मैं दबे कदमों से उसकी तरफ़ बढ़ रहा था और महसूस कर रहा था मानो वह पीछे हटती जा रही हो। मै नहीं जानता था उसे क्या और कितना बताऊगा। मुझे अपनी तरफ आता देख उसने बोलना बन्द और फ़ोन उठा कर कोई फ़िल्मी गीत गुनगुनाना शुरू कर दिया था। जब मै उसके पास पहुंचा तो वह गुनगुनाहट रोक कर बोली, क्या चाहिए आपको?

उस की आवाज़ में कोई पेच नहीं था, बस एक शरारती सी पुचकार थी। मै कुछ आश्वस्त हुआ। और तो कुछ कह नहीं सका, कह दिया, एक ज़रूरी फ़ोन करना चाहता था, यहा कोई पब्लिक फोन ...। उसने फोन मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, कर लीजिए। फोन तो मैंने ले लिया लेकिन अपना या किसी अपने का नम्बर मुझे याद नहीं था, जेब में ज़रूरी नामो नम्बरों पतों वगैरह वाला कोई गुटका भी नहीं था। औरत से डायरेक्टरी मांगने की हिम्मत नहीं हुई। वह बिगड़ सकती थी। पूछताछ का नम्बर घुमाना भी बेकार होता, उसे इतनी रात गये कोई नहीं उठाता। अब बच्चों की चिन्ता के साथ यह चिन्ता भी चिपक गयी थी कि मुझे अपना

घर कैसे मिलेगा, और यह भी कि उस औरत को मेरी चिन्ताओं का पता चल गया तो वह डर जाएगी और 'पागल पागल' का शोर मचा देगी और मै पकड़ लिया जाऊंगा। मैंने एक मनघड़न्त नम्बर घुमा दिया। उधर से जो आवाज़ आयी माया की तो नहीं थी लेकिन थी किसी औरत की ही। उसे कुछ कहने का मौक़ा न देते हुए, उस दफ़्तरी औरत की परवाह भी न करते हुए, मैंने एक ही सांस में तेज तेज उगल दिया: सुनो, बच्चे पता नहीं कहां खो गये हैं, मैंने सोचा यहीं कहीं होंगे, लेकिन कहीं नज़र नहीं आ रहे, घर तो खैर क्या पहुचे होंगे, घर का रास्ता मैं भूला हुआ हूं, उन्हें कैसे याद होगा, लेकिन तुम घबराओ नहीं, मैं पूरी कोशिश कर रहा हू, हां यह बात तो है, थोड़ी ही देर में हाथ को हाथ सुझाई नहीं देगा, मैं उनके बगैर घर नहीं लौटूंगा, मैं बहुत शर्मिन्दा हूं, मुझे मुआफ मत करना...।

वह औरत आखें फाड़ फाड कर मुझे देख रही थी, वे आदमी अपनी बातें और सीटें छोड़ कर मेरी तरफ बढ़ रहे थे, मेरी आवाज किसी घायल पक्षी की तरह फड़फड़ा रही थी।

पिछली कई रातों से हम हर रात घर से बाहर गुज़ार रहे है, एक दूसरे से अलग, अपने अपने चहेते बाग़ों और बयाबानों में, एक दूसरे से दूर होने के लिये नहीं बल्कि यह देखने के लिये कि एक दूसरे से दूर होने पर हम एक दूसरे के कितने पास रह पाते हैं, और यह देखने के लिये भी कि घर से बाहर रात गुज़ारने की कैफ़ियत कैसी होती है। इस प्रयोग का आरम्भ कैसे हुआ, याद नहीं; इसका समापन कैसे होगा, मालूम नहीं। माया रात भर कहा कहा भटकती है, मैंने कभी उस से नहीं पूछा; मैं कहा कहां भटकता हू, उसने कभी मुझ से नहीं पूछा। एक खामोश सा इकरार हमारे बीच हो गया है कि हम एक दूसरे से कुछ पूछेंगे नहीं; जो जितना बताना चाहे खुद ही बता दे, दूसरे की तरफ़ से कोई प्रश्न होगा न कोई शिकायत। उसका मुझे पता नहीं, मैं अपनी गश्त के दौरान अक्सर उसी के बारे में सोचता रहता हूं। उसका मैं कुछ कह नहीं सकता, मुझे लगता है यह दौर ज्यादा देर तक नहीं चलेगा। उसकी वह जाने मैं हर रात की गश्त का सारांश लिख लेता हू। नमूने के तौर पर कल रात की सैर का हाल :

कल रात मैंने फिर मकबरों वाले बाग़ में गुज़ारी। सो कर नहीं, घूम कर। बेशक बीच बीच में थोड़ी थोड़ी देर के लिये बैठ ज़रूर जाता था। रह रह कर खयाल आता रहा, माया कभी मुझे इस बाग़ में क्यों नहीं मिली, शायद यहां आने से उसे डर लगता होगा, डर तो मुझे भी लगता है लेकिन मैं डर के बावजूद यहां आता रहता हूं, या शायद डर के कारण, क्योंकि डर मे मुझे मज़ा आता है, मज़ा नहीं, डर से मैं सजग हो जाता हूं, डर न हो तो मुझे लगता है कुछ हो ही नहीं रहा, अन्दर बाहर मुर्दनी सी छायी महसूस होती है, अपनी या परायी पीड़ा का एहसास शिथिल पड जाता है, किसी हरकत में कोई हरारत महसूस नहीं होती, पाप और पुण्य का अन्तर उड़ने सा लगता है। मैं सोच रहा था माया को मेरे डर पर गुस्सा आता है, वह गीता की दुहाई देती है, मुझे उसके उपदेशों पर भी गुस्सा आता है और उसकी अथाह उदासी पर भी, लेकिन गुस्से के बावजूद उसे उदास देख कर मेरा गुस्सा उसकी उदासी में घुल जाता है, उसकी उदासी कभी मेरे डर में नहीं घुलती। उसे हैरानी होती है कि उसके उपदेशों का मुझ पर कोई असर क्यों नहीं होता। मैं अपने डर के बारे में सोचता हुआ उसका आनन्द ले रहा था, उसके उपदेशो को याद कर के मुस्करा रहा था, अंधेरे में गुमसुम खड़े बैठे मक़बरों को सहमी सहमी निगाहों से बुहार रहा था, सोच रहा था वह इस वक़्त न जाने कहां घूम रही होगी, किसके साथ घूम रही होगी, किसे याद कर रही होगी, क्या याद कर रही होगी। मैं सोच रहा था घूमते घूमते भी वह शायद सामान बान्ध रही होगी, घर

बदलने के लिये तैयार हो रही होगी, घर ढूंढ रही होगी, सोच रही होगी इस घर में आखिर क्या कमी है, यह घर क्यों घर महसूस नहीं होता, क्यों हर रात सामान बान्धना शुरू कर देती हूं, वह पता नहीं कहां भटक रहा होगा, किसी सुबह वह लौटेगा और घर को खाली पाएगा, तब वह क्या करेगा, तिलमिलाएगा, मेरी तलाश में मारा मारा फिरेगा या किसी और को घर ले आएगा, तब उसे यह घर घर नज़र आएगा या नहीं, कहीं आत्महत्या तो नहीं कर लेगा, मैं क्या चाहती हूं वह क्या करे। मैं सोच रहा था वह सोच रही होगी मैं अब ऐसा घर चाहती हूं जिसे बदलने की ख्वाहिश न हो, जो अपना नजर आए, घर नज़र आए, यह घर मेरा नहीं, क्यों नहीं, यह सामान भी तो मेरा नहीं, इसे क्यों बान्धती खोलती रहती हूं, किसी सुबह वह लौटेगा और देखेगा सारा सामान बन्धा पड़ा है लेकिन मैं कहीं नहीं, तब वह क्या करेगा सामान को खोलेगा या उठा कर बाहर कहीं फेंक आएगा या किसी और घर में ले जाएगा, उसे डर लगेगा, गुस्सा आएगा, दुःख होगा, मैं क्या चाहती हू वह क्या करे, उसे क्या हो। मैं यह सब सोच सोच कर उदास हो रहा था, उसके लिये नहीं, अपने लिये नहीं, सिर्फ़ उसके और अपने लिये नहीं, हर किसी के लिये, सब कुछ के लिये, क्योंकि हर कोई, सब कुछ, मुझे अस्थिर और निराधार और नश्वर नज़र आ रहा था, धूप और बर्फ की तरह, मक़बरों वाले उस बाग़ की तरह, अपने स्वप्नों की तरह। मैं सोच रहा था अब यहां से चल देना चाहिए, इस बाग़ से भी और इस दुनिया से भी, अब काफ़ी हो लिया, अब और नहीं, अब और क्या होगा, काफी भटक लिया, अब और नहीं, अब घर की तलाश बेकार, अब किसी ऐसी जगह जा गुम होना चाहिए जो जगह न हो, अब ज़िद्द छोड़ देनी चाहिए, बेहोश हो जाना चाहिए, होश में आ जाना चाहिए, कुछ फांक लेना चाहिए, किसी से कुछ कहे बग़ैर, कुछ सोचे समझे बगैर। मैं सोच रहा था और उस से बेखबर होता जा रहा था हालांकि उसी के बारे में सोचता सोचता मैं सफ़ाई के उस छोर पर जा पहुंचा था जहां से सब सिफर में सिमिट गया महसूस हो रहा था, और अचानक उसी सिफ़र में से फिर वही, माया, उभरती हुई नजर आयी, उदास और मुस्कराती हुई, धीरे धीरे मेरी तरफ़ बढ़ती हुई, आंखों मे अपना असली घर उठाए, मुझे उसी घर ले जाने के लिये जो उसका है न मेरा, जिसका सामान वह आजकल बान्धती खोलती रहती है, जो सामान उसका है न मेरा।

घर लौटने के खयाल से वैसी ही घबराहट हुई जैसी हर भगौड़े को होती है। देर बहुत हो गयी थी, घर बहुत दूर था, घर में माया अकेली थी, इसलिए घर लौटना उस मानसिक झुटपुटे के बावजूद ज़रूरी लग रहा था, इसीलिए शायद घबराहट ज्यादा हो रही थी, मामूल से ज्यादा। साथियों में से एक बार बार कहे जा रहा था, मिल जाएगी, मिलेगी कैसे नहीं, मिल जाएगी। मुझे महसूस हो रहा था मानो वह किसी दम तोड़ते मरीज से कहे जा रहा हो, तुम ठीक हो जाओगे, घबरा क्यो रहे हो, मैं कह तो रहा हूं तुम ठीक हो जाओगे। किसी ने उस से कहा, अगर इतना ही भरोसा है तो करो किसी से बात, खड़े क्यों हो! वह स्टैन्ड की तरफ़ बढ़ा। एक टैक्सी वाला शायद उसे भूत समझ कर उछल पडा। मेरे उस साथी ने उस से बात की। टैक्सी वाला घबरायी हुई ऊंची आवाज में बोला, चलने को तो चला जाऊंगा लेकिन उधर से सवारी न मिली तो। मेरा खयाल था मेरा साथी कहेगा, मिल जाएगी, मिलेगी कैसे नहीं, मिल जाएगी, लेकिन मैंने देखा वह किसी लम्बी गहरी सोच में डूब गया था। मन हुआ टैक्सी वाले से कह दूं, न मिली तो तुम रात वहीं काट लेना, फिर यह सोच कर चुप रहा कि वह पूछेगा, कहा, किसके साथ, आपके बिस्तर में, आपके साथ या आपकी बीवी के साथ? इतनी रात गये कोई भूत जैसा आदमी मुझे जगा कर इतनी दूर चलने के लिये कहता तो मै मारे डर और गुस्से के कुछ भी बक सकता था। टैक्सी वाला मुझे धुत्त नज़र आया। सो हम उसे वही झूलता छोड़ आगे बढ़ गये। कुछ देर तक यूंही इधर उधर सडकें नापते रहे। दूसरों का मुझे पता नहीं मैंने चुपचाप उस रात घर लौटने का खयाल छोड़ दिया था। मेरी घबराहट आधी रह गयी थी और उसका ताल्लुक माया से था जो घर में अकेली थी। मैं अब वक़्त काटने और उस आधी बची घबराहट को थका देने के लिये ही घूम रहा था, टैक्सी की तलाश में नहीं। मैं अपने साथियों से अलग चल रहा था, शायद हम सब एक दूसरे से अलग चल रहे थे, क्योंकि रात अपने उस निर्मल अंधियारे में दाखिल हो चुकी थी जिसे हम किसी बात से बिगाडना नहीं चाहते थे। पता नही कितनी देर बाद मैंने देखा हम फिर वहीं पहुंच गये थे जहां हम शुरू मे थे। किसी ने कहा, हम तो फिर मल्लिकागंज पहुच गये। उसकी हैरानी में हंसी सुनायी दी तो हम सब भी हंस दिये। अचानक मुझे लगा जैसे मैं साथियों से नहीं अजनबियों मे घिरा हुआ हूं। ठीक है, मैंने सोचा अगर अजनबी होंगे तो कुछ देर बाद ग़ायब हो जाएगे। कुछ देर बाद वे सब अंधेरे में ग़ायब हो गये। मुझे अफ़सोस हुआ न आश्चर्य। फिर मैंने देखा माया मेरे साथ घूम रही है। अब हम दोनों टैक्सी ढूंढ रहे थे। मैंने उस से यह नही पूछा कि वह वहां कैसे पहुंच गयी थी, अगर वह टैक्सी या स्कूटर पर आयी

थी तो उसने उसे छोड़ क्यों दिया, कितनी देर से वह मेरे साथ घूम रही थी, क्या उसे देख कर ही बाकी सब गायब हो गये थे। मुझे डर था वह मुझे झिड़क देगी, एक तो इतनी इतनी देर तक मुझे अकेली छोड़ कर बाहर घूम रहते हो, ऊपर से नुक्ते निकालते हो। मन हुआ पूछूं, तुमने इस बीच कहीं घर तो नहीं बदल लिया। यह सवाल भी गलत लगा। वह कह सकती थी, इतने अंधेरे में मजाक करते शर्म नहीं आती तुम्हें? मैंने मान लिया वह अकेली लेटी लेटी मेरा इन्तजार करते करते घबरा उठी होगी और मुझे पकड़ कर घर ले जाने के लिये किसी तरह वहां आ पहुंची होगी। मन हुआ उसका हाथ पकड़ लूं। तभी एक पहरेदार या सिपाही हमारी तरफ आता हुआ दिखायी दिया। मैं डर गया। सिपाहियों और पहरेदारों और अफ़सरों से मुझे बहुत डर लगता है। अपने इस डर के कई नमूने सामने नाचते हुए नज़र आए। इस उम्र में भी मैं उसी तरह डरता रहता हूं जैसे बचपन में। सोया सोया भी। वह पुचकारती पूछती रहती है, क्या हुआ, क्या हुआ? मां भी इसी तरह पुचकारती पूछती रहती थी। उस सिपाही या पहरेदार ने हम से कुछ नहीं पूछा। माया ने उस से शिकायत की, कोई टैक्सी वाला उधर जाने को तैयार नहीं हो रहा, एक हुआ था लेकिन वह पांच सौ मांग रहा है। मैं चौंका। अगर इस सिपाही या पहरेदार को पता चल गया वह झूठ बोल रही है तो वह हमें पकड़ ले जाएगा। सिपाही को कुछ पता नहीं चला। उसने कहा, मैं अभी कोई इन्तज़ाम करवाता हूं, आप लोग घबराइए मत। मुझे सिपाही की शिष्टता पर इतना आश्चर्य हुआ कि मैंने आंखें बन्द कर लीं। माया ने पुचकार कर पूछा, क्या हुआ? सिपाही की आवाज़ आयी, इन्हें शायद गश आ रहा है, मैं अभी कोई इन्तज़ाम करवाता हूं, आप घबराइए मत। मेरे सिवा सभी लोग—मेरे साथी, अजनबी, माया, सिपाही—आस्थावान आशावादी हैं। मुझे सचमुच गश आ गया।

उस रात फिर मैं घर से दूर न जाने कहां कहा और क्यों क्यो भटकना भुरता रहा। बीच बीच में रुक कर सोचने समझने की कोशिश तो करता लेकिन हर कोशिश को अंधेरा हड़प लेता और मै फिर भटकना शुरू कर देता। जब उजाले ने अंधेरे को खदेड़ना शुरू किया तो मैं घर लौट रहा था या शायद सिर्फ सोच रहा था मैं घर लौट रहा हू। मेरा सर किसी लोक कथा के किसी थके टूटे लक्कड़हारे के सर की तरह झुका हुआ था, मेरी आंखें उसकी आखों की तरह बुझी हुई थीं, मेरा मन उसके मन की तरह भारी था, मेरा पेट उसके पेट की तरह खाली था। पूरा उजाला हो जाने से पहले मैं घर पहुंच कर सो जाना चाहता था। वैसे मुझे यह भरोसा नही था कि घर वही होगा जहां था, वही होगा जो था। इस अविश्वास के बोझ के बावजूद मै जैसे तैसे क़दम बढ़ा रहा था, उस तरफ जिस तरफ शायद मेरा घर था, जहां कोई शायद ही मेरा इन्तज़ार कर रहा हो, जहां से मैं न जाने क्यों रात भर गायब रहा था। अपने मन में रमे हुए घोर अनिश्चय पर मुझे एक धीमी सी मुस्कराहट आ रही थी। उसी मुस्कराहट के मैले आलोक में मैंने कनखियों से उसकी तरफ देखा जो न जाने किस मोड़ पर कहां से नमूदार हो कर मेरे साथ हो लिया था। रात भर की भटकन के दौरान वह मेरे साथ नहीं था। अगर था तो मैंने उसे देखा नहीं था। अब भी उसकी चाल और चेहरे से यही पता चलता था कि वह मेरे साथ नहीं था, सिर्फ उस तरफ जा रहा था जिस तरफ मैं। उसके चेहरे पर रात भर के अंधेरे की राख मुझे दिखायी नहीं दी, शायद थी ही नहीं। उसकी आखे मुझे बुझी हुई दिखायी नहीं दीं, शायद वे थीं ही नहीं। उसका सर झुका हुआ तो था लेकिन किसी थके टूटे लक्कड़हारे के सर की तरह नही बल्कि किसी ऐसे व्यक्ति के सर की तरह जो सुबह की सैर से घर लौट रहा हो और अपने आप से सन्तुष्ट हो। उसके मन में शायद ही अनिश्चय का कोई कण हो। उस समय उसका मेरे साथ चल रहा होना इस तथ्य का सबूत या संकेत नहीं था कि मैं अपने घर लौट रहा था बल्कि इसी तथ्य का कि वह अपने घर लौट रहा था, अपनी रात से तृप्त, अपने दिन के लिये तैयार। एन मुमकिन था कि उसने मुझे देखा तक न हो, या देखा तो हो ध्यान न दिया हो, या देख कर सोचा हो कोई बेघर अजनबी किसी पनाह की तलाश या आशा में उखड़े उजड़े कदम उठा रहा है। इस विचार से मुझे कंटीली सी तस्कीन मिली, महसूस हुआ मैंने सचमुच अपने अहम को मार डाला है, मर जाने के बाद उठ खड़े होने की कैफियत का अनुभव हुआ। अनायास मेरे मुह से निकल गया—घर पहुचूगा तो घर शायद लुट चुका होगा, अपनी जगह बदल चुका होगा, मैं कुछ देर हमसायों को बिटर बिटर देख लेने के बाद फिर भटकना शुरू कर दूंगा, कोई मुझ कुछ बताएगा न मुझ से कुछ पूछेगा

न मुझे रुकने के लिये कहेगा, किसी को मेरी...। उसकी आवाज आयी—तुम यूँही हताश हो रहे हो, घर इस तरह लुटने हैं न अपनी जगह बदलते है, कोई न कोई तो घर में होगा ही, न होगा तो हमसायों में से कोई न कोई तो तुम्हे रोक ही लेगा, बता ही देगा क्या हुआ। उस आवाज में कोई आशका नहीं थी, सच्चाई नही थी; उसके आश्वासन में खोट था, स्वस्थ सफल आत्मकेन्द्रीयता थी, खोखली सहानुभूति थी। मैंने सोचा इसने मुझे पहचाना नही या न पहचानने का बहाना कर रहा है, या शायद यह देखना चाहता है कि मैंने इसे पहचाना है या नहीं, या शायद मुझ में ही कोई ग़लती हो रही है; अगर इसने मुझे या मेरी आवाज़ को पहचान लिया होता तो यह चुप रहता, अपनी आवाज़ सुनने का अवसर मुझे न देता; हो सकता है मेरे हुलिये की तरह मेरी आवाज़ भी बदल गयी हो; इस कमबख्त आवाज को क्यों कभी कुछ नहीं हुआ। मैंने फैसला कर लिया अब और कुछ नहीं कहूंगा। मेरी चाल धीमी होती चली गयी, वह अपनी चाल से चलता रहा। उसने मुड़ कर नहीं देखा। शायद उसने सोचा हो उसके झूठे आश्वासन से मेरी हताशा दूर हो गयी है। मैं इन्तज़ार कर रहा था वह मुड़ कर आवाज़ देगा, अगर तुम्हारे घर में कोई न हुआ तो तुम मेरे घर चले आना, मेरा पता वही है, और मैं चिल्लाऊँगा, तो तुमने मुझे पहचान लिया, और वह कहेगा, नहीं, लेकिन चूंकि तुमने मुझे पहचान लिया है इसलिए मैंने सोचा तुम मेरा पुराना पता भी जानते होंगे, वह पता बदला नहीं, मैं तुम्हें पनाह दे सकता हू, और मैं कहूंगा, मुझे नहीं चाहिए वह पनाह। लेकिन उसने मुड़ कर नहीं देखा और मैं उसकी गायब होती हुई स्वस्थ देह को देखता रहा और धीमी होती हुई चाल मे आगे बढ़ता रहा। आखिर जब मेरी निगाह अपने घर पर पड़ी तो वह मुझे इस तरह बन्द और बुझा हुआ नज़र आया कि मैं जान गया वहां कोई नहीं था। पड़ोस के मकान से एक पीली पतली औरत बाहर आयी। उसने मुझे देखा। पता नहीं उसने मुझे पहचाना या नहीं। बोली, उसने घर बदल लिया है, कह गयी थी कोई आए तो कह देना पता नहीं कहां गयी है।

इतवार के दिन गर्मियों में अपने देश की किसी पब्लिक लायब्रेरी के रीडिंग रूम में अखबारो की छानबीन करते बूढ़ों से ज़्यादा दिलतोड़ शायद ही कोई और दृश्य हो, मैं सोच रहा था और एक अखबार में कुछ देर के लिये घर बना लेने की कोशिश कर रहा था। मेरे आस पास बूढ़े ही बूढ़े थे। सब अखबारी कीड़ों से नजर आते थे। बस इस से ज्यादा मैं उनके हुलिये वगैरह के बारे में कुछ नहीं कहना चाहता। जब कोई अखबार का वर्क़ उलटता तो काग़ज़ी फड़फड़ाहट होती और मैं सोचता इस आवाज से ज्यादा खोखली आवाज़ शायद ही कोई हो। मैं पहले कभी उस लायब्रेरी में नहीं गया था। उस रोज़ भी न जाता लेकिन लायब्रेरी के सामने खड़ा खड़ा मैं अचानक इतना बेचैन और बेसहारा हो गया था कि लायब्रेरी में पनाह लेनी पडी थी। बाहर धूप में सब कुछ सूखा और नंगा दिखायी दे रहा था। माया उस इलाके में कोई घर देख रही थी। मैंने उसके साथ जाने से इनकार कर दिया था। उसने बुरा मनाया था। अगर मुझे उसका साथ नहीं देना था तो मैं आया क्यों ? मेरे पास कोई माक़ूल जवाब नहीं था। ऐन मौके पर अचानक वह इनकार मेरे अन्दर से फूट पड़ा था। वह मुझे वहीं खड़ा छोड़ चली गयी थी। मैं काफी देर वहीं खड़ा रहा। मेरे हाथ खाली थे। कोई किताब, अखबार या झोला तक मेरे पास नहीं था। खाली हाथ नंगी सडक पर किसी पेड के सहारे या साये के बग़ैर खड़े खड़े मैं सोच रहा था अपने अपने घरों की खिड़कियों में से लोग मुझे देख रहे होंगे और मेरे बारे मे अनुमान लगा रहे होंगे। मैं इस खयाल को खिलने नही देना चाहता था। मुझे मालूम था अगर मैंने उसे वहीं खत्म न कर दिया तो और बेचैन और बेसहारा हो जाऊँगा। लेकिन किसी भी खयाल को खत्म मैं कभी नहीं कर सका। सो मैं अपने बारे में लोगो के अनुमानो के बारे में अनुमान लगा रहा था—बेघर है, आवारा है, पागल है, पिये हुए है, घर से लड़ कर आया है, जासूस है, ख़तरनाक है, बीमार है, भिखारी है, बेकार है, इतना बूढ़ा होगा नहीं जितना नज़र आता है, कई दिनों से नहाया नहीं...। बस यही सब सोचते सोचते हालत यह हो गयी कि वहा खड़े रहना नामुमकिन हो गया। अन्दर गया तो अखबारों पर झुके बूढ़ों को देखते ही बाहर भाग जाने की ख्वाहिश हुई, जिसे कुचल कर एक ढीली कुरसी पर जा बैठा. एक चुस्त चुके हुए बूढ़े की बग़ल मे, उसकी निर्मम निगाह को झेलता हुआ, एक अखबार के खोखल में अपना सर छिपाता हुआ...

जब वे दोनों फुर्तीले बूढ़े हसते बतियाते मेरे पास से गुज़रे तो मैं भी सहसा फुर्तीला हो गया और उस बेंच से उठ कर उनके साथ हो लिया। उन्होंने मुझे मना किया न हंसना बतियाना बन्द किया। मैंने सोचा ये मुझे जानते होंगे या समझे होंगे मै इन्हें जानता हूं, या शायद इस पार्क का यही दस्तूर होगा कि कोई भी किसी की सैर में नि.संकोच शरीक हो जाए। उनके पीछे पीछे भागते हुए मैंने पूछा, आपको कोई एतराज़ तो नहीं? उन दोनों ने मेरी तरफ़ देखे बगैर एक साथ कहा, नहीं भाई साब, एतराज हमें क्यों होगा? मैं आश्वस्त होने के बजाय हैरान हुआ, कुछ क़दम और चला और रुक गया। उनके साथ नत्थी हो जाने में कोई तुक नजर न आयी। अगर वे आराम से चल रहे होते तो शायद मेरे मन में कोई शका न उठती। कह नहीं सकता। मेरा खयाल था वे मुड कर मेरी तरफ देखेंगे, कुछ कहेंगे, हंसेंगे, या किसी इशारे से मुझे शर्मसार करेंगे, लेकिन उन्हें अपनी ही बातों में मस्त दूर होते देख मैने अपने मुह पर दोनों हाथो से एक भोपू सा बना कर उन्हे आवाज दी, आप सैर कर रहे हैं या भाग रहे हैं? मेरी आवाज मुझे किसी कमज़ोर परिन्दे की पुकार सी सुनायी दी। मैंने हंसना शुरू कर दिया। वे ग़ायब हो गये। यकायक याद आया मुझे उस इलाके मे कोई कमरा किराये पर लेना है और वे लोग मेरा इन्तज़ार कर रहे होंगे। मै भागता हुआ उस पार्क से बाहर आया। सड़क से कुछ फ़ासले पर एक मालगाड़ी रेंगती हुई दिखायी दी। झुझलाहट हुई। अगर इस इलाके में कमरा ले लिया तो रात भर नींद में सीटियां ही बजती रहेंगी, दु:स्वप्नों मे गाड़ियां ही छूटती रहेंगी। इस खयाल को दबा, गाड़ी को घूरता हुआ, मैं सड़क पार कर गया। कुछ दूर एक दीवार से पीठ सटाए खड़ी एक लम्बी लडकी दिखायी दी। वह मुस्करा रही थी। उसकी मुस्कराहट मोहिनी थी। जब मैं उसके पास पहुचा तो वह बोली, आप ने देर कर दी, मेरा नाम काया है। मैंने कहना चाहा, मैं माया को जानता हूं तू कहीं उसी की काया तो नहीं, लेकिन यह सोच कर चुप रहा कि उसे बुरा लगेगा। काया ने मेरी कुहनी को छूते हुए कहा चलिए कमरा देख लीजिए। उसकी ऊंची एड़ियों की टिक टिक टिक हमारे साथ चल रही थी। काया की अपनी आवाज मुझे साफ़ सुनायी नहीं दे रही थी। मेरा ध्यान कहीं और था। आस पास कोई और नहीं था। गाडी ग़ायब हो चुकी थी। काया बोले जा रही थी लेकिन मुझे समझ नहीं आ रहा था वह कह क्या रही थी। मैंने सोचा उस कमरे और इस इलाके के बारे में बता रही होगी। उसकी महक मुझे चकरा रही थी। जब हम उस कमरे में दाखिल हुए काया ने कहा, यह रहा वह कमरा। मुझे लगा जैसे वह मुझे किसी व्यक्ति से मिला रही हो। कमरे में एक बहुत बड़ा पलग बिछा हुआ था, जिस पर लेटा कोई

भी व्यक्ति बहुत छोटा और अकेला नजर आता होगा। और कोई सामान वहा नहीं था। पलंग नगा नहीं था। काया जूते उतार कर उस पर जा बैठी तो में भी जूते उतारे बग़ैर उस के पास जा बैठा। मैं इन्तजार कर रहा था वह कमरे का किराया बताएगी। वह शायद इन्तजार कर रही हो मैं कमरे का किराया पूछूगा। मैं सोच रहा था, अब इसे माया के बारे मे बता देना चाहिए। मेरे अन्दर बैठा कोई चोर सुझा रहा था, चुप रहो। मै चुप रहा। वह भी चुप थी। उसके एक पाँव का तलुआ मेरी तरफ उठा हुआ था। मैंने एक अगुली से उस पर माया का नाम लिख दिया। काया सकुचायी नहीं तो मैंने अपना नाम भी लिख दिया। फिर मैंने पूरे हाथ से दोनों नामो को मिटाना शुरू कर दिया। तलुआ नर्म और ठडा था, मेरा हाथ खुरदरा और गर्म। मैं हैरान था काया ने अपना पैर हटाया या सिकोड़ा क्यों नहीं। मैं चाह रहा था वह उस पैर को हटा कर दूसरा आगे बढ़ा दे। और फिर दूसरे को हटा कर पहला आगे बढ़ा दे। मैंने अपना हाथ पीछे हटा लिया। अचानक घर याद आ गया था, माया याद आ गयी थी, शर्म महसूस होने लगी थी, काया पर गुस्सा आने लगा था। मै उठ खड़ा हुआ। मेरी निगाह एक खुली खिड़की पर पड़ी। बाहर एक आदमी खड़ा हमे देख रहा था। वह काया का पति भी हो सकता था, भाई भी। काया को शायद पहले ही पता था वह खिड़की में से सब देख रहा था। उसने पूछा कमरा पसन्द आया आपको ? मैंने कोई जवाब नहीं दिया। मैं बाहर खड़े उस आदमी से पूछना चाहता था मुआमला क्या है। शुक्र है मैंने पूछा नहीं। पूछता तो शायद वह मुझे पकड कर पीट देता। जब मै कमरे से बाहर निकल रहा था तो काया कुछ कह रही थी लेकिन मैंने सुना नहीं, मेरा ध्यान कहीं और था।

मैं एक अजनबी इलाके मे अकेला अपना घर ढूढ रहा था। बीच बीच में भूल जाता था वहा कर क्या रहा था। तब माया का सिमरन अनायास शुरू हो जाता और मुझे कुछ करार आ जाता। वह एक और अजनबी इलाक़े मे अकेली घर ढूढ रही थी। उसे मेरा खयाल कुछ करार देता होगा लेकिन वह शायद ही भूलती हो वह उस इलाक़े मे क्या कर रही थी। मुझे जब कोई इक्की दुक्की सूरत नज़र आ जाती, मेरी नजरें किसी शर्मीले बुद्धू बच्चे की तरह नीची हो जातीं। जब वह सूरत ओझल हो जाती, मुझे महसूस होता जैसे कोई बला टल गयी हो। इस तरह घर कैसे मिलेगा, मैं बड़बड़ाता, अगर किसी से नज़र नहीं मिलाऊँगा, कुछ पूछूगा नहीं तो घर कैसे मिलेगा, नही मिलेगा, न मिले, घर मे घर की तलाश ज़्यादा ज़रूरी है। वह इलाक़ा इतना सुनसान था कि अजनबी नहीं अपना ही महसूस होता था। इक्की दुक्की सूरतें भी शायद अजनबी नहीं अपनी ही थीं। इसीलिये शायद दहशत इतनी ज़्यादा थी। लेकिन दहशत शायद हर हालत में होती, हर आलम मे होती, घर मिल जाता तो भी होती, घर की कामना न होती तो भी होती, माया साथ होती तो भी होती, दहशत अनिवार्य है, उसकी कमी बेशी का हिसाब कोई राहत नहीं देता। यह सब जानते हुए भी हम अपनी योजना के तहत एक प्रयोग कर रहे थे, एक दूसरे से दूर और अलग अपने चुने हुए इलाको में घर की तलाश में घूम भटक कर देखना चाहते थे क्या हासिल होता है। मुझे कुछ हासिल नहीं हो रहा था, माया का मुझे पता नहीं। जिस घर में हम रह रहे थे वह माया को घर नहीं लगता था, अपना नहीं महसूस होता था, हर रात सपनों मे वह सामान बान्धती खोलती रहती थी, या उसे उठा कर इधर उधर डोलती रहती थी। इसीलिये उसने यह प्रयोग सुझाया था। अपने इलाक़े में डोलता हुआ मैं सोच रहा था माया इस प्रयोग में जुटी हुई है, मैं इसे झेल भर रहा हू, इसलिये उसे शायद कुछ हासिल हो जाए, मुझे नहीं होगा, न हो...

तुम और मैं एक काली कार की पिछली सीट पर एक दूसरे से लिपटे हुए लेटे हैं। कार उड़ रही है। तुम कहती हो, इसे रोको रहमान। मैं कहता हू, मेरा नाम रहमान नहीं, होता तो भी मैं इसे रोक नहीं पाता। तुम्हारी लपेट ढीली हो जाती है। तुम पूछती हो, तो क्या है तुम्हारा नाम ? तुम बहुत घबरायी हुई और गम्भीर सुनायी देती हो। मैं चुप रहता हूं। तुम्हे बताना नहीं चाहता मै अपना नाम भूल गया हू। डरता हूं तुम कहोगी, यही कसर बाकी थी। सोचता हू तुम्हें भी मेरा नाम भूल गया होगा, इसीलिए तुमने मुझे रहमान कह दिया, लेकिन रहमान क्यों ? वैसे मुझे रहमान भी मन्ज़ूर है, मैं सोचता हूं, स्वप्न में नाम और रूप अक्सर बदल जाते है। मुझे मालूम है मैं स्वप्न देख रहा हू। सोचता हू, पता नहीं तुम्हे मालूम है या नहीं, स्वप्न में, कि तुम मेरे स्वप्न में हो, कि तुम्हें मालूम है या नहीं, स्वप्न मे बाहर, कि तुम मेरे स्वप्न मे हो। चाहता हूं स्वप्न में तुम्हे बता दू तुम मेरे स्वप्न मे हो। डरता हू ऐसा करने से स्वप्न टूट जाएगा। मुझे स्वप्न मे मालूम नहीं मैं स्वप्न के बाहर कहां सोया पड़ा यह स्वप्न देख रहा हूं। स्वप्न में ख्वाहिश होती है एक क्षण के लिये स्वप्न टूट जाए ताकि मै जान सकूं मै कहा हूं, तुम मेरे साथ हो या नहीं, मै घर में हूं या नहीं, घर है या नहीं। स्वप्न में इस ख्वाहिश को भुला देता हूं। तुम्हारी लपेट में अभी तक कसाव नहीं लौटा। काली कार अब भी उड़ रही है। तुम शायद मेरे असली नाम का इन्तजार कर रही हो। मै फैसला कर लेता हूं अगर तुमने फिर मुझे रहमान कहा तो मैं एतराज़ नहीं करूंगा और तुम समझ जाओगी मुझे यह नाम मन्ज़ूर है या यही मेरा असली नाम है या यह भी मेरे असली नाम का ही एक रूप है। कार अब एक चील में बदल गयी है। हम शायद उसके पेट या चोंच में हैं। पता नहीं यह हमें कहां गिराएगी, किस छत या सड़क या पहाड़ या धूरे पर। तुम कहती हो, घबराओ नहीं, यह स्वप्न ही तो है, वैसे हो सकता है यह हमे हमारे घर में ही फेंक आए। अब मेरी लपेट भी ढीली हो जाती है। मेरे स्वप्न में भी तुम घर की तलाश में हो ? मुझे ग़ुस्सा आ जाता है। चिल्लाता हू, रुक जाओ, कहां उड़ाए लिये जा रही हो हमे, उतार दो यहीं ! तुम्हारी हसी छूट जाती है। चील एक पलग में बदल गयी है। पलग एक गुफ़ा मे बिछा हुआ है। गुफा गर्म है। मैं खुश हूं कि किसी को पता नहीं हम कहां है, हमे भी नहीं, रहमान को भी नहीं। मैं इस अपूर्व अवसर को पी रहा हूं। सन्नाटा कमान की तरह तना हुआ है। मेरी आंखें बन्द हैं। मैं तुम्हारी आवाज़ का इन्तजार कर रहा हू। एक अजनबी आवाज आती है, एक सरहाना इधर दे दो। मेरी आंखें खुल जाती हैं। एक अंधेरा हम दोनों पर झुका हुआ है। पूछता हू, कौन हो तुम ? जवाब आता है, माया का मेहमान। मै तुम्हारी तरफ़ देखता हू। तुम्हारी आंखें बन्द

है। उसकी आवाज फिर आती है, एक सरहाना मुझे दे दो। मैं मर उठा कर एक सरहाना उसे दे देता हू। तुम से पूछता हू, यह कौन है? तुम कहती हो, मेरा मेहमान। पूछता हूं, इसका नाम? तुम कहती हो, मालूम नहीं। कहीं यही वह रहमान तो नहीं। पूछता हू, कहां सोएगा? तुम कहती हो, यहीं इधर, मेरे साथ, अरे यह तो सो भी गया, अब तुम भी सो जाओ। पूछता हू, कितने दिन रहेगा? तुम कहती हो, जितने दिन तुम उसे रहने दोगे।

मैं तुम्हें जगा कर यह स्वप्न सुनाता हूं तो तुम कहती हो, स्वप्न ही तो था, तुम सूख क्यों गये; तुम्हे तो अपनी असंकीर्णता पर गर्व है, फिर एक स्वप्न से इतनी परेशानी क्यों; अगर सचमुच ऐसे हुआ होता तो तुम न जाने क्या करते?

मै शायद करता कुछ भी नहीं। चुप मार कर पड़ा रहता और कुढ़ता रहता।

तुम सो गयी हो, मै अंधेरे में पड़ा सोच रहा हू, अगर तुमने मुझे कोई अपना ऐसा स्वप्न सुनाया होता, हम किसी गर्म गुफ़ा में बिछे किसी पलंग पर लेटे होते और मेरी कोई मेहमान आ कर तुम से सरहाना मांगती तो क्या तुम उसे सरहाना दे देती, उसे मेरे साथ सो जाने देती? इसका जवाब शायद मुझे तुम्हारे किसी स्वप्न में ही मिले।

गायब होने से पहले वह बोली, तुम जो करना चाहो या कर सको करो, मै जा रही हू। कुछ देर तक मैं वहीं खड़ा उसकी दूर होती हुई देह की तरफ देखता रहा। दूर जाती हुई वह और दिलफरेब नजर आ रही थी। उसकी चाल से साफ़ पता चलता था कि उसे मालूम था मेरी आंखें उसी की पीठ पर टिकी हुई थीं। लेकिन यह उसे शायद ही मालूम हो कि उन आंखों में पानी भर गया था। जब वह ग़ायब हो गयी तो मैने इधर देखा और सोचा, उसे रोक लेना चाहिए था, कहना चाहिए था मैं कुछ करना चाहता हू न कर सकता हूं, पूछना चाहिए था यह क्या मजाक है मैं बच्चा नहीं जिसे तुम मेले में अकेला छोड भाग जाओ, उसके साथ जाने की जिद्द करनी चाहिए थी। जब उसके लौटने की उम्मीद उड गयी तो मैने पाया मैं एक विराट बेगाने बाग में एक निहत्थे नुक्ते की तरह था। माया की अनुपस्थिति अब माया से मुक्ति का रूप ले सकती थी। अपना निहत्थापन एक कवच का। जाने से पहले माया ने अगुली उठा कर एक ओर इशारा किया था। उस समय उसकी अदा की अतिनाटकीयता पर मैंने ध्यान नहीं दिया था वर्ना मुझे हंसी आ जाती। अब आ रही थी लेकिन मैं उसे आने नहीं दे रहा था। तो जल्दी ही मैं बाग़ के उस हिस्से मे जा पहुंचा जहा सचमुच का, या शायद झूठमूठ का, एक मेला लगा हुआ था। एक तरफ कुछ बनेठने लोग किसी ऐसे ताल पर नाच कूद रहे थे जो मुझे सुनायी नहीं दिया। उनका नाचना कूदना मुझे बेहूदा नज़र आया। दूसरी तरफ कुछ लोग कपडे उतार पहन रहे थे। शायद कोई प्रतियोगिता चल रही थी कि कौन कितनी तेजी से कपड़े उतारता पहनता है। कुछ और नुक्ते भी होंगे। जैसे कौन कपड़ों के बगैर कितना कौन्धता है क्या गुल खिलाता है। मुझे कुछ लोगों के कुछ अंगो की कौन्ध अच्छी लगी थी लेकिन सारा खेल सरासर वाहियात। दूर बाग के एक कोने में एक छोटी सी परेड हो रही थी। क़रीब जा कर उसे देखने की इच्छा नहीं हुई। परेडों से मैंने हमेशा परहेज़ किया है। बैन्डबाजों का शोर मैं सुन ही नहीं सकता। एक और कोने मे कोई नुमाइश सी लगी हुई थी। पता नहीं क्यों लेकिन उस तरफ नज़र जाते ही मुझे विश्वास सा हो गया मुझे उस नुमाइश को देख कर दुःख होगा। दु:ख मुझे पहले ही काफी हो रहा था। मैं उधर भी नहीं गया। सर झुका कर मैंने सवाल किया, यह हो क्या रहा है? लगा जैसे जगल में मंगल हो रहा था और मुझे जंगल (बाग) अच्छा लग रहा था न मंगल (मेला)। माया शायद मेरा इम्तहान लेने के लिये ही मुझे वहां छोड गयी थी। खुद शायद कहीं छिपी बैठी सब देख रही हो। लगा जैसे मेरे अन्दर छिपी बैठी हो, अन्दर जो हो रहा था उसे भी देख रही हो। अन्दर को एकदम खाली कर देने की ख्वाहिश हुई। कहीं से आवाज आयी, चाहना आसान है, चुकना

मुश्किल। शायद माया नहीं कोई और मेरा इम्तहान ले रहा था। माया की अनुपस्थिति को मैं किस हद तक उस से मुक्ति का रूप दे पाऊंगा? नहीं। उसकी अनुपस्थिति को मैं कैसे उस से मुक्ति का रूप लेने से रोकता हूं? नहीं। उसकी अनुपस्थिति में भी मैं कैसे उस से मुक्त होने की चेष्टा के बहाने उसी से बन्धा रहता हूं? नहीं। मैं अपनी 'नहीं' के संग नाच ही रहा था कि कुछ बालाएँ अपनी तरफ बढ़ती हुई दिखायी दीं। मैंने साक्षात् झेंप का रूप ले लिया। उनमें से एक ने मेरी कमर में हाथ डाल कर कहा, इसे तो मैं अपने साथ ले जाऊँगी। उसके स्पर्श से मैं एक फूल में बदल गया। अब वह मुझे सूंघ रही थी और अपनी सखियों से कह रही थी, इसकी महक की तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी। सखियां उस से जलने का स्वांग रच रही थीं। मुझे उनके स्वांग पर भी ग़ुस्सा आ रहा था, उस पर बाला की झूठी ख़फ़गी पर भी। अन्तर्चेतना के किसी सजग कोने से फटकार आ रही थी, एक माया के ग़ायब होने ही तुम दूसरी के साथ हो लिये! मैं इम्तहान में फेल हो रहा था। उस बाला को मालूम होगा। उसका हाथ मेरी कमर को कसे हुए था और वह मुझे पुचकार रही थी। उसने मेरा डर महसूस कर लिया होगा। फिर अचानक पता नहीं क्या हुआ, किसने कौन सा ऐसा संकेत या आदेश दिया, कि उस बाला समेत सबने मुझ पर हंसना शुरू कर दिया। मैंने फिर साक्षात् झेंप का रूप ले लिया और वे सब मुझे मुरझाता छोड़ मुझ से दूर भाग गयीं। भागती हुई वे मुझे बदसूरत बकरियों सी दिखायी दीं। तब एक आवाज ने मुझे चौंकाया—आपको जाना कहां है? एक टेढ़ा सा शख़्स मुझ से पूछ रहा था। मेरे मुंह से निकल गया, कहीं नहीं। वह बोला, वहां वह रास्ता जाता है। उसकी आवाज़ इतनी गम्भीर थी कि मैं उसकी उठी हुई अंगुली के आदेशानुसार उस रास्ते की ओर देख रहा था जो वह मुझे दिखा रहा था। उसकी अंगुली भी टेढ़ी थी। वह रास्ता भी टेढ़ा होगा। उस रास्ते पर मुझे असंख्य चींटे चलते हुए नजर आए। वह रास्ता इतना दूर तो नहीं कि उस पर चलते हुए जानवर मुझे चींटे नजर आएं। मैं उस शख़्स से उन चींटों के बारे में पूछना तो चाहता था लेकिन हिम्मत नहीं हुई। उसकी तरफ सीधे देख कर उस से बात करने के खयाल से मुझे वैसी ही मितली हो रही थी जैसे चींटों से अटे हुए उस रास्ते पर चलने के खयाल से। साथ ही न जाने क्यों मुझे यह यक़ीन भी हो गया था कि जब तक मैं उसका दिखाया हुआ रास्ता नहीं अपनाऊँगा वह मुझे छोड़ेगा नहीं। मैंने उसे धोखा देने का फ़ैसला कर लिया। यह जानते हुए भी कि जब कभी मैंने किसी को धोखा दिया है पकड़ा गया हूं। अब मैं उस रास्ते की ओर बढ़ रहा था, इस खयाल से कि कुछ दूर जाने के बाद रुख बदल लूंगा, अगर उसने पीछे से आवाज दी तो सुनूंगा नहीं, अगर वह पीछे दौड़ा तो मैं भी दौड़ना शुरू कर दूंगा। उसके टेढ़ेपन के कारण, मैं जानता था, मेरी दौड़ उसकी दौड़ से तेज होगी। यह भी मुमकिन था कि वह दौड़ ही न सकता हो। यह सब तो ठीक है लेकिन अब मैं जाऊंगा कहां। कह तो दिया कहीं नहीं जाना लेकिन कहीं न कहीं तो जाना ही होगा। उस टेढ़े शख़्स को अपना कोई काम याद आ गया होगा। या उसे मुझ से विरक्ति हो गयी होगी। उसने अपना रास्ता पकड़ लिया। वह सचमुच बड़ी मुश्किल से आगे बढ़ रहा था। लगा कि आगे बढ़ने के बजाए आगे बढ़ने का अभिनय कर रहा था, लगा जैसे उसने रास्ते को नहीं, रास्ते ने उसे पकड़ लिया था। मैं अपने संकट को भूल उसकी हरकतों के रोचक और पेचीदा संसार में खो गया। मैं सोच रहा था वह क्या सोच रहा होगा, मैं

उसकी जगह होता तो क्या सोचता, किस किस को कोसता, किस नर्क से तसल्ली बटोरता, किस दर्शन से अपना घर बनाता, दिन में कितनी बार आत्महत्या करने की कोशिश करता, कितनी बार बिलबिलाता। नहीं। सोच इतनी साफ़ और सीधी नहीं थी। अब ऐसा नहीं कि मैंने शारीरिक मोड़ तोड़ पहले कभी न देखा हो। हर मोड़ पर मुड़े तुड़े लोग, गलते पिघलते कोढ़ी, कटे फटे भिखारी, एड़ियाँ रगड़ते हुए बच्चे और बूढ़े, असाधारण अनाथ अक्सर दिखायी दे जाते हैं। मैंने ऐसे ऐसे अपाहिजों को भी देखा है जिन्हें देखते ही मुझे आंखें बन्द कर लेनी पड़ीं। लेकिन उस तरह के एकान्त में वैसी एकाग्रता से किसी शरीर के कारखाने को वैसी मुश्किल से चलता हुआ मैं पहली बार देख रहा था। पता नहीं मैं कितनी देर और वहीं खड़ा खड़ा उसे देखता रहता लेकिन जब उसने कड़क कर कहा, शर्म नहीं आती मेरा तमाशा देखते, तो मैं उखड़ गया। अब शायद वह मेरा तमाशा देख रहा था। मुड़ कर देखने की हिम्मत नहीं हुई। मुझे खतरा था कोई और मुझे रोक कर पूछेगा, कहां भागे जा रहे हो? कुछ देर बाद यही हुआ। लेकिन पूछने वाले की आवाज़ इतनी सुरीली होगी, मैंने नहीं सोचा था। रोकने का उसका तरीक़ा भी बहुत प्यारा था। हुआ यह कि जब मैं सर डाले कुछ बड़बड़ाता हुआ भागा जा रहा था तो मुझे आभास हुआ कोई मेरे साथ भाग रहा है। पहले तो यही अन्देशा हुआ कि वही टेढ़ा शख्स अब अपना कोई और रूप दिखा रहा था। मेरी रफ़्तार धीमी हो गयी। उसकी रफ़्तार भी उतनी ही धीमी हो गयी। आवाज आयी, कहां भागे जा रहे हो? मैं उसी क्षण रुक गया। वह भी उसी क्षण रुक गयी। पहले खयाल आया, माया ही होगी। फिर इस खयाल पर गुस्सा आया। क्या उम्र भर मैं हर खूबसूरत औरत में माया को ही देखता रहूंगा। उसके सवाल के जवाब में भी मैं कह सकता था, कहीं नहीं, लेकिन मैंने कहा, पनाह की तलाश में हूं। उसने उचक कर मुझे चूम लिया तो महसूस हुआ किसी काया में पनाह मिलने वाली हो। फिर उसने कहा, तुम्हें वह कमरा पसंद आएगा। मैं खामोश रहा। वह फिर बोली, उसमें कोई किसी के भी साथ सो सकता है। मैं कहना चाहता था, मैं पनाह की तलाश में हूं, मुक्त भोगविलास की तलाश में नहीं। मैं उसे बताना चाहता था, मैं अपनी माया का ही मुरीद हूं। मैं उस से पूछना चाहता था, तुम कौन हो। लेकिन मैंने कुछ कहा न पूछा। कुछ देर बाद मैंने अपने आपको एक पारदर्शी इमारत के सामने खड़ा पाया। मेरी साथिन गायब हो गयी थी। इमारत शीशे या पानी की बनी हुई थी। उसमें दाखिल होते ही मुझे फिर नींद आ गयी।

शाम की मार खा कर मैं लुटा पिटा सा घर लौट रहा था लेकिन घर का रास्ता गुम हो गया था इसीलिए यह भरोसा नहीं था कि वह रात घर में गुजरेगा या उसकी तलाश में या उसके लिए किसी विकल्प में या ऐसे किसी विकल्प की तलाश में। घर न लौट सकने की संभावना का असर था या तनमन में अचानक आ गये किसी अज्ञात परिवर्तन का, मैं कह नहीं सकता मैं अनायास खिल उठा था। सो मैंने उस अजनबी अंधेरे में एडियाँ उठा उठा कर चलना शुरू कर दिया, अंधेरे के किसी दादा की तरह। शायद मैं उस शाम की मार को भी भूल गया था। भूलना मेरे लिए एक नेमत है, याद मेरी यन्त्रणाओं की जननी। जब घर का या घर से मिलती जुलती किसी पनाह का रास्ता भूल जाता है तो क्षणिक सी खीझ और घबराहट के बाद लौटने के बन्धन से और न लौट सकने के सन्ताप से आजादी का आनन्द लूटना शुरू कर देता है, कुछ देर के लिए, याद के लौट आने तक, घर का रास्ता या घर से मिलती जुलती कोई पनाह मिल जाने तक। भूला भटका पथिक न जाने क्यों सबको काबिलेरहम तो नज़र आता है लेकिन मदद का हकदार नहीं। रहम के बावजूद शायद लोग उसे भूलने भटकने के लिए मुआफ नहीं कर पाते। भूले भटके लोग अक्सर अपने घर से और बुरी तरह कट जाते हैं, चाल और चेहरे से और दीनहीन हो जाते हैं, घर लौटने की उनकी तमन्ना तड़प में बदल जाती है। तड़पते हुए व्यक्ति को लोग या तो मार डालना चाहते हैं या भूल जाना। मार डालने से भूल जाना आसान है, इसीलिए लोग उसे भूल जाते हैं। कोई उसके पास बैठ कर उसकी हालत पूछने की हिम्मत नहीं जुटा पाता। तड़पता हुआ आदमी खतरनाक होता है। वह कुछ तो कर नहीं सकता, कह बहुत कुछ सकता है। कोई भी शाप दे सकता है। शाप से लोग इस युग में भी डरते हैं। मेरी बात और है। भूल भटक जाने के बाद भी तड़पता नहीं मेरा मतलब है तड़पता हुआ दिखाई नहीं देता, अन्दर ही अन्दर तड़पता हूँ। और घर के रास्ते के साथ ही अक्सर घर को भी भूल जाता हूँ कुछ देर के लिए—घर की ममता और नफ़रतों को, उस से बाबस्ता व्यथाओं को, उसके साथ अपने रिश्ते के सारे कठिन इतिहास को, उसकी तरफ लौटते रहने की अनिवार्यता को, बेघर हो जाने के जानलेवा नतीजों को।

तो मैं चलता मचलता हुआ इन सब सवालों से बच रहा था। घर की जगह किसी और मंजिल ने अभी नहीं ली थी। मुझे मालूम था कि कुछ देर के लिए कुछ दूर तक आजादी से आलोकित हो लेने के बाद मैं फिर बुझना शुरू कर दूंगा, घर के लिए या घर की जगह पर आ बैठी किसी और मंजिल के लिए। इसलिए मैं अपनी अस्थायी आजादी का फायदा उठा रहा था—उस अजनबी अंधेरे में अजनबी परछाइयों और आवाजों से घिरा हुआ, बेघर,

बेमन्ज़िल, बेबुनियाद, बेनियाज़। अब अगर मेरे उन्माद ने मुझे अन्धा न कर दिया होता तो मैंने वह महीन साफ आवाज सुन ली होती जो न जाने कितनी देर से मुझे कौंच रही थी, उस महीन मैली लड़की को देख लिया होता जो न जाने कितनी दूर से मेरे पीछे चली आ रही थी। अगर उस लड़की ने सहसा मेरा हाथ न पकड़ लिया होता तो मैं न जाने कितनी देर और उस से बेखबर रहता। उसका हाथ खुरदरा था। मैंने झटका दे कर अपना हाथ छुड़ा लिया और उसकी तरफ खुरदरी नजर से देखा। उसकी आंखों मे भूख की *आभा थी*, चेहरे पर *उस आभा* का प्रकाश। मुझे लगा मैंने पहले भी कई बार उसे देखा था। भिखारिन बच्चियों की मेरे देश मे कोई कमी नहीं। सबकी आंखों में भूख की आभा होती है, सबके चेहरों पर उस आभा का प्रकाश, सबकी आवाजों में रिरियाहट, सबके दान्त सफेद, सबके बालों मे चिकनी चमक, सबके पांव नंगे और बाहें सूखी हुई, सबके कपड़े घिसे फटे और रंगीन, सबको देख कर कुछ दाता उन्हें भीख न मांगने की नसीहत देते हैं, सबको देख कर कुछ दाताओं की निगाहों मे हवस उतर आती है। मैंने उस जैसी सैकड़ों बच्चियों को देखा है। मुझे लगता है उन्हें देखते देखते ही मैं बूढ़ा हो गया हूं। मुझे लगता है मुझ से बड़ा मुजरिम शायद ही कोई और हो।

मैंने उस लड़की से पूछा—क्या चाहिये? मेरी आवाज मे घुड़की का धीमा सा स्वर भी नहीं था, सिर्फ थकन थी, लेकिन वह सहम कर एक कदम पीछे हट गयी और बोली, बाबूजी, भूख लगी है। उस वक्त, उस क्षण, शायद उसे भूख नहीं लगी थी। उसे कहना चाहिए था, मुझे भीख चाहिए। मुझे उस पर भी गुस्सा आ रहा था, अपने आप पर भी। उस पर इसलिए कि वह भिखारिन थी, अपने आप पर इसलिए कि मै भिखारी नहीं था। रात के मैले आलोक में उस बच्ची की सहमी हुई मर्तबा आंखो में उन सैकड़ो बच्चियो की आंखो को देख रहा था जिन्हे देखते देखते मे बूढ़ा हो गया हूं। मन हुआ कि सब कुछ उसे दे कर वहा से दौड़ जाऊं या वहीं खड़े खड़े आत्महत्या कर लूं। मैंने अपनी जेबें खाली कर दीं। ज्यादा पैसे नहीं थे लेकिन शायद ही किसी दाता ने उसे कभी यकमुश्त इतने पैसे दिये हो, इसलिए उसकी आंखो की आभा मे अब अविश्वास का आलोक भी मिल गया था। वह अब कुछ और सहम गयी थी। मुझे डर था वह मेरे नोट और सिक्के फेंक कर भाग जाएगी या मेरे पैर पकड़ लेगी लेकिन वह अपनी हथेलियो पर रखी रकम को घूर रही थी।

और तभी मुझे अपने घर का रास्ता अकस्मात् याद आ गया था। मै चाहता तो उस बच्ची को साथ ले जा सकता था लेकिन यह खयाल तक मेरे मन मे नहीं उठा। घर की तरफ बढ़ने से पहले मुझे उसके सर पर हाथ फेरना चाहिए था, उस से उसका नाम पूछना चाहिए था, उसे कोई उपदेश देना चाहिए था, पूछना चाहिए था वह उन पैसों का क्या करेगी, पूछना चाहिए था वह भिखारिन क्यो बनी, लेकिन मैंने तो उस से छुट्टी पाने और अपना अपराध कुचलने के लिए ही अपनी जेबें खाली की थीं, उसे खुश करने या जानने के लिए नहीं। घर मे कदम रखने से पहले मैंने फैसला कर लिया था माया को कुछ नहीं बताऊंगा, घर का रास्ता गुम हो जाने के बारे में न उस बच्ची के बारे में। माया नहीं जानती कि शाम को कभी कभी मुझे खूब मार पड़ती है और मैं घर का रास्ता भूल जाता हूं। इतना वह जरूर जानती है कि मेरी रात की सैर सिर्फ सैर नहीं होती, इसीलिए वह मुझे रोकती रहती है, खतरों से आगाह

करती रहती है। मैं ख़ुद उन खतरों से बेखबर नहीं, इसीलिए सैर से बाज नहीं आता। उस बच्ची को सब कुछ देकर आत्महत्या कर लेने का खयाल मुझे शाम की मार के बाद रात की सैर के दौरान ही आ सकता था। बेशक मैंने आत्महत्या की न करूंगा लेकिन खयाल तो आया। इस खयाल को मैं रात की सैर की उपलब्धि मानता हूं। मैंने फ़ैसला किया हुआ था कि माया अगर पीछे ही पड गयी कि मैं कहां भटक गया था, मेरा रंग क्यो उड़ा हुआ था, मैंने टैक्सी क्यों न ले ली तो कह दूंगा एक भिखारिन लड़की ने चाकू दिखा कर मेरी जेबें खाली करवा ली थीं। मुझे मालूम था माया मानेगी नहीं लेकिन उसकी पूछताछ बन्द हो जाएगी। दूसरे दिन मैं उसे सारी वारदात सुना दूंगा—घर का रास्ता भूल जाने वाली और आत्महत्या के खयाल वाली बात को दबा कर—और पूछूंगा, तुम मेरी जगह होती तो क्या करती? और वह जवाब देगी, मै तुम्हारी जगह पर हो ही नहीं सकती उसी तरह जैसे हम में से कोई उस बच्ची की जगह पर नहीं हो सकता, उसी तरह जैसे वह बच्ची हमारी जगह पर नहीं हो सकती, सच तो यह है कि कोई किसी की जगह पर नहीं हो सकता। और मैं झुंझला कर कहूंगा, बस माया बस, मैं तुम से सहमत नहीं, हम कोशिश करें तो किसी की भी जगह पर हो सकते हैं, अगर यह सम्भव न होता तो हम सब ने एक दूसरे को मार डाला होता। और वह कहेगी, बस बाबा बस, हम सब ने एक दूसरे को मार नहीं डाला तो और किया क्या है! और फिर हमारे सर झुक जाएंगे।

घर में कदम रखने से पहले यह सब मैंने सोच लिया था।

जब मै बस से उतरा तो मुझे यह आशा नहीं थी कोई मुझे लेने वहां आयी होगी, फिर भी मै प्रभात के उस पतले अंधेरे में इधर उधर यूं देख रहा था जैसे मुझे यह आशा हो। कोई और उस बस से उस जगह नहीं उतरा था। शायद कोई और उस बस मे था ही नहीं। उतरने ही मैं बस को भूल प्रभात के उस पतले अंधेरे पर मोहित होने मैं व्यस्त हो गया था। शायद इधर उधर देखता हुआ मैं उस अंधेरे के सौन्दर्य पर ही मोहित हो रहा था। मेरे एक हाथ मे हल्का सा सूटकेस था, दूसरे में एक ढीली सी गठरी। सूटकेस इतना हल्का था कि लगा खाली है, गठरी इतनी ढीली कि लगा गठरी नहीं कोई मैला मुचड़ा कपड़ा है। तभी ताज़ा हवा के झौंके की तरह वह आयी और मुझ से लिपट गयी। मैं हैरान नहीं हुआ—मैं जो ताज़ा हवा के हर झौंके पर हैरान होता हू। हैरान होता तो मुश्किल होती। हैरानी को छिपाना पड़ता और किसी भी चीज या चाव या चुभन को छिपाना मेरे लिए कठिन है। या फिर उस हैरानी की कोई सफ़ाई देनी पडती और अपनी किसी हरकत की सफ़ाई देनी मेरे लिए और भी कठिन है। कुछ देर लिपटे रहने के बाद उसने कहा, मुझे चूमोगे नहीं। मैंने अपने होंठो से उसके होंठो को बुहार दिया तो वह बोली, इस से मिलो, यह सोशलवर्कर है, आजकल मेरे साथ रह रही है। उस दूसरी औरत को देख कर भी मुझे हैरानी नहीं हुई, हालांकि उस क्षण तक मैंने उसे वहा देखा नहीं था। मुझे अपने आप पर बहुत गर्व महसूस हुआ . मै पकड़ा नहीं जाऊगा। हर स्थिति में मुझे यह आशका दबोचे रहती है कि मैं पकड़ा जाऊंगा। अक्सर यह आशंका सही साबित होती है। वह सोशलवर्कर उम्र में उस औरत से बड़ी थी जो हवा के झौंके की तरह आयी थी। उसे चूमने के लिए मैंने अपने होंठों की मुट्ठी बनायी तो पहली औरत ने दोहराया, यह सोशलवर्कर है। मुझे लगा उसने मुझे आदेश दे दिया हो कि मै अपने होंठों की मुट्ठी को खोल दूं। मुझे ऐसा करना बुरा लगा। सो मैंने सोशलवर्कर के होंठों को अपने होंठों की मुट्ठी से बुहार दिया और महसूस किया जैसे मैंने कोई नेक काम कर दिया हो। अब मैं उन दोनों के बीच चल रहा था, उड़ता हुआ सा, किसी बच्चे की तरह, जो छुट्टियां बिताने घर आया हो। अंधेरा भी उड़ रहा था। कुछ ही देर में उजाला हो जाएगा। इधर उधर पेड़ और पहाड़ और परिन्दे उड़ रहे थे। मुझे कोई तस्वीर याद आ रही थी। उसमें सब कुछ उड़ता हुआ नजर आता है। सोशलवर्कर ने अचानक पूछा, स्वैटर उतारते समय तुम मुस्करा क्यों रहे थे? शायद वह भी किसी तस्वीर को याद कर रही थी। वह तस्वीर उस समय मुझे याद नहीं थी। होती तो भी शायद मैं बहाना कर जाता कि भूल गयी है। उसे जवाब देना मुझे जरूरी जान पड़ा। खामोश रहूंगा तो दूसरी औरत के मन मे कई शक उठ खड़े होंगे। मैंने कहा, मुझे

मालूम नहीं, शायद यूहीं, कोई खास बात नहीं रही होगी मेरे मन मे, कभी कभी मैं ऐसे ही मुस्करा देता हू, अकेले होने पर, जब मुझे मालूम हो कोई मुझे देख नहीं रहा, क्योंकि आम तौर पर मैं मुस्कराता बहुत कम हू, डर लगा रहता है मेरी मुस्कराहट मेरे मन का आईना बन जाएगी। इस पर वह खुल कर मुस्करायी। साफ जाहिर था उसे मेरी बात पर यकीन नहीं आया था। मैं सोच रहा था, पता नहीं यह किस स्वैटर की बात कर रही है, किस अवसर को याद कर रही है, कौन है, किस मुस्कराहट के बारे में पूछ रही है, क्या कहना चाहती है? इस बीच हम उस जगह पहुच गये थे जहा मुझे ठहराया जा रहा था। रास्ता बहुत जल्दी कट गया था। वह औरत जो हवा के झौंके की तरह आयी थी वहा पहुंचते ही सीढ़ियां चढ़ ऊपर कहीं गायब हो गयी थी। दूसरी, जो अब ज्यादा बड़ी नजर आ रही थी न सोशलवर्कर, मेरे पास यो खड़ी थी जैसे वह भी उसी बस से उतरी हो, मेरी सफर-साथिन हो, मेरे लिए कई स्वैटर बुन चुकी हो, मुझे अन्दर बाहर से जानती हो। वह जगह मुझे एक होटल सी नजर आयी। काउंटर के उस पार एक हट्टा कट्टा लड़का खड़ा था। मेरी बाईं तरफ एक तंग से गुसलखाने मे एक आदमी कमर के इर्द गिर्द सफेद तौलिया लपेटे खड़ा था। हट्टा कट्टा लड़का मुझे कुछ बता रहा था, जो मेरी समझ मे नहीं आ रहा था। वह औरत उसे कुछ बता रही थी जो उसकी समझ में नहीं आ रहा था। मैं उस तंग गुसलखाने में खड़े उस आदमी से कहना चाहता था कि वह दरवाजा बन्द कर दे या मुझे घूरना। ऊपर से एक ही शब्द बार बार नीचे आ रहा था——भूख, भूख, भूख। वह आवाज़ उस औरत की थी जो कुछ देर पहले ताजा हवा के झौंके की तरह आयी थी। मैंने उस हट्टे कट्टे लड़के से कहा, आज मौसम बहुत अच्छा है। उसने हैरानी से मेरी तरफ देखा तो मैने कहा, ताजा हवा चल रही है।

घर का रास्ता फिर गुम हो गया था और मै उस अंधेरे मे उसे यों खोज रहा था जैसे कोई अन्धा किसी सुई को। कुछ दूरी पर एक इमारत दमक रही थी। उसमें मुझे वे तमाम इमारतें नज़र आ रही थीं जिन्हें किसी ज़माने में मैं अपने अभाव-भवन की एक खिड़की में बैठा दूर से देखा करता और आक्रोश और ईर्ष्या की आग मे झुलसा करता था। उन इमारतों मे रहने वालों को मैं अपना ईमानी दुश्मन समझा करता था, खास तौर पर अपनी सी कच्ची उम्र के लड़के-लड़कियों को, जिन्हें अपने अभाव-भवन में खींच लाने और वहीं बन्द कर रखने के स्वप्न मैं दिन रात देखा करता था। उन स्वप्नों में मेरे दान्त और नाखून बहुत लम्बे और तेज हुआ करते थे, जैसे परियों की कहानियों में राक्षसों के होते है, मेरी आखो से आग फूटा करती थी, मेरी आवाज से दहशत। अपने उन दान्तो और नाखूनो से मै उन सुकोमल साफ़ लड़के-लड़कियों को काट खरौंच कर कुरूप बना दिया करता था। वे कटी-फटी तसवीरों की तरह हो जाते तो मैं राक्षसी हंसी शुरू कर देता। वे बेहोश हो जाते तो मै होश में लौट आता, अपनी बर्बरता पर हैरान और शर्मिन्दा। किसी किसी स्वप्न में मै उन सुकोमल साफ लड़के-लड़कियों में से किसी एक को चुन कर उसका रूप ले लेता और महसूस करता जैसे मैंने आत्महत्या कर ली हो। वैसे उन स्वप्नों में हत्या और आत्महत्या का अन्तर अक्सर मिट जाया करता था। किसी किसी स्वप्न में मै उन तमाम दमकती हुई इमारतों को अपने क़हर से भस्म कर दिया करता था और फिर मल्बे से घिरा पागल नाच किया करता था। उन स्वप्नो मे मै खुद भी अन्दर ही अन्दर भस्म होता रहता था।

उस अंधेरे में अपने घर के गुम हो गये रास्ते को खोजता हुआ मैं उस दमकती इमारत में उन तमाम उजालों को देख रहा था जो बरसों मेरी आंखों में खटकते रहे थे।

उस अंधेरे में मैं अपनी नयी जमीन से उखड़ कर फिर उसी दलदल में जा गिरा था जिसने बरसों मुझे अपनी गीली गन्दी जकड़ में बान्धे रखा था।

उस इमारत में कई मन्जिलें थीं, कई किस्म के दरवाजे थे, महराबें थीं, छोटी बड़ी बेशुमार खिड़कियां थीं, झरोखे थे, चबूतरे थे, जालियाँ थीं, जंगले थे, बल खाती सीढ़ियां थीं, बरामदे और गलियारे थे, तस्वीरें थीं, सजे धजे लोग थे, चुस्त चाकर थे, कुत्ते थे...। वह इमारत मेरे सामने किसी पारदर्शी अमीर मोटी औरत की तरह नंगी नाच रही थी। मेरी आंखें दो मक्खियों की तरह उसके अन्दर उड़ रही थीं। बीच बीच में कुछ कुछ देर के लिए मै खुद भी अपनी आंखों की तरह उस इमारत मे उड़ता, फिर घबरा कर अपने उस अंधेरे मे लौट आता।

इमारत जब यकायक ओझल हो गयी तो मैं फिर अपने घर के गुम हो गये रास्ते की तलाश में खो गया। जब वह नहीं मिला तो मैंने घर के रास्ते के बजाय घर की तलाश शुरू कर दी और महसूस किया मानो सचमुच घर पहुचने का कोई नया रास्ता निकाल लिया हो। अब अंधेरा उड़ गया था और मै एक कंकरीली ढलान पर लुढ़क रहा था और याद कर रहा था कि किसी जमाने में बेरों के पेड़ो से उतरने वक्त उसी तरह की खुरदरी झुरझुरी हुआ करती थी। सहसा खयाल आया ढलान शायद किसी अथाह समन्दर या गन्दे नाले में जा खत्म होती हो। मैंने लुढ़कना बन्द कर दिया और ऊपर चढ़ने की कोशिश शुरू कर दी। अब लगा कि ढलान सीधी खड़ी होने की कोशिश कर रही थी, मानो मुझे झटक देना चाहती, मानो ढलान न हो, किसी जानवर की खुरदरी खाल हो जो मेरे स्पर्श से झुंझला कर मुझे झटक झाड़ देने के लिए सिकुड़-सिहर रही हो। आंखें बन्द कर के मैंने अपने आपको एक चींटे के रूप में देखा और चौंक कर सचेत हो गया। मेरे हाथ के बालों में एक चड़ रेंग रही थी। उसे झटकते हुए मैंने उसके मनोभाव की कल्पना करने की कोशिश की और फिर उस कोशिश पर हंसने की। मैं दोनों कोशिशो में पूरी तरह नाकाम रहा।

हम एक पहाड़ी मन्दिर में सर झुकाए बैठे है। वह शायद प्रार्थना कर रही है, मैं प्रार्थना करने की कोशिश। उसकी आंखें शायद पूरी बन्द है, मेरी आधी। उसके माथे की एक फाक मुझे नजर आ रही है। आंखों के दबाव से मैं उसे छोटा बड़ा करते हुए एक बचकाना खेल का आनन्द ले रहा हूं। शायद वह सोच रही हो हम इस पहाड़ी मन्दिर में क्यों आ बैठे हैं, हमारी मुरादें पूरी हो चुकी हैं, जो नहीं हुई, वे मर चुकी हैं, जो नहीं मरीं उन्हें हम मार सकते हैं, जिन्हें हम नहीं मार सकते वे अपने आप मर जाएंगी, हमें अब कुछ नहीं चाहिए, शान्ति भी नहीं, हम यहा क्या मागने आए हैं, क्या त्यागने आए हैं, हमारे पास अब त्यागने के लिए बचा ही क्या है, हम तो अब खाली हो चुके हैं, करीब-क़रीब, हम तो...। शायद वह यह सब नहीं सोच रही, शायद वह सिर्फ़ प्रार्थना कर रही है। मैं उसकी सोच के बारे में अनुमान लगा सकता हूं, उसकी प्रार्थना के बारे में नहीं। मुझे प्रार्थना का अभ्यास बहुत कम है। मेरी प्रार्थना अक्सर सोच में बदल जाती है, या शायद ऐसी बेचैनी में जिसे सुविधा और बचाव के लिए सोच का नाम दे देता हूं। जो हो प्रार्थना करने की कोशिश करते करत मैं सोच रहा हूं वह क्या सोच रही है। वह शायद सोच रही हो मैं क्या सोच रहा हूं। लेकिन उसे मालूम है मै अक्सर यही सोचता रहता हूं वह क्या सोच रही है। मैंने उसे नहीं बताया लेकिन उसे मालूम है। हम इस मन्दिर में शायद सर झुका कर कुछ देर खामोश बैठने के लिए आए हों। हमारे जैसे कुछ और भी यहां हैं। उनके सर भी झुके हुए हैं। उनकी मुरादें भी शायद पूरी हो चुकी हों या मर चुकी हों या मारी जा सकती हों। उन्हें भी शायद अब कुछ नहीं चाहिए, शान्ति भी नहीं। वे भी शायद यही सोच रहे हों वे यहां क्यों आए हैं, क्या मागने, क्या त्यागने। उनके पास भी शायद त्यागने के लिए कुछ न बचा हो। अचानक सबका ध्यान टूट जाता है। अब हम सब इधर उधर देख रहे हों, जैसे पूछ रहे हों ध्यान तोड़ने वाला कौन है, वह खड़ा हो जाए। मैं खड़ा हो जाता हूं तो सब खड़े हो जाते हैं। मै घबरा उठता हूं। मै जल्दी जल्दी जूते पहन कर माया के पास जा खड़ा होता हूं। उसके पांव नगे हैं। शायद वह नगे पांव ही आयी थी। वह मेरे पाँव की तरफ़ इशारा करती है तो मुझे पता चलता है मेरा एक जूता काला है, दूसरा भूरा, एक छोटा है, दूसरा बड़ा; एक नया है, दूसरा पुराना। मै भाग कर जूतों की जगह पहुंचता हूं। वहां एक जोड़ी स्लीपर पड़े है जो मेरे नहीं न ही मेरे माप के हैं। फिर भी मैं उन्हें पहन लेता हूं। मेरे पांव उनमे किसी बच्चे के से महसूस होते हैं। सर उठा कर देखता हूं तो माया गायब। दुनिया भर की उदासी मेरे अन्दर आ बैठती है। मै वहीं बैठ जाता हूं।

मैं एक संकरी फसील सी पर डगमगाता हुआ सा चल रहा हूं। शायद हवा और अन्धेरे के कारण या मेरे डर के कारण या इन तीनो के कारण मुझे लगता है वह फसील वेबुनियाद है, झूल रही है, शायद असल में फ़सील है ही नहीं कोई ढीली रस्सी या तार ही है—हवा और अन्धेरे मे तनी हुई। वह जो भी है इतनी सकरी और अस्थिर है कि फिसल कर उस अन्धेरे में गिर गुम हो जाने का खतरा मेरे जिस्म में झुनझुने की तरह बज रहा है। मेरी आंखें शायद इसीलिए अधमुन्दी सी हैं और मैं शायद उन्हें खुला रखने की कोशिश में भी कसा हुआ हूं। मुझे याद आ रहा है कि लड़कपन मे मैं अक्सर उस छोटे से कस्बे में शाम के वक़्त रेल की पटरी पर नंगे पांव चलने की मश्क किया करता था। अन्धेरा ऊपर से उतर रहा होता था। आस पास अक्सर कोई और नहीं होता था। सामने दूर मे गाड़ी आ रही होती थी। मेरे बाज़ू चील के डैनो की तरह फैले हुए होते थे, पैरों में सामने से आ रही गाड़ी की थरथराहट महसूस हो रही होती थी, आंखें इंजन की आंख के सूरज पर टिक नहीं पाती थीं, जिस्म में कुचले जाने की सम्भावना की झंकार कांप रही होती थी, गाड़ी की बांवरी सीटियो की धमकी का धुआं घूम रहा होता था। जब इंजन की आंख का सूरज गाड़ी के शोर और संगीत से लैस दस बीस गज की दूरी से मेरे जिस्म को झुलसा रहा होता तो मैं उछल कर एक तरफ़ जा गिरता। महसूस होता किसी ने चलती गाड़ी से मुझे बाहर फेंक दिया हो। गाड़ी मुझे थपेड़े मारती हुई मेरे पास से सरपट गुजर रही होती तो उस में बैठे सब मुसाफिर मुझे अपने दुश्मन जान पड़ते। जब गाड़ी गुम हो जाती तो महसूस होता मेरा दूसरा जन्म हुआ हो। इस एहसास से जो राहत मिलती उसकी तह में इस रंज के कंकर बिछे होते कि मैं फिर बच गया। वे कंकर अभी तक मेरी हर राहत की तह में बिछे रहते हैं, उनके बगैर किसी राहत की कल्पना मेरे लिए नामुमकिन है।

उस जमाने की वह जमीन मेरी आंखों में है, इसीलिए शायद मुझे यह देखने में इतनी देर लगी है कि मैं किसी अस्थिर झूलती हुई फसील पर नहीं बल्कि रस्सियो से बने हुए एक ढीले तंग पुल पर चल रहा हूं जिसके नीचे, बहुत नीचे, बेपनाह पानी है। कुछ क्षणों के लिए मै उस पानी में खोया उसकी क्षीण सी आवाज़ को सुनता रहता हूं। फिर सामने से वह अपनी तरफ़ आती हुई भी दिखायी देती है—अपने बाज़ुओं को चील के डैनों की तरह फैलाए, डोलती डगमगाती, आखें मुझ पर टिकाए—पीछे हटती हुई भी। उसके पीछे, बहुत पीछे, एक जगमगाता सा मंच बना हुआ है जिस पर कुछ लोग खड़े हैं। सन्नाटे में पानी की आवाज़ किसी की सिसकियों सी सुनायी देती है। फिर अचानक सब कुछ हवा हो जाता है। सिर्फ़ मैं अकेला पंख फैलाए उस झूलते हुए पुल पर चल रहा हूं और महसूस कर रहा हूं मैं नहीं कोई और अबाध मे उड़ा जा रहा हो, राहत से ऊपर, रंज के कंकरों से दूर।